GP - 05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

गाँधी एवं अन्य विचारक

GP-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

गाँधी एवं अन्य विचारक

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. बी. अरुण कुमार
सह आचार्य,राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ.) एम.एल. शर्मा
आचार्य,गांधी अध्ययन केन्द्र
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. के.एस. भारती
विभागाध्यक्ष(गांधी एवं विचार) टी.के.एम. नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

प्रो. एन. राधाकृष्णन्
पूर्व अध्यक्ष गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति राजघाट, नई दिल्ली

प्रो. आर.एस. यादव
विभागाध्यक्ष(राजनीतिक विज्ञान) एवं निदेशक, गांधी अध्ययन केन्द्र
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रो. एम.एल. शर्मा
आचार्य,गांधी अध्ययन केन्द्र पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. पी. मोटियानी
शांति एवं संदर्भ निवारण विभाग गुजरात विद्यापीठ,अहमदाबाद गुजरात

सम्पादक एवं पाठ लेखक

सम्पादक

डॉ. बी. अरुण कुमार
सह आचार्य,राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. अंजु सुथार व्याख्याता, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय, बाडमेर	1, 8
डॉ. पल्लव मित्तल व्याख्याता, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय,कोटपुतली	2
डॉ. पंकज गुप्ता व्याख्याता, राजनीति विज्ञान एल.बी.एस. राजकीय महाविद्यालय,कोटपुतली	3, 10, 13
प्रो.(डॉ.) प्रियंकर उपाध्याय बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस	4
डॉ. वी.के. राय सह आचार्य, राजनीति विज्ञान इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद	5
डॉ. जुगल दाधीच सहायक आचार्य, गाँधी एवं शांति अध्ययन केन्द्र जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाड़नू	6
डॉ. फूल सिंह गुर्जर व्याख्याता, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय, झालावाड़	7
डॉ. राधाकृष्ण व्याख्याता, राजनीति विज्ञान, साभरलेख	9
डॉ. संगीता विजय व्याख्याता, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली, टॉक	11
डॉ. रूपा मंगलानी व्याख्याता, राजनीति विज्ञान एल.बी.एस. राजकीय महाविद्यालय,कोटपुतली	12
डॉ. अशोक चोसल्कर व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर(महाराष्ट्र)	14
डॉ. मनीष शर्मा सहायक आचार्य, गाँधी अध्ययन केन्द्र पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़	15

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) विनय पाठक
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. (डॉ.) बी.के. शर्मा
निदेशक,संकाय विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा
निदेशक,क्षेत्रीय सेवाएं
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अप्रैल 2013 ISBN - 13/978-81-8496-379-3

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

गाँधी एवं अन्य विचारक

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	टालस्टॉय और गाँधी	7–24
इकाई - 2	रस्किन एवं गाँधी	25–44
इकाई - 3	थोरो और गाँधी	45–64
इकाई - 4	गाँधी एवं मार्क्स	65–89
इकाई - 5	गाँधी एवं माओ	90–104
इकाई - 6	गोखले एवं गाँधी	105–119
इकाई - 7	तिलक एवं गाँधी	120–132
इकाई - 8	गाँधी एवं नेहरू	133–155
इकाई - 9	गाँधी और भीमराव अम्बेडकर	156–171
इकाई - 10	गाँधी और विनोबा भावे	172–191
इकाई - 11	गाँधी और जयप्रकाश नारायण	192–204
इकाई - 12	गाँधी एवं लोहिया	205–216
इकाई - 13	गाँधी और जे.सी. कुमारप्पा	217–229
इकाई - 14	गाँधी और एम.एन. रॉय	230–248
इकाई - 15	गाँधी और मार्टिन लूथर किंग जूनियर	249–264
इकाई - 16	गाँधी और नेल्सन मण्डेला	265–276

इकाई-1

टालस्टॉय और गाँधी

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 लिओ टालस्टॉय (1828-1910) : संक्षिप्त जीवन परिचय

1.3 गाँधी (1869-1948) : संक्षिप्त जीवन परिचय

1.4 टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में समानता

1.4.1 मनुष्य अस्तित्व, ईश्वर और धर्म संबंधी विचार

1.4.2 अहिंसा संबंधी विचार

1.4.3 आधुनिक औद्योगिक संस्कृति संबंधी विचार

1.4.4 राज्य और शासन के प्रति दृष्टिकोण

1.4.5 आर्थिक विषयो पर टालस्टॉय और गाँधी का दृष्टिकोण

1.4.5 आर्थिक विषयो पर टालस्टॉय और गाँधी का दृष्टिकोण

1.4.6 टालस्टॉय और गाँधी में अन्य समानतायें

1.4.6.1 प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का महत्व

1.4.6.2 आत्मकथा लेखन

1.4.6.3 साधरणत व्यक्ति से महात्मा की ओर उद्भव

1.4.6.4 मात्र उपदेश देने तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन में स्वयं अपनाने का भी कार्य

1.4.6.5 गाँधी भोजन के प्रबल समर्थक

1.4.6.6 अपने नाम से किसी 'वाद' को प्रचारित करने का खण्डन

1.5 टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में भिन्नता

1.6 सारांश

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकेंगे:-

- टालस्टॉय और गाँधी के जीवन के बारे जानकारी ।
- टालस्टॉय के विचार और कार्य ।
- गाँधी के विचार और कार्य ।
- टालस्टॉय और गाँधी में विद्यमान समानतायें और असमानतायें ।

1.1 प्रस्तावना

शांति की कामना सदैव ही मनुष्य के लिए सर्वोपरि लक्ष्यों में से एक महत्वपूर्ण लक्ष्य रहा है । टालस्टॉय और गाँधी दो ऐसे महान दार्शनिक हैं जिन्होंने विश्व शान्ति के लिए बहुत कुछ लिखा कहा और किया है । यदि हम अहिंसात्मक आदोलन के इतिहास पर गौर करें तो गाँधी और टालस्टॉय का इसमें विशेष स्थान है । टालस्टॉय ने अहिंसा के विषय पर अनेक पत्र, निबन्ध, पैम्फेलैट आदि लिखे और यह संख्या इतनी अधिक थी कि इनसे एक पुस्तकालय निर्मित हो सकता था । अहिंसा के प्रबल समर्थक के साथ-साथ टालस्टॉय और गाँधी लोगो में आपसी प्रेम और भाईचारा पर आधारित अन्तर-संबन्ध को विकसित कर विश्व-बन्धुत्व की कामना करते थे । सच्चाई, ईमानदारी, सादगी, शारीरिक श्रम, परोपकारी सेवा, इत्यादि सदगुणों को दोनों ने मनुष्य जीवन और शान्तिमय विश्व के लिए अपरिहार्य माना है । दोनों की महानता इस तथ्य से भी प्रदर्शित होती है कि दोनों ने जिन सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया, उन्ही सिद्धान्तो पर अमल करते हुए दोनो महापुरूषों ने अपना जीवन यापन करने का प्रयास किया । सरल और सादगीपूर्ण जीवन में उनकी कथनी और करनी में अन्तर समाप्त हो चुका था । विश्व शांति और अहिंसा के लिए उनका प्रयास और समर्पण हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। आज के भौतिकवादी वैश्विक युग में हम किन मूल्यों को आत्मसात करते हुए आगे बढे और समकालीन समस्याओं का अहिंसात्मक निराकरण कैसे करें, इस दिशा मे टालस्टॉय और गाँधी का दर्शन हमारा मार्ग प्रशस्थ करता है ।

1.2 लिओ टालस्टॉय (1828-1910) : संक्षिप्त जीवन परिचय

टालस्टॉय का जन्म रुस के तुला प्रांत के यासनाया पोलयाना नामक स्थान पर 28 अगस्त 1828 को हुआ । उनके पिता का नाम निकोलाइ इलिइच टालस्टॉय था और माँ का नाम मारिया वॉलकोनस्काया था । लिओ निकोलेविक टालस्टॉय अपने माता-पिता की चौथी संतान थे । टालस्टॉय के बाल्यावस्था में ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया था । उनके माता-पिता की मृत्यु के बाद टालस्टॉय का लालन-पालन उनकी मौसी तातयाना ने किया । उनकी शिक्षा कजान विश्वविद्यालय में हुई और युवावस्था में उनका अधिकांश समय जुआ खेलने, मद्यपान इत्यादि मे व्यर्थ हुआ, जिसका टालस्टॉय कालान्तर में बहुत अफसोस के साथ बयान करते हैं । कजान विश्वविद्यालय से वे डिगरी का अध्ययन पूरा नहीं कर पाए । परन्तु कुछ समय बाद टालस्टॉय ने कानून का अध्ययन समाप्त कर अपने क्षेत्र में दासों के बच्चों को पढाने के लिए एक प्रगतिशील विद्यालय की स्थापना की । जीवन व्यापन के लिए उन्होंने विभिन्न प्रकार के काम किए पर किसी में सफल नही हुए । अन्त में भाई के माध्यम सम वे सेना में प्रवेश करने में सफल हुए । टालस्टॉय के सेना में रहने के दौरान उनकी पहली कहानी प्रकाशित हुई । यह क्रीमिया युद्ध का समय था। 1852 से 1856 के बीच उन्होंने अपने जीवन पर आधारित तीन उपन्यास लिखीं और प्रकाशित करवायी - चाइल्डहुड(Childhood) बॉयहुड(Boyhood) और यूथ (Youth)। युद्ध के प्रत्यक्ष अनुभवों और हिंसा ने टालस्टॉय के शान्तिवादी रूझान को उत्पन्न किया और बढाया । इन्हीं अनुभवों ने उनको युद्ध की निरर्थकता

और भयावह दुष्परिणाम संबंधी विचारों को प्रभावित किया । वर्ष 1856 में सेना से विदा लेने के बाद टालस्टॉय ने पश्चिमी यूरोप विशेषकर फ्रांस और जर्मनी की यात्राएं की। इसी यात्रा के दौरान उन्होने फ्रांस के पेरिस नगर में एक सार्वजनिक फांसी की क्रियान्विति का दृश्य देखा जिसने उनके अराजकतावादी विचार को पनपाया। इस बारे में उन्होंने अपने मित्र को लिखा कि "सत्य तो यह है कि राज्य एक साजिश है निर्माण केवल शोषण मात्र के लिए नहीं अपितु नागरिकों को भ्रष्ट करने के लिए कया गया है । आगे से कभी सरकार की सेवा कहीं की नहीं करूँगा । "क्रमश: उनका आध्यात्मिक रूझान बढने लगा और वे भौतिकवादी प्रवृत्तियों से प्रथक रहने के सचेत प्रयास करने लगे । वर्ष 1862 में, 34 वर्ष की आयु में टालस्टॉय ने अपने एक मित्र की बहन जिनका नाम सोफिया एन्ड्रेयवना बेहर्स, से विवाह किया । टालस्टॉय ने सोफिया को बीते जीवन की उनकी सभी करनी को अपनी डायरी भेंट कर बताने का प्रयास किया । सोफिया ने टालस्टॉय को सब कुछ जानते हुए अपनाया और उनका वैवाहिक जीवन प्रारम्भ मे सुखद रहा । वर्ष 1862 में अपने विवाह के पश्चात दोनों सादगीपूर्ण जीवन जीने के प्रयास में जुट गए । टालस्टॉय ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'वार एंड पीस' पर कार्य करना शुरु किया । सोफिया ने न केवल घर के दायित्व को बखूबी संभाला बल्की टालस्टॉय के लेखन कार्य में भी अनेक प्रकार से मदद की । टालस्टॉय की व्यस्तता और घर से बाहर लम्बे समय तक रहने के दौरान, सोफिया ने बच्चों को पढाना, कपडे सीलना संगीत का अध्ययन कराना जैसे अनेक कार्यो ने संभाला । 'वार एंड पीस' के बाद टालस्टॉय के कई निबन्ध और उपन्यास प्रकाशित हुए जिसमे 'अन्ना केरेनिना' प्रमुख है । बाद के वर्षो में उन्होंने 'द डेथ आफ इवान इलियच', 'द क्रियूटजर सोनाटा' और रिसरक्श्न' नामक उपन्यास लिखे ।

पचास वर्ष की आयु तक आते-आते टालस्टॉय अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हो चुके थे । परन्तु अपने चारों और हिंसात्मक, अनैतिक और अन्यायपूर्ण वातावरण से टालस्टॉय विचिलित होने लगे थे और उनको गहरी निराशा का भाव घेरने लगा । वे मनुष्य जीवन के मूल तत्व और उद्धेश्य से जुड़े प्रश्नों के उत्तर ढूँढने में तल्लीन हो गए । उनका दाम्पत्य जीवन क्रमश: कलहपूर्ण होने लगा । वर्ष 1888 में टालस्टॉय की 13वीं एवं अंतिम संतान का जन्म होने के बाद टालस्टॉय की पत्नी और उनके मुख्य शिष्य चेर्टकोव आपस में बहुत झगड़ने लगे । इसके बाद से लेकर टालस्टॉय की मृत्यु तक घर का यह झगड़ा गहरा होता रहा । टालस्टॉय ने अपनी सम्पत्ति, विरासत मे मिली हुई तथा स्वयं द्वारा अर्जित की हुई, और लेखन से प्राप्त कॉपीराइट को परित्याग किया और इस दौरान टालस्टॉय ने स्वयं को लेखन के लिए समर्पित कर लिया । इसमें उन्होंने कल्पनावादी साहित्य से लेकर ईसाई अराजकतावाद पर निरन्तर लेखन कार्य किया । वर्ष 1910 के मध्य मे जब उनके घर में संकट बढने लगा तो उन्होंने यासनाया पोलयाना स्थित अपना घर और परिवार छोडने का निर्णय किया । सर्दी के दिनों का बात है, 28 अक्टूबर 1910 को रात में अपनी बेटी एलेक्सेन्ड्रा के साथ वे घर से निकल पडे । वे नजदीक के रेल्वे स्टेशन अस्टापोवो तक ही पहुँच पाए । तेज सर्दी के कारण वे तत्काल स्टेशन पर ही निमोनिया से ग्रसित हो गए । स्टेशन मास्टर उन्हें अपने घर ले गए । लगभग

10 दिन बाद, 7 नवम्बर 1910 निमोनिया को के कारण 82 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ ।

1.3 गाँधी (1869-1948): संक्षिप्त जीवन परिचय

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1669 को गुजरात प्रात के तत्कालीन राजकोट रियासत पोरबन्दर में हुआ था । उनकी माता का नाम पुतलीबाई और पिता का नाम करमचन्द गाँधी था । महात्मा गाँधी उनके तीसरे पुत्र थे और उनका नाम मोहनदास रखा गया था और प्यार से उन्हें मोनिया पुकारा जाता था । गाँधी परिवार मोध बनिया जाति के थे तथा जूनागढ़ राज्य के कुटियाना जगह से सम्बन्धित थे । यह परिवार आर्थिक रूप से समृद्ध और राजनीतिक-सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित भी था और धार्मिक चर्चाऐं भी होती थी । महात्मा गाँधी की धर्म और ईश्वर सम्बन्धी मान्यतायें उनकी माता पुतलीबाई से काफी प्रभावित थी । बचपन में गाँधीजी पर माता-पिता के अतिरिक्त और अनेक प्रभाव पडे जैसे, उनके घर पर काम करने वाली नौकरानी रम्भा ने गाँधीजी को 'रामनाम' के अचूक बाण की सीख दी, उन्हे दो नाटकों - श्रवण पितृभक्ति' और हरिश्चन्द्र' ने अत्यन्त प्रभावित किया, उनके घर पर रामायण और गीता का पाठ और अनेक धर्म के लोगो का आवगमन और धार्मिक चर्चाऐं होती थी जिन्होने गाँधी की धार्मिक विचारों को प्रभावित किया । राजकोट में गाँधी की प्राथमिक और हाई स्कूल की शिक्षा पूरी की । उन्होंने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर भावनगर के समालदास कॉलेज में बी.ए. पाठ्यकम में प्रवेश लिया जिसे उन्होंने बीच में छोड वापिस राजकोट लौट आये । इस समय उन्हें सलाह दी गई कि कानून की पढ़ाई करें और इसके लिए उन्हें लंदन भेजा जाए । अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अन्ततः कानून के अध्ययन के लिए, लंदन जाने में सफल हुए । प्रारम्भिक भटकाव के बाद उन्होंने अपना ध्यान कानूनी अध्ययन में लगा कर लॉ की परीक्षा उत्तीर्ण की । इंग्लैण्ड के हाई कोर्ट में गाँधीजी ने अपना नाम दर्ज करवाया और 12 जून 1891 को भारत के लिए रवाना हुए ।

भारत आकर गाँधीजी वकालत कार्य करने में असफल रहे । तभी उन्हे दक्षिण अफ्रीका में भारतीय फर्म दादा अब्दुला एण्ड कम्पनी की एक मुकदमे में पैरवी कर रहे नामी वकील-बेरिस्टरों को फर्म का पक्ष अच्छी तरह समझाने के लिए काम करने का प्रस्ताव प्राप्त हुआ । गाँधीजी ने इसे स्वीकार कर दीक्षण अफ्रीका जाने का निर्णय लिया । अप्रेल 1893 में गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए ।

गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान पाया कि वहाँ सरकार द्वारा अपनाये गये रंग-भेद नीति के कारण अनेक प्रकार की अन्यायपूर्ण स्थितियाँ और व्यवहार प्रचलन में हैं । सभी अश्वेत, अफ्रीका के मूल प्रवासी काले लोग हों या भूरे रंग के कूली कहलाने वाले भारतीय, इन अन्यायपूर्ण स्थितियों और व्यवहार के शिकार नित्य दिन होते रहते थे । गाँधी स्वयं भी इनका शिकार हुए । मारिट्सबर्ग रेल्वे स्टेशन पर उन्हें, उचित टिकट होने के बावजूद भी समान सहित 'फेंक' दिया था । रेलगाड़ी के फर्स्ट-क्लास के डबे में एक गोरे साहिब ने गाँधी का उनके साथ सफर करने पर आपत्ति व्यक्त की और क्योंकि गाँधी ने उस डबे से उतरने से मना कर दिया, तो उन्हें समान सहित रेलगाडी के उस डबे से बाहर 'फेंक' दिया गया । उसी रात मारिट्सबर्ग

रेल्वे स्टेशन पर उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में व्याप्त अन्यायपूर्ण स्थितियाँ और व्यवहार का विरोध करने का निर्णय लिया । ऐसा वे केवल अपने लिए नहीं करना चाहते थे बल्कि दक्षिण अफ्रीका में अपने हिन्दुस्तानी भाईयों को भी सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिए करना चाहते थे । इस तरह दक्षिण अफ्रीका में व्याप्त असमानता और अन्याय का विरोध करने के संघर्ष में गाँधी समर्पित हो गये और सत्याग्रह का कालान्तर में दक्षिण अफ्रीका में जन्म हुआ।

दक्षिण अफ्रीका के सफल सार्वजनिक जीवन पश्चात गांधीजी 1914 में भारत लौटे । यही उनका समकालीन भारत राजनीतिक परतंत्रता और अनेक प्रकार के आर्थिक समस्याओं और धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों से ग्रसित था । 1916 से 1918 के बीच संचालित चम्पारण, अहमदाबाद मिल और खेड़ा सत्याग्रह के पश्चात गाँधीजी ने अनेक जन आंदोलनों का नेतृत्व किया । अंग्रेजों के शोषणात्मक उपनिवेशवादी शासन से मुक्त करने के लिए गाँधीजी ने 1919 का रॉलत सत्याग्रह, खिलाफत आदोलन, 1920 का असहयोग आदोलन, 1930 का सविनय अवज्ञा आदोलन और 1942 का भारत छोड़ो आदोलन जैसे अनेक राष्ट्रीय जम आंदोलनों का नेतृत्व किया और भारत को आजादी दिलाने में अहम भूमिका निभाई । भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिये भी उन्होंने सक्रिय प्रयास किए । हरिजनों और महिलाओं के उत्थान में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा । साम्प्रदायिक सौहार्द को स्थापित करने में भी उन्होंने भरसक प्रयास किए । आर्थिक समस्याओं को दूर करने के लिए उन्होंने कृषि, कुटीर उद्योग, रोजगारोन्मुखी शिक्षा, इत्यादि की योजनाओं के बारे में अपना दर्शन दिया और इन्हें कार्यान्वित करने के प्रयास भी किए । उन्हे द्वारा प्रस्तुत रचनात्मक कार्यक्रम भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन और सुदृढ़ करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास थे।

इस तरह भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को जन आन्दोलन बनाकर नैतिक और अहिंसक साधनों के प्रयोग से उसे स्वतंत्र करने में गाँधी का महत्वपूर्ण योगदान रहा । स्वतंत्रत भारत को सशक्त और सर्वोदयी राष्ट्र बनाने तथा समाज में न्याय और भारतत्व भाव स्थापित करने का उनका अनूठा सपना था और उन्होंने इसकी कार्य योजना

के बारे में विस्तृत विवेचना भी की और प्रयास भी किए । परन्तु दुर्भाग्य से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उन्हें अधिक समय नही मिला क्योंकि 30 जनवरी, 1948 को उनकी हत्या कर दी गयी थी ।

1.4 टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में समानता

यों तो टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में बहुत सारी समानतायें देखने को मिलती हैं और टालस्टॉय द्वारा लेखन के अध्ययन और कुछ पत्र व्यवहार के पश्चात निश्चित ही गाँधी टालस्टॉय के विचारों से अनेक प्रकार से प्रभावित हुए होंगे । लेकिन गाँधी ने टालस्टॉय के प्रति निम्नलिखित तीन बातों के लिए ऋणी बताया :-

1. टालस्टॉय ने उन्हें सिखाया कि व्यक्ति को उन सब बातों का अनुसरण अपने जीवन में करना चाहिए जिन्हें वह दूसरों को अनुसरण करने के लिए कहता है । गाँधी ने कहा कि टालरटॉय सत्य के मिसाल हैं ।
2. टालस्टॉय ने अहिंसा के प्रति उनके विश्वास को और सुदृढ किया । गाँधी ने कहा कि समकालीन युग में टालस्टॉय ईश्वर द्वारा भेजे गए अहिंसा के सबसे महान दूत हैं ।
3. टालस्टॉय ने 'रोटी के लिए शारीरिक श्रम की अनिवार्यता' सिद्धान्त को बताया है ।

विस्तृत रूप में टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में विद्यमान समानताओं को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है :-

1.4.1 मनुष्य अस्तित्व, ईश्वर और धर्म संबंधी विचार

टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में समानता का एक महत्वपूर्ण आधार है यह है कि दोनो मनुष्य अस्तित्व से जुडे हुए प्रश्नों के उत्तर ढूँढने का प्रयास करते हैं और उसके आधार पर अपने समस्त दर्शन को बढ़ाते हैं । अधेड उम्र से जीवन के अंतिम तक टालस्टॉय की रूची जीवन के आध्यात्मिक पक्षों की तरफ अधिक केन्द्रित होने लगा । वर्ष 1879 में टालस्टॉय मानव अस्तित्व से जुड़े मूल प्रश्न को उठाते हुए उन्होंने कहा, 'मेरा सवाल सबसे सरल है जो मूर्ख से लेकर समझदार तक प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में निहित है । यह वह सवाल है जिसका जवाब जाने बिना कोई जीवित नहीं रह सकता, जैसा कि मैंने अपने अनुभव से जाना है । प्रश्न है कि, मैं आज क्या कर रहा हूं मैं कल क्या करुंगा ? इससे क्या निकलकर सामने आएगा ? इसी प्रकार मेरे पूरे जीवन से क्या अर्थ निकलेगा ?" टालस्टॉय के अनुसार ईश्वर जीवन का पूर्ण, अनंत और अमर स्रोत है । मनुष्य कहाँ से आया है ? वह कौन है ? जैसे सवालों का उत्तर टालस्टॉय ने ईश्वर के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करते हैं । उनके मतानुसार समस्त जीवन का स्रोत ईश्वर है और ईश्वर के लिए ही मनुष्य को समर्पित होना चाहिए । उनके अनुसार ईसा मसीह का जीवन कुछ हद तक हमें सिखता है कि मनुष्य ईश्वर के लिए कैसे जी सकता है । ईश्वर और मनुष्य में उनके अनुसार पिता-पुत्र जैसे सबंध विद्यमान है और यह संबंध प्रेम पर आधारित है । टालस्टॉय के अनुसार संबंधों का प्रेम पर आधारित होने का मतलब है सेवा और सेवा का मतलब होता है त्याग करने के लिए तैयार रहना । टालस्टॉय के दर्शन में प्रेम, सेवा और त्याग आत्म संयम के भाव से भी घनिष्ठ रूप से जुडा हुआ है । टालस्टॉय ने कहा कि सर्मन ऑन द माऊँट कोई वैक्तिक मुक्ति का रहस्यवादी सिद्धान्त नहीं है बल्कि संपूर्ण जीवन का दर्शन है । उन्होंने नई एवं पुरानी टेस्टामेंट कई बार पढ़ा और बाईबिल पर निरन्तर चर्चा और टिप्पणियां की । वे सच्चे ईसाई थे जिन्होंने सभी बाहरी आडम्बरों और पाखण्डों का विरोध किया । सत्यनिष्ठा, अहिंसा का पालन, अपरिग्रह, अन्तःकरण की आवाज पर जीना, परोपकार की भावना रखना, इत्यादि टालस्टॉय के अनुसार श्रेष्ठ जीवन जीने के आधारभूत लक्षण हैं । आत्मशुद्धि कर जीवन से जुड़े- उपर्युक्त, मूल्यों को अपने जीवन आचरण का आधार बनाने पर व्यापन करने पर टालस्टॉय ने जोर दिया । उन्होंने केवल उपदेश देने तक अपने आप को सीमित नहीं रखा बल्कि स्वयं अपने जीवन में भी इन्हें आत्मसात किया ।

उनका मानना था कि नैतिक नियमों को समझना मनुष्य का महत्वपूर्ण कार्य नहीं, अपितु ऐसा करना मानवता का एक मात्र काम है ।

गाँधी के लिए जीवन का आध्यात्मिक पक्ष बहुत महत्वपूर्ण था । व्यक्ति को मूल रूप से आध्यात्मिक मानते हुए उन्होने मनुष्य अस्तित्व के साथ कुछ आध्यात्मिक मूल्यों की अपरिहार्यता को स्वीकारा है । सत्य, अहिंसा अपरिग्रह, अस्तेय, बह्मचर्य, प्रेम, इत्यादि मानव अस्तित्व से जुडे आधारभूत मूल्य है । इन मूल्यों को प्राप्त करना अर्थात इन्हे अपने आचरण का निर्धारक तत्व बनाना ही मनुष्य का धर्म है । इन मूल्यों की प्राप्ति को ही गाँधी आत्मानुभूति माना है । गाँधी मानते थे कि सम्पूर्ण सृष्टि के पीछे ईश्वर का हाथ है, ईश्वर सब में निवास करता है और ईश्वर ही अन्तिम सत्य है । समस्त सृष्टि के स्रोत के रूप में ईश्वर मनुष्य में भी विद्यमान है और इस रूप में वे अन्तरात्मा के रूप में विद्यमान हैं । ईश्वर ही उनके अनुसार परम और अन्तिम सत्य है । अत: वे मानते थे कि ईश्वर की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का ध्येय है । इस परम सत्य के प्रति समर्पण ही मनुष्य का कर्तव्य है । गाँधी के लिए ईश्वर की प्राप्ति का प्रयास कोई एकान्त स्थान जाकर या भौतिक जगत को त्याग कर योगी या साधू द्वारा किए जाने वाला प्रयास जैसा नहीं होना चाहिए, अपितु भौतिक जगत में रहते हुए ईश्वर की अन्य सृष्टि के साथ, विशेष रूप से मनुष्यों के साथ (इनमें भी विशेष रूप से दीन, दुखी और असहाय, लोगों के साथ) सामंजस्यपूर्ण और सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करते हुए जीवन व्यापन करना है । ऐसा जीवन गाँधी के लिए सत्य, अहिंसा अपरिग्रह, अस्तेय, बह्मचर्य, प्रेम, इत्यादि जैसे आधारभूत मूल्यों से परिलिक्षित है । साथ ही ऐसा जीवन सादगी सरलता और आत्म-नियन्त्रण या संयम को भी आवश्यक मानता है । गाँधी ने अपने आप को हिंदू कहा था, परन्तु ऐसा कहने के पीछे उनका कोई विशेष सम्प्रदाय या मत से जुड़ने और उनके प्रतीकों तक सीमित रहने से नहीं था । उनकी धर्म संबंधी धारणा अत्यन्त व्यापक है और मूल रूप से यह नैतिकता और मानवीयता से जुड़ी हुई है । यह कोई व्यक्ति विशेष की मुक्ति मात्र का साधन नहीं अपितु विश्वबन्धुत्व और विश्व-कल्याण का भावना से प्रेरित है । टालस्टॉय की तरह गाँधी ने भी केवल शब्दो या उपदेशों तक अपने आप को सीमित नहीं रखा बल्कि अपने जीवन में अनेक प्रयोग कर इनमें निहित सत्य को पहचान कर उन्हें अपने अप्रचरण का आधार बनाया । इस तरह टालस्टॉय और गाँधी के कथनी और करनी का भेद समाप्त हो चुका था । इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि दोनों दार्शनिक मात्र नहीं थे अपितु मानवीयता के श्रेष्ठ शिक्षक थे जिन्होंने अपने उपदेशों को स्वयं के स्तर पर सर्वप्रथम अपनाया । मात्र मनुष्य द्वारा उक्त प्रयास करना टालस्टॉय और गाँधी के लिए महत्वपूर्ण था । दोनों कर्मयोगी माने जा सेते हैं जिन्होंने फल की कामना किए बिना कर्म किया । इस संबंध में तो गाँधी टालस्टॉय से भी आगे जाते हुए प्रतीत होतें हैं क्योंकि उन्होंने अपने जीवन काल में ही अपनी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से सामाजिक स्तर पर, वैक्तिक और संस्थागत स्तर पर, आध्यात्मिक मूल्यों को आचरण और प्रक्रियाओं का आधार बनाने का अथक प्रयास किया और आंशिक सफलता भी अर्जित की ।

1.4.2 अहिंसा संबंधी विचार

अहिंसा के प्रबल समर्थकों में लिओ टालस्टॉय का नाम अग्रणी है । वे एक ऐसे तार्किक अहिंसावादी थे जिन्होंने अहिंसा के विभिन्न पक्षों पर बहुत विस्तृत रूप से लिखकर मनुष्य जीवन और विश्व कल्याण के लिए इसे अपरिहार्य बताने का प्रयास किया है । उनका समकालीन विश्व हिंसामयी वातावरण में ग्रसित था । शोषण और अन्याय समाज के चारों तरफ फैल चुका था । आधुनिकता की चकाचौंध में फंसकर व्यक्ति अपनी स्वार्थ को किसी भी तरह से पूरा करने में संलग्न था । हिंसामयी वातावरण में अस्त्रों के निर्माण और भंडारण की राज्यों में होड़ सी मची हुई थी । उस दौर में राजनेताओं द्वारा अस्त्रों के निर्माण और भंडारण को न्यायोचित ठहराने का विरोध करते हुए टालस्टॉय ने अपनी लेखनी और तर्कों के माध्यम से इनकी आलोचना की और विरोध किया । साथ में युद्ध का विरोध कर अहिंसा और शान्ति की प्राप्ति के लिए उन्होंने भरसक प्रयास किए । नैतिकतायुक्त जीवन और आम-आदमी (कृषक) का सादगीपूर्ण जीवन अनके लिए अनुकरणीय बन गया । अहिंसा जैसे विषय पर उन्होने आम जनता से संवाद निरंतर जारी रखा और इसको उनके द्वारा अपनाये जाने पर जोर दिया गया ।

टालस्टॉय ने इसाई अहिंसा पर धर्मग्रंथसम्मत और ग्रंथात्मक प्रमाणों के साथ अधिकारपूर्वक तर्क किए । ईसाई धर्म के 'टेन कमान्डमेंट्स में वर्णित निर्देशों में, विशेष रूप से ये निर्देश कि 'एक व्यक्ति को वही आचरण करना चाहिए जो वह अन्य व्यक्ति से अपने प्रति आचरण की इच्छा रखता हो' और 'अपने पडोसी को भी उतना ही प्रेम करें जितना कि आप स्वयं अपने आप से करते हैं' को टालस्टॉय ने अहिंसा का उपदेश या प्रेरणा स्रोत माना । उनके अनुसार ईसाई धर्म सभी व्यक्तियों की समानता का सिद्धान्त प्रतिपादित करता है और भ्रातृत्व की भावना प्रतिपादित करता है । उनके विचारों में इन उपदेशों का अनुकरण निगमनात्मक रूप से हिंसा, शोषण और अन्याय का परित्याग और अहिंसा को अपनाना है । अपनी कृतियों द किगंडम आफ गॉड इज विदइन यू, वाइट शैल वी डू, गोस्पेल्स इन ब्रीफ, इत्यादि के जरिए टालस्टॉय ने अहिंसा की आवश्यकता, महत्व, इत्यादि विषयों पर विस्तार से विवेचन किया । विश्व के अनेक प्रसिद्ध लोग जो सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रिय थे, जिसमें गाँधी भी सम्मिलित हैं, और साधारण या आम व्यक्तियों से भी टालस्टॉय ने संवाद जारी रखते हुए आहिंसा को बढावा देने का प्रयास किया । उस दौर में जब राजनेता परमाणु हथियारों की संख्या में वृद्धि कर रहे थे और युद्ध को शान्ति समझौता और विवादों को निपटाने के लिए न्यायोचित ठहरा रहे थे ऐसे समय में द किंगडम आफ गॉड इज विदइन यू में टालस्टॉय का निष्कर्ष विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होता है । इसमे उन्होंने लिखा- 'ऐसा अकसर कहा जाता है कि मौत के खतरनाक सैन्य हथियारों का आविष्कार युद्ध का अंत कर देगा, जो बिल्कुल गलत जान पडता है ।' अपने लेखन में टालस्टॉय ने इस विषय की चर्चा करते हुए सैद्धान्तिक और नैतिक दृष्टिकोण के जरिए व्यावहारिक और प्रकृतिवादी नजरों से विस्तार में हिंसा का प्रबल विरोध किया और अहिंसा का समर्थन किया । द किगंडम आफ गॉड इज विदइन यू, वाईट शैल वी डू जैसी अपनी कृतियों में वे यह केन्द्रीय प्रश्न को उठाते हैं कि मानव सभ्यता को 'अब क्या करना चाहिए' । लेटर्स टू लिबरल्स' में लिखे लेख में टालस्टॉय ने इस सवाल का जवाब देने का प्रयास करते हुए कहा,

“अपने अधिकारों के लिए खडा होना, एक व्यापारी के तौर पर नहीं, किसी साहित्य समिति के सदस्य के तौर पर भी नहीं और न ही एक संसद सदस्य के तौर पर, बल्कि एक विवेकशील और स्वतंत्र मनुष्य के तौर पर अपने अधिकारों के लिए खडा होना और उनकी रक्षा करना बिना कोई समझौता किए, यही एक मात्र तरीका है जिसके माध्यम से नैतिक और मानवीय प्रतिष्ठा की रक्षा की जा सकती है । " टालस्टॉय का साहित्य अहिंसा, शांति और न्याय के बीच घनिष्ठ संबंधों को प्रतिपादित करता है और एक के अभाव में दूसरे की प्राप्ति को असंभव मानता है । अहिंसा संबंधी उनका लेखन बहुत प्रभावशील रहा है । गाँधी से लेकर मार्टिन लूथर किंग जूनियर तक जो भी महापुरूष अहिंसा और उस पर आधारित आदोलन के संचालन के प्रति समर्पित रहे हैं, उनके लिए टालस्टॉय का साहित्य मूलभूत प्रेरणा या आधार की तरह रहा है ।

टालस्टॉय के अहिंसा संबंधी विचारों से गाँधी काफी प्रभावित थे । यों तो भारतीय परम्परा में हिन्दु धर्म, महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध के अहिंसा संबंधी विचारों ने गाँधी के इस विषय संबंधी चिन्तन को आधार प्रदान किया है । गाँधी का मानना था कि ईश्वर समस्त सृष्टि में विद्यमान है । इस नाते समस्त मनुष्यों मे भी ईश्वर विद्यमान है और इसलिए सभी मनुष्य मूल रूप से समान हैं । परन्तु गाँधी ने ईश्वर और मनुष्य में अन्तर करते हुए यह भी स्वीकार किया कि ईश्वर पूर्ण, सर्वश्रेष्ठ ज्ञान और परम सत्य का स्रोत है । उनके लिए ईश्वर त्रुटि-रहित है । यद्यपि मनुष्य में ईश्वर का निवास गाँधी स्वीकार करते हैं, उनका मानना है कि मानव होने के नाते उसमें कुछ निहित कमियाँ भी हैं जिसके कारण वह कभी भी पूर्ण सत्य या ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता । परन्तु गाँधी ने यह जरूरी भी माना कि मनुष्य को पूर्ण सत्य या ईश्वर को प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास भी करना चाहिए । कोई भी व्यक्ति उनके अनुसार स्वयं को त्रुटि-रहित नहीं मान सकता ऐसा करना गाँधी के लिए हिंसा करने के समान है । मानव अपनी निहित कमियाँ के बाद भी ईश्वर या परम सत्य की प्राप्ति के प्रयासों में निरन्तर संलग्न रहे इसके लिए गाँधी ने अहिंसा को अपनाना अपरिहार्य माना । गाँधी के अनुसार हिंसा किसी वस्तु या जीव के अस्तित्व को ध्वस्त करता है और उनमें निहित सत्य को पहचानने और समझने में बाधा उत्पन्न करता है, जब कि अहिंसा किसी वस्तु या जीव के अस्तित्व को संरक्षित करते हुए उसे पोषित और पल्लवित करता है । इसलिए सत्य की प्राप्ति के प्रयास में अहिंसा को गाँधी अनिवार्य मानते हैं । गाँधी अहिंसा की परम्परागत अभिव्यक्ति जैसे मन, वचन और कर्म से हिंसा नहीं करने तक सीमित नहीं रहते हैं बल्कि उपर्युक्त भाव में संलग्न सकारात्मकता और निष्क्रियता को त्याग कर सम्पूर्ण वस्तु या जीव के प्रति आदर और स्नेह प्रदर्शित करने पर बल देते हैं । ऐसे आदर और स्नेह प्रदर्शन से वे विरोधियों के हृदय परिवर्तन कर उन्हें बुराई को त्याग करने के लिए प्रेरित करने की बात करते हैं । अहिंसा को अपनाना उनके अनुसार कोई अवसरवादिता या कायरता का प्रतिनिधित्व नही होना चाहिए, अपितु इसे जीवन सिद्धान्त के रूप मै अपनाना चाहिए । जीवन सिद्धान्त के रूप अहिंसा का मतलब गाँधी के लिए हर परिस्थियों मे इस मूल्य के प्रति प्रतिबद्ध रहना है । ऐसी प्रतिबद्धता के लिए गाँधी असाधारण अनुशासन, त्याग और आत्म पीड़ा सहना, किसी भी प्रकार का हिंसात्मक प्रतिकार नहीं करना, जैसे गुणों को आवश्यक मानते हैं । वे साधन और साध्य के घनिष्ठ संबंध को भी स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार साधन और साध्य दोनों पवित्र होना

चाहिए और इस पवित्रता को अहिंसा के बिना सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है । गाँधी के लिये अहिंसा केवल व्यैक्तिक मुक्ति का साधन नहीं था । यह उनका अनूठा योगदान रहा कि उन्होंने इसे सामाजिक मूल्य और मुक्ति के साधन के रूप में प्रतिपादित करते हुए विश्व-बन्धुत्व और सर्व कल्याण की कामना की ।

1.4.3 आधुनिक औद्योगिक संस्कृति संबंधी विचार

टालस्टॉय और गाँधी ने समान रूप से आधुनिक औद्योगिक संस्कृति की कटु आलोचना की । दोनों ही अपने समकालीन समाज में हुए औद्योगिक प्रगति से व्यथित थे । दोनो ने स्वीकारा कि औद्योगिक क्रान्ति नें मानवीय जीवन का भ्रष्ट किया है और उसमें अनेक प्रकार की बुराइयों को जन्म और बढ़ावा दिया है । औद्योगिक समाज में हो रहे अनैतिकता और अन्याय के विरूद्ध टालस्टॉय और गाँधी ने अपनी आवाज उठाई और विशेष कर के मनुष्यों के शोषण को तुरन्त समाप्त करने पर जोर दिया । टालस्टॉय ने अपने लेखन वॉहट आड़ बिलीव वॉहट देन मस्ट वी डू?, ऑन लाइफ और द किगंडम ऑफ गॉड इस विदिन यू, इत्यादि में मनुष्य जीवन में आए पतन की ओर इशारा करते हुए इस पतन से कैसे उभरा जाए संबंधी विवेचन विस्तृत रूप से करते हैं । वे जीवन को ईश्वरीय सृष्टि के प्रति प्रेम, अहिंसा और त्याग की भावना रखते हुए सादा और सरल जीवन जीने पर बल देते हैं ।

टालस्टॉय की भाँति गाँधी ने भी माना कि आधुनिक औद्योगिक समाज में मनुष्य जीवन में पतन हुआ है । इस सभ्यता को शैतानी सभ्यता की संज्ञा देते हुए गाँधी ने इसे समुचय रूप में नकारा है । गाँधी के अनुसार आधुनिक और औद्योगिक सभ्यता ने मनुष्य में भौतिकवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है और उसे विलासिता, व्यसनों और अनेक बीमारियों से ग्रसित किया है । मशीनीकरण को गाँधी ने मानवीय क्षमताओं और कौशल को कुण्ठित करने का आरोप भी लगाया है । उनके अनुसार इस सभ्यता ने व्यक्ति के चारित्रिक पतन के साथ उसको समाज में रहने वाले साथियों के प्रति संवेदनहीन बना दिया है और अपनी स्वार्थ की पूर्ति करने में वह हर प्रकार के साधन, भले वह अनैतिक क्यों न हो, को बिना सोचे और समझे बेझिझक अन्यों के अधिकारों और अस्तित्व को रोंदते हुए आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया है । इसी कारण गाँधी ने समाज में अन्याय और शोषण को व्यापक होने तथा हिंसा एवं अशान्ति फैलने की बात कही है । गाँधी ने आधुनिक औद्योगिक समाज की निन्दा तक अपने को सीमित नहीं रखा है । सच्ची सभ्यता के अनिवार्य लक्ष्यो की बात करते हुए उन्होंने उसके तीन बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया । उनके अनुसार सच्ची सभ्यता का पहला अनिवार्य लक्षण है सत्य या वास्तविकता की खोज न कि बाहरी आवरण की चकाचौंध में संतुष्टि । दूसरा लक्षण है तपस्या या आत्मनियंत्रण और सादगी । तीसरा लक्षण है आत्मा और शरीर की आवश्यकताओं में, या दूसरे शब्दों में ईश्वर या आध्यात्म एवं भौतिक जगत के मध्य उचित संश्लेषण और समन्वय । गाँधी ने इन लक्षणों को समकालीन समाज में सर्वागीन रूप से अपनाने की ओर भी बल दिया । सार रूप में कहा जा सकता है कि आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के विकल्प के रूप गाँधी ने सर्वोदय समाज का आदर्श प्रस्तुत कर न्यायोचित, नैतिक, प्रगतिशील, संतुलित और शान्तिमय विश्व की ओर बढ़ने का मार्ग प्रदर्शित किया ।

1.4.4 राज्य और शासन के प्रति दृष्टिकोण

टालस्टॉय और गाँधी को अक्सर अराजकतावादी दार्शनिक की श्रेणी, में रखा जाता है । दोनों राज्य को संगठित हिंसा के संस्था के रूप में स्वीकार करते हैं । टालस्टॉय के अनुसार राज्य विश्व का सबसे अधिक शक्ति का दुरूपयोग करने वाली संस्था है क्योंकि वह न केवल व्यक्तियों को अपने कहे अनुसार काम करने के लिए मजबूर करता है बल्कि शक्तिशाली शासकों के स्वार्थ पूर्ति हेतु युद्ध करने और अपने प्राण न्योछावर करने के लिए भी बाध्य करता है । टालस्टॉय कहते हैं कि जहाँ शक्ति का दुरूपयोग कानून के समान विद्यमान है वही शेष और दासता भी विद्यमान है । उनके अनुसार राज्य जिन साधनों के माध्यम से अपने उद्धेश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है वे हमेशा ही विवादास्पद होते हैं । राज्य के भीतर और बाहर, दोनों स्तर पर इनकी आलोचना की जाती है और इतिहास देखा जाए तो अक्सर यह पाया जाता है कि उसके उद्धेश्य गलत रहे हैं या मानवता के विरूद्ध अपराध हैं । राज्य और व्यक्ति के अन्तर-संबन्धों के बारे में विचार व्यक्त करते हुए टालस्टॉय कहते हैं कि भाज्य के प्रति व्यक्ति का कोई दायित्व नहीं है, अपितु व्यक्ति का दायित्व केवल अन्य व्यक्तियों के प्रति दायित्व है और यह दायित्व है - उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार । टालस्टॉय समकालीन कुलीनतंत्र की व्यवस्था का गरीबों पर बोझ मानते थे । उनके अनुसार राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था साधारण व्यक्ति को आर्थिक विषमताओं तथा नैतिक पतन की और धकेलता है और दोनो ही स्थितियों में राज्य का प्रभाव मानव कल्याण की दृष्टि से प्रतिकूल है । टालस्टॉय व्यक्ति की स्वतंत्रता का भी प्रबल समर्थन करते थे । वे चाहते थे कि राज्य और शासन विवेकशील और जिम्मेदार आचरण करने वाले व्यक्तियों पर किसी प्रकार का दबाव डालने का प्रयास नहीं करे । वे राज्य की शक्ति को संदेह की दृष्टि से देखते थे और उसके सभी सैन्यवादी उद्धेश्यों और नीतियों का विरोध करते थे । वे कहते थे कि हिंसा हर स्थिति में बुरी होती है । परन्तु वे इस बात पर भी बल देते थे कि संरचनात्मक हिंसा व्यक्ति के हिंसा से बुरी है । टालस्टॉय के लिए जीवन के नैतिक नियम मानव द्वारा निर्मित नियम और कानून से उपर हैं । मनुष्य को अपनी अन्तरात्मा की आवाज के आधार पर जीवन व्यापन करना चाहिए । टालस्टॉय ने बुराई को खत्म करने के लिए शक्ति या हिंसा के प्रयोग का विरोध किया और कहा कि शासन को सभी के कल्याण के लिए समर्पित रहना चाहिए और मनुष्यों के अन्तर-सम्बन्धों को अच्छा बनाने के लिए प्रयास करना चाहिए । यदि राज्य द्वारा व्यक्ति पर दबाव या शक्ति आधारित व्यवहार का टालस्टॉय विरोध करते हैं तो वे विद्यमान राज्य और शासन व्यवस्था को हिंसा और क्रान्तिकारी उपायों से परिवर्तन करने का भी विरोध करते हैं । टालस्टॉय युद्ध के भी खिलाफ हैं ।

गाँधी का राज्य, शासन, अहिंसा इत्यादि विषयों के संबंध में विचार उनके द्वारा 1909 मे लिखी गई किताब हिन्द स्वराज में व्यक्त की गई है । उन्होंने राज्य को हिंसा का एक संगठित रुप माना है और आदर्श के तौर पर एक राज्यविहीन व्यवस्था को स्वीकार। है । इसलिए इन्हें अराजकतावादी कहा है । जहाँ गाँधी मनुष्य को एक सचेतन आत्मावान प्राणी मानते हैं वही वे राज्य को एक आत्माहीन यन्त्र मानते हैं । वे मानते थे कि राज्य को हिंसा से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि इसकी उत्पत्ति हिंसा से हुई है । गाँधी ने दार्शनिक आधार पर राज्य की सत्ता का विरोध करते हुए कहा कि राज्य व्यक्ति के नैतिक विकास में बाधक है

क्योंकि वह व्यक्ति के आध्यात्मिक और आन्तरिक पक्ष को छू नहीं सकता । राज्य केवल व्यक्ति के बाहरी आचरण को प्रभावित कर सकता है । राज्य को गाँधी ने अनैतिक भी माना क्योंकि उनके अनुसार राज्य नागरिकों को अपनी इच्छा से नहीं वरन् दण्ड के भय और कानून की शक्ति से बाध्य करता है । उनका मानना था कि राज्य का बढता हुआ कार्यक्षेत्र, व्यक्ति के स्वालम्बन और आत्मविश्वास के गुणों पर भी प्रतिकूल असर डालता है और उसके सर्वागीन, विकास में अवरोध उत्पन्न करता है । इसलिए गाँधी राज्य के कार्यक्षेत्र को सीमित करने के पक्ष मे थे । वे व्यक्तिवादियों की तरह मानते थे कि मनुष्य मूल रूप से नैतिक, विवेकशील और शान्ति प्रिय है । वह अपना अच्छा और बुरा खुद पहचान कर सकता है और इसलिये उस पर कोई बाहरी नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं है । परन्तु यथार्थ परिस्थितियों को भी गाँधी ने ध्यान में रखा और विद्यमान परिस्थितियों में न्यूनतम कार्य करने वाले राज्य को स्वीकारा । इस राज्य को गाँधी ने नैतिक नियमों की अनुपालना कर सभी व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण के उद्देश्य पूरा करने के प्रति आवश्यकता जताई । शासन हिंसा मुक्ता हो इसलिए उन्होंने राज्य सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी प्रबल समर्थन किया ।

1.4.5 आर्थिक विषयो पर टालस्टॉय और गाँधी का दृष्टिकोण

टालस्टॉय और गाँधी के आर्थिक दृष्टिकोण में भी समानता नजर आता है । दोनो जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को प्राथमिकता देते हैं । दोनो भौतिकवादी संस्कृति की चकाचौंद और से व्यक्ति को दूर रहने का उपदेश देते हैं । दोनो आम गरीब नागरिकों की आवश्यकताओं और समस्याओं के प्रति संवेदनशील थे । कालान्तर में टालस्टॉय और गाँधी स्वयं के जीवन को सरलीकृत और सादगीपूर्ण करने के प्रयास में संलग्न रहे । दोनों ने सम्पत्ति संचयन की प्रवृत्ति और निजी सम्पत्ति का विरोध किया । अपने व्यवहारिक जीवन में दोनों सम्पत्ति संचयन और निजी सम्पत्ति से कालान्तर में पृथक भी रहने लगे । औद्योगिकरण को दोनों ने व्यक्ति के हित के विपरीत बताया क्योंकि दोनो मानते थे कि अंधाधुन्ध मशीनीकरण व्यक्ति के कौशल को कुण्ठित करता है और शोषण को बढावा देता है । टालस्टॉय और गाँधी दोनो शारीरिक श्रम को महत्व प्रदान हैं और 'रोटी के लिए श्रम की अनिवार्यता के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं । विशेषाधिकारों को प्रधान मानने वाले युग में जहाँ समस्त शारीरिक श्रम गरीबों द्वारा सम्पन्न किए जा रहे थे, ऐसे युग में टालस्टॉय ने शारीरिक श्रम के महत्व का गुणगान किया और अपने निजी जीवन में किसान द्वारा समन्वय किए जाने वाले शारीरिक श्रम किए और जूते बनाने का कौशल भी सीखा । टालस्टॉय का कहना था कि मनुष्य के संबंध में दो प्रकार के नियम विद्यमान हैं - शारीरिक जीवन से जुड़े नियम और आध्यात्मिक जीवन से जुडे नियम । शारीरिक जीवन से जुड़े नियम श्रम है और आध्यात्मिक जीवन से जुड़े नियम प्यार है । उनका मानना था कि जो व्यक्ति शारीरिक जीवन से जुडे नियम श्रम की अवहेलना करता है वह अपरिहार्य रूप से आध्यात्मिक जीवन से जुडे नियम प्यार की उल्लंघना भी करता है । शारीरिक श्रम और मन:स्थिति के अन्तर-संबंध को भी टालस्टॉय स्वीकार करते हुए कहते थे कि शारीरिक श्रम, विशेष रूप से खेती करने से जुडे श्रम, न केवल शरीर के लिए बल्कि आत्मा के लिए भी अच्छा है । टालस्टॉय के अनुसार वह व्यक्ति जो शारीरिक श्रम करने से दूर रहता है, वह

साधारण और स्वस्थ निर्णय लेने में असक्षम होते हैं और उनकी आत्मा भी अशान्त रहती है । टालरटॉय के अनुसार श्रम के द्वारा अन्ततः परिणाम प्राप्त करना तो आनंद देता ही है, साथ ही वह प्रकृति की कार्यविधि समझने और उसमें व्यक्ति के स्थान को पहचानने में भी मदद करती है । उनका मानना था कि यदि मनुष्य शारीरिक श्रम नहीं करेगा तो उसमें विद्यमान ऊर्जा का सकारात्मक निकास नहीं हो पाएगा और ऐसी स्थिति में वह अपनी ऊर्जा को बुरे कामों में लगायेगा । टालस्टॉय का मानना था कि सम्पन्न या अमीर लोग शारीरिक श्रम नहीं करते और उनमें विद्यमान ऊर्जा का सकारात्मक निकास नहीं हो पाने के कारण वे बुरे कामों में संलग्न हो जाते हैं । टालस्टॉय ने व्यक्ति द्वारा श्रम करने के फायदे गिनाते हुए बताया कि ऐसा करने से व्यक्ति अधिक प्रसन्न, स्वस्थ, सतर्क और बेहतर इंसान बनता है और जीवन के सच्चे अर्थ को पहचान सकता है । टालस्टॉय ने माना कि श्रम अन्तरात्मा की सुखद अनुभूति को बढाता है क्योकि श्रम से व्यक्ति दूसरो की भलाई करने का कार्य करता है, स्वतंत्र जीने का आनंद प्रदान करता है और आध्यात्मिक दुनिया में प्रवेश करने का मौका मिलता है । उनके अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था में मनुष्य का सस्तित्व एक दास, मशीन और वस्तु के समान है और उसकी मानवीयता को दूर कर दिया जाता है । उनके अनुसार शारीरिक श्रम ही ऐसी अवस्था से व्यक्ति को मुक्ति दिला सकता है । उन्होंने धन को ऐसी शक्ति के रूप में स्वीकारा जो उससे प्रथक व्यक्ति को मजबूर करता है कि वह उस काम को करे जो वह सामान्यतः अन्यथा नहीं करना चाहता है । इस प्रकार टालस्टॉय ने धन को व्यक्ति की स्वतंत्रता के विरूद्ध प्रयुक्त शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया और शोषण का साधन माना ।

1.4.6 टालस्टॉय और गाँधी में अन्य समानतायें

टालस्टॉय और गाँधी के संदर्भ में विद्यमान समानताओं के अन्य बिन्दु निम्न प्रकार से व्यक्त किए जा सकते हैं ।

1.4.6.1 प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का महत्व

जीवन के सच्चे अर्थ की खोज में टालस्टॉय ने अनेक ग्रन्थ पढे और प्रयोग किए । उन्होंने प्राचीन भारतीय ग्रन्थ जैसे वेद, रामायण और महाभारत का अनुवाद पढा और शंकर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि के आध्यात्मिक दर्शन को एक मानवतावादी के रूप में समझने का प्रयास किया । अपने पत्र लेटर तू ए हिंदू में किसी राष्ट्र के स्वावलंबन और उसकी स्वतंत्रता के लिए उसकी अपनी परम्परा और संस्कृति कितनी महत्वपूर्ण है, उसके बारे में टालस्टॉय अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भारतीयों ने अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को विस्मृत कर दिया है और पाश्चातीय सभ्यता और संस्कृति को श्रेष्ठ मानकर उसका मधानुकरण करने का प्रयास किया है । यही उनके अनुसार भारत की परतंत्रता का मूल कारण है ।

गाँधी के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि टालस्टॉय का पत्र लेटर टू ए हिंदू अत्यंत प्रभावित करने वाला पत्र था । उन्होंने टालस्टॉय का पत्र लिखकर इस पत्र को उनके द्वारा ही लिखे जाने की पुष्टि और इसे दक्षिण अफ्रिका में अपने सार्वजनिक संघर्ष के दौरान प्रकाशित किए जाने वाली पत्रिका इंडियन ओपीनियन में प्रकाशित करने की अनुमति माँगी । गाँधी ने पत्र

के अन्त मे अपने आप को टालस्टॉय के अनुयायी बताकर हस्ताक्षर किया । आधुनिक सभ्यता की घोर निन्दा करने वाली उनकी किताब हिन्द स्वराज को भी गाँधी ने टालस्टॉय को भेजा । गाँधी भी प्राचीन भारतीय ग्रंथों और परम्पराओं के प्रति आदर भाव रखते थे और राष्ट्रीय स्वावलंबन और स्वतंत्रता के लिए भारतीयों द्वारा अपनी परम्परा और संस्कृति को अपनाने और कालान्तर में इसमें आए विकृतियों को दूर करने पर जोर देते थे । उन्होने इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति को बाहर से प्रवाहित होने वाली सभी प्रभावों के प्रति विवेक सम्मत रूख अपनाना होगा परन्तु अपनी मूल संस्कृति और परम्पराओं को विस्मृत या त्याग करना आत्मघाती होगा । प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में समाहित ज्ञान को गाँधी ने अपने आध्यात्मिक विचारों का महत्वपूर्ण आधार बनाया और इस ज्ञान को न केवल व्यक्ति के मुक्ति का साधन के रूप में सीमित रखा बल्कि समाज और राष्ट्र के मुक्ति का साधन भी बनाया ।

1.4.6.2 आत्मकथा लेखन

1852 से 1856 के बीच टालस्टॉय ने अपने जीवन पर आधारित तीन उपन्यास लिखीं और प्रकाशित करवायी - चाइल्डहुड (Childhood) बॉयहुड (Boyhood) और यूथ (Youth) । ए कनफेशन (A Confession), जो उनके द्वारा 1879 में 51 वर्ष की उम्र में लिखी गई थी, में भी टालस्टॉय तब तक के अपने जीवन को व्यर्थ जीने संबंधी निराशा को व्यक्त करते हैं । उनके उपन्यास भी जीवन अनुभव पर आधारित है ।

गाँधी मे भी अपनी आत्म कथा लिखी और उसको शीर्षक दिया एन आटोबायोग्राफी ओर द स्टोरी ऑफ मय एक्सपीरिमेंट्स विथ ट्रुथ जिसे हिंदी में अनुवाद करें तो क आत्मकथा या सत्य के साथ मेरे प्रयोग की कहानी के रूप में लिखा जा सकता है । इस किताब में गाँधी ने 1869 से 1921 तक के जीवन के बारे में लिखा है । उन्होंने किताब के परिचयात्मक भाग मे कहा है कि इस किताब के माध्यम से वे रूप से अपने आध्यात्मिक और नैतिक प्रयोगों और अनुभवों को बताना चाहते हैं । गाँधी यह भी कहते हैं कि संभवतः वे बाद में इस किताब में व्यक्त विचारों से भिन्न विचार व्यक्त कर सकते हैं और इस किताब को लिखने पीछे उनका मकसद केवल इतना है कि वे सत्य के साथ उनके द्वारा किये गये प्रयोगों को बयान कर सके । सत्याग्रह इन साऊथ अफ्रिका में गाधी ने दक्षिण अफ्रिका में उनके द्वारा संपन्न सत्याग्रह के बारे विस्तृत रूप से लिखा है । तीसरी किताब हिन्द स्वराज है जो उनके राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विषयों के बारे में व्यक्त करतें हैं ।

1.4.6.3 साधारण व्यक्ति से महात्मा की ओर उद्भव

टालस्टॉय और गाँधी दोनों का जन्म संभ्रांत और अमीर परिवार में हुआ । टालस्टॉय ने चाइल्डहुड, बॉयहुड, यूथ और ए कनफेशन में और गांधी ने एन आटोबायोग्राफी ओर द स्टोरी ऑफ मय एक्सपीरिमेंट्स बॉयहुड विथ ट्रुथ अपने परिवार के बारे में तो बताया ही है, साथ में जीवन के प्रारंभिक दौर में उनके द्वारा सही रास्ते से भटकाव के विवरण भी बिना कुछ छुपाये स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं । अपने जीवन में दोनों काफी समय तक सम्पन्नता जुटाने के प्रयासों में संलग्न रहे । कालान्तर में दोनों ने भौतिकवादी प्रवृत्तियों को त्याग कर नैतिक और सादा और सरल जीवन व्यापन करने लगे और अन्त तक ऐसे जीवन के प्रति प्रतिबद्ध भी रहे ।

इस तरह टालस्टॉय और गाँधी कालान्तर में साधारण व्यक्ति से पवित्र आत्मा और महापुरूष बने ।

1.4.6.4 मात्र उपदेश देने तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन में स्वयं अपनाने का भी कार्य

टालस्टॉय और गाँधी दो ऐसे महापुरूष थे जिन्होंने जीवन से जुड़े अनेक विषयों पर बहुत कुछ लिखा और कहा । दानों का नाम महान दार्शनिकों में गिना जाता है । पर टालस्टॉय और गाँधी केवल कोरी बातों या उपदेशों तक सीमित नहीं थे । जो उपदेश उन्होंने दिया, विशेष कर के भ्रातृत्व, मानव कल्याण, परोपकार और सादा एवं सरल जीवन के संदर्भ में, उनको दोनो ने स्वयं अपने जीवन में अंगीकृत किया । टालस्टॉय विलासितापूर्ण जीवन को त्याग कर कृषकों की वेशभूषा अपनायी, उन्हे अपने सवामित्व से मुक्त किया, उनके साथ शारीरिक श्रम किया, अपनी सम्पत्ति को त्याग दिया ।

1.4.6.5 गाँधी भोजन के प्रबल समर्थक

टालस्टॉय और गाँधी दानों गाँधी भोजन और जीवन शैली के प्रबल समर्थक थे । टालस्टॉय के अनुसार मनुष्य प्रकृति से हिंसा करने या किसी भी प्राणी का वध करने के खिलाफ है । परन्तु स्वार्थ के कारण या तर्क के आधार पर या आदत के कारण उसकी इस सहज अहिंसक प्रकृति में परिवर्तन आता है और वह हिंसक हो जाता है । उनका कहना था कि सदगुणी जीवन के लिए अच्छा आचरण अपरिहार्य है । इस अच्छों आचरण में टालस्टॉय ने आत्मयिन्त्रण को आवश्यक माना । टालस्टॉय ने आत्मनियन्त्रण स्वाद अथवा भोजन के संदर्भ में आत्मनियन्त्रण प्राथमिक माना । नियन्त्रित भोजन में टालस्टॉय ने मांस खाना वर्जित क्योंकि उनके अनुसार ऐसा खाना एक महत्वपूर्ण नैतिक धारणा - हिंसा नहीं करने की धारणा, की उल्लंघना करता है । गाँधी भोजन टालस्टॉय के अनुसार मानव सभ्यता के नैतिक प्रगति का प्रतीक है । टालस्टॉय ने 1892 में लिखी किताब फर्स्ट स्टेप में कहा है कि सरल आहार पेटुपन और मानवीय इच्छाओं को नियंत्रित करने का महत्वपूर्ण साधन है । अपने जीवन में टालस्टॉय ने गाँधी भोजन के साथ तम्बाकू और मदिरा भी त्याग दिया था । फादर सरजियस में टालस्टॉय शुचिता और यौन संयम पर भी बल देते हैं ।

टालस्टॉय की तरह गाँधी ने सरल और गाँधी भोजन को श्रेष्ट जीवन के लिए महत्वपूर्ण माना है । अवनी आत्मकथा में गाँधी ने बिना कुछ छुपाये अपनी किशोर अवस्था में जोश और जिज्ञासा के कारण भटकाव से जुड़े कुछ संस्मरण बतायें हैं और उनसे प्राप्त निष्कर्षो अथवा सीख के बारे में भी लिखा हैं । गाँधीजी ने इन प्रयोगों से जीवन के मौलिक सत्य को पहचानने का प्रयास किया और पहचानने के बाद मूल्यों के रूप में इनकी अभिव्यक्ति को जीवन पर्यन्त आत्मसात् किया । लंदन के अपने विद्यार्थी जीवन में गाँधी खान-पान के सम्बन्ध में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, परन्तु अपनी माँ को दिए हुए गाँधी खान-पान संबंधी वादे को उन्होंने खूब निभाया । लंदन में गाँधी भोजनालयों की खोज में दूर-दूर तक पैदल चलकर उन्होंने गाँधी भोजनालय ढूँढ निकाला । यहीं उन्हें हेनरी साल्ट द्वारा रचित पुस्तक 'एप्ली फॉर वेजीटेरियनिज्म' भी खरीदने को मिली । उन्होंने साल्ट जैसे अन्य लोग जो गाँधी

भोजन के समर्थक थे उनके लिखे गये विचारों का अध्ययन किया, शाकाहार की पत्रिकायें खरीदी और लंदन की वेजिटेरियन सोसायटी की सदस्यता ग्रहण की । दक्षिण अफ्रिका के सार्वजनिक जीवन के दौरान उन्होंने अपनी पत्नी बा से विचार विमर्श कर और सहमति से ब्रह्मचर्य जीवन पालन करने का निर्णय किया । गाँधी ने जीवन में एकादश नियमों की पालना करने और सरल और संयमित जीवन जीने का संदेश ही नहीं दिया बल्कि उनका अनुकरण खुद अपने जीवन में भी किया ।

1.4.6.6 अपने नाम से किसी 'वाद' को प्रचारित करने का खण्डन

टालस्टॉय और गाँधी महान दार्शनिक थे । दोनों ने अपने जीवन काल में ही इस बात की स्पष्ट निन्दा की उनके जीवन में या बाद में उनका नाम लेकर किसी वाद का प्रचार और प्रसार किया जाए । दोनों के लिए उनका जीवन ही संदेश । फिर भी यह एक समानता की ही बात है कि दोनों के कुछ उत्साही अनुयायियों ने इनके नाम को लेकर टालस्टॉयवाद, टालस्टॉयिन सोसाइटी, गाँधीवाद, इत्यादि 'वाद' को प्रचारित करने या संस्था स्थापित करने का कार्य किया है । टालस्टॉय ने खुशी और खेद व्यक्त करते हुए कहा था कि यह अच्छी बात है कि रूस और विश्व के अन्य भागों में लोगों के ऐसे समूह उभर रहें हैं जो उनके विचारों से सहमति रखते हैं, परन्तु उनके नाम के साथ जोडकर किसी आंदोलन या सिद्धान्त का निर्माण करना बहुत बड़ी त्रुटि भी है । उनका कहना था कि यह बेहतर होगा कि लोग अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुने न की टालस्टॉय की बातों को अंधानुकरण करें । 1878 में उन्होंने अपनी किताब वॉहट इज रिलीजन? में कहा कि न ही उनकी अपनी अलग कोई संदेश या सीख पहले थी और न अब है, केवल एक अनंत सार्वभौमिक सत्य की सीख है जो बाइबिल में वर्णित ईसा मसीह के जीवन और संदेश में स्पष्ट रूप से व्यक्त किए गए हैं ।

गाँधी ने भी गाँधीवाद का खण्डन करते हुए कहा था कि गाँधीवाद जैसी चीज नही है । उन्होंने कहा था कि वे दुनिया को कोई नया सिद्धान्त नहीं बताना चाहते हैं, सत्य और अहिंसा बारे में जो वे बताना चाहते हैं वे हिमालय जितनी पुरानी है । अन्यत्र उन्होंने कहा कि उनका जीवन ही उनका संदेश है । उन्होंने कहा कि वे भारत और विश्व के एक नम्र सेवक हैं और इनकी सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित करना चाहते हैं, उनका कोई संप्रदाय प्रारंभ करने का उद्देश्य नहीं है । उन्होंने कहा कि वे सत्य का, जैसा वे समझ पायें, अनुसरण और प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं, वे सत्य की विद्यमान धारणाओं पर कोई नया प्रकाश डालने का श्रेय भी नहीं ले सकते हैं बल्कि केवल पुराने सिद्धान्तों को पुन: बयान किया है और चिरस्थायी सत्य को दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं के निराकरण के लिये लागू करने का प्रयत्न किया है । गाँधी ने यह भी था कि गाँधीवादी कहलाना कोई गर्व की बात नहीं है, यदि गर्व करना ही है तो अहिंसावादी कहलाने की बात पर की जाए ।

1.5 टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में भिन्नता

टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में बहुत सारी समानतायें विद्यमान होने के बावजूद भी दोनों के जीवन सोच और कार्यों में कुछ अन्तर देखने को मिलते हैं ।

यद्यपि टालस्टॉय (1828-1948) और गाँधी (1869-1948) का समय काल और परिस्थितियाँ लगभग समान सी थीं, फिर भी टालस्टॉय को 19वी शताब्दी के द्वितीय भाग का मसीहा माना जा सकता है और गाँधी की विरासत 20वी शताब्दी के लिए माना जा सकता है ।

गाँधी का टालस्टॉय से जुडाव या आकर्षण उनके महान उपन्यासकार होने के नाते नहीं था, अपितु उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो के, विशेष रूप रवे अहिंसा के, कारणवश था । टालस्टॉय का वार एण्ड पीस और एन्ना कारनिना से गाँधी उतने प्रभावित नहीं हुए जितने कि द किंगडम ऑफ गॉड इस विदिन यू और वॉहट् शैल वी डू देन? से हुए थे । टालस्टॉय के द्वारा जीवन से जुडे आध्यात्म के प्रश्न और अहिंसा संबंधी विचारों से गाँधी काफी प्रभावित हुए ।

टालस्टॉय ने अहिंसा को 'प्रतिकार या विरोध नहीं करने' के रूप में प्रतिपादित किया, जिसकी गाँधी ने और वृहत व्याख्या की और व्यापक स्तर पर क्रियान्विति करने का प्रयास किया । टालस्टॉय के समान गाँधी भी अहिंसा को मनुष्य जीवन का प्राथमिक सिद्धान्त मानते थे, परन्तु विरोध नहीं करने में निहित अकर्मण्यता के भाव को स्वीकार न करके सक्रिय प्रयासों के माध्यम से विद्यमान बुराइयों का अन्त कर बेहतर समाज निर्माण करने पर बल देते हैं । टालस्टॉय की भाँति गाँधी राज्य के प्रति अहिंसात्मक व्यवहार को 'संरचनात्मक हिंसा को अस्वीकार करना' तक सीमित नहीं रखते हैं अपितु राज्य और अन्य ऐसी संस्थाओं का सक्रिय विरोध कर उन्हें अपनी सोच और नीतियों को बदलने के लिए प्रेरित करना था । अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि गाँधी की अहिंसा 'अ- विरोध' या अकर्मण्यता नहीं है अपितु सक्रिय प्रयास से मानव कल्याण हेतु प्रभावी और सकारात्मक स्थायी बदलाव लाना है । इसी कारण गाँधी ने, टालस्टॉय से भिन्न, व्यवहारिक राजनीतिक, आर्थिक? सामाजिक जीवन में काफी अधिक हस्तक्षेप रखा और सक्रिय रहे ।

1.6 सारांश

इस तरह हम देखतें हैं कि टालस्टॉय और गाँधी ने अहिंसा के संदर्भ में बहुमूल्य योगदान दिया है । दानों ने अपने लेखन और कार्यो के द्वारा उस दौर के विभिन्न वर्गो के मध्य अहिंसा के प्रति विद्यमान अविश्वास को पाटने का काम किया है । टालस्टॉय का साहित्य कई महान हस्तियों, जैसे गाँधी और किंग, के अहिंसक संघर्ष का पथ प्रदर्शक भी रहा है । टालरटॉय और गाँधी की खूबी यह भी रही कि उन्होंने व्यक्ति को केन्द्रीय स्थान प्रदान किया और मानव कल्याण के प्रति संस्थाओं को समर्पित किया । जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक पक्ष के बारे में दोनों समान से विचार रखते थे और सादा और सरल जीवन के पक्षधर थे । दोनों ने युद्ध और हिंसा की निन्दा की है और इसके विनाशकारी पक्ष का विस्तार से विवेचन किया है । वर्तमान में शान्ति की बात जब की जाती है तो केवल युद्ध को रोकने तक विमर्श और प्रयास सीमित नहीं है, अपितु समय-समय पर उत्पन्न होने वाले संघर्षो का अहिंसक तरीके से नियन्त्रण या निराकरण को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है । टालस्टॉय और गाँधी ने अन्यायपूर्ण और शोषणयुक्त संस्थाओं या ऐसे कार्यो मे लिप्त लोगों के विरूद्ध अहिंसक प्रतिरोध करने की आवश्कता और इसके विभिन्न आयामों पर विस्तृत विचार प्रस्तुत कर शान्तिमय समाज और विश्व के संदर्भ में मूल्यवान मार्गदर्शन किया है । टालस्टॉय और गाँधी ने हिंसा

और युद्ध के लिए संकोच नहीं करने वाली, अपितु उसके लिए सदैव तैयार रहने वाली, आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को पूर्ण रूप से नकारा है । साथ ही दोनों ने मानवीय जीवन के मूल सत्य के संदर्भ में विचार प्रस्तुत कर श्रेष्ठ जीवन जीने की राह हमको बताया है । दोनों महापुरूषों के विचारों में इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान समानतायें यह सिद्ध करती हैं कि जहाँ और जब भी सार्वभौमिक मूल्यों की बात की जाती है तो क्षेत्र और सांस्कृति की सीमायें महत्वपूर्ण नहीं होती, अपितु ये सीमायें विलुप्त हो जाती हैं और ध्येय केवल मानवता का कल्याण ही रह जाता है ।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. टालस्टॉय का जीवन परिचय देते हुए उनके विचारों का विवेचन कीजिए ।
2. गाँधी का जीवन परिचय देते हुए उनके विचारों का विवेचन कीजिए ।
3. टालस्टॉय और गाँधी के विचारों में विद्यमान समानताओं का वर्णन कीजिए ।
4. टालस्टॉय और गाँधी के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए ।
5. गाँधी पर टालस्टॉय के प्रभाव का विवेचन कीजिए ।

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बोस, एन.के., सेलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1972
2. अय्यर, राघवन एन., द मोरल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1973
3. गाँधी, एम.के., नॉन वायलेंस इन पीस एण्ड वार, अहमदाबाद: नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, 1949
4. मथाई एम.पी., जॉन एम. एस. एवं जोसफ सिबी के. (संपादित) मेडिटेशन्स ऑन गाँधी: ऐ रविन्द्र वर्मा फेट्सक्रिपट, कान्सेप्ट पब्लिशिंग कं., नई दिल्ली, 2002
5. ग्रीन मार्टिन बर्गेस, टालस्टॉय एण्ड गाँधी, मेन ऑफ पीस, बेसिक बुक्स इं., न्यू यॉर्क, 1983

इकाई - 2

रस्किन एवं गाँधी

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 रस्किन: संक्षिप्त जीवन परिचय

2.3 रस्किन का समकालीन समाज

2.4 गाँधी का समकालीन समाज

2.5 रस्किन का गाँधी पर प्रभाव

2.6 नैतिक जीवन के प्रति दृष्टिकोण : रस्किन और गाँधी

2.7 आधुनिक सभ्यता संबंधी दृष्टिकोण: रस्किन और गाँधी

2.8 आत्म-संतुष्ट जीवन संबंधी दृष्टिकोण : रस्किन और गाँधी

2.9 शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण: रस्किन और गाँधी

2.10 कला संबंधी दृष्टिकोण : रस्किन और गाँधी

2.11 नारी संबंधी विचार: रस्किन और गाँधी

2.12 ट्रस्टीशिप पर रस्किन और गाँधी के विचार

2.13 कायिक श्रम संबंधी रस्किन और गाँधी के विचार

2.14 युद्ध संबंधी दृष्टिकोण. रस्किन और गाँधी

2.15 सारांश

2.16 अभ्यास प्रश्न

2.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से निम्नलिखित उद्देश्य प्राप्त करना है ।

- विद्यार्थी को रस्किन के जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कराना ।
- विद्यार्थी को रस्किन के विचारों से अवगत कराना ।
- गाँधी और रस्किन के विचारों में समानता बताना ।
- गाँधी और रस्किन के विचारों में विद्यमान मौलिक भिन्नतायें बताना ।

2.1 प्रस्तावना

गाँधी एवं रस्किन विश्व के दो ऐसे महान बहुप्रतिभाशाली विभूतियाँ हैं जिन्होंने आधुनिक सभ्यता की अन्धाधुन्ध भौतिकवादी प्रवृत्तियों की आलोचना कर हमें सचेत किया है कि हमारा ऐसा व्यवहार हमारे अस्तित्व को ही जोखिम में डालता है । इसलिए हमे अपने ही विनाश से बचने के लिए सादा, सरल और नैतिक जीवन जीना

चाहिए । ये दोनों महान विचारक अनैतिकता, भौतिकता, असमानता, शोषण, दरिद्रता और अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष का आकलन करते हैं । दोनों ऐसा सामुदायिक जीवन का समर्थन करते हैं जहाँ सभी एक बडे परिवार के रूप में आपसी सहयोग और परोपकार की भावना से जीवन व्यापन करते हैं । गरीब और बेबस व्यक्तियों के कल्याण के लिए गाँधी एवं रस्किन सकारात्मक प्रयास की बात करते हैं । दोनों ही अन्धाधुन्ध मशीनीकरण का विरोध करते हैं और मानव-श्रम को असाधारण महत्व देते हैं । दोनों चिन्तक समानता-युक्त, न्याय-आधारित और नैतिकता आधारित समाज की स्थापना करना चाहते हैं । गाँधी पर अनेक पूर्वी और पश्चिमी प्रभाव पडे । उन पर पडने वाले विभिन्न पश्चिमी प्रभाव में रस्किन की किताब ' इन्टु दिस लास्ट' में व्यक्त विचारों को महत्वपूर्ण माना जाता है । दोनों ही युद्ध और हिंसा के विरूद्ध थे और विश्व स्तर पर शान्ति की स्थापना करना चाहते थे । समकालीन समाज मे रस्किन और गाँधी ने अनेक राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सुधार करने के लिए आह्वान किया । कथनी और करनी में अन्तर को समाप्त करना और आत्मिक शक्ति के विकास पर महत्व डालना भी गाँधी और रस्किन के विचारों में समानता के बिन्दु हैं ।

रस्किन का गाँधी पर काफी प्रभाव रहा, इस पर कोई विवाद नहीं है । परन्तु गाँधी ने रस्किन के विचारों के साथ और अन्य अनेक स्रोतों से भी बहुत सारी अच्छी बातें ग्रहण करने का प्रयास किया । इसके साथ ही उन्होंने अपनी राजनीतिक सक्रियता से सार्वजनिक स्तर पर इनकी क्रियान्विति करने का प्रयास भी किया । गाँधी का चिन्तन और क्रियान्विति का क्षेत्र भी रस्किन की तुलना में अधिक व्यापक दिखता है ।

2.2 रस्किन: संक्षिप्त जीवन परिचय

जॉन रस्किन का जन्म फरवरी 8,1819 में लन्दन में एक सुसंस्कृत और धार्मिक परिवार में हुआ था । उनके पिता का नाम जॉन जेम्स रस्किन और माँ का नाम मार्गारेट कॉक्स था । जॉन रस्किन अपने माता-पिता के इकलौते संतान थे । रस्किन के पिता शेरी और अन्य प्रकार की वाइन आयात करने और वितरित करनेवाली एक फर्म मे प्रमुख भागीदार थे । रस्किन के माता-पिता का उन पर अत्यन्त प्रभाव पडा । रस्किन के पिता का उनके साहित्य-प्रेम और प्रकृति-बोध विकसित करने में बड़ा योगदान रहा । उन्होंने ही रस्किन को शेक्सपियर, लॉर्ड बायरन, इत्यादि को पढ़ाया और समझाया तथा अपने व्यापार संबंधी यात्राओं के दौरान रस्किन को मनोरम प्राकृतिक जगहों, महलों. विश्वविद्यालयों, चित्र दीर्घाओं, इत्यादि स्थानों पर साथ लेकर गये । उनकी माता अत्यन्त धार्मिक थी । घर पर कठोर धार्मिक अनुशासन रस्किन की माँ द्वारा सुनिश्चित था । रस्किन जब तीन वर्ष की आयु में पढना सीख गए तो उनकी माँ ने उनको बाइबल पढ़ना और उसके अंशों को कंठस्थ याद करना सिखाया । 13 से 14 वर्ष की आयु तक उनकी शिक्षा घर पर हुई उसके बाद 1833-34 तक दक्षिण-पूर्व इंग्लैंड में स्थित पेकहेम जिले की एक प्रगतिशील इवेजिलिकल (Evangilical) थॉमस डेल की स्कूल में उन्होंने अध्ययन किया । 1836 में वे किंग्स कॉलेज गए और अक्टूबर 1836 में क्राइस्ट चर्च, आक्सफॉर्ड विश्वविद्यालय गए और मई 1842 में अपनी डिग्री प्राप्त की । 1839 में उन्हें कविता के लिए प्रसिद्ध नोवडिगेट पुरस्कार (Newdigate Prize) मिला और जिस समारोह में

उन्हें सह पुरूस्कार मिला उसमें उन्हें अपने पसंदीदा लेखक विलियम वर्डस्वर्थ (William Wordsworth) से मिलने का भी मौका मिला । क्राइस्ट चर्च महाविद्यालय में अपने स्वभाव, बुद्धि और आथित्य के कारण रस्किन वहाँ युवाओं में काफी लोकप्रिय थे ।

रस्किन जब 13 वर्ष के थे जब उनके पिताजी के व्यवसायी भागीदार और दोस्त टेलफॉर्ड ने कला के प्रति रस्किन की रूचि को जागृत किया । जे.एम.डब्ल्यू. टर्नर उनके पसंदीदा चित्रकारों में से एक थे जो ब्रिटेन के प्रसिद्ध स्वच्छंदतावादी परिदृश्य चित्रकार (Romantic Landscap painter) थे । 1842 में क्राइस्ट चर्च महाविद्यालय में अपनी डिग्री प्राप्ति के तुरन्त बाद जे.एम.डज्यू टर्नर की स्वच्छंदतावादी परिदृश्य चित्र काला का उन्होंने जमकर समर्थन किया और टर्नर के विरूद्ध लिखने वालों की आलोचना की । रस्किन का यही प्रयास उनकी कृति 'मॉर्डर्न पेंटर्स - 1* में परिणीत हुआ जिसे कला और साहित्य के दोनों जगत में बहुत सराहना मिली । रस्किन ने इसके चार खण्ड और निकाले । कला संबंधी उनकी कृतियों में द सेवन लेंप्स ऑफ आर्किटेकचर, 1849 (The Seven Lamps of Architecture) और द स्टोन्स ऑफ वेनिस, 1851 (The Stones of Venice) भी प्रसिद्ध हैं ।

यह शायद उनके घर में माँ द्वारा सुनिश्चित कठोर धार्मिक अनुशासन और ईसाइयत का ही प्रभाव था कि रस्किन ने नैतिकता और सामाजिक सुधारों के बारे में भी खूब लिखा, कहा और कार्य किया । इनका प्रभाव नैतिकतावाद और समाज सुधार के प्रसिद्ध प्रतिपादक जैसे महात्मा गाँधी, विलियम मोरिस (William morris) आरनॉल्ड टॉयनबी (Arnold Toynbee) पर पड़ा । 1854 में रस्किन ने वर्किन्ग मेन्स कॉलेज Working Men's College की स्थापना और वहाँ पर अध्यापन का कार्य भी किया । 1855 से 1860 के दौरान उनके द्वारा कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ लिखी गई -1857 में दी एलीमेंट्स ऑफ ड्रायिंग (The Elements of Drawing) और दी पॉलिटिकल एकॉनोमी ऑफ आर्ट (The Elements of Drawing);1859 में दी एलीमेंट्स ऑफ परस्पेक्टिव (The Elements of Perspective) और दी टू पाथ्स (The Two Paths) और ।860 में मोर्डर्ण पेन्टर्स- पंचम (Modern painters-V) और अन्टु दिस लास्ट (Unto This Last)

1860 की दशक में रस्किन ने सामाजिक, राजनीतिक अर्थव्यवस्था, कला और मिथ्या संबंधी विषयों पर लिखने और व्याख्यान देने में व्यस्त रहे । उनकी बाद की कृतियाँ जैसे सीसेम एण्ड लिल्लीस, 1865 (Sesame and Lillies). दी क्राउन ऑफ वाइल्ड ओलिव्स 1866 (The Crown of Wild Olives) और फोर्स क्लाविगेरा 1871-74 (Fors Clavigera) समाज सुधार संबंधी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए इनकी क्रियान्विति पर जोर देते हैं । उनके द्वारा प्रतिपादित समाज सुधार संबंधी कार्यक्रम बाद में ब्रिटेन की राजनीतिक दलों द्वारा अपनाया गया । मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपनी सम्पत्ति का बडा हिस्सा गिल्ड ऑफ सेन्ट जॉर्ज (Guild of st. George) नामी संस्था, जिसके संस्थापक वे स्वयं थे, को दान देकर समाज सुधार कार्यक्रमों की क्रियान्विति में मदद की । 1970 की दशक में रस्किन ऑक्सफोर्ड में स्लेड प्रोफेसर ऑफ फाइन आर्ट (Slade professor of Fine Art) की हैसियत से उपर्युक्त विषयों

पर व्याख्यान देते रहे । मानसिक अशान्ति के कारण 1880 में रस्किन ने ऑक्सफॉर्ड की प्रोफेसरशिप से त्यागपत्र दिया । 1883 में उन्हे फिर स्लेड प्रोफेसर ऑफ फाइन आर्ट्स के रूप में पुन: चयनित किए गए । इस दौरान दिए गए व्याख्यान बाद में 1884 में दी आर्ट ऑफ इंग्लैण्ड (The Art of England)नाम की कृति से प्रकाशित किया गया।

रस्किन उनके पिताजी के व्यवसायी भागीदार और दोस्त टेलफॉर्ड की बेटी ऐडेल(Adele) से शादी करना चाहते थे । माँ के विरोध के कारण यह शादी नहीं हो पायी । रस्किन ने 1848*में यूफीमिया ग्रे (Euphemia gray)से शादी की, परन्तु लगभग 6 साल बाद, यह शादी नि:सन्तानोत्पत्ति के आधार पर निरस्त हुई । यूफीमिया ग्रे ने फिर से दूसरी शादी की, परन्तु रस्किन ने कोई शादी नहीं की । वे रोसा ला टौच्च (Rose la Touche) के बहुत करीब आए थे और कहा जाता है कि शादी भी करना चाहते थे, परन्तु रोसा ला टौच्च की मृत्यु 1875 में हुई जिसके कारण रस्किन रोसा से शादी नहीं कर पाए और मानसिक रूप से बहुत आहत भी हुए । अत्यंत मानसिक पीडा सहते हुए रस्किन ने कोनिसटन झील संम ब्वदपेजवदद्ध किनारे स्थित ब्रेन्टयूड (Brantwood) में अपने घर में लगभग एकान्त में शेष जीवन व्यतीत किया । इसी दौरान रस्किन ने अपनी बाल्यावस्था जीवन के बारे में प्रेरेरिटा (Praeterita) शीर्षक कृति से लिखना प्रारम्भ किया । परन्तु वे इसे पूरा नहीं कर पाए । इन्फ़लुएंजा, ब्वदपेजवदद्ध से 20 जनवरी 1900 को रस्किन की मृत्यु हो गई ।

2.3 रस्किन का समकालीन समाज

रस्किन का जन्म इंग्लैंड में ऐसे समय हुआ जब औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव समाज में दिखने लगा था । विज्ञान और तकनीकी में क्रान्तिकारी बदलाव आ चुके थे जिनके कारण बडे-बडे मशीनों पर आधारित उद्योग स्थापित हो थे । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी बढने लगा । यातायात के नवीन साधनों ने न केवल आवगमन की सुविधाओं को बढ़ाया बल्कि संसाधनों और उत्पादित माल को एक जगह से दूसरी जगह लाने और ले जाने में अत्यन्त मदद भी की । समृद्धि की दृष्टि से इंग्लैंड ने बहुत प्रगति की । विज्ञान और तकनीकी ने विलासितापूर्ण जीवन प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया । परन्तु यह समृद्धि, विलासिता और सुखमय जीवन कुछ ही लोगों तक सीमित थी और अधिकांश लोग जीवन की न्यूनतम जरूरतों को भी पूरा करने में असहाय हो रहे थे ।

औद्योगीकरण के दुष्परिणाम भी सामने दिखने लगी थी । औद्योगिक शहर विकसित हाने लगे जहाँ काले और विशक्त धुआँ चारों ओर फैला हुआ था । उद्योगों में स्वच्छ और अनुकूल श्रम परिस्थितियों का घोर अभाव था । श्रमिकों की स्थिति न केवल मिलों और फैक्ट्रियों में बत्तर से बत्तर बनी हुई थी बल्कि राजनीतिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था में भी अत्यन्त दयनीय थी । जहाँ कुछ लोगों की समृद्धि बढ़ रही थी वहीं अधिक संख्या में लोग विषमताओं की स्थिति की ओर धकेले जा रहे थे । इस तरह सम्पन्नता के साथ-साथ गरीबी भी बढ़ रही थी ।

औद्योगीकरण के साथ-साथ पूँजीपति वर्ग का भी विकास हुआ । जो पूर्व में बडे-बडे जमीनदार थे उन्होंने उद्योग स्थापित करना प्रारम्भ किया और कृषि की और कम ध्यान देने लगे । जमीदारों द्वारा कृषि पर ध्यान कम देने और कृषक-मजदूरों को कोई संरक्षण न देने के कारण कृषक-मजदूर गाँव और कृषि छोड़ शहर और बड़े-बड़े मिलों और फैक्ट्रियों में अपना श्रम प्रदान करने आए । श्रम प्रदान करने वाले लोगों की संख्या ज्यादा और बड़े-बड़े मशीनों पर आधारित मिलों और फैक्ट्रियों में इनकी कम जरूरत होने के कारण श्रमिकों का जमकर शोषण होने लगा । पूर्व में कुशल कारीगरों के रूप में विद्यमान लोग भी अपनी पारम्परिक उद्योगों का मजबूरन छोड़ अब मिलों और फैक्ट्रियों में मजदूरों के रूप में काम करने लगे ।

जहाँ तक राजनीतिक व्यवस्था की बात है ब्रिटेन में राजतंत्रीय शासन था । मध्यम वर्ग के उदय के साथ जहाँ एक ओर राजनीतिक निरंकुशता को मर्यादित कर मध्यम वर्ग को और अधिक स्वतंत्रता प्रदान करने की माँग बढ रही थी, दूसरी ओर गरीब और मजदूरों के हितों को संरक्षित करने के लिए कोई भी सक्रिय नहीं था । राजा अपनी सम्पन्नता को बढ़ाने के लिए चिन्तित था जिसके कारण शासन स्वार्थमुक्त होकर मितव्ययता और परोपकार से प्रेरित होकर कार्य नहीं कर रहा था । पूँजीपतियों के प्रभाव में राज्य ने अहस्तक्षेप की नीति अपनाया था और पूँजीपतियों को मनमाने तरीके से औद्योगिक गतिविधियों को संचालित करने के लिए मुक्त कर रखा था । श्रमिकों और आम आदमी के हित और कल्याण के प्रति सरकार की कोई चिन्ता नहीं थी ।

सामाजिक क्षेत्र में पुरानी संरचनायें टूट रहीं थी । जनता गाँव को छोड, शहर की ओर जा रही थी । सामंतीय अभिजात वर्ग का स्थान धनी उद्योगपतियों या पूँजीपति वर्ग ने ले ली थी । उद्योग केन्द्र के रूप में कई नए शहर विकसित हो गए । रहन-सहन की दृष्टि से शहर के अमीरों और गरीबों में जमीन-आसमान का अन्तर था । जहाँ अमीर सभी सुख सुविधाओं के साथ विलासितापूर्ण जीवन व्यापन कर रहे थे वहीं गरीबों की स्थिति बदतर होती जा रही थी । कार्य-स्थल और घर, दोनों जगहों पर न्यूनतम आवश्यकताओं का घोर अभाव था । उनका शोषण सम्पन्न वर्ग द्वारा हर प्रकार से किया जा रहा था । धर्म की पालना केवल सतही तौर पर किया जा रहा था, नैतिक और मानवीय मूल्यों का ह्रास हो चुका था और परोपकार की भावना लुप्तप्राय: सा हो गया था । अमीर और गरीब दोनों ही अनेक प्रकार के व्यसनों में ग्रसित थे ।

2.4 गाँधी का समकालीन समाज

गाँधीजी के जन्म के लगभग एक दशक पूर्व अंग्रेजों द्वारा 1857 की क्रान्ति को कुचला गया था और कम्पनी शासन को समाप्त कर ब्रिटेन का प्रत्यक्ष शासन भारत के अधिकांश भाग में स्थापित किया गया । कम्पनी शासन और ब्रिटिश सरकार के प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत ब्रिटेन की औपनिवेशिक हितों को संरक्षित और संवर्धित करने का भरपूर प्रयास किया गया । राजनीतिक हस्तक्षेप के माध्यम से ब्रिटेन के आर्थिक हितों को बढाने का प्रयास किया गया । राज्यों की नीतियों का इस तरह से सुनिश्चित किया गया ताकि भारत से कच्चा माल सुविधापूर्वक ब्रिटेन में स्थापित उद्योगों को आवश्यकतानुसार सस्ते दर पर और पर्याप्त

मात्रा में उपलब्ध हो सके और वहाँ उत्पादित माल भारतीय बाजार में बेचा जा सके । स्थानीय उद्योगों के विरूद्ध प्रतिकूल नीतियों के द्वारा उन्हें नष्ट कर संभावित प्रतिस्पर्धा को समाप्त किया गया । स्थानीय शासक विवशतापूर्वक या स्वार्थ के कारण अंग्रेजों की उक्त औपनिवेशिक उद्धेश्यों को पूरा करने में साथ देते रहे । औपनिवेशिक शासन में भारत और भारतीय जनता का खूब शोषण किया गया । गरीबी और भुखमरी भारत के लिए आम बात बन गई थी । ऐसी कठोर परिस्थितियों में भी गरीब भारतीय जनता पर अनेक प्रकार के जुल्म किये जा रहे थे ।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो भारत अनेक बुराइयों से ग्रसित था । समाज अनेक धर्मो और जातियों में बैठा हुआ था । धर्म की पालना केवल सतही तौर पर किया जा रहा था, नैतिक और मानवीय मूल्यों का ठोस हो चुका था । समाज में ऊँच-नीच और छुआछूत की भावना फैली हुई थी । महिलाओं और अस्पृष्य माने जाने वाले लोगों पर अनेक प्रकार की बंदिशें लागू थीं और उनके साथ अमानवीय बर्ताव करना साधारण सी बात थी । जहाँ अभिजात वर्ग विलासितापूर्ण जीवन व्यापन कर रहे थे वहीं गरीब अभावग्रस्त जीवन व्यापन कर रहे थे । अमीर और गरीब दोनों ही अनेक प्रकार के व्यसनों में ग्रसित थे ।

2.5 रस्किन का गाँधी पर प्रभाव

गाँधी ने रस्किन का अपने जीवन पर प्रभाव को स्वीकारा है । रस्किन की पुस्तक अन्टू दिस लास्ट तथा क्राउन ऑफ वाइल्ड ओलिव्स ने उन्हें काफी प्रभावित किया है । रस्किन की अन्टू दिस लास्ट पुस्तक का उन पर जो प्रभाव पडा उसका विवेचन उन्होनें अपनी आत्मकथा मय एक्सपिरीमेट्स विथ ट्रुथ के एक अध्याय "दी मेजिक स्पेल ऑफ ए बुक" में किया है । यह किताब गाँधी को उनके दोस्त पोलक ने जोहनसबर्ग से डरबन की रेल यात्रा में पढने के लिए दी थी । रस्किन की इस किताब का गाँधी पर इतना प्रभाव पडा कि वे लिखते हैं कि जैसे ही उन्होंने यह किताब पढना प्रारम्भ किया, उसने उन्हें अपने आकर्शन में इतना जकड लिया कि वे उस किताब को पूरा पढ़े बिना अपने से अलग नहीं कर पाए और जिस श्याम को उक्त सफर पश्चात वे डरबन पहुँचे उस रात को वे सो नहीं पाए और सोचते रहे कि उन्हें इस किताब में वर्णित आदर्श के अनुसार अपना जीवन व्यापन करेंगे । गाँधी ने कहा कि रस्किन की किताब अन्टू दिस लास्ट ने उनमें तात्कालिक और व्यावहारिक बदलाव लाने का कार्य किया है । जनता तक रस्किन के विचार पहुँच सके इसलिए गाँधी ने उक्त किताब को गुजराती भाषा में अनुवादित कर उसे सर्वोदय का शीर्षक दी ।

रस्किन से गाँधी ने जो जीन बातें सीखने की बात की है वे है

1. सर्वहित या सर्वकल्याण में ही स्वहित या स्वयं का कल्याण निहित है ।
2. वकील का काम का तथा नाई का काम, सामाजिक मूल्य की दृष्टि से समान है तथा
3. श्रम आधारित जीवन ही जीने योग्य है अर्थात कृषकों व हस्तोद्योग शिल्पियों का जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है।

गाँधी कहते है कि उन्हें पहले सिद्धान्त का पूर्व ज्ञान था । दूसरे सिद्धान्त का उन्हें आभास था और तीसरे सिद्धान्त से अनभिग्य थे । के लिखते है कि अन्टू दिस लास्ट ने स्पष्ट कर दिया कि उपर्युक्त द्वितीय और तृतीय सिद्धान्त, किताब के उपर्युक्त प्रथम सिद्धान्त मे ही

निहित हैं । सुबह उठने के बाद गाँधी ने उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों को अपने जीवन में चरितार्थ करने का निर्णय लिया और उनकी कार्यान्विति शुरू कर दी ।

2.6 नैतिक जीवन के प्रति दृष्टिकोण: रस्किन और गाँधी

रस्किन और गाँधी नैतिक जीवन के प्रति बहुत प्रतिबद्ध थे । नैतिकता युक्त जीवन दोनों की प्राथमिकता थी । दोनों की बाल्यावस्था में अपने घर पर विद्यमान धार्मिक अनुशासन का उनके जीवन पर अत्यधिक प्रभाव रहा । दोनों पर उनकी माता का भी काफी प्रभाव पड़ा । अपनी माता के अलावा रस्किन पर बाइबिल का भी काफी प्रभाव रहा । इन्हीं के प्रभाव से एक अच्छे जीवन के बारे में रस्किन की सोच विकसित हुई । बचपन से ही वे इस बात को अंगीकृत कर चुके थे कि मनुष्य को अच्छा बनना चाहिए क्योंकि यदि मनुष्य अच्छा बनता है तो वह ईश्वर के लिए प्रिय बनता है अन्यथा नहीं । यही बात उन्होंने बचपन से अन्त तक अन्य लोगों को भी अंगीकृत करने का उपदेश दिया । सादगी और सरलता दूसरों के प्रति स्नेह और सेवा की भावना, ईश्वर में अन्य व्यक्ति और सत्य ईमानदारी आदि गुण मानवीय और नैतिक जीवन के प्रति उनकी सोच की आधारशिला थी । रस्किन की माँ मार्गारेट कॉक्स और गाँधी की माँ पुतली बाई दोनों ही अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की थीं ।

रस्किन के घर पर कठोर धार्मिक अनुशासन उनकी माँ द्वारा सुनिश्चित किया गया था । चर्च जाना और बाइबल पढ़ना, रस्किन को इसे पढ़ाना और उसमें बताये गये ईसाई धर्मा संबंधी सिद्धान्तों के अनुरूप परिवार को अनुशासित करना रस्किन की माँ का विशेष प्रयत्न था । रस्किन में नैतिक गुणों का विकास और नैतिकता के बारे में उनकी सोच उनकी माँ मार्गारेट के उपर्युक्त प्रभाव का देन माना जा सकता है । बचपन से ही रस्किन इस बात को शायद अंगीकृत कर चुके थे कि मनुष्य को 'अच्छा बनना' चाहिये । बचपन से वे मानने लगे कि 'अच्छा बनना' ईश्वर के करीब आने के लिए जरूरी है और यही बात वे बाल्यावस्था से जीवन के अन्त तक दूसरों को उपदेश स्वरूप कहते रहे । सादगी और सरलता, दूसरों के प्रति स्नेह और सेवा भावना, ईश्वर में अनन्य भक्ति, सत्य ईमानदारी, आदि उनके द्वारा नैतिक और मानवीय जीवन का आधारभूत लक्षण या गुण के रूप में स्वीकारा गया ।

रस्किन के राजनैतिक और आर्थिक विचारों के सन्दर्भ मे कहा जा सकता है कि उन्होंने मानवता के तत्व जैसे नैतिकता, ईमानदारी, परोपकार, भ्रातृत्व, सहिष्णुता जैसे गुणों पर अपने विचारों को आधारित किया । रस्किन ने इस बात पर बल दिया कि स्वस्थ राजनैतिक-आर्थिक व्यवस्था केवल नैतिक आधार पर ही फल-फूल सकती है । वह प्रगति जो नैतिकता से पृथक हो कर भौतिकता और विलासिता को बढावा देती है, वह व्यक्ति को विनाश की ओर ले जाती है । उनके अनुसार राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था के केन्द्र में मनुष्य के सर्वागीन विकास की संकल्पना होनी चाहिए । आर्थिक सम्पन्नता या धन का संचय विकास का प्रतीक नहीं है । विलुप्त होती परोपकार और भाईचारे की भावना से भी रस्किन चिन्तित थे और कहते थे कि समकालीन समाज में धर्म जीवन से पृथक होता जा रहा है ।

शोषणात्मक और अन्यायपूर्ण आर्थिक-सामाजिक सम्बन्धों की रस्किन ने आलोचना की। उन का मत था कि आर्थिक क्षेत्र में पूँजी और श्रम का अन्तर्सम्बन्ध, न्याय और परस्पर

सहयोग पर आधारित होना चाहिए । उद्योगपतियों को श्रमिकों के प्रति 'पिता-पुत्र' दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । उन्हें उत्पादन और वितरण में नैतिक आचरण करना चाहिए और आवश्यकता पडने पर श्रमिकों के लिए आत्म बलिदान देने को भी प्रस्तुत रहना चाहिए । उनका कहना थो कि लोग बाइबिल का यह सन्देश कि 'हमें पडौसी के साथ प्रेम-भाव रखना चाहिए' भुला चुके हैं और हफ्ते में एक दिन चर्च में जा कर फिर वही उपदेश देते हैं और सुनते हैं, हफ्ते के छ: अन्य दिनों मे उन्होंने जिनके विपरीत आचरण किया था । रस्किन इस तरह के पाखण्ड के घोर आलोचक थे । लोगों के आर्थिक आचरण में झूठ, फरेब, बेईमानी, आदि आदतों के कारण रस्किन ने कहा कि समकालीन समय में मनुष्य धर्म के सिद्धान्तों की घोर अवज्ञा कर रहा है ।

गाँधी आध्यात्मिकता से प्रेरित थे और मानव जीवन का लक्ष्य ईश्वर का प्राप्ति है । उन्होंने हर प्रकार के शोषण का विरोध किया और सैद्धान्तिक स्तर पर शोषण को ईश्वर, सत्य और अहिंसा विरोधी माना । उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य में निर्पेक्ष सत्य या ईश्वर अन्तरात्मा के रूप में विद्यमान है और अत: सभी व्यक्ति मूल रूप से समान है । नैसर्गिक मानवीय कमियाँ के कारण व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह अहिंसा को जीवन सिद्धान्त के रूप में अपनाये । अहिंसा के अभाव में व्यक्ति सत्य की प्राप्ति नहीं कर सकता है । गाँधी की अहिंसा की धारणा व्यापक है । अन्य मनुष्यों के विरूद्ध मन वचन और कर्म से हिंसा नहीं करना तो इसका महत्वपूर्ण हिस्सा है ही, परन्तु यह साथ में सक्रियता और सकारात्मकता का भाव लिए हुए सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति ऐसा भाव रखने और आत्मशुद्धि, प्रेम, परोपकार, सहिष्णुता, त्याग और आत्मपीडा जैसे मूल्यों को आत्मसात करने पर भी बल देता है । इस तरह हर प्रकार के शोषण से प्रथक रहना और सभी के कल्याण के प्रति सक्रिय प्रतिबद्धता गांधी के द्वारा कल्पना की गई अहिंसा का अभिन्न अंग है ।

महात्मा गाँधी की माँ पुतलीबाई भी अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति एवं दृढ निश्चयी महिला थी । वे एक योग्य, सज्जन, धार्मिक, निष्ठावान, अभिमान रहित, सादगीपूर्ण जीवन और सरल स्वभाव की महिला थी । वे सब की सेवा करती थी, विशेष रूप से बीमार और बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने में वे लगी रहती थी । वह शारीरिक रूप से कमजोर अवश्य थी, परन्तु आत्मिक शक्ति से भरपूर और दृढ़ इच्छा शक्ति वाली महिला थी । अनेक व्रतों और उपवासों की दृढता पूर्वक पालना ने उन्हें आंतरिक रूप से बहुत मजबूत बना दिया था । उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति, असीम प्यार और सेवा भाव ने गाँधी को बहुत अधिक प्रभावित किया । गाँधी जीवी कहते थे कि उनके अन्दर जो शुद्धता दिखाई देती है वह उन्होंने अपनी माँ पुतलीबाई से पाई है ।

गाँधीजी के लिए राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पक्ष आपस में एक दूसरे से और सब आध्यात्मिकता या नैतिकता के साथ घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं । उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने समस्त क्रियाकलापों में धर्म को केन्द्रीय स्थान प्रदान करना चाहिए । परन्तु गाँधीजी ने धर्म को किसी मत या सम्प्रदाय विशेष या उसकी पूजा, पाठ, अर्चना आदि के रूप में महत्व न देकर इसे परम सत्य तुल्य ईश्वर और उसकी सम्पूर्ण सृष्टि से नैतिक मूल्यों के आधार पर सम्बन्ध संचालित करने के रूप में स्वीकार किया है । उनके अनुसार मनुष्य को

अपने जीवन में नैतिक नियमों का अनुसरण करना चाहिए । जीवन का उद्देश्य भी नैतिकता और परोपकार से प्रेरित होना चाहिए ।

गोखले ने पवित्र उद्देश्य और इनकी प्राप्ति के लिए पवित्र साधनों के प्रयोग पर बल दिया । गाँधीजी के अनुसार धर्म मानव-प्रवृत्तियाँ का सारा सप्तक एवं अविभाज्य वस्तु है । वे नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार नहीं थे ।

2.7 आधुनिक सभ्यता संबंधी दृष्टिकोण: रस्किन और गाँधी

रस्किन का समय भौतिकवाद और वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टिकोण से प्रभावित था । रस्किन के समकालीन समाज में औद्योगिक क्रान्ति ने जीवन को अनेक विलासिता की सुविधाएँ प्रदान कर रखी थीं । भौतिकता और सुविधा-सम्पन्नता जीवन के लिए प्राथमिक माना जा रहा था । भौतिकवादी दृष्टिकोण और विलासितापूर्ण जीवन के कारण कुण्ठित होती नैतिकता पर रस्किन ने चिन्ता व्यक्त की । उनका कहना था कि मानव को सुखी रखने वाली क्रियाएं जैसे पढना, सोचना, स्नेह करना, आशावादी बनना, प्रार्थना करना इत्यादि विलुप्त हो रही हैं और लालच और वासना एवं लोभ मनुष्य की आत्मा को मार रहे हैं । विज्ञान ने तकनीकी के रूप में और तकनीक ने मशीनों और औद्योगीकरण के रूप में जो उस समय प्रगति प्राप्त की थी, रस्किन ने उनकी आलोचना की है । उन्होंने अनुभव किया कि मशीनों ने व्यक्ति को स्वार्थी, क्रूर और बेरहम बना दिया है और पर्यावरण को अनेक प्रकार से दूषित कर दिया है और बीमारियाँ फैलाई हैं । इसने मनुष्य को अनेक प्रकार की अनैतिक कार्य करने और पतन की ओर ले जाने का काम किया है । विज्ञान ने जिस प्रकार की प्रगति की है वह भी रस्किन के लिए चिन्ता का विषय था, क्योंकि रस्किन के अनुसार यह प्रगति व्यक्ति को विनाश के नूतन साधनों के आविष्कार की ओर ले जा रही है । उनके अनुसार इस प्रगति ने मनुष्यों के दिल और दिमाग से ईसा मसीह और बाइबिल के उपदेशों को विस्मृत कर दिया है और लोग सम्पन्नता एवं भौतिकता के शैतान का अनुकरण करने लगे हैं । व्यक्ति अपने द्वारा किए गए कार्य का आनन्द नहीं उठा रहा था, बल्कि काम करके सम्पन्नता को कैसे बढ़ाया जा सकता है, इसकी फिक्र में डूबा हुआ था । उन्होंने कहा कि औद्योगीकरण ने समाज को विभक्त करने और शोषण की प्रवृत्ति को बढाने का काम किया है ।

गाँधीजी भी पश्चिमी आधुनिक सभ्यता के कटु आलोचक थे । अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में गाँधी जी ने पश्चिमी सभ्यता के नैतिक आधार पर अस्वीकार किया । हिंद स्वराज में गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता मे लिप्त बुराइयों के कारण उसे असुरी कहा है । गाँधीजी के अनुसार आधुनिक सभ्यता ने इग्लैंड की सजीवता को खत्म कर दिया है परन्तु इग्लैंड, उनके मतानुसार, इसका परित्याग नहीं करना चाहता क्योंकि वह भौतिकवाद और उपभोगतावाद के चुँगल मे फँस चुका है । इसी चुँगल मे फँसने के कारण वह निरंतर शोषणात्मक व्यापार और वाणिज्य को बढ़ाने के लिए तत्पर है । अधिकाधिक धन-संचयन के लोभ में वे अपने माल के लिए पूरे विश्व को एक बड़े बाजार में परिवर्तित कर शोषण को वैश्विक बना रहा है ।

'हिन्द स्वराज' में गाँधी ने आधुनिक सभ्यता की उपभोगतावादी, अनैतिक और हिंसावादी प्रवृत्तियों की घोर आलोचना की है । गाँधी आधुनिकता, औद्योगीकरण और संसदीय शासन प्रणाली को मानव हित के अनुकूल नही मानते हैं । यह किताब समकालीन आधुनिक समाज की आलोचनात्मक परीक्षण करके न केवल उसके वैज्ञानिक और तकनीकी प्रयोगों पर वार करता है अपितु उसके राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक व्यवस्था पर भी प्रहार करता है । वकीलों, चिकित्सकों और तकनीकियों की आलोचना करते हुए इसमें रेल और आधुनिक मशीन-तन्त्र को भी अस्वीकार किया है । गाँधीजी ने आधुनिक समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को मानव के नैतिक, गरिमामयी और सम्मानजनक जीवन के लिए अवरोध मानकर इन्हे परित्याग करने को कहते हैं ।

गाँधीजी ने आधुनिकता के मूल मे निहित तर्कवाद व विज्ञानवाद पर अत्यधिक महत्व की आलोचना की । उनके अनुसार तर्कवाद को सर्वशक्तिमान मानना गलत और अनुचित है । इस पर स्वभाविक सीमा लगाना आवश्यक है । उन्होंने यह भी अनुभव किया कि आधुनिक सभ्यता द्वारा समर्थन किए गए उपयोगितावाद और उपभोगतावाद व्यक्ति को आत्म-केन्द्रित अथवा स्वार्थी बनाते हैं । ये प्रवृत्तियाँ गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास को भी बाधित करते हैं क्योकि ये मानव नीति को भूलाकर अनेक व्यसनों मे लिप्त हो जाता है और विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बुराइयों को बढावा देता है ।

प्रकृति के साथ छेड-छाड करने का हर प्रयास गाँधीजी के लिए अस्वीकार्य था । रेल उनके अनुसार स्थान और समय से जुडे मानवीय कौशल की प्राकृतिक सीमाओं को तोड कर अवांछनीय प्रतिस्पर्धा को जन्म देने, बीमारियों को फैलाने और अकाल की परिस्थितियों को जन्म देने के लिए भी गाँधीजी ने रेल को दोषी ठहराया । गाँधीजी के अनुसार जिस तरह रेल ने अंग्रेजो को भारत में अपना शासन फैलाने और उसे बनाए रखने में मदद की उसी प्रकार वकीलों और जजों ने भी भारत में अंग्रेजों के शासन को स्थायित्व प्रदान करने का कार्य किया । वकीलों और जजों ने भारत में अंग्रेजों के बनाए कानून को स्वीकृत कर औचित्य प्रदान की है । गाँधीजी का यह भी मानना था कि वकील भी प्रयासरत् रहते हैं कि झगडा कभी भी समाप्त न हो । समाज में झगडा बढ़ाने में उनका निहित स्वार्थ होता है । इसलिए ये लोग संघर्ष-समाधान और शान्ति के लिए कोई सकारात्मक कार्य नही करते । डाक्टरों की भी गाँधीजी कटु आलाचना करते हैं । उनकी चीर-फाड पद्धतियाँ और दवाइयों में पशु-वसा और मादक पदार्थो का प्रयोग की गाँधीजी ने आलोचना की है । गाँधीजी ने कहा कि अप्रत्यक्ष रूप से डॉक्टर व्यक्तियों में भोग विलास की प्रवृत्तियों को बढावा देते हैं और आत्म-संयम के गुण को कमजोर करते हैं ।

गाँधीजी विज्ञान, तकनीकी और मशीन के विरूद्ध नही थे । वे विरोध करते थे ऐसे वैज्ञानिक दृष्टि, तकनीकी प्रयोग और मशीनीकरण का जो मनुष्य का मानव बनने में बाधा उत्पन्न करता हो और उसके शोषण को बढावा देता हो । गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता की अंधाधुन्ध मशीनीकरण की प्रवृत्तियों को केवल नैतिक आधार पर ही नहीं अपितु भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर पडने वाली विपरीत और घातक प्रभाव के आधार पर भी आलोचना की और विरोध किया । उनके अनुसार ब्रिटेन की उपनिवेशवादी नीतियों ने भारत की कुटीर उद्योग को नष्ट

कर दिया है । मशीनीकरण और आधुनिक पूंजी के आधार पर स्थापित मिलों व फैक्टरियों ने लोगों को गरीब बना दिया और उनका शोषण किया है ।

यूरोप की संसदीय शासन व्यवस्था को भी गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता का साधन माना है । उनका कहना था कि ब्रिटिश पार्लियामेंट (संसद) ने कोई सकारात्मक योगदान नही दिया है । बिना बाहरी दबाव के ब्रिटिश संसद ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया । व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कार्य करने वाले ऐसे सदस्य जन हित के कार्य स्वप्रेरणा और निष्ठा से नही करते है । आगामी चुनाव की चिन्ता भी उन्हें निश्चिन्त होकर सही कार्य करने नही देती । गाँधीजी ने इसे वेश्या के समान इसलिए कहा है क्योंकि यह मंत्रियों नियंत्रण में कार्य करती है जो समय-समय पर बदलते रहते हैं, यह जन हित के प्रति निष्ठावान नही है । यह दुनिया की बातूनी दुकान है जिसकी कार्य प्रणाली में बहुत अधिक धन व समय खर्च होता है । यह अपनी इच्छा लोगों पर थोपती है और इसके सदस्य दलगत नीति से ऊपर नहीं उठते और बिना विचार किए अपने दल को ही वोट देते है ।

प्रजातंत्र के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की गाँधीजी ने इस आधार पर भी आलोचना की यह शासन व्यवस्था बहुमत के सिद्धान्त पर आधारित है जिसमे अल्पमत की अवाज को दबा दिया जाता है या अनसुनी कर दिया जाता है । गाँधीजी ने कहा कि बहुमत का निर्णय हर समय सही हो यह जरूरी नही है और प्रजातंत्र के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की शासन व्यवस्था मे हमेशा बहुमत की निरंकुशता का खतरा बना रहता है । उन्होंने इस विचार का समर्थन नही किया कि संवैधानिक सत्ता द्वारा पारित कानून का आँखमूंद कर समर्थन किया जाए, चाहे वह हमारी आत्मा के विरूद्ध ही क्यों न हो । गाँधीजी का तर्क था कि अन्यायपूर्ण कानून, विशेष कर जब वह अन्तरात्मा के विरूद्ध हो तब उसका विरोध करना व्यक्ति का कर्तव्य भी है । उनके द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह दर्शन उपर्युक्त भावना और सोच को समाहित करते हुए राजनीतिक स्तर पर आध्यात्मिक प्रगति, स्वराज और सर्वोदय का मार्ग प्रशस्त करता है ।

2.8 आत्म-संतुष्ट जीवन संबंधी दृष्टिकोण: रस्किन और गाँधी

रस्किन शान्तिपूर्ण और आत्म-सन्तुष्ट जीवन पर बल देते हैं । 'सादा जीवन, उच्च विचार' उनके जीवन' का सिद्धान्त था । वे चाहते थे कि समाज का सम्पन्न वर्ग अपने जीवन को उपयुक्त सिद्धान्त पर आधारित करके स्वयं उदाहरण प्रस्तुत करे कि व्यक्ति को समाज में कैसे जीना चाहिए । आवश्यकताओं और महत्वाकांक्षाओं को नियन्त्रित करने और शान्ति, सुख और आत्म-सन्तुष्टि रस्किन के लिए प्राथमिक महत्व रखते थे । आत्म-सन्तुष्टि के अभाव में, उनके अनुसार, जीवन विषाक्त हो जाता है । अपने समकालीन समाज में भौतिकवाद की बढता प्रवृतियों और फलस्वरूप विकसित होने वाली अन्य बुराइयाँ जैसे अन्याय, असमानता, शोषण, इत्यादि से रस्किन बहुत आहत थे । वे कहते हैं कि हफ्ते में छः दिन मनुष्य विलासिता, अन्याय और शोषण में लिप्त रहता है और सातवें दिन चर्च जाकर पाखण्डी उपदेश देता या सुनाता है । इसलिए रस्किन के विचारों में भी कथनी और करनी में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखने और सदगुणी जीवन व्यापन करने को महत्वपूर्ण माना गया है ।

मानव कल्याण की जब गाँधी बात करते हैं तब वे मनुष्य को एक नैतिक प्राणी के रूप में स्वीकार करते हैं और केवल उसके भौतिक सुख-वृद्धि तक कल्याण की अवधारणा को सीमित नही करते हैं । नैतिकता-युक्त सादगीपूर्ण जीवन के पक्षधर गाँधी विलासितापूर्ण जीवन को अनेक कारणों से अनैतिक एवं सम्पूर्ण मानव कल्याण के लिए बाधा मानते थे । इन्हें गाँधी सत्य और सम्पूर्ण विश्व-कल्याण अथवा सर्वोदय उद्देश्य से असंगत मानते थे । इसलिए गाँधी उपयोगितावाद और उसके द्वारा समर्थित किए गए उपभोगतावाद के कटु आलोचक थे । उनके अनुसार पथभ्रष्ट मानव अहिंसा और न्याय का मार्ग छोडकर हिंसा और अन्याय के माध्यम रवे अपना स्वार्थ पूरा करने का प्रयास करता है । उनके द्वारा प्रतिपादित अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों के मूल में आत्मनियन्त्रण सादा और सरल जीवन के विचार अन्तर्निहित हैं । गाँधी उन आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास करते थे जिन्हें विश्व के सभी प्रमुख धर्मो ने प्रतिपादित किया है । हिन्दू धर्म मे प्रतिपादित अर्थ और काम पुरूषार्थो को धर्मानुसार संयमित कर मोक्ष प्राप्त करने की ओर अग्रसर होने की बात गाँधीजी किया करते थे । धर्म और मोक्ष उनके लिए आत्मानुशासन, परोपकारी सेवा और सर्वोदय के लक्ष्यों से घनिष्ट रूप में जुडे हुए हैं ।

2.9 शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण: रस्किन और गाँधी

रस्किन के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण नैतिक प्रक्रिया है । उनके मतानुसार शिक्षा का अर्थ व्यक्ति को जो नहीं पता है उसे सिखाना मात्र नहीं है, अपितु उसे ऐसा आचरण करना सिखाना है जो कि अन्यथा नहीं करता है । इस दृष्टिकोण से रस्किन की शिक्षा की अवधारणा 'नैतिकता की शिक्षा' है । इस में बौद्धिक विकास का स्थान भी है, परन्तु इसकी वरीयता नैतिक विकास के बाद की है । नैतिकता के अभाव में जो शिक्षा केवल बौद्धिक विकास पर जोर देती है, रस्किन के अनुसार वह घातक है, श्रेष्ठ जीवन का प्रतीक बौद्धिक विकास नहीं हैं, अपितु नैतिक और चारित्रिक विकास है । उनका मत था कि वही व्यक्ति जीवन में अग्रणी माना जा सकता है, जिसका हृदय कोमल हो, जिसके खून में सम्बन्धों को सौहार्दपूर्ण बनाने वाली गर्माहट विकसित हो रही हो, जिसकी बुद्धि भी विकासशील हो और जिसकी भावना स्थाई शान्ति की ओर अग्रसर हो ।

चारित्रिक या नैतिक विकास के बाद शिक्षा की प्राथमिकता रस्किन के अनुसार यह होनी चाहिए कि वह विद्यार्थी को किसी शारीरिक कौशल में दक्ष बनाए । शिक्षा में व्यावहारिक पक्ष भी जुड़ा हुआ हो और वह व्यावहारिक जीवन से पृथक भी नहीं हो । उनका मत था कि बौद्धिक और साहित्यिक कार्य तब तक व्यर्थ है, जब तक कि वह ऐसे तथ्यों रमे सम्बन्धित नहीं हो, जो जीवन को प्रभावित करती हो ।

रस्किन ने शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक श्रम को भी शारीरिक और बौद्धिक विकास की दृष्टि से आवश्यक माना है । उनके अनुसार शारीरिक अर्थात कायिक श्रम शक्तिवर्धक और स्वास्थ्यवर्द्धक है, वहीं बौद्धिक दृष्टि से कायिक श्रम विद्यार्थी को जीवन की वास्तविकताओं की अनुभूति कराती है और सैद्धान्तिक या साहित्यिक ज्ञान की संकुचित क्षेत्र में निहित कमियों को दूर करती है । शिक्षा का एक और महत्वपूर्ण पक्ष रस्किन के अनुसार यह है कि वह विद्यार्थी को प्रकृति-बोध कराती है । प्रकृति की अनुभूति, सौन्दर्य की अनुभूति है और प्राकृतिक सौन्दर्य

श्रेष्ठता का प्रतीक है । जो विद्यार्थी इस श्रेष्ठता का ज्ञान रखता है वही उत्तम शिक्षा प्राप्त करता है ।

रस्किन मनुष्यों में विद्यमान प्रकृति प्रदत्त भिन्नताओं को स्वीकार करते हुए व्यक्तियों की शारीरिक भिन्नताओं को भी ध्यान में रखते हैं और समाज के लिए सार्थक कौशल विकसित करने पर भी ध्यान दिए जाने पर बल देते हैं । इस तरह रस्किन महत्वपूर्ण मानते हैं कि शिक्षा में विद्यार्थियों के लिए, प्रकृति-ज्ञान को भी स्थान दिया जाए । ग्रामीण, शहरी और तटीय परिवेश के अनुसार अलग विषयों के अध्ययन पर रस्किन बल देते हैं और कहते हैं कि ग्रामीण स्कूलों के पाठ्यक्रम में खेती, पशु-पक्षी और जन्तु और वनस्पतियों से सम्बन्धित विषयों को सुनिश्चित किया जाना चाहिए । तटीय स्थलों में स्थित स्कूलों में भूगोल, खगोल, जल-पक्षियों और जन्तुओं सम्बन्धी विषयों को रस्किन द्वारा आवश्यक माना गया है और शहरी स्कूलों में गणित और कला का अध्ययन जरूरी माना गया है ।

संगीत और नृत्य को भी रस्किन ने शिक्षा के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया है, क्योंकि उनके मतानुसार संगीत विद्यार्थी को वाणी का ज्ञान और नृत्य उसके कायिक अनुग्रह को विकसित करने में मदद करता है । कुल मिला कर रस्किन के शिक्षा सम्बन्धी विचार में विद्यार्थी के सर्वागीण विकास की बात को महत्व दिया गया है ।

गाँधी के लिए शिक्षा का विशेष अर्थ था । यह महज अक्षरों का ज्ञान और आजीविका प्रबन्ध करने का कौशल विकसित करने की कला नहीं है । यह विद्यार्थियों के नैतिक चरित्र का विकास करने वाली प्रक्रिया है जो उन्हें समाज और विश्व के प्रति अपने धर्म अथवा दायित्व नि:स्वार्थ भावना से नियमित रूप से निर्वाह करने की सीख प्रदान करता है । गाँधी ने मूल्यधारित ग्रामीण वातावरण से स्वत: सीखने वाली शिक्षा को अधिक महत्त्व दिया है । गाँधीजी के अनुसार अंग्रेजों द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था उपनिवेशवादी ब्रिटिश शासन की आवश्यकता को पूरा करना था न कि भारतीयों का नैतिक और चौतरफा विकास करना । यह शिक्षा न ही व्यक्ति को आदर्श-पुरूष बनने की ओर ले जाती है और न ही उसे अपनी मानवीय दायित्वों के निर्वाह मे सक्षम बनाती है । गाँधी ने नयी तालीम के माध्यम से विद्यार्थियों के सर्वागीण विकास सुनिश्चित करने का प्रयास किया है । यह शिक्षा योजना हिन्दुस्तान की परिस्थितियों के अनुकूल थी जो गरीबी, बेरोजगारी, शोषण तथा बेकारी से मुक्ति दिलाने के लिए गाँधी ने कल्पना की थी ।

गाँधी की शिक्षा योजना बालक की रूचियों एवं प्रवृत्तियों के अनुकुल कार्य देकर उनकी नैसर्गिक गुणों के विकास पर भी ध्यान देती है । इस शिक्षा योजना में स्वावलम्बन, बालक-बालिकाओं की अभिरूचियों को प्रोत्साहन, पारस्परिक विचार विनिमय से बालकों का उन्नयन, वैदिक कालीन संस्कृति का संयोजन शामिल है । इस व्यवस्था में बालक एवं बालिकाओं और भारतीय समाज में उनसे अपेक्षित उत्तरदायित्वों के निर्वाह पर भी ध्यान दिया गया है । बुनियादी शिक्षा में बालक-बालिकाओं के लिए पाँचवी कक्षा तक समान पाठ्यक्रम था । नयी तालीम के आठ वर्ष के पाठ्यक्रम में वस्त्रोपादन, कृषि, काष्ठकला, फलोत्पादन, साग, सब्जी, चमडे के काम तथा अन्य उपयोगी और मातृभाषा, गणित, सामान्य विज्ञान, समाजशास्त्र कला (चित्र, संगीत,नृत्य) सामान्य भाषा आदि विषय रखे गए है । बालिकाओं को छठीं और सातवीं

कक्षाओं में आधारभूत शिक्षा के स्थान पर गृह-विज्ञान में उच्च पाठ्य विषय ले सकती है । शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है, परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी का अध्ययन सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है । शिक्षकों को भी इस व्यवस्था में विशेष रूप से प्रशिक्षित होने पर बल दिया है । अभिव्यक्ति, भाषा, विषय ज्ञान, साहित्यिक समझ, बाल मनोविज्ञान तथा गाँव की समझ और किसी कुटीर ओर देहाती उद्योग में दक्षता रखने पर बल दिया गया है । उनके दिल मे समाज-सेवा की लगन को गाँधी द्वारा महत्वपूर्ण माना गया है ।

गाँधी नई तालीम शिक्षा को स्वराज की कुंजी भी मानते थे । उनका स्पष्ट मानना था कि शुद्ध-शिक्षा के अभाव में राजनैतिक स्वराज की प्राप्ति के प्रयत्न बेकार है । विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण और राष्ट्रीय एवं सामाजिक दायित्व निर्वाह का बोध विकसित करना इस शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है । गाँधीजी अपनी शिक्षा-प्रणाली में सत्य, सहयोग, प्रेम, अहिंसा तथा कर्म, शील पर अधिक जोर देते है । वे मानते थे कि विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो उन्हें सत्याग्रही बनाये एवं हिंसा,घृणा, आतंक जैसी बुराइयों से लडकर उन्हें समाज से दूर करने में योगदान दें ।

2.10 कला संबंधी दृष्टिकोण: रस्किन और गाँधी

रस्किन प्रकृति और उसके सौंदर्य से अत्यधिक प्रभावित थे । 'वे प्रकृति को कला की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते थे और इस बात पर बल देते थे कि मनुष्यों द्वारा कृत कला प्रकृति को प्रतिबिंबित करे । उनका मानना था कि कला और सौंदर्य के अभाव में सही अर्थो में सुखमय जीवन व्यापन नहीं हो सकता । कला और सौन्दर्य शाश्वत सत्य है । प्रकृति का दर्शन ही मनुष्य को सिखाती है कि वह कैसे चीजों को देखे और यह मनुष्य की आंखे खोल उसके चारों और स्थित अन्य वस्तुओं और जीवन के मूल को समझने में मदद करती है । प्रकृति को बदलने की नहीं बल्कि उसे समझने और तदानुरूप अपने दृष्टिकोण ओर व्यवहार को बदलने की आवश्यकता है । सैद्वान्तिक रूप में यदि अभिव्यक्ति किया जाए तो "देखें और सीखें" प्रकृति और कला संबंधी रस्किन का दृष्टिकोण था । अपने बचपन और युवा अवस्था के दौरान किए गए प्राकृतिक जगहों के भ्रमण के बारे मे रस्किन कहते हैं कि वे भ्रमण किसी के साथ या रोमांच की अनुभूति के लिए नहीं जाते थे बल्कि "अपने आँखों से देखने और हृदय से अवलोकन करने और समझने" हेतु जाते थे । उनका मत था कि श्रेष्ठ कला वह है जो उसे देखने वाले की दृष्टि को श्रेष्ठ बनाती है । कला के संदर्भ में व्यक्ति का दायित्व प्रकृति का चयन, रचना, कल्पना ओर प्रयोग करना नहीं है बल्कि विनम्रतापूर्वक और ईमानदारी से प्रकृति द्वारा प्रदत्त और ईश्वर द्वारा कृत पदचिन्हों पर चलना है ।

रस्किन का मानना था कि कला और नैतिकता में भी घनिष्ठ सम्बन्ध है । सौन्दर्य बोध या अनुभूति रस्किन के लिए कामुकता ओर बौद्धिकता के परे था । उनके अनुसार यह नैतिक है जो ईश्वर द्वारा कृत सृष्टि के सभी तत्वों को स्वीकारने और उनके सही अर्थो को समझना है । अनुभवों की स्वच्छता या शुद्धता ही रस्किन के अनुसार व्यक्ति को ईश्वर से जोडता है । रस्किन के अनुसार यह महत्वपूर्ण नहीं है कि एक, कुछ या अनेक संख्या में ईश्वर

हो, जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि सभी व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और धर्म जीवन व्यापन से पृथक नहीं हों बल्कि उसका अनुकरण जीवन में किया जाए ।

गाँधी और रस्किन में कला के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह था कि रस्किन कला के माध्यम से सत्य समझने का प्रयास करते थे और गाँधी के लिए सत्य ही सुन्दर है । गाँधी के लिए सौन्दर्य सत्य में निहित है । यह कहना उचित ही होगा कि गाँधी के लिए सौन्दर्य महत्वपूर्ण तो है पर उनके लिए किसी व्यक्ति की नैतिक सुन्दरता ही महत्वपूर्ण है । उनके अनुसार सच्चा सौन्दर्य आखिरकार सच्चे मन में निहित है । वे प्रकृति में विद्यमान पर्वत, जंगल नदी इत्यादि सब में सत्य और सौंदर्य निहित होने की बात स्वीकार करते थे । वे ग्रामीण जीवन को भी सुन्दर कहते थे क्योंकि उनके अनुसार यह जीवन अथक परिश्रम की परिणीति है और सुन्दरता ओर सुघडता प्रदर्शित करती है । उनके लिए परिश्रम अवकाश के पलों की तुलना में अधिक सार्थक और महान है ।

दोनों की कला संबंधी एक और अन्तर यह है कि रस्किन ने कला और वास्तुशिल्प का वृहत अध्ययन किया तथा कला सम्बन्धी महान कृतियों के माध्यम से कला के बारे में अपने विचार व्यक्त किए जब कि गाँधी ने कला संबंधी उनके अनुभवों और विचारों को जीवन के सरल और साधारण दृष्यों के अवलोकन के आधार पर व्यक्त किया ।

2.11 नारी संबंधी विचार: रस्किन और गाँधी

नर और नारी रस्किन की दृष्टि में एक दूसरे के पूरक हैं । उनका मानना था कि दोनों में निहित कुछ ऐसी क्षमताएँ हैं जो लिंग आधारित विशेषताएँ हैं । इस लिए पूर्णता के लिए दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । अत: पुरूष के पास जो नहीं है, उसे पुरुष को स्त्री से प्राप्त करना चाहिए और जो स्त्री के पास नही है वह पुरूष से ग्रहण करना चाहिए । दोनो को सन्तोष भी यह पूर्णता ही पहुँचाती है । नारी को घर के दायित्व के साथ समाज सेवा के लिए भी तत्पर रहने का रस्किन ने समर्थन किया है और इस क्षमता को विकसित करने के लिए अनुकूल शिक्षा व्यवस्था की सिफारिश की है । कुल मिलाकर रस्किन नारी के लिए गृहस्थ और घरेलु होने सम्बन्धी सद्गुणों से ओत-प्रोत होना जरूरी समझते थे । वे यह भी कहते हैं कि जो प्यार, दुलार और देखभाल नारी घर के सदस्यों की करती है, वह सब कुछ नारी द्वारा घर के बाहर समाज के सभी व्यक्तियों के प्रति भी प्रदर्शित किया जाना चाहिए । युद्ध और शान्ति के सन्दर्भ में भी महिलाओं की विशेष भूमिका के महत्व का रस्किन समर्थन करते हैं । वे कहते हैं कि स्त्रियों को अपनी प्यार और त्याग की ताकत से युद्ध जैसी गतिविधियाँ, जो क्रूरता और पीड़ा के जनक हैं, उन्हें विश्व-पटल से दूर करने का प्रयास करना चाहिए । रस्किन नर और नारी दोनों के लिए सादा जीवन का समर्थन करते थे । नारी को केवल शोषण की वस्तु बनाने या उन्हें गहनों और आभूषणों से सुसज्जित करने का वह समर्थन नहीं करते हैं और मानते हैं कि नारी-मुक्ति, पुरुष-मुक्ति से पृथक नहीं हो सकती और पुरुष भी नारी-मुक्ति से पृथक पूर्णता के ओर नहीं बढ़ सकते हैं ।

यह विचार कि प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा अनिवार्यत: बनी रहनी चाहिए, गाँधी के स्त्री-पुरुष संबंधों के संदर्भ मे मूल विचार दृष्टिगोचर होता है । वे स्त्री और पुरूष दोनों की समानता

का पक्षधर थे और सर्वागीन विकास के समान अवसर दोनों को प्रदान करने पर बल देते थे । गाँधी ने स्त्री और पुरूष को एक दूसरे के पूरक के रूप में स्वीकारा और दोनों को एक दूसरे से कंधे से कंधा मिलाकर अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना चाहिये । किन्तु साथ ही गाँधी इस विचार से भी सहमत थे कि नैसर्गिक रूप से दोनों की प्रकृति में भिन्नता है जिसके कारण पुरूष घर की आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा सुरक्षा प्रदान करने के लिए ज्यादा योग्य हैं तथा स्त्री बच्चों के लालन-पालन व गह कार्य में ज्यादा दक्ष है । इसलिए गाँधी दोनो के कार्य-सम्पादन में भी मूलभूत भेद करते है । अहिंसा, त्याग और सेवा भाव जैसे गुणों में तो गाँधी ने नारी को पुरूष से भी श्रेष्ठ मानकर अनुकरणीय बताया है ।

गाँधी ने नारी की स्वायत्तता पर भी बल दिया और समाज में नारी संबंधित कुरीतियों को तत्काल दूर करने की आवश्यकता जताई । रस्किन की तरह गाँधी भी पुरूष और स्त्री दोनों के लिए सादा जीवन का समर्थन करते हैं । वे भी नारी को केवल शोषण की वस्तु बनाने या उन्हें गहनों और आभूषणों से सुसज्जित करने का वह समर्थन नहीं करते हैं और मानते हैं कि नारी की सक्रिय भूमिका समाज और राष्ट्र के उन्नयन के लिए जरूरी है । इसीलिए सार्वजनिक और समुदायिक क्षेत्रों में योग्य नारी की सक्रिय सेवा का आग्रह भी गाँधी ने किया और बालकों और बालिकाओं के शिक्षा पर भी जोर दिया । गाँधी के नेतृत्व में चले स्वतंत्रता आन्दोलन ने नारी चेतना के एक नये युग का आरम्भ किया और नारी-प्रगति और सशक्तीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए । उनका मानना था कि नारी सशक्तीकरण के बिना और स्वतन्त्रता संग्राम में भारतीय नारी जाति को सम्मिलित किए बिना स्वाराज की प्राप्ति नहीं हो सकती हे । स्वतंत्रता आदोलन में नारी जाति को सम्मिलित करके गाँधी ने नारी शक्ति के अद्भुत स्त्रोतों का दोहन किया और उसे राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सकारात्मक शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया ।

2.12 ट्रस्टीशिप पर रस्किन और गाँधी के विचार

रस्किन का मत है कि सभी वाणिज्यिक क्रियाएँ समस्त वाणिज्यिक क्रियाएँ सामाजिक हितों से प्रेरित होनी चाहिए, न कि व्यक्तिगत हित या लाभ से । उनका कहना था कि सभी सामर्थ्यवान व्यक्ति, भले ही वे उद्योगपति हों या व्यवसायी, वे अपना सामर्थ्य अपने अधीन व्यक्तियों को पिता-रूपी संरक्षण प्रदान कर उनके हितों का संरक्षण एवं सम्वर्द्धन करें । रस्किन नहीं चाहते थे कि धनाढ्य और सामर्थ्यवान वर्ग के लोगों द्वारा गरीब, असहाय और निशक्त लोगों का किसी भी प्रकार से शोषण किया जाए, बल्कि उनकी राय में धनी और सामर्थ्यवान लोगों को गरीब और लाचार लोगों की मदद और मार्गदर्शन करना चाहिए । उनके विचार था कि सामर्थ्यवान लोगों को मानव कल्याण के लिए न्यासी बन कर कार्य करना चाहिए । ऐसे व्यक्ति अपने धन का इस प्रकार उपयोग करे कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व उससे लाभान्वित हो सके । रस्किन की संकल्पना के अनुसार न्यासी, वह व्यक्ति है जो मानवता की सेवा करने के लिए प्रतिबद्ध और समर्पित है । समाज में व्याप्त असमानता को पूर्णत: खत्म नही किया जा सकता, परन्तु रस्किन असमानता के कारण सामाजिक समरसता और सामंजस्य बिगड न जाए, इस के लिए न्यासितता (ट्रस्टीशिप) सिद्धान्त के क्रियान्वयन द्वारा इस असमानता की समस्या को जहाँ तक सम्भव हो दूर करना चाहते थे । इसी के साथ न्यासितता का सिद्धान्त सभी

व्यक्तियों को अपने 'अधिकार' और 'कर्तव्य' का बोध भी कराता है । रस्किन के विचार में कर्तव्य-बोध को प्राथमिकता दी गई है । वे कहते हैं कि व्यक्ति को अधिकार माँगने से पूर्व पवित्र, परिपूर्ण और शुद्ध होना चाहिए । उन का व्यावहारिक दृष्टिकोण भी इसी सिद्धान्त को आधार बनाता था, क्योंकि वे मानते थे कि पवित्र या शुद्ध जीवन समाज की आर्थिक बुराइयों को दूर कर सकता है ।

गाँधीजी कहते थे कि मनुष्यों को अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना चाहिए और सादा और सरल जीवन जीना चाहिए । उनके द्वारा प्रतिपादित अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों में मूल में यही विचार अन्तर्निहित है । गाँधीजी स्वामित्व की भावना को मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के लिए अवरोध और समाज में ऊँच-नीच शोषण एवं अन्य कई बुराइयों का कारण मानते थे । अंधाधुन्ध औद्योगीकरण का विरोध भी उपयुक्त कारणों के

आधार पर गाँधीजी ने किया । उन्होंने न्यासिता सिद्धान्त प्रतिपादित कर इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति की जो भी क्षमतायें हैं - आर्थिक, बौद्विक और शारीरिक, वह उन्हे उसके समाज के परोपकारी कार्य के लिए लगाये ।

2.13 कायिक श्रम संबंधी रस्किन और गाँधी के विचार

रस्किन शारीरिक श्रम को बहुत महत्व देते थे और श्रम में ईमानदारी, लगन और तन्मयता के गुणों का समावेश आवश्यक मानते थे । उन का मानना था कि ईश्वर ने हमें पृथ्वी पर वही कार्य करने के लिए भेजा है जिसे हम मन लगा कर पूरा कर सकें । इमें हमारी मौलिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने कें लिए शारीरिक श्रम करना जरूरी है और यह कार्य हमें पूर्ण कर्मठता से करना चाहिए । अन्य कार्य जो हम करें, उसे आनन्द उठाते हुए करें । शारीरिक श्रम व्यक्ति के आर्थिक विकास को बढावा देता है और मशीन उसे जनित, करती है । पूर्ण इच्छा और आनन्द से किया गया श्रम व्यक्ति और समाज दोनों के हित और आत्मिक विकास में सहायक होता है । उनका मत था कि प्रत्येक युवा को कोई न कोई शरीर आधारित व्यवसाय करने का हुनर आना चाहिए । इस तरह श्रम रस्किन के लिए एक दायित्व भी है जिस का मनुष्य को पूर्ण निष्ठा, कर्मठता और आनन्द के साथ निर्वाह करना चाहिए ।

गाँधीजी ने भी अपने सर्वोदय दर्शन में आर्थिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार ट्रस्टीशिप माना है । गाँधीजी व्यक्तिगत सम्पत्ति को शोषण का कारण मानते हैं । गाँधीजी ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में ट्रस्टीशिप का एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त दिया है । वे व्यक्तिगत सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व के बिना एक आदर्श समाज की स्थापना करने का प्रयास करते हैं । वे व्यक्तिगत सम्पत्ति को रखते हैं और उसकी बुराइयों को अहिंसा, सत्य और परोपकार के साधनों के माध्यम से दूर करना चाहते हैं । सर्वोदय समाज में सम्पत्ति को न्यास के रूप में समझा जाता है । गाँधीजी के अनुसार ट्रस्टीशिप का विचार उस चेतना पर आधारित है कि प्रत्येक सम्पत्तिवान व्यक्ति का यह समझना चाहिए कि उसके पास जो सम्पत्ति है वह उसने समाज से प्राप्त की है । सर्वोदय समाज में धनी एक न्यासी की तरह व्यवहार करेंगे । उसे अपने पास उपलब्ध सम्पत्ति से केवल उतना ही प्रयोग करना चाहिए जो उसे व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जरूरी है, अन्य सभी सम्पत्ति उसे समाज के हित साकार

करने में लगा देना चाहिए । गाँधीजी ने सम्पत्ति में केवल भौतिक सम्पत्ति ही नहीं बल्कि अ-भौतिक सम्पत्ति जैसे बौद्धिक क्षमता भी शामिल की है । ट्रस्टीशिप को अपनाते हुए सर्वोदय समाज में सम्पत्तिवान व्यक्ति भी स्वैच्छा से सरल और त्यागमय जीवन व्यापन करते है । ट्रस्टी के रूप में वे अपरिग्रह और समन्वय भावना अंगीकृत करते हैं । इस तरह सर्वोदय समाज अमीरों और गरबों की बीच विषमता से मुक्त है ।

2.14 युद्ध संबंधी दृष्टिकोण: रस्किन और गाँधी

रस्किन ने युद्ध और उसके आधुनिक विध्वंसकारी तकनीकों का कठोर शब्दों में निन्दा की है । 'अंटू दी लॉस्ट' में रस्किन ने युद्ध को प्रोत्साहित करने वाले लोगों की भी निन्दा की है । उनका मानना था कि सभी अनुचित युद्ध के पीछे स्वार्थी पूँजीपतियों का समर्थन होता है । उनका कहना था कि पूँजीपति युद्ध लड़ने के लिए पूँजी प्रदान करते हैं और अपना फायदा उठाने की योजना बनाते हैं । रस्किन ऐसी सरकारों का भी कठोर शब्दों में निन्दा करते हैं जो युद्ध के लिए पूँजीपतियों से आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं और बाद में उन्हें मूल पूँजी और उसके ब्याज को चुकाने के लिए निर्दोष जनता से मनमाने टैक्स वसूल करते हैं । तकनीकी ने जिस प्रकार विकास किया है उस पर टिप्पणी करते हुए रस्किन ने कहा कि विज्ञान ने विनाश के आधुनिक साधनों के माध्यम से अपनी प्रगति का परिचय दिया है । युद्ध के कारण जान और माल का होने वाले नुकसान से रस्किन बेहद चिन्तित थे ।

रस्किन ने बड़े राष्ट्रों की भी आलोचना की कि वे छोटे राष्ट्रों को आधुनिक युद्ध शस्त्र बेच कर युद्ध फैलाने के लिए जिम्मेदार हैं । इसलिए रस्किन युद्ध को सम्पूर्ण विश्व में प्रतिबन्धित किए जाने पर बल देते हैं और विद्यमान शस्त्रों को नष्ट करने की बात करते थे । उनका मानना था कि स्त्रियों को अपनी त्याग और प्यार की भावना से पुरूषों को युद्ध से प्रथक करने का कार्य करना चाहिए । इसलिए रस्किन ने युद्ध को समाप्त करने के लिए नारी-शक्ति के प्रयोग का प्रबल समर्थन किया है ।

गाँधीजी भी हिंसा के प्रबल विरोधी थे और विश्व शान्ति में विश्वास करते थे । वे अहिंसा को मानव जाति के लिए नैसर्गिक मानते थे और हिंसा को सत्य विरोधी मानते हुए इसे मानवीय और संस्थागत व्यवहार से दूर करना चाहते थे । सत्य और अहिंसा के अनुरूप आत्म सुधार को उन्होने सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुधारों का प्रारम्भिक चरण माना । सामाजिक स्तर पर गाँधीजी ने एक सुव्यवस्थित सामाजिक जीवन की कल्पना की जिसमें समानता, भाईचारा, सहनशीलता और न्याय जैसे मूल्यों को महत्व दिया । समाज मे व्यक्ति तथा समाज और सभी व्यक्तियों में पारस्परिक सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध के द्वारा वे शान्ति को स्थापित करने और बढाना चाहते थे । समाज को वे व्यक्ति का पूर्ण स्वरूप और इसे नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित मानते थे । व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज के बारे में विचार और कार्य करने पर गाँधी बल देते थे और शोषण और बल प्रयोग की मानसिकता का उन्होंने सशक्त विरोध किया । समाज में व्यक्तियों में जब कभी मतभेद उत्पन्न हो जाए तो उनका निराकरण अहिंसात्मक माध्यमों के द्वारा करने पर गाँधी ने प्रबल समर्थन किया ।

गाँधीजी ने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों को धर्म और नैतिकता पर आधारित करने पर बल दिया । वे चाहते थे कि राज्य का लक्ष्य सर्वोदय होना चाहिये । सर्वोदय समाज को ही गाँधीजी ने न्यायोचित, समानता युक्त और शोषणमुक्त व्यवस्था के रूप में स्वीकारा है जिसमें संघर्ष न्यूनतम हैं और जो भी संघर्ष विद्यमान हैं उन्हें सत्याग्रह जैसे शान्तिमय संघर्ष निवारण के तकनीकों से दूर करने का प्रयास किया जाता है ।

गाँधी का मत था कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व व्यवस्था इस प्रकार की हो कि सभी राष्ट्र एक-दूसरे के साथ मित्र भाव रखें । सभी राष्ट्रों का लक्ष्य यह हो कि वे अन्य राष्ट्रों का किसी प्रकार से शोषण न करें और सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिये सभी राष्ट्रों के साथ सहयोग करें । गाँधी द्वारा कल्पना की गई शान्ति व्यवस्था में राष्ट्रों को पारम्परिक सैना और अपने विवादों के निराकरण के लिए युद्ध का परित्याग करने की भी बात की गई है । आपसी मतभेद और विवादों को गाँधी ने अहिंसक तरीकों के माध्यम से निराकरण करने पर बल दिया है । ऐसी शान्तिमय व्यवस्था में घृणा और हिंसा का कोई स्थान नहीं है ।

2.15 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गाँधी और रस्किन विश्व के दो महान दार्शनिक हैं जिन्होंने अपने समकालीन आधुनिक समाज की कठोर आलोचना की है और वैकल्पिक स्वस्थ व्यवस्था के तौर पर नैतिकता, सादगी और परोपकार आधारित जीवन जीने की नसीहत प्रदान की है । गाँधी और रस्किन के द्वारा विद्यमान आधुनिक समाज की बुराइयों के विश्लेषण में बहुत सी समानतायें देखने को मिलती है और दोनों नैतिक आचरण को सर्वोच्च महत्व देते हैं । गाँधी और रस्किन मानवीय चरित्र का उन्नयन तो चाहते ही हैं, साथ में अनेक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार कर संरचनात्मक या व्यवस्थाओं को भी परिवर्तित करना चाहते हैं । ऐसा करके वे दानों समकालीन व्यवस्थाओं में व्याप्त शोषण, अन्याय और असमानता को दूर करने के विकल्प प्रस्तुत करते हैं ।

विद्यमान भारतीय परिस्थितियों ने गाँधी को रस्किन से प्राप्त ज्ञान को आम जनता तक पहुँचाने और क्रियान्विति करने का मौका प्रदान किया । इन अनुभवों ने एवं उन पर पडने वाले अन्य प्रभावों के कारण गाँधी ने अपने दर्शन और कार्य-क्षेत्र को रस्किन की तुलना में अधिक व्यापक बनाये ।

2.16 अभ्यास प्रश्न

1. रस्किन के जीवन और दर्शन पर प्रकाश डालिए ।
2. गाँधी और रस्किन के समकालीन समाज पर प्रकाश डालते हुए दोनों के द्वारा आधुनिक सभ्यता की आलोचना पर प्रकाश डालिए ।
3. गाँधी पर रस्किन के प्रभाव का वर्णन कीजिए ।
4. गाँधी और रस्किन के विचारों की तुलना कीजिए ।

2.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मैकलौघलिन, एलिजाबेथ टी., रस्किन एण्ड गाँधी, बकनेल यूनिवर्सिटी प्रेस, लेविसबर्ग, 1974
2. मेनन लक्ष्मी, रस्किन एण्ड गाँधी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, बनारस, 1965
3. बोस, एन. के, सेलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1972
4. अय्यर, राघवन एन., द मोरल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1973
5. गाँधी, एम. के., नॉन वायलेंस इन पीस एण्ड वार, अहमदाबाद: नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, 1949
6. गाँधी, एम. के., मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद,1960
7. पटेल एम.एस., दी एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद,1958

इकाई - 3

थोरो और गाँधी

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गाँधी पर थोरो का प्रभाव

3.3 हेनरी डेविड थोरो (1817-62)

3.4 मनुष्य जीवन के प्रति दृष्टिकोण: थोरो और गाँधी

3.5 सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति

3.6 शान्ति स्थापना के लिए अपरिहार्य मूल्य

3.7 संघर्ष-निवारण और शान्ति प्राप्ति के अहिंसक तकनीक

3.8 व्यक्ति और राज्य में अन्तर-संबंध

3.9 अन्तरात्मा की आवाज का अनुसरण

3.10 सादगी और सरल जीवन

3.11 अहिंसक विरोध: मन स्थिति एवं सक्रिय व्यवहार

3.12 सारांश

3.13 अभ्यास प्रश्न

3.14 संदर्भ ग्रंथ सूत्री

3.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप थोरो और गाँधी के विचारों को समझ सकेंगे । थोरो और गाँधी के समकालीन समाज के बारे में क्या विचार थे और उचित व्यवस्था कैसी होनी चाहिये, इनके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे । मनुष्य जीवन, शान्ति, व्यक्ति-राज्य संबंध और अहिंसक प्रतिरोध के बारे में दोनों के विचार और उनमें विद्यमान समानतायें और अन्तर को समझ सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी पर अनेक प्रभाव पड़े हैं जिन्हें दो वर्गो में सामान्यत: बाँटा जाता है और उनपर पूर्वी एवं पश्चिमी प्रभाव के रूप में अभिव्यक्त किए जाते हैं । गाँधी पर पड़े पश्चिमी प्रभावों में जिन महापुरूषों के प्रभावों का उल्लेख किया जाता है उनमें अमेरिका के हेनरी ड़ेविड़ थोरो का नाम भी सम्मिलित है । यों तो गाँधी पर थोरो का मुख्य प्रभाव उनके द्वारा लिखित एक्से ऑन सिविल डिसओबिडियन्स किताब के माध्यम से पड़ा जिसमें अन्यायपूर्ण और अनैतिक शासन के विरूद्ध क्यों और कैसे विरोध किया जाये जैसे विषय पर विचार व्यक्त किये गये हैं, परन्तु थोरो के इस लेखन के साथ उनके अन्य लेखन जैसे वालड़ेन में व्यक्त अन्य विषय

संबंधी विचारों ने भी गाँधी को प्रभावित किया है । नैतिक जीवन, सामाजिक समस्या, सादगी, प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन, शान्ति, इत्यादि विषय में गाँधी और थोरो के विचारों में बहुत समानतायें देखने को मिलते हैं । दोनों महान मानवतावादी थे जिन्होंने पीड़ित मानवता के प्रति अपनी संवेदना और प्रेम को अभिव्यक्त किया और शोषित और पददलित व्यक्तियों की पीड़ाओं को कम करने की दिशा में सक्रिय विरोध करने का दर्शन दिया । उनके दर्शन और कार्यो ने व्यक्तिगत और सामाजिक बंधनों एवं क्षेत्रीय परिधि से परे सम्पूर्ण विश्व को लाभान्वित किया है । दोनो के लिए शान्ति शैथिल्य की स्थिर परिस्थिति नहीं है बल्कि यह वह प्रक्रिया है जिसमें सक्रिय अहिंसा और सत्य पर दृढता के साथ संघर्ष की परिस्थितियों के निराकरण का मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में उन्नति की ओर अग्रसर होता है । दोनों मनुष्य की असीम क्षमताओं में विश्वास करते हैं और उसको आत्मिक रूप से जागृत कर आत्मानुशासित जीवन व्यापन की दिशा में बढ़ाना चाहते हैं ताकि प्रत्येक बाहरी नियन्त्रण की आवश्यक्ता को खत्म किया जा सके । सत्य के मार्ग पर प्रतिबद्ध रहना, अत्याचार एवं शोषण का सक्रिय विरोध करना, अहिंसा की प्रासंगिकता, अपरिहार्य शासन को एक ऐसे नैतिक जिम्मेदारी के रूप में प्रतिपादित करना जिसका ध्येय सर्वजन हिताय हो, ये सब गाँधी और थोरो के विचारों में समानता के बिन्दु हैं । अन्तरात्मा की आवाज के आधार पर अनुचित का विरोध करना भी दोनो महापुरूषों में समानता का बिन्दु है । निश्चित ही इन सभी विषयों पर अकेले थोरो ही नहीं थे जिन्होंने गाँधी की सोच और आचरण को प्रभावित किया । गाँधी ने अच्छी बातें यथा संभव हर स्रोत से ग्रहण करने का प्रयास किया और अपने सक्रिय राजनीतिक-सामाजिक जीवन में इन विचारों को आवश्यकतानुसार रूपान्तरण और विस्तार कर सम्पूर्ण देश और मानवता के लिए उपयोगी बनाने का प्रयास किया ।

3.2 गाँधी पर थोरो का प्रभाव

पाश्चात्य विचारकों में हेनरी डेविड़ थोरो, रस्किन और टॉलस्टॉय ने गाँधी को सबसे अधिक प्रभावित किया । राजनीतिक चिन्तन में थोरो का प्रत्यक्ष प्रभाव गाँधीजी के सविनय अवज्ञा और करबन्दी आन्दोलनों पर पड़ा । दक्षिण अफ्रिका में गाँधीजी ने जो सत्याग्रह चलाया, उसकी तकनीकि व कार्याविधि पर थोरो के निबन्ध एस्से ऑन सिविल डिसओबिडियन्स का प्रभाव पडा । वे थोरो के इस विचार से पूर्णत: सहमत थे कि जन हित करने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के साथ अधिकतम सहयोग किया जाना चाहिए और अन्यायपूर्ण और अनुचित राह पर चलने वाली सरकार का तत्काल सक्रिय विरोध किया जाना चाहिए ।

दक्षिण अफ्रिका में गाँधी जब वहाँ प्रचलित रंगभेद आधारित सरकारी नीतियों और बुराइयों के विरूद्ध अहिंसक आन्दोलन के बारे में चिन्तन कर रहे थे, तब थोरो के यह संदेश - 'जो है, व्यक्ति को उसका विरोध करना चाहिए' से वे काफी प्रभावित हुए । थोरो ने कहा था कि अनैतिक सरकार का विरोध उसके साथ असहयोग करके किया जा सकता है । गाँधी ने थोरो के उक्त संदेशों को अपने सत्याग्रह दर्शन का अभिन्न अंग बना लिया । जब गाँधी ने दक्षिण अफ्रिका में अहिंसक आन्दोलन प्रारंभ किया था तब उन्होंने कहा था कि थोरो द्वारा दिया गया विरोध का संदेश अफ्रिका और भारत में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध अपनाया जा सकता है ।

गाँधी ने थोरो द्वारा लिखी गई किताब वालडेन को पहली बार 1906 में तब पढ़ा जब वे दक्षिण अफ्रिका में भारतीयों के अधिकारों के लिए संघर्षरत थे । ट्रान्सवाल में भारतीय नागरिकों के किए जा रहे भेदभाव के खिलाफ गाँधी ने अहिंसक प्रतिरोध किया और इसके लिए उन्हें दक्षिण अफ्रिका की जेल में बन्द कर दिया था । थोरो की एस्से ऑन सिविल डिसओबाडियन्स का अध्ययन गाँधी ने दक्षिण अफ्रिका की में किया । थोरो द्वारा उक्त किताब में व्यक्त विचार से गाँधी बहुत प्रभावित हुए । थोरो द्वारा इसमें प्रस्तुत, अन्यायपूर्ण और अनुचित सरकार का विरोध करने संबंधी तर्क का उन्होंने सार लिखा और अपने अखबार इंडियन ओपीनियन में प्रकाशित किया । थोरो का उक्त तर्क गाँधी के विचार अनुसार "तीक्ष्ण तर्क पर आधारित और अकाट्य" और थोरो को उन्होंने अमेरिका के महानतम और सर्वाधिक नैतिक व्यक्तियों में से एक बताया । दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह के बहुत

सालों बाद और भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान उन्होंने एक पत्रकार वेब मिल्लर को कहा था कि थोरो के विचारों से वे काफी प्रभावित हुए थे और उनके कुछ विचारों को उन्होंने ग्रहण भी किए हैं और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी मदद् करने वाले मित्रों को थोरो की इस किताब को पढने की अनुशंसा भी की है । 1907 में दक्षिण अफ्रिका में अपने सत्याग्रह आन्दोलन के समय पर उन्होने कहा कि थोरो के विचार अफ्रिका और भारत में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध किए जा रहे प्रतिरोध में क्रियान्वित किए जा सकते हैं । एस्से ऑन सिविल डिसओबाडियन्स में व्यक्त यह विचार कि 'जो गलत है उसका विरोध किया जाना चाहिए' और 'सरकार की अनैतिक कार्यो का विरोध नागरिक उसके साथ सहयोग से इनकार करके प्रदर्शित कर सकती है को गाँधी ने अपने अनेक सत्याग्रही आन्दोलन का प्रेरणादायी सिद्धान्त बनाया ।

थोरो का मानवतावादी विचार, नैतिक सिद्धान्तो के प्रति जीवन में प्रतिबद्धता, सादा और सरल जीवन, अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार आचरण करना, कथनी और करनी में अन्तर मिटाने पर बल, प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यापन करने का उपदेश, इत्यादि ऐसे अनेक विचार हैं जो थोरो को पढ़ते वक्त गाँधी के ध्यान में आए होंगे भले ही प्रत्यक्ष शब्दों में गाँधी ने ऐसा व्यक्त नहीं किया हो । निश्चित ही थोरो के उक्त विचारों ने गाँधी को संबल देने का काम जरूर किया होगा ।

3.3 हेनरी डेविड थोरो (1817-62)

हेनरी डेविड थोरो ने अमरीकी जनता को, और उनके माध्यम से विश्व को, शासन के विरूद्ध अहिंसक विरोध के तरीके का परिचय कराया है । थोरो ने 150 वर्ष पूर्व शासन के विरूद्ध अहिंसक विरोध के जो मानक स्थापित किए थे, सत्य के लिए लडने का जो जज्बा दिखाया, उसी पर चलते हुए अमरीकीय नागरिकों ने संघीय सरकार के अन्यायपूर्ण नीतियों का विरोध समय-समय पर प्रदर्शित किया है । 1850 का दशक वह समय था जब संयुक्त राज्य अमरीका ने मेक्सिको में सशस्त्र हस्तक्षेप साम्राज्यवादी उद्देश्य से प्रारंभ किया । थोरो ने संयुक्त राज्य के इस कदम का पुरजोर विरोध किया और उन्होंने विरोध दर्ज कराते हुए पोल टैक्स देने से इनकार कर दिया । उन्होंने अपने लेखन और कार्यो से अमरीकियों को अन्यायपूर्ण व्यवस्था का विरोध करने के लिए क्रांतिकारियों की तरह प्रेरित किया ।

हेनरी डेविड थोरो का जन्म संयुक्त राज्य अमरीका के मैसाचुसेट्स प्रांत के कोनकोर्ड नामक कस्बे में वर्ष 1817 में हुआ । उनके पिता का नाम जॉन थोरो और माँ का नाम सिन्थिया डनबार था । थोरो ने अपने आसपास के जीवन से बहुत कुछ सीखा । वर्ष 1833 से लेकर 1837 तक थोरो ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन किया । पर्यावरण से निकटता के चलते थोरो ने दो वर्ष तक मैसाचुसेट्स स्थित एक विशाल झील-वाल्डेन झील, के किनारे निवास किया । प्रकृति, सादगी और सरलता और स्वतंत्रता को वे बेहद चाहते थे और हर कीमत पर इनकी रक्षा करने के लिए वे तैयार थे।

हार्वर्ड से स्नातक करने के बाद थोरो अपने परिवार के साथ रहने के लिए कोनकोर्ड चले आए और वहां के एक स्कूल में पढाने लगे । यही वह समय था जब वह महान दार्शनिक इमरसन और अनुभवातीत सम्प्रदाय (एक दार्शनिक आदोलन जो 1830 और 40 के दशक में अमरीका में फैला) के सम्पर्क में आए और उनके निकट सहयोगी बन गए तथा द डायल मैगजीन में लिखने लगे । ऐमर्सन ने थोरो को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया और अनेक लेखकों और समकालीन चिन्तकों से मुलाकात करवाया । वाल्डेन झील के किनारे दो वर्ष व्यतीत करने के बाद थोरो कोनकोर्ड में रहकर लेखन कार्य करने लगे । इस बीच अवसर मिलने पर उन्होंने मैन, केप कोड और न्यूयार्क राज्यों की यात्रा की । यही नहीं, 1860 के दशक के प्रारंभ में उन्होंने महान झीलों और मिसीसिपी नदी का भी भ्रमण किया । वर्ष 1662 में क्षयरोग के कारण उनकी मृत्यु हुई ।

हेनरी डेविड थोरो के विचार आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी वह 19 दी और 20 वीं सदी में थी । नैतिकता के विरूद्ध, दमनात्मक और युद्धरत राज्य के विरुद्ध अहिंसक तरीके से संघर्ष करने के लिए थोरो द्वारा दिए गए विचार आज भी नागरिकों को नैतिक संघर्ष की प्रेरणा उपलब्ध कराती है । करीब दो सदी से उनका यह दर्शन टालस्टॉय से लेकर गाँधी तक और मार्टिन लूथर किंग से लेकर मिश्र, ट्युनीशिया, इत्यादि जगहों पर लोकतंत्र के समर्थन मे किए गए आदोलन में भी थोरो द्वारा दी गई प्रेरणा की झलक मिलती है ।

सिविल डिसअबिडियन्स नामक अपने निबन्ध में थोरो ऐसे राज्य को समर्थन नहीं देने का आह्वान करते हैं जो नीति और इनसानियत के विरूद्ध योजना में संलग्न हो । थोरो राज्य-सत्ता के घोर विरोधी थे और आदर्श के तौर पर उस सरकार या राज्य को श्रेष्ठ मानते थे जो कम से कम मात्रा में शासन करता है । गरीब, शोषित और असहाय जनता के कल्याण के लिए थोरो सक्रिय प्रयास और कर्म पर बल देते हैं । उन्होंने ऐसे करों को देने के विरुद्ध सख्त कदम उठाने की वकालत की है जो कर एक राज्य को हिंसा करनें और निर्दोष लोगों का लहू बहाने में सहायक होते हैं । थोरो एक राजनीतिज्ञ या एक वकील के तौर पर नहीं बोले, बल्कि उन्होंने अपनी बात एक नैतिकतावादी के तौर पर कही । थोरो का यह भी मत था कि समाज में व्याप्त बुराइयों के लिये, जैसे उनके समकालीन अमेरिकी समाज में विद्यमान दासप्रथा, के लिए स्वयं लोग जिम्मेदार हैं क्योंकि वे बुराइयों को बिना विरोध किए इन्हें किस्मत की बात मान कर सहने लगते हैं । अत: बुरा करने वाले लोग थोरो के अनुसार केवल अपने व्यवहार के कारण

सफल नहीं हो रहे हैं बल्कि वे उन लोगों के कारण सफल हो रहे हैं जिन्होंने यह मान लिया है कि इस बुराई को समाप्त नहीं किया जा सकता ।

सिविल *डिसअबिडियन्स* नामक अपने निबन्ध में थोरो ने निष्कियता की बड़ी आलोचना की है । वे उन निक्रिय नागरिकों को खुली चुनौती देते हैं जो यह सोचते हैं कि महज अच्छे और बेहतर समाज की कामना भर कर लेने से हम इस प्रकार के समाज की रचना करने में कामयाब हो पाएंगे । जेल में रात बिताने के बाद अपने पत्र में थोरो ने लिखा, 'सड़न भरी जिंदगी जीने से बेहतर मौत को गले लगा लेना ठीक है । सिविल *डिसओबिडियन्स* में व्यक्त विचारों से थोरो का यह अभिमत स्पष्ट हो जाता है की लालच की राजनीति समाज के बुनियादी ढांचे को ही नष्ट कर देता है । यह निबन्ध न केवल शासन की प्रकृति, समुचय जीवन, व्यक्तिगत अधिकार को शामिल करता है बल्कि नैतिकता, सरल और संयमित जीवन, भ्रातृत्व भावना, स्वावलंबन, निडरता, त्याग के लिए और पीड़ा सहने के लिए तैयार रहने आदि सदगुण को आत्मसात करने के उपदेशों का झलक देखने को मिलती है । यह वास्तव में एक असाधारण समृद्ध दस्तावेज है जो शासन के बारे में जितने जवाब देता है उससे ज्यादा सवाल पैदा करता है और मानवीय आचरण मे जो पतन आया है उसके प्रति सजक होकर मूल्यवान जीवन जीने की प्ररना करता है । 24 या 25 जूलाई 1 अ8 को थोरो और स्थानीय कलेक्टर के बीच 6 वर्ष से बकाया चल रहे पॉल टेक्स को लेकर विवाद हुआ । थोरो ने उक्त कर देने से मना कर दिया जिसके लिए उन्हें जेल भेज दिया गया । थोरो ने उक्त कर देने से मना इस लिए किया क्योंकि वे अमेरिका की मेक्सिको युद्ध और दासता संबंधी नीति का विरोध करते थे । जेल में एक रात थोरो को रहना पड़ा और उनके दू के रिश्ते में लगने वाली मास। ने टेक्स भर दिया (थोरो के मना करने पर भी) और थोरो को सुबह रिहा कर दिया गया । थोरो ने जेल जाने का विरोध नहीं किया बल्कि वहाँ से पॉल टेक्स का भुगतान कर रिहा होने का विरोध किया । उनका मानना था कि उन्हें जो सरकार का विरोध करने पर जेल में बन्द किये जाने का दण्ड मिला है वह उतना बुरा नहीं है जितना कि सरकार की उन नीतियों, जिनसे वे तहे दिल से असहमत हों, के प्रति समर्पण भाव दिखा कर लज्जा महसूस किया जाए । सरकार की नीतियों का अंधाधुन्ध अनुकरण करने वाले लोगों को थोरो 'कैद में गिरफ्त' समान मानते हैं। 1948 में थोरो ने सरकार के सबंध में व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्य विषय पर कोनकोर्ड लयसियम में व्याख्यान दिया और इसमें उन्होंने उनके द्वारा टेक्स न देने के निर्णय के बारे में अपना तर्क प्रस्तुत किया। इस व्याख्यान की पुन:समीक्षा करके थोरो ने रेसिसटेन्स सिविल गवर्णमेंट (Resisitance to Civil Government) लेख लिखा जिसे सविल डिसओबिडियन्स के नाम से जाना जाता है । 1849 में इसका प्रकाशन किया गया। 1835 में थोरो क्षयरोग से ग्रसित हुए और निरन्तर इससे परेशान रहे। 1859 में उन्हें ब्रोंकाइटिस भी हुआ और कुछ ही दिनों में शय्याग्रस्त हो गये । तीन साल बाद, मात्र 44 वर्ष की आयु में थोरो का निधन 6 मई 1662 को हो गया । हेनरी डेविड थोरो ने एक ओर अहिंसक संघर्ष के प्रति स्वयं को समर्पित किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने लेखन के जरिए आमजन का परिचय अहिंसा की शक्ति से भी करवाया।

3.4 मनुष्य जीवन के प्रति दृष्टिकोण: थोरो और गाँधी

थोरो अमरीकी राजनीतिक इतिहास के उन प्रमुख प्रस्तावकों में से एक थे जिन्होने उन आवश्यक आधारों को निरुपित करने का कार्य किया जिन पर राज्य या सरकार का विरोध किया जा सकता था । इमर्सन, कोलेरिज आदि की परम्परा को आगे बढाते हुए थोरियो ने अंग्रेजी और जर्मन विचारकों के आदर्शों को अमरीकी व्यक्तिवाद के साथ संश्लेषित करने का प्रयास किया । वह आत्म-ज्ञान, आत्म-निर्धारण आदि मूल्यों के प्रबल समर्थक थे । उन्होंने अपने हृदय के करीब इन मूल्यों का स्वतंत्रतापूर्वक अनुसरण किया । उन्होंने 1849 में निबंध आन द ड्यूटी आफ सिविल डिसओबेडियन्स लिखा जो प्रमुखता से इन मूल्यों को बढावा देने का कार्य करता है।

मनुष्य का दैवत्व ही मानव अस्तित्व का सार है । थोरो ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसके महत्व को समझा और उसके द्वारा विदित किए गए मूल्यों के अनुसार ही जीवन जीने का आग्रह किया । सभी व्यक्ति, जैसा उसने जोर दिया, पहले पहल इस नैतिक विचार से बाध्य हैं कि वे अधिकारों के कर्तव्यनिष्ठ विचार के अनुसार कार्य करें । इस प्रकार थोरो का दर्षन मनुष्य की आतरिक क्षमता में गहरा विश्वास प्रकट करता है जिससे आध्यात्मिकता का उत्तरोतर विकास हो सके। मनुष्य की समझ और बुद्धि तथा न्याय के नैतिक गुण में उचित तालमेल को स्वीकार करते हुए थोरो ने विश्वास प्रकट किया कि किसी व्यक्ति द्वारा पूर्ण समझ के साथ लिया गया निर्णय किसी राजनीतिक सत्ता या बहुमत द्वारा लिए गए निर्णय से किसी भी प्रकार से कमतर नहीं होता है, लिहाजा यह जरुरी नहीं है कि अधिकारों के जितना सम्मान कानून के लिए भी हो। किसी व्यक्ति की समझ को नकारना या इसे किसी अन्य व्यक्ति, व्यक्तियों के निकाय या संस्थाओं, मसलन सरकार और राज्य,के सुपुर्द कर देने का विचार थोरो को स्वीकार्य नहीं था । वह चाहते थे। कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अन्तर चेतना की आवाज को जाने तथा इस तथ्य को नकारते हुए कि अन्य इस प्रकार का आचरण कर रहे हैं या नहीं, इसी भावना के अनुसार कार्य करे।

व्यक्ति के आंतरिक दैवत्व के बावजूद थोरो ने इस संभावना को स्वीकारा कि मनुष्य अपने आदर्श व्यवहार से दूर जा रहा है। प्रत्येक मनुष्य, उसके अनुसार, यह अधिकार रखता है कि वह अपनी जिंदगी अपनी इच्छानुसार जी सके । उसने स्वीकार किया कि मनुष्य की आदिम एवं पशुवत प्रवृत्ति उसे पशुओं को मारने और खाने के लिए विवश करती है, हालांकि, इसके साथ ही उसने स्वीकारा कि जो मनुष्य इस प्रवृत्ति पर काबू कर लेता है, वह उन लोगों से श्रेष्ठ है जो ऐसा नहीं कर गाते । थोरो के अनुसार एक सादा और सरल जीवन जीना जो भोजन, कपड़े, आवास और ईधन की जरुरतों को संतुष्ट कर सके, न केवल आवश्यक है बल्कि आसान भी है। इन जरुरतों के आगे,जैसा उसने कहा, व्यक्ति को आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी कार्य करना चाहिए।

वह आधुनिक सभ्यता से जुड़ी भ्रांतिजनक शक्तियों और अमानुशिक प्रवृत्तियों के प्रभाव के प्रति आलोचनात्मक था। उसके अनुसार आधुनिक सभ्यता नैतिक जीवन की विरोधी है। यह उनकी इस स्वीकार्यता में भी प्रकट होता है जिसमें वह कहते हैं..... सभ्यता को हममें से

बेहतर व्यक्तियों का निर्माण करना। चाहिए लेकिन वह कामयाब लोगों की दास बनती जा रही है और गरीबों की दुर्दशा कर रही है..... । उन्होंने कहा कि "यही सोना, तम्बाकू शराब की कोई कमी नहीं है लेकिन उच्च और ईमानदार उद्देश्यों की कमी है।" इस प्रकार व्यक्ति आधुनिक सभ्यता द्वारा प्रदर्षित प्रचुर वस्तुओं से भ्रमित और चकित है और भौतिकतावाद में पूरी तरह से डूबा हुआ है तथा थेरो के अनुसार अपने लिए पतन का सामान तैयार कर रहा है।

थोरो के अनुसार संतुष्टि को आधिपत्य में नहीं खोजा जा सकता,संपत्ति कभी सच्ची संतुष्टि नहीं ला सकती । सरल एवं सादा जीवनशैली का समर्थन करते हुए उसने कहा कि, "कभी अनावश्यक वस्तुओं का भविष्य के लिए संग्रह मत करो", "हमारे जीवन को सरल बनाने की जरुरत है" । थोरो ने इस विचार का खुले दिल से समर्थन किया कि सत्ता, प्रतिष्ठा और इन जैसी अन्य चीजों को पाने के लिए अधिकांश मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले प्रयत्न कभी भी प्रसन्नता का सार्थक उत्तर नहीं हो सकते हैं । सादा और सरल जीवन के आध्यात्मिक लाभों का विवेचन करते हुए उन्होंने हमे जीवन के नकारात्मक पहलुओं को दरकिनार करने का सुझाव देते हुए हमारी आखों के समक्ष क्या सही है विशेषकर प्रकृति के बारे में, पर विशेष ध्यान देने का आग्रह किया । वह इस विचार के समर्थक थे कि प्रकृति और मनुष्य के मध्य कोई द्विभाजन नहीं है।

गांधी का दर्शन समग्रता की दृष्टि की ओर इंगित करता है । इसमें व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व एक वृहत इकाई के रूप में समझे गये हैं और इनके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पक्षों को एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित माना गया है। गाँधी के दर्शन एवं कार्यो के पीछे उनकी मानव अस्तित्व एवं उसकी प्रकृति संबंधी गहरी समझ विद्यमान है । अपने कई पूर्ववर्तियों के समान गाँधी मानते थे कि मनुष्य की दो विरासतें हैं - एक जीव वैज्ञानिक और दूसरा सामाजिक आध्यात्मिक । सरल शब्दों में कहें तो गाँधी मानते थे कि मनुष्य जानवरों का विकसित स्वरूप होने के साथ-साथ उसमे सामाजिक और दैवीय गुण विद्यमान है । गाँधीजी के लिए आध्यात्मिकता की प्राथमिकता थी, अत: उनका मानना था कि मनुष्य जीवन का शारीरिक और सामाजिक पक्ष आध्यात्मिकता या नैतिकता के अधीन होने चाहिए । गाँधी ने स्वीकार किया कि मनुष्य जानवर का ही विकसित स्वरूप है, पर वे इस बात से सहमत नहीं थे कि मनुष्य मात्र विकसित जानवर है । उनका विचार था कि मनुष्य जानवरों से भिन्न है क्योंकि उसके पास आत्मिक शक्ति और विकसित बौद्धिक कौशल है जो उसे उचित-अनुचित में भेद करने और सामाजिक प्राणी बन कर जीने की सीख प्रदान करते हैं । इसी आत्मिक शक्ति को गाँधी परम दैवीय शक्ति मानते हैं जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थित है एवं जो सभी वस्तुओं और जीवों के अस्तित्व का कारण है।

ईश्वर के प्रति गाँधीजी की गहरी आस्था ने मानव जीवन के प्रति उनके विचारों को बहुत प्रभावित किया । दैवीयता और आत्मा की श्रेष्ठता पर विश्वास के कारण ही उनके मानव एवं मानव जीवन के बारे में विचारों को आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त हुआ । चूंकि गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य का देवत्व ही उसे अच्छे प्राणियों से अलग करता. है अत: वे इस बात पर हमेशा

बल देते थे मनुष्य अपने देवत्व को समझने का प्रयास करे । गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य में दैवीयता उसकी आत्मा के रूप में निवास करती है। वे इस बात पर जोर देते थे कि मनुष्य अपने आत्मिक स्वरूप को पहचाने एवं उसी के अनुसार अपने कार्यो एवं विचारों का निर्धारण करें। इस प्रकार गाँधीजी का मानना था कि मानव जीवन का लक्ष्य नैतिक गुण जैसे सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग आदि का विकास करें। गाँधीजी चाहते थे कि मनुष्य स्वयं की शक्तियों को पहचान कर आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्रता का अनुभव करें। बाह्य स्वतंत्रता एवं आतरिक स्वतंत्रता के अंतर को स्पष्ट करते हुए गाँधीजी का विचार था कि वास्तविक स्वतंत्रता वह स्वतंत्रता है जिसमें मनुष्य स्वयं पर अपना शासन करे । उन्होंने इसे"स्वराज" कहा। उनका मानना था कि इस प्रकार की स्वतंत्रता किसी बाह्य माध्यम या परिस्थिति से प्राप्त नहीं की जा सकती। इसके लिये मनुष्य को अपने भीतर ईश्वरीय अस्तित्व को पहचानना होगा और प्रार्थना एवं नैतिक गुणों के विकास के द्वारा इस स्वतंत्रता का अनुभव करना होगा । गाँधी चाहते थे कि भौतिक जगत और समाज का हिस्सा बनते हुए व्यक्ति अपना आध्यात्मिक विकास का प्रयास करे। गाँधी मानते थे कि ऐसा सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है यदि मनुष्य अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखना सीख लें । इस नियंत्रण का प्रभाव उनके अनुसार यह होगा कि मनुष्य भौतिक वस्तुओं के आकर्षण में बंध कर आध्यात्मिक के मार्ग से प्रथक नहीं होगा । अत: गाँधी मानते थे कि सरल और संयमित जीवन भी मनुष्य होने का महत्वपूर्ण लक्षण है । गाँधीजी पूर्व और पश्चिमी दोनों समाजों में फैलती हुई बुराईयों से काफी विचलित थे । उनका विश्लेषण था कि जब तक ये दोनों समाज कुछ निश्चित नैतिक सिद्धान्तो के अनुरूप नहीं ढल पाते हैं तब तक वास्तविक विकास और मानव की प्रसन्नता का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते । गाँधीजी चाहते थे कि लोग अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार व्यवहार करें।

3.5 सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति

प्रागनुभविकवाद (Transcendentalism), व्यक्तिवाद और आदर्शवाद द्वारा प्रतिपादित मूल्यों को समन्वित करते हुए थोरो की शान्ति संबंधी समझ आत्म-समझ, आत्म-ज्ञान और आत्म-नियत्ववाद जैसे मूल्यों से प्रभावित है । इससे बेहतर शान्ति की अभिव्यक्ति क्या हो सकती है। जहाँ थोरो वाल्डन के जंगल में एकान्त में रहते हुए मानव अस्तित्व का सार तत्व और आध्यात्मिक विकास पर विचार मंथन कर रहे हों, आधुनिक औद्योगिक समाज की भौतिक और उपभोगतावादी प्रवृत्तियों, विलासिता और आडम्बर का परित्याग कर रहे हों, शारीरिक श्रम करते हुए अपनी मौलिक आवश्यकताओं को पूरा कर रहे हों और ऐसा करते हुए आत्म-सन्तुष्ट हों और ऐसा जीवन व्यापन कर रहे थोरो से जब उनके अन्तिम समय में किसी के द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या वे ईश्वर के साथ शान्ति की अनुभूति कर रहें है तो यह जवाब देना कि उन्हें ऐसा कोई दृष्टान्त याद नहीं है जब उन्होंने ईश्वर के साथ विरोधाभास की अनुभूति की हो?

शान्ति के बारे में थोरो के विचार उनके मानव अस्तित्व से जुडे मूल तत्व या मूल्यों के बारे में विचार से प्रभावित है । इन विचारों का आध्यात्मिक और इहलौकिक संदर्भ हैं । सभी

जीवों की ईश्वर और प्रकृति के साथ एकता संबंधी विश्वास ने थोरो को न केवल सभी मनुष्यों की, अपितु सभी जीवों की पवित्रता पर बल देने के लिए प्रभावित किया । थोरो के लिए शान्ति का संबंध व्यक्ति का उसके अन्त: स्तर पर, उसके और प्रकृति के मध्य, और अन्तरवैयक्तिक स्तर पर सौहार्दपूर्ण सहअस्तित्व है । थोरो का यह संदेश किसी विशेष व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और समयकाल का परिधी में बन्धा हुआ नहीं है, यह चिरकालिक और वैश्विक महत्व रखता है।

सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गाँधीजी ने कुछ निश्चित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कार्यक्रमों की परिकल्पना की और एक स्वतंत्रता सैनानी, राजनेता, समाज सुधारक और जन नेता के रूप में उन्हें व्यवहारिक स्वरूप दिया । उन्होंने आत्म सुधार को सामाजिक,राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुधारों का प्रारम्भिक चरण माना।

सामाजिक स्तर पर गाँधीजी ने एक सुव्यवस्थित सामाजिक जीवन की कल्पना की जिसमें उन्होंने समानता,भाईचारा,सहनशीलता और न्याय जैसे मूल्यों को महत्व दिया। अपने'समुद्रीय तरंग' सिद्धान्त द्वारा व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के आधार पर उन्होंने ऐसा समाज स्थापित करना चाहा जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों स्वयं और अपने पारस्परिक सम्बन्धों के संदर्भ में शांतिपूर्ण ढंग से रह सके। उनके अनुसार समाज मनुष्य का पूर्ण स्वरूप है जो नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इस समाज में शोषण और बल प्रयोग की मानसिकता नहीं होनी चाहिए समाज सभी लोगों के कल्याण और उन्नति के लिए प्रतिबद्ध होता है। ऐसे समाज में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज के बारे में विचारपूर्ण कार्य करता है । धनी व्यक्ति स्वयं को धन का स्वामी ने मानकर संरक्षक मानता है एवं अपने संसाधनों का उपयोग सभी की भलाई के लिये करता है । उसके सादगीपूर्ण और नैतिक जीवन में भौतिकवाद का त्याग स्पष्ट से परिलक्षित होता है । समेकित विकास का मार्ग अपनाकर लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। ऐसे समाज में उत्पादन आवश्यकताओं के अनुरूप होता है और उसमें स्वदेशी, खादी और लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादन जैसे सोच सम्मिलित होते हैं। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र एक दूसरे के पूरक होते हैं और अन्त में जब कभी मतभेद उत्पन्न होते हैं तो उनका निराकरण अहिंसात्मक माध्यमों के द्वारा किया जाता है ।

राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में राजनीति की क्षेत्र और प्रकृति के पारंपरिक धारणाओं को गाँधीजी के विचारों ने चुनौती दी । उन्होंने राजनीतिक शक्ति के वृहद स्वरूप को ने केवल विचार बल्कि निजी और सार्वजनिक धारणाओं के बीच बनाये गये भेदभावों को भी जमकर विरोध किया । इसके साथ-साथ धार्मिक मूल्यों और राजनैतिक में विरोधाभास नियमों नैतिक सिद्धान्तों तथा राजनैतिक कार्यसाधकता में पृथक्करण का भी विरोध किया।

वे इस बात को अच्छी तरह समझ चुके थे कि आधुनिक समय की राजनीति व्यक्तिगत जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित कर चुकी थी, यह व्यक्ति के लिये अति आवश्यक हो चुका था फिर भी उनका सोचना था कि धर्म से वंचित राजनीति ने केवल मृत शरीर के समान अनुपयोगी था बल्कि मानव के अस्तित्व के लिये भी घातक था । इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने राजनीति में धर्म पर बल दिया अथवा राजनीति के आध्यात्मीकरण पर बल दिया। गाँधीजी के लिये धर्म और राजनीति एक-दूसरे के पूरक थे । धर्म और राजनीति के बीच इस

सामंजस्य का अर्थ राजनीति, धर्म और नैतिकता पर आधारित होना चाहिये और इसका अर्थ है कि राजनीति धर्म के सिद्धान्तों द्वारा चलायमान होनी चाहिये । इसका अर्थ यह भी है कि राजनीति को मानव अस्तित्व के लिये मूलभूत मूल्यों एवं सिद्धान्तों को परिलक्षित करना चाहिये । उन्होंने इस बात पर बल दिया कि राज्य का लक्ष्य सर्वोदय होना चाहिये ओर सर्वोदय का अर्थ है राज्य के नागरिकों का विकास, कल्याण और सुधार।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गाँधी का मत था कि विश्व व्यवस्था इस प्रकार होनी कि सभी राष्ट्र एक-दूसरे से भयभीत ना होकर सह-मित्रभाव से रहें । सभी राष्ट्रों का लक्ष्य होना चाहिए कि प्रकार का शोषण न हो और मानवता के कल्याण के लिये सहयोग और मैत्रीपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना विकसित हो। कोई राष्ट्र पारम्परिक सैना न रखे, सभी देश विवादों के निवारण के लिये युद्ध और अन्य हिंसक माध्यमों को छोड़कर अहिंसा द्वारा समस्याओं का निराकरण करें ।

3.6 शान्ति स्थापना के लिए अपरिहार्य मूल्य

शान्ति के बारे में थोरो के विचार उनके मानव अस्तित्व से जुडे मूल तत्व या मूल्यों के बारे में विचार से प्रभावित है । इन विचारों का आध्यात्मिक और इहलौकिक संदर्भ हैं। सभी जीवों की ईश्वर और प्रकृति के साथ एकता संबंधी विश्वास ने थोरो को न केवल सभी मनुष्यों की,अपितु सभी जीवों की पवित्रता पर बल देने के लिए प्रभावित किया ।

थोरो ने माना का कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक विकास है और सभी मनुष्य ऐसे विकास करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं तथा कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था मानव को इस तर्क के आधार पर अधीन या दमन करने का प्रयास नहीं कर सकता कि उसे श्रेष्टतर ज्ञान या शक्ति प्राप्त है । थोरो का ऐसा मानना इस बात का ध्योतक है कि वे हर प्रकार के अन्याय और शोषण का विरोध करते हैं । दास प्रथा के विरूद्ध उन्होंने इसी कारण आवाज उठाई थी ।

थोरो द्वारा प्रकृति के साथ समन्वय, ऐकान्त की प्रशंसा और वाल्डन की जंगलों में ऐकान्तमय जीवन, शान्ति के लिए संकेतात्मक महत्व रखता है क्योंकि यह इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि आधुनिक औद्योगिक सभ्यता ने मानवीय अस्तित्व को बहुत अवमूल्यन और प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। अत: थारो के अनुसार शान्ति का संबंध ऐसे प्रत्येक भौतिकवादी और उपभोगतावादी प्रवृत्तियों का परित्याग करना है जो असत्य को बढ़ावा देते हों। इसलिए थोरो के विचारानुसार शान्ति और सत्य में घनिष्ठ एकता है।

सत्य के बारे में थोरो का विचार है कि सत्य सदैव ही संगत है और प्रत्येक विरोधाभासी दृष्टिकोण से ज्यादा ताकतवर है । अत: उनके अनुसार शान्ति के प्रति प्रतिबद्ध व्यक्ति का यह नैतिक दायित्व है कि वह असत्य का विरोध करे और सत्य पर सदैव अडिग रहकर उसका दृढ पालन करे । थासे के अनुसार सत्य शान्ति का अभिन्न अंग है । शान्ति का घनिष्ठ संबंध सत्य निष्ठा, प्रामाणिकता, आत्मनिरीक्षण, व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता, न्याय, मानवतावाद, आदि मूल्यों से है। इस प्रकार थोरो के लिए शान्ति और उसकी प्राप्ति के प्रयास सत्य और आन्तरिक शक्ति की मजबूत नींव और मानव आत्मा की महानता से नियत है। थोरो

के विचारानुसार इस प्रकार एक व्यक्ति प्रकृति, अपने स्वयं और दूसरों के साथ शान्तिमय सहअस्तित्व रखता है।

गाँधीजी के चिन्तन मे शांति का विचार मौलिक रूप से एक मनोवृत्ति है। इसका संबंध उचित उद्देश्यों को सिद्ध करने, त्रुटियों को सही करने और गलत काम करने वाले विरोधियों को स्वैच्छा पूर्वक गलत रास्ता त्याग देने हेतु प्रेरित करना है। यह आत्मपीडा सहने तथा अहिंसापूर्ण साधनों को धैर्यपूर्वक एवं सक्रिय प्रयोग करने की दृढ इच्छा पर आधारित नैतिक जीवन जीने का मार्ग है।

गाँधीजी ने सत्याग्रह का सिद्धान्त दिया जिसका तात्पर्य है अच्छाई के द्वारा बुराई के विरूद्ध सक्रिय प्रतिरोध तथा संघर्ष का निवारण। गाँधीजी सत्याग्रह के प्रयासों को सर्वथा उचित समहाते थे और इसे निष्क्रिय प्रतिरोध से अलग बताते थे । उनका कहना था कि सत्याग्रह नैतिक रूप से बलवान, साहसी एवं सक्रिय लोगों का हथियार है न कि कमजोर, कायर तथा असहाय लोगों का उनके अनुसार यह नैतिक रूप से कमजोर एवं डरपोक लोगों का साधन नहीं है। यह घृणा और हिंसा के त्याग पर आधारित है। गाँधीजी के अनुसार शान्ति स्थापना के लिए सत्य, अहिंसा, नैतिकता, साहस, प्रेम, परोपकार, आत्मनियन्त्रण सहिष्णुता, इत्यादि अपरिहार्य मूल्य हैं।

गाँधीजी इस बात पर दृढ थे कि शोषित व्यक्ति अपने प्रति होने वाले अन्याय और शोषण के प्रति सजग हो। इसीलिये उन्होंने शोषित व्यक्तियों को अपनी आत्मा की आवाज सुनकर अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को अहिंसक साधनों के प्रयोग से बदलने को कहा। उनका विचार था कि न्याय और समता की स्थापना के लिये जनमत का निर्माण किया जाना उचित होगा। उन्होंने कहा कि जब यह जनमत सामाजिक शोषण के विरूद्ध प्रबल होगा तो बडे से बडा शक्तिशाली व्यक्ति भी अन्याय करने या उसे समर्थन करने की हिम्मत नहीं जुटा पायेगा । इस प्रकार संघर्ष निवारण के लिये गाँधीजी का तरीका था कि सामूहिक प्रयास एवं जन जागृति । गाँधीजी ने विवाद निवारण के लिए प्रतीक्षा करो और देखो, तथ्यों की पड़ताल करो, यात्रा करो, वार्तालाप करो, मध्यस्थता करो, विरोध सभाएं करो, प्रदर्शन करो, जैसे अनेक उपायों के अपनाने की बात कही ।गाँधी के अनुसार संघर्ष निराकरण का उद्देश्य विरोधियों का कल्याण भी है। सत्याग्रह में इस बात पर बल दिया जाता है कि स्वयं और विरोधी दोनों पक्ष एक-दूसरे के प्रति शत्रुता का भाव न रखकर विवाद को हल करने के लिए प्रतिबद्ध हों। गाँधीजी का विश्वास था कि यदि बुरे व्यक्ति के हृदय से बुराई समाप्त की जाए तो इसका परिणाम अत्यन्त शान्तिपूर्ण और फलदायी होगा और इसकी अन्तिम परिणति हिंसा में कमी होगी । गाँधीजी के अनुसार शस्त्रों से अधिक शक्ति अहिंसा में होती है और इसके द्वारा किसी संघर्ष मे बिना घृणा और कटुता के विजय प्राप्त की जा सकती है । उन्होंने माना कि घृणा कभी भी घृणा को नष्ट नहीं कर सकता। इसलिए गाँधीजी ने कभी भी विरोधियों को अपमानित करने या हराने के बारे में नहीं सोचा बल्कि प्रेमपूर्वक उनका हृदय परिवर्तन करने के प्रयास पर बल दिया। उन्होंने प्रतिशोध की भावना त्यागने को कहा चाहे इसलिए उसे कितना ही कष्ट क्यों न सहना पडे। विरोधियों से प्रेम करो, पाप से घृणा करो,

पापी से नहीं, विरोधाभासी को अपमानित करने,पीड़ा पहुचाने, नीचा दिखाने अथवा हराने की बजाय प्रेमपूर्वक उनके हृदय परिवर्तन करो, यह सत्याग्रह संबंधी उनकी मूल नसीहत थी।

गाँधीजी के अनुसार विवाद-निवारण में हमें लक्ष्य प्राप्ति के साधन के प्रति भी रहना चाहिये। उनका मानना था कि यदि हम माध्यम का ध्यान रखेंगे, तो लक्ष्य स्वयं अपना ध्यान रखेगा । गांधी जी ने हमेशा लक्ष्य प्राप्ति के लिये अपनाये जाने वाले साधनों की शुद्धता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि शुद्ध साधन का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को निराशा अथवा पराजय का सामना नहीं करना पडता है।

3.7 संघर्ष-निवारण और शान्ति प्राप्ति के अहिंसक तकनीक

थोरो ने व्यक्ति को अति पवित्र जीव माना। 'मनुष्य' उनके लिए एक विवेकवान जीव है जिसके कुछ निश्चित नैतिक मूल्य होते हैं जो उसके अस्तित्व से जुडे होते हैं। थोरो के लिए मानव अस्तित्व के आवश्यक मूल्य मनुष्य के जीवन के बाहरी तत्वों की रचना करते हैं। यह अतीत के साथ-साथ भविष्य के सत्य को भी साथ लेकर चलते हैं । उनके विचार में, व्यक्ति अपनी प्रत्यक्ष क्षमता और महत्ता में ईश्वर के निकट खड़ा है और अपने असाधारण निष्कर्ष में वह सर्वोच्च तथा अति -पावन दिव्य शक्ति का हिस्सा है । निगनात्मक रुप से इसका अर्थ यह है कि सांसारिक स्तर पर ऐसी कोई शक्ति या संस्थान नहीं है जो स्वयं को व्यक्ति से श्रेष्ठ होने का दावा कर सके। निगनात्मक रुप से इसका अर्थ है कि सामयिक स्तर पर ऐसी कोई अन्य शक्ति या संस्थान नहीं जो व्यक्ति से महत्वपूर्ण या श्रेष्ठ होने का दावा कर सके। इसे उनके इस तर्क के साथ देखा जाना चाहिए उन्होंने कहा है कि व्यक्ति अपनी समझ का उपयोग कर स्वयं को इतना समर्थ बना सकता है कि वह विरोध के अपने विचार को जान सके तथा उसका पालन कर सके जैसा उन्होंने अपने प्रसिद्ध निबंध आन द ड्यूटी आफ सिविल डिसओबिडियन्स में भी कहा है।

थोरो अहिंसक विरोध का दर्शन प्रस्तुत करते हैं। थोरो का सविनय समाज में प्रचलित या व्यक्ति के विरूद्ध हो रहे गलत कार्य के विरूद्ध सक्रिय विरोध करने पर महत्व देता है। वे इस बात पर भी बल देते हैं कि व्यक्ति और उसके कृत्य में भेद करना जरूरी है, व्यक्ति का मारना नहीं, उसके बुरे कृत्य का अन्त करना जरूरी है और इसलिए विरोधियों के प्रति आक्रोश, नफरत और शारीरिक या मानसिक हिंसा को त्याग कर न्याय, परोपकार और नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध रहकर उनके साथ अपने संबंधों का निर्वाह करना । थेरो का प्रतिरोध दर्शन न्याय और मानव कल्याण के प्रति वैचारिक प्रतिबद्धता तो है ही, परन्तु वे इसे केवल चिन्तन के स्तर तक सीमित नहीं करते हैं और न ही इस बात के इन्तजार का समर्थन करते हैं कि विरोध का पहल कोई दूसरा व्यक्ति करे। थोरो इस बात पर बल देते हैं कि अन्तरात्मा की आवाज के आधार पर जैसे ही व्यक्ति को लगे कि कोई. अनैतिक या अन्यायपूर्ण कार्य हो रहा है, उसे तत्काल ऐसे कार्य को समझा-बुजाकर या आवश्कता पडने पर सक्रिय सकारात्मक अहिंसक विरोध करके रोकने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा सक्रिय सकारात्मक अहिंसक विरोध विरोधियों के प्रति भी सकारात्मक सोच रखकर उसके भी उत्थान या कल्याण के लिए प्रयास करने को अपरिहार्य मानते हैं।

अपने सत्याग्रह अभियान के दौरान गाँधीजी ने विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल किया। गाँधीजी ने सत्याग्रह को एक वटवृक्ष के समान माना जिसकी अनगिनत शाखायें हैं और जिसका तना सत्य एवं अहिंसा से मिलकर निर्मित हैं एवं जिससे असंख्य शाखायें प्रस्फुटित हैं । गाँधीजी द्वारा प्रयुक्त सत्याग्रह के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि सत्याग्रह के तौर-तरीके परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं, किन्तु इन सभी तरीकों के मूल में साधन एवं साध्य की शुद्धता और अहिंसा की अनिवार्य रूप से पालना होती है । राघवन अय्यर ने सत्याग्रह को चार वर्गो में विभक्त किया है - आत्म-शुद्धि से संबंधित विधियाँ, अहिंसात्मक असहयोग, सविनय अवज्ञा और रचनात्मक कार्यक्रम।

आत्म-शुद्धि की विधियों में प्रतिज्ञा (संकल्प अथवा शपथ), प्रार्थना और अनशन की विधियों को सम्मिलित किया जा सकता है। गाँधीजी के अनुसार ये विधियाँ सत्याग्रही को शक्ति प्रदान करती हैं और इनके माध्यम से सत्याग्रही न्यूनतम सगय में प्रभावपूर्ण तरीके से विवादों का निराकरण करने में सफल हो सकता है । आत्म-शुद्धि के साधनों में गाँधीजी नें प्रतिज्ञा, (संकल्प अथवा शपथ) प्रार्थना और अनशन को अपनाया जाता है । गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रही के लिये आवश्यक है कि वह सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों का मन, वचन और कर्म से पालन करें, साम्प्रदायिक सद्भाव को बढावा दे, खादी को अपनाये, छुआछूत का उन्मूलन करे, अपने धर्म और देश की रक्षा के लिये साहसपूर्वक कष्ट सहने को तत्पर रहे । गाँधीजी का मत था कि बडे से बडा मानवीय प्रयास भी तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उस पर ईश्वर की अनुकम्पा न हो। मानवीय कमजोरियों से बचने के लिये गाँधीजी नें ईश्वर की शरण को आवश्यक माना। उनका विश्वास था कि प्रार्थना के द्वारा व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से सक्षम बन सकता है। गाँधीजी यह भी मानते थे कि प्रार्थना विरोधी के हृदय परिवर्तन में भी सहायक होती है और इसमें बहुत बल होता है । प्रार्थना की तरह ही उपवास अथवा अनशन को भी गाँधीजी ने अपनी कठिनाइयों को जीतने का माध्यम बताया । उन्होंने उपवास को प्रार्थना का सबसे निष्ठावान तरीका माना । चूंकि वे उपवास को एक बहुत शक्तिशाली हथियार मानते थे अत: वे कहते थे कि उपवास का उपयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक और अंतिम हथियार के रूप में करना चाहिये । गाँधीजी ने इसका उपयोग हिंसा रोकने, लोगों के बीच कडवाहट को दूर करने और राजनेतिक वातावरण को शुद्ध करने के लिये सहायक माना ।

अहिंसात्मक असहयोग को गाँधी एक प्रभावशाली माध्यम मानते थे । उनका कहना था कि अन्यायी व्यक्ति तभी अन्याय करने में सफल होता है जब उसके अन्याय को अधीन लोग सहन करने के लिए तैयार रहते हैं । अत: अन्याय को उसके प्रारंभिक स्वरूप में ही समाप्त किया जा सकता है । गाँधीजी का मानना था कि इसके लिये आत्म-नियंत्रण और धैर्य के साथ-साथ दृढ इच्छा शक्ति भी होनी चाहिये ताकि व्यक्ति सत्य के मार्ग पर चलते हुए बुराई. और अन्याय के मार्ग का डटकर विरोध कर सके । असहयोग की प्रकृति के बारे में गाँधीजी ने कहा है कि इसे सम्पूर्ण रूप से अहिंसात्मक होना चाहिये एवं सत्याग्रही के लिये यह आवश्यक है कि वह इसे सजा देने, द्वेष, घृणा आदि रखने के लिये उपयोग में न ले, अर्थात यदि अन्यायी व्यक्ति अन्याय करना छोड़ दे तो सत्य एवं न्याय के मार्ग पर चलते हुए उसका सहयोग किया जाना चाहिये । एक सत्याग्रही का कर्तव्य है कि वह अपने विरोधी को इस बात का भरोसा

दिलाये कि वह उसे शत्रु नहीं मित्र मानता है। गाँधीजी ने असहयोग को विरोधी के हृदय की छूने एवं उसके मस्तिष्क को प्रभावित करने का माध्यम बताया।

हड़ताल का अर्थ है व्यापार को रोककर अनुचित कानून अथवा आदेश का विरोध करना । गाँधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि हड़ताल बहुत कम समय के लिए होनी चाहिए एवं इसका बार-बार उपयोग करना भी अपेक्षित नहीं है । गाँधीजी के अनुसार हड़ताल विरोध प्रकट करने, असंतुष्टि प्रकट करने और शोक प्रकट करने का माध्यम हो सकता है । उन्होंने कहा कि हड़ताल किसी को परेशान अथवा अपमानित करने के लिये नहीं की जानी चाहिये और आम जन को किसी प्रकार की असुविधा भी नहीं होनी चाहिए । असहयोग का दूसरा प्रकार है बहिष्कार । गाँधीजी की दृष्टि में यह एक व्यक्ति या समूह द्वारा इस बात को प्रकट करने का माध्यम है कि वे अन्याय अथवा बुराई का साथ नहीं देंगे। इस प्रकार के विरोध द्वारा वे अन्याय को खत्म कर न्याय की स्थापना का प्रयास करते हैं । गाँधीजी ने तीन प्रकार के बहिष्कार बताये है - राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक । राजनैतिक बहिष्कार का अर्थ है कि सत्य से किसी प्रकार का समझौता संभव नहीं है चाहे अन्याय करने वाला व्यक्ति कोई भी या कितना भी शक्तिशाली क्यों ना हो । गाँधीजी ने इसे विस्तृत करते हुए कहा कि इसका अर्थ है कि हम अन्यायपूर्ण और नैतिक रूप से भ्रष्ट शासन से किसी प्रकार का सम्मान स्वीकार नहीं करेंगे । आर्थिक और सामाजिक बहिष्कार में गाँधीजी ने असहयोग किए जा रहे व्यक्ति या संस्था से कोई पद, भेट या वस्तु अस्वीकार करने का बात कही है । असहयोग का आखरी स्वरूप हिजरत है। गाँधीजी ने कहा इसका उपयोग अन्याय और अत्याचार करने वाले शासको से बचने के लिये अंतिम शस्त्र के रूप में किया सकता है। हिजरत का अर्थ है शासक और उसके द्वारा शासित स्थान से पलायन कर जाना । यद्यपि इसका अर्थ है अन्याय से दूर भाग जाना किन्तु यह भीरूता का प्रतीक नहीं है बल्कि इस बात का प्रतीक है कि व्यक्ति स्थिति में अपनी ईमानदारी और निष्ठा को बचाये रखना चाहता है ।

सविनय अवज्ञा सत्याग्रह का तीसरा स्वरूप है । इसका अर्थ है कि राज्य अथवा अनैतिक कानून का उल्लंघन करना और यह कार्य अहिंसात्मक किन्तु विनम्र रूप से प्रकट किया जाता है । गाँधीजी ने इसे अहिंसा की सक्रिय अभिव्यक्ति बताया और सत्याग्रहियों के लिये इसे अमूल्य अस्त्र बताया । इसे सशस्त्र संघर्ष का एक सम्पूर्ण, प्रभावी और रक्तहीन विकल्प बताया है । गाँधीजी ने इसका उपयोग अंतिम के रूप में करने की सलाह दी और कहा कि प्रारंभिक स्तर पर कुछ चुने हुए सत्याग्रही ही इसे आरंभ करे। गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा के दो रूप बताए, व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा और सामूहिक सविनय अवज्ञा । गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा के आंशिक और पूर्ण स्वरूप भी बताए हैं । आशिक सविनय अवज्ञा का अर्थ है मात्र कुछ चुने हुए अनैतिक कानूनों का पालन नहीं करना तथा अन्य कानूनों का पालन करते रहना । गाँधीजी ने इस बात की संभावना से भी इंकार नहीं किया कि कोई शासन पूर्णत: अनैतिक भी हो सकता है ऐसी परिस्थितियों में उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसे शासन के प्रत्येक कानून को मानने से इन्कार दे, चाहे इसकी परिणति हिंसक दमन क्यों ना हो । गाँधीजी के अनुसार इस प्रकार के सम्पूर्ण सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अर्थ है राज्य के विरूद्ध शान्तिपूर्ण विद्रोह । गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा के दो और स्वरूपों - आक्रामक और

रक्षात्मक भी बताए । आक्रामक सविनय अवज्ञा एक पूर्णत: अहिंसात्मक रूप से राज्य के सभी कानूनों को उल्लंघन करने का नाम है । इसमें भय का कोई स्थान नहीं होता और इसे राज्य के विरूद्ध विद्रोह माना जा सकता है । रक्षात्मक सविनय अवज्ञा में कुछ चुने हुए अनैतिक कानूनों का विरोध किया जाता है जो एक व्यक्ति आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा के विरूद्ध होते हैं । चाहे सविनय अवज्ञा किसी भी रूप में उपयोग किया जाय गाँधीजी ने बल दिया कि उसका स्वरूप हमेशा सभ्य और अहिंसात्मक होना आवश्यक है । उन्होंने कहा कि सविनय अवज्ञा का परिणाम कभी भी अव्यवस्थापूर्ण माहौल नहीं होना चाहिए । गाँधीजी ने बल दिया कि किसी भी प्रकार की हिंसा होने पर सत्याग्रही का कर्त्तव्य है कि वह अपनी जान पर खेल कर भी हिंसा को रोकने का सभी संभव प्रयास करेगा । गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा के कुछ तरीके सुझाये जिनमें धरना, सभाओं और पदयात्राओं का आयोजन, कर ना देने का निर्णय और चुनिंदा कानूनों का स्वेच्छापूर्वक उल्लंघनसम्मिलित हैं ।

सत्याग्रह का अंतिम प्रकार रचनात्मक कार्यक्रम है । ये सत्याग्रह आदोलन के अत्यन्त सकारात्मक कार्यक्रम है । इसकी खोज किसी भी सत्याग्रह अभियान को नैतिक रूप से पतन से लेकर दंगों जैसी हिंसक गतिविधियों की ओर बढने से रोकने के लिए की गई थी । गाँधीजी ने इसे सत्याग्रह आन्दोलन का अभिन्न अंग माना था और इसका उद्देश्य था कि सभी सत्याग्रहियों को आपसी मेलजोल, सांमजस्य और सौहार्द्र से रहना सिखाना । गाँधीजी इसे एक नये सत्याग्रही को स्वतंत्रता का अनुशासित सिपाही बनाने का प्रारंभिक प्रशिक्षण मानते थे । इसलिए गाँधी ने इसे बहादुर की अहिंसा के लिए प्रशिक्षण तथा स्वराज प्राप्ति के साधन के रूप में मान्यता प्रदान की । रचनात्मक कार्यक्रमों के बारे में गाँधीजी ने 15 प्रमुख बिन्दु बताये है - 1 साम्प्रदायिकता का उन्मूलन, 2. छुआछूत का उन्मूलन, 3. शराबबंदी, 4. खादी का उपयोग, 5. ग्रामीण उद्योगों का विकास, 6. गांव में स्वच्छता की स्थापना, 7. बुनियादी शिक्षा का विकास, 8. प्रौढ शिक्षा का विकास, 9. महिलाओं का उन्नयन, 10. स्वास्थ्य और सफाई पर ध्यान देना, 11 हिन्दुस्तानी भाषा को स्वीकार करना और उसके विकास के प्रयत्न करना, 12. क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन देना, 13. न्यासिता (ट्रस्टीशिप), 14. बाहरी व्यक्तियों के प्रति सद्भाव रखना और 15. छात्रों, किसानों जो मजदूरों को संगठित करना ।

3.8 व्यक्ति और राज्य में अन्तर-संबंध

थोरो राज्य का आलोचक था और सरकार को उसका अभिकर्ता मानता था । उसका मानना था कि राज्य का एकतरफा झुकाव व्यक्तिवादिता और नागरिकों की स्वतंत्रता को प्रभावित कर रहे हैं और इस पर थोरो ने टिप्पणी करते हुए कहा कि राज्य और इसके अभिकर्ता सरकार की कोई ज्यादा उपयोगिता नहीं है । उसके कहा कि, 'मैं दिल से इस आदर्श वाक्य को स्वीकार करता हूं जिसमें कहा गया है कि वही सरकार बेहतर है जो कम से कम शासन करती है' और मैं इसे इस रुप में देखना चाहूंगा जिसमें यह तेज गति से और व्यवस्थित रुप से कार्य कर सके । वह इसे एक कृत्रिम संस्थान और यंत्र मानता था और कहता था कि हमें लम्बे समय तक ऐसी मशीन का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए । थोरो के इस प्रकार के कथन में निश्चित तौर पर अराजक ध्वनि प्रतीत होती थी । हालांकि, यहां संभवत: थोरो को एक विचारक

के रुप में देखना अधिक उचित होगा जिसने उदार परंपरा से कुछ दूर जाते हुए मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था से बेहतर शासन की मांग की । थोरो के निबन्ध 'सिविल डिसओबिडियेन्स' में उसने राज्य और सरकार की अन्यायपूर्ण प्रवृत्तियों को उजागर किया और ऐसे अन्यायपूर्ण प्रवृत्तियों का विरोध करने का समर्थन किया । इस निबन्ध के अंतिम अध्याय में थोरो ने स्वतंत्र और बेहतर राज्य के गुणों का वर्णन किया । यह राज्य, जिसे थोरो ने मान्यता दी, एक ऐसा राज्य था जो सबसे ऊंची और स्वतंत्र सत्ता के रुप में व्यक्ति को मान्यता देता था, और यह अपनी शक्ति और सत्ता शासित व्यक्तियों की इच्छा से प्राप्त करता था । थोरो इस प्रकार व्यक्ति को एक अतिपावन सत्ता के रुप में मान्यता देता है । थोरो कहते हैं, 'जब तक राज्य व्यक्ति को सर्वोच्च एवं स्वतंत्र सत्ता के रुप में मान्यता नहीं देता और जब तक इसी सत्ता से राज्य की सभी शक्तियां और सत्ता प्राप्त नहीं होती तब तक एक स्वतंत्र और भयमुक्त राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है । मैं एक ऐसे राज्य की कल्पना करते हुए बेहद खुश होऊंगा जो व्यक्ति को अधिकाधिक सम्मान दे।' व्यक्तिगत स्वतंत्रता के तीव्र समर्थक के रुप में थोरो ने राज्य की उन सभी अवांछित प्रवृत्तियों का विरोध किया जो व्यक्तिवादिता और व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित करती थी । उन्होंने कहा, 'मैं बल द्वारा शासित होने के लिए पैदा नहीं हुआ हूं मैं अपने तरीके से जीना चाहूंगा।' वह राज्य, जिसे थोरो ने मान्यता दी, व्यक्ति की तुलना में न तो सर्वोच्च विवेकवान था और न ही नैतिक रुप से पवित्र था । जिस एकमात्र पहलू में यह व्यक्ति से ऊंचा था, वह था भौतिक बल । इस प्रकार व्यक्ति से सर्वोच्च विवेकवान और नैतिक रुप से पवित्र न होने के कारण राज्य व्यक्ति को अपने कानून और विषय मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकता । अन्य विचारकों की तरह जिन्होंने राज्य की अवांछित प्रवृत्तियों की निन्दा की, थोरो ने विचार प्रकट किए कि वर्तमान युग में राज्य 'कई प्रकार की गतिविधियों का संचालन कर रहा है । सामाजिक वर्ग और सुरक्षा जैसी संकीर्ण परिभाषित रुचियों के आधार पर अकसर व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह राज्य के इस प्रकार के अवांछित निर्णयों को मानेगा जिससे कि व्यक्ति की ईमानदारी, प्रतिष्ठा और मानव अस्तित्व के मूल तत्वों का उल्लंघन होता हो ।

राज्य के अन्यायपूर्ण कानूनों के विरोध के व्यक्ति के अधिकार का समर्थन करते हुए थोरो ने विरोध का सर्वाधिक चर्चित पद्य खोज निकाला, जिसमें व्यक्ति को अन्यायपूर्ण व्यवस्था का तब तक पालन करना चाहिए जब तक कि किसी व्यक्ति द्वारा सत्ता में बैठे लोगों को इस बात के लिए मना नहीं लिया जाए कि वह इसमें संशोधन कर सके या पहली बार में अन्यायपूर्ण व्यवस्था का विरोध करें और इसके बाद इसमें संसोधन के लिए प्रयास करें । थोरो का विश्वास था कि अन्यायपूर्ण व्यवस्था को जारी करने की छूट प्रदान करने से बेहतर है कि प्रथम दृष्टया अन्यायपूर्ण व्यवस्था का विरोध किया जाए । प्रथम दृष्टया अन्यायपूर्ण राज्य का विरोध करने से उपजी परेशानियां, थोरो की नजर में, इस तथ्य से कहीं कम थी जिसमें एक अन्यायपूर्ण राज्य को अपनी मनमानी करने की छूट मिल जाती । उसने कहा, यदि हजारों मनुष्य इस वर्ष अपना कर बिल नहीं चुकाते हैं तो यह इस प्रकार का उल्लंघन या खूनी कार्य नहीं होगा, यदि वह इस बिल को चुकाते हैं तो वह राज्य को हिंसा करने और खून बहाने में

समर्थ बनाते हैं । वास्तव में शांतिपूर्ण क्रांति की सच्ची परिभाषा है। ' लिहाजा थोरो अपने कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों से चाहते थे कि वे बहादुर बने और अन्यायपूर्ण राज्य के विरोध के नतीजों की अधिक परवाह नहीं। उन्होंने स्वीकार किया कि राज्य अपने आदेशों की अवहेलना की स्थिति में हिंसक और खूनी प्रतिक्रिया दे सकता है, हालांकि उस ने माना कि इस प्रकार की शारीरिक चोट उस चोट से कहीं कम घातक होगी जो कि की सोच को सीधे क्षति पहुंचाएगी । बुद्धि की क्षमता और सत्य में विश्वास करते हुए उसने माना कि इनकी सभी बुराईयों की संयुक्त शक्ति से कहीं अधिक होती है । उसने कहा कि अन्यायपूर्ण राज्य का विरोध करने के लिए व्यक्ति को बहुमत के समर्थन के स्थान पर अपने अन्तरूकरण की या ईश्वर की आवाज सुननी-चाहिए ।

गाँधी सत्य के उपासक और हिंसा के सक्त विरोधी थे, अहिंसा के प्रति प्रतिबद्धता उनके लिए प्राथमिक जीवन सिद्धान्त था । राज्य को वे हिंसा पर आधारित संस्था मानते थे और आदर्श के पर एक राज्य विहीन समाज की कल्पना करते थे । ऐसे आदर्श राज्य में गाँधी सभी व्यक्तियों को नैतिक से इतने श्रेष्ठ होने की कल्पना करते थे कि उनपर कोई बाहरी नियन्त्रण की आवश्यकता ही नहीं है । परन्तु वे व्यवहारिक भी थे और इसलिए मानते थे कि मनुष्य द्वारा इस प्रकार की नैतिक श्रेष्ठता कालान्तर में ही विकसित सकता है और इसलिये उपादर्श के तौर पर राज्य होगा जो बहुत सीमित कार्य करेगा और वह यह कार्य भी विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त पर करेगा । ऐसी विकेन्द्रीयकृत व्यवस्था में सत्ता का मूल आधार व्यक्ति होगा । उनका राज्य संबंधी विचार अराजकतावादियों द्वारा प्रतिपादित विचार के समीप लगता है और इसलिए उन्हें दार्शनिक अराजकतावादी कहा है । गाँधी ने कहा कि राज्य संगठित हिंसा पर आधारित ऐसी संस्था है जो मानव स्वतंत्रता का विरोधी है । उन्होंने राज्य को हिंसक संस्था इसलिए माना क्योंकि उनके अनुसार राज्य अंततोगत्वा अपनी इच्छा को नागरिकों पर बल के आधार पर आरोपित करना चाहता है । वे कहते थे कि राज्य को हिंसा से कभी भी अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका जन्म ही हिंसा के कारण हुआ है । उनके लिए व्यक्ति सर्वाधिक रूप से प्राथमिक है, जो भी संस्था उसके विकास में बाधक हो, उसे गाँधी हटाना चाहते हैं । गाँधीजी के अनुसार राज्य की बाध्यकारी शक्ति व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए घातक है । वे मानते थे कि व्यक्ति मूल रूप से एक नैतिक प्राणी है और उसके जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक विकास है, जिसके लिए पूर्ण स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है । परन्तु, गाँधी के अनुसार, राज्य द्वारा मनुष्य की स्वतन्त्रता सीमित कर दी जाती है । गाँधीजी मानते हैं कि राज्य में शक्ति केन्द्रित हो जाती हैं और फिर उसका दुरूपयोग हाने लगता है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके सर्वांगीण विकास को सीमित करती है ।

3.9 अन्तरात्मा की आवाज का अनुसरण

थोरो और गाँधी व्यक्ति को मूल रूप से ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ मानते हैं । दोनों व्यक्ति में निहित आत्मा को बहुत महत्व देते हैं । थोरो के अनुसार यदि सरकार या समाज का नियम या माँग व्यक्ति की अन्तरात्मा के विरूद्ध है तो यह उसका नैतिक दायित्व है कि वह ऐसे नियम या माँग को अस्वीकार करे चाहे इसके लिए उसे कुछ भी सहना पड़े । अपने जीवन काल में थोरो इस बात से खफा थे कि अमेरिकी सरकार के द्वारा दास प्रथा को यथावत रखने

का समर्थन और 1646 के मेक्सिकन युद्ध को थोरो ने अन्तरात्मा के विरूद्ध माना और पॉल टेक्स नहीं भरने का निर्णय किया । इस कृत्य के लिए उन्हे जेल जाना पडा, मगर कर अदायगी नहीं करने के अपने निर्णय पर वे अड़े रहे । थोरो की प्रसिद्ध कृति एसेस ऑन सिविल रेसिसटेन्स इसी अनुभव की परिणिति है ।

गाँधी के अनुसार मनुष्य के दिव्य अस्तित्व का पहचान उसमे निहित आत्मा तत्व से है । उनका मानना था कि यदि आत्मा के रूप में ईश्वर, जिसे उन्होंने परम सत्य कहा, मनुष्य में निवास करता है तो उसे अन्तरात्मा की आवाज को सदैव अनुसरण करना चाहिए । उनके अनुसार अत: इस लौकिक जगत मे कोई भी नियम, कानून, नीति और कार्य या व्यवहार इस आत्मा की आवाज के विरूद्ध है तो उसका सक्रिय अहिंसक विरोध करना चाहिए । उनके द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह का यही मूल दर्शन है ।

परन्तु गाँधी थोरो के सविनय अवज्ञा के मूल दर्शन से आगे बढ़ते हुए सत्याग्रह को व्यक्तिगत कृत्य या शक्ति के रूप में सीमित नहीं रखते हैं, अपितु उनका सत्याग्रह एक ऐसा तकनीक है जिसमें समाज के लोग व्यापक संख्या में भाग ले सकते हैं और यह सहभागिता केवल सविनय अवज्ञा तक सीमित न होकर असहयोग के तरीके आत्म-शुद्धि के प्रयास और अनेक रचनात्मक कार्यक्रम को समाहित करता है ।

3.10 सादगी और सरल जीवन

थोरो और गाँधी आडम्बर रहित सादा और सरल जीवन के पक्षघर थे । थोरो के लिये सादगी एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन था जिसके माध्यम से आध्यात्मिकता और आत्म-ज्ञान की ओर व्यक्ति अग्रसर हो सकता है । गाँधी ने स्वयं थोरो के बारे में कहा था कि थोरो अमेरिका का महानतम एवं सर्वाधिक नैतिक व्यक्तियों में से एक हैं । वे प्रकृति के करीब रहना चाहते थे । वालडन की जंगल के एकान्त में जीवन व्यापन का निर्णय उन्होंने किया । गाँधी भी भौतिकतावादी प्रवृत्तियों का विरोध करते थे क्योंकि उनका मानना था कि ऐसी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिए बाधक है । परन्तु वे थोरो की भाँति एकान्त में जीवन व्यापन करने का समर्थन नही करते थे अपितु भौतिक जगत में सक्रिय रहते हुए कुछ यमो एवं नियमों की पालना करते हुए आत्म-नियन्त्रण या संयम से आत्म-ज्ञान की ओर अग्रसर हाने की बात करते हैं ।

3.11 अहिंसक विरोध: मनःस्थिति एवं सक्रिय व्यवहार

थोरो और गाँधी द्वारा प्रतिपादित अहिंसक विरोध केवल मात्र मनःस्थिति नही है, अपितु यह सक्रिय व्यवहार का भी ध्योतक है । दोनो विचारशील चिन्तन के आधार पर अहिंसक विरोध का दर्शन प्रस्तुत करते हैं । थोरो का सविनय अवज्ञा और गाँधी का सत्याग्रह समाज में प्रचलित या व्यक्ति के विरूद्ध हो रहे गलत कार्य पर मात्र आक्रोश व्यक्त करना नहीं है, अपितु सक्रिय सकारात्मक व्यवहार से इसका उन्मूलन भी है । साथ ही दोनों इस बात पर भी बल देते हैं कि व्यक्ति और उसके कृत्य में भेद करना जरूरी है, व्यक्ति का अन्त नहीं, बुरे कृत्य का अन्त होना चाहिए । दोनों विरोधियों के प्रति आक्रोश, नफरत और शारीरिक या मानसिक हिंसा

को त्याग कर न्याय, परोपकार और नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता को महत्वपूर्ण मानते हैं । दोनों के द्वारा प्रस्तुत विरोध का दर्शन न्याय और मानव कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता तो है पर इसे केवल चिन्तन के स्तर तक सीमित नहीं किया गया है और न ही इरा बात के इन्तजार का समर्थन किया गया है कि विरोध का पहल कोई दूसरा व्यक्ति करे । अन्तरात्मा की आवाज और विचारशील चिन्तन के पश्चात, थोरो और गाँधी दोनों इस बात पर बल देते हैं कि जैसे ही व्यक्ति को लगे कि कोई अनैतिक या अन्यायपूर्ण कार्य हो रहा है, उसे तत्काल ऐसे कार्य को समझा-बुजाकर या आवश्कता पडने पर सक्रिय सकारात्मक अहिंसक विरोध करके रोकने का प्रयास करना चाहिए । जिस सक्रिय सकारात्मक अहिंसक विरोध की बात दोनो थोरो और गाँधी करते हैं वह विरोधियों के प्रति भी सकारात्मक सोच रखकर उसके भी उत्थान और कल्याण के लिए प्रयास करना आवश्यक मानते हैं । दोनों संख्या को महत्व नहीं देते अपितु अहिंसा के प्रति सैद्धांतिक प्रतिबद्धता और गुणवक्ता को महत्वपूर्ण मानते हैं ।

थोरो की अहिंसा के प्रति स्थायी प्रतिबद्धता के बारे में कुछ विद्वान अलग से विचार रखते हैं । यह एक विदित बात है कि 1859 मे जब जॉन ब्राऊन और उनके कुछ साथियों ने बलपूर्वक कुछ दासों को मुक्त करने का असफल प्रयास किया तो थोरो ने ब्राऊन की उक्त कार्यवाही का समर्थन किया । इनकी कृति इन प्ली कॉर केप्टन जॉन ब्राऊन ने कहा 'मै मारना और मरना नहीं चाहता हूँ पर मै ऐसी परिस्थितियों के उत्पन्न होने की कल्पना करता हूँ जब यह दोनो कृत्य मेरे लिए अपरिहार्य हो जायेंगे । थोरो का उक्त कथन यह संदेह उत्पन्न करता है कि क्या उनके लिए अहिंसा जीवन सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया था ओढ़ परन्तु जहाँ तक गाँधी का संबंध है, उनके लिए सत्याग्रही के लिए अहिंसा के प्रति स्थायी प्रतिबद्धता आवश्यक है। उनके लिए अहिंसा को जीवन सिद्धांत के रूप में अपनाना जरूरी है, अवसरवादिता या कायरता के रूप में नही। सत्याग्रही के लिए अनन्त सीमा तक त्याग करने या पीढा सहने के लिए, जान न्योछावर करने के लिए भी, तैयार रहने के लिए गाँधी कहते हैं । यदि जॉन ब्राऊन के सशस्त्र कार्यवाही के समर्थन के संदर्भ में थोरो के उपर्युक्त विचार अनुसार आवश्यक्ता पडने पर बलपूर्वक विरोध किया जा सकता है, तो इस बिन्दु पर वे गाँधी से प्रथक होते नजर आते है।

3.12 सारांश

थोरो ने एक ओर नागरिक अवज्ञा से सरकार की गलत नीतियों के विरूद्ध अहिंसक संघर्ष का रास्ता अपनाया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने लेखन के जरिए आमजन का परिचय अहिंसा की शक्ति से भी करवाया । थोरो का नागरिक अवज्ञा नामक निबन्ध शासन की प्रकृति, समुदाय और व्यक्तिगत अधिकार को शामिल करता है । साथ ही वे मानव अस्तित्व से जुडे अनेक मूल प्रश्न पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर श्रेष्ठ जीवन के बारे में हमारा मार्गदर्शन करते हैं । ऐसे जीवन व्यापन में आने वाले अवरोधों का कैसे विरोध किया जाय इसकी सीख थोरो का अमूल्य योगदान हे । गाँधीजी ने भी व्यक्ति के मूल अस्तित्व को पहचान उसके सद्गुणों के विकास की बात पर बल दिया है । इसके साथ-साथ सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर ऐसे ही सदगुणी व्यवस्थाओं का मूर्तिकृत रूप प्रतिपादित किया । वे सक्रिय अहिंसक सहभागिता

के द्वारा संघर्षो का निवारण करना चाहते थे और विश्व शान्ति और मानव कल्याण का लक्ष्य साकार करना चाहते थे । साधन एवं साध्य की पवित्रता गाँधी के लिए बराबर रूप से महत्वपूर्ण थे इसलिए गाँधी ने न केवल इन लक्ष्यों को कुछ निश्चित नैतिक सिद्धान्तों के साथ जोड़ा बल्कि इनकी प्राप्ति के लिए उपयोग किए जा रहे साधनों को भी नैतिक होने को अपरिहार्य माना । गाँधी ने थोरो के नागरिक सवज्ञा संबंधी सिद्धान्तों को सर्वाधिक रूप से क्रियान्वित कर न केवल इस तकनीक को अपितु इसके प्रतिपादक थोरो को प्रसिद्धि दिलाई । परन्तु साथ ही उन्होंने इस तकनीक के साथ अन्य ऐसे अहिंसक तकनीक का प्रयोग किया जिन्हें थोरो द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया गया था । यह भी कहना उचित होगा कि थोरो ने व्यक्तिगत रूप से राज्य या सरकार के गलत या अन्यायपूर्ण नीतियों के विरूद्ध राजनीतिक या राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करने का विचार नहीं किया था । परन्तु गाँधी ने अनेक सत्याग्रहों के माध्यम से आंशिक स्तर पर और राष्ट्रव्यापी स्तर पर जन आदोलन के माध्यम से उपनिवेषदवादी ब्रिटिश सरकार की गलत और अन्यायपूर्ण नीतियों के विरूद्ध राजनीतिक या राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया । साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त अन्यायपूर्ण स्थितियो के विरुद्ध भी सार्वजनिक आदोलन का नेतृत्व किया या समर्थन किया ।

3.13 अभ्यास प्रश्न

1. थोरो द्वारा प्रतिपादित नागरिक अवज्ञा संबंधी विचारों के विभिन्न पक्षों का विवेचन कीजिए ।
2. गाँधी के द्वारा प्रतिपादित अहिंसक विरोध संबंधी विचारों का परीक्षण कीजिए ।
3. थोरो और गाँधी के विचारों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत कीजिए ।
4. क्या गाँधी की सत्याग्रह थोरो की नागरिक अवज्ञा में समाहित विचार और तकनीक तक सीमित है? विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए ।

3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉलबीयर, के. एम. डायरेक्शन्स इन पॉलिटिकल थॉट, जॉन विल्ली एण्ड सन्स इं., न्यू यॉर्क, 1969
2. ग्राइम्स ए. पी., अमेरिकन पॉलिटिकल थॉट, हाल्ट राइनहार्ट एण्ड विनस्टन इं., न्यू यॉर्क, 1969
3. मेसन, जी. आर., ग्रेट अमेरिकन लिबरेल्स"", स्तज्ञश्र किंग प्रेस, बोस्टन, 1956
4. ऑस्टरगार्ड, जेफरी, नानवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1985
5. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
6. धवन, पी.एन.''द पोलिटीकल फिलास्फी ऑफ महात्मा गाँधी'' सस्ता साहित्य मण्डल, मुम्बई, 1990

इकाई - 4

गाँधी एवं मार्क्स

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 कार्ल मार्क्स : सक्षिप्त जीवन परिचय

4.3 गाँधी दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त : संक्षिप्त परिचय

4.3.1 सत्य और अहिंसा

4.3.2 साधन तथा साध्य की पवित्रता

4.33 ईश्वर में आस्था

43.4 व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा की पूर्ण एकता

4.3.5 व्यक्ति के सर्वागीन विकास और सर्वोदय के लिए सभी संस्थाये समर्पित

4.3.6 न्यासिता का सिद्धान्त

4.3.7 श्रम का महत्व और अंधाधुन्ध औद्योगीकरण का विरोध

4.3.8 सत्याग्रह का सिद्धान्त

4.3.9 वसुधैव कुटुम्बकम या अन्तर्राष्ट्रीयता का सिद्धान्त

4.4 कार्ल मार्क्स के प्रमुख सिद्धान्त : संक्षिप्त परिचय

4.4.1 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

4.4.2 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

4.4.3 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

4.4.4 वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त

4.5 गाँधी और मार्क्स के विचारों की तुलना

4.5.1 गाँधी और मार्क्स के विचारों में समानता

4.5.1.1 सामाजिक संघर्ष के संबंध में विचार

4.5.1.2 मानव शोषण और शोषितों के उत्थान संबंधी विचार

4.5.1.3 समाजवाद संबंधी विचार

4.5.1.4 राज्य और साम्यवाद संबंधी विचार

4.5.1.5 द्वन्दवाद संबंधी विचार

4.51.6 वैज्ञानिक सोच की समानता

4.5.1.7 आदर्श के लिए व्यक्ति द्वारा महान त्याग के लिए तैयार संबंधी विचार

4.5.1.8 आम आदमी की अपार क्षमताओं में विश्वास संबंधी विचार

4.5.1.9 कोरा सिद्धान्त नहीं सक्रिय प्रयास की आवश्यकता संबंधी

4.5.1.10 आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था संबंधी विचार
4.5.2 गाँधी और मार्क्स के विचारों में अन्तर
4.5.2.1 मानव प्रकृति के बारे में व्यक्त विचार
4.5.2.2 परिवर्तन में मानव चरित्र और पदार्थ के संबन्ध में व्यक्त विचार
4.5.2.3 संरचनाओं के संबन्ध में मानव का स्थान और महत्व
4.5.2.4 राज्य के प्रति दृष्टिकोण
4.5.2.5 अहिंसा के प्रति दृष्टिकोण
4.5.2.6 भौतिक आवश्यकताओं के संदर्भ में दृष्टिकोण
4.5.2.7 ईश्वर और धर्म सम्बन्धी विचार
4.5.2.8 वर्ग संघर्ष के प्रति दृष्टिकोण
4.5.2.9 विश्व-बन्धुत्व की धारणा
4.6 सारांश
4.7 अभ्यास प्रश्न
4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी :-

- गाँधी और मार्क्स के जीवन और चिन्तन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- यह समझ सकेंगें कि गाँधी और मार्क्स की तुलना क्यों की जाती है ।
- गाँधी और मार्क्स के विचारों में समानता को पहचान सकेंगे ।
- गाँधी और मार्क्स के विचारों में विद्यमान मौलिक भिन्नतायें समझ सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

गाँधी एवं मार्क्स के विचारों में अद्भुत समानतायें हैं जिसके कारण दोनों महान विचारकों के चिन्तन की तुलना की जाती है । ये दोनों महान विचारक असमानता, शोषण, दरिद्रता और अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष का आवान करते हैं । दोनों राज्य-सस्ता के घोर विरोधी हैं और आदर्श के तौर पर राज्य विहीन सामुदायिक समाज की कल्पना करते हैं । गरीब, शोषित और असहाय जनता के कल्याण के लिए गाँधी और मार्क्स सक्रिय प्रयास और कर्म पर बल देते हैं । दोनों श्रम को असाधारण महत्व देते हैं और इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देना चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुरूप श्रम प्रदान करे और आवश्यकता के अनुरूप पारिश्रमिक प्राप्त करे । अपने आदर्श व्यवस्था में दोनों चिन्तक समानता-युक्त, न्याय-आधारित और वर्ग-संघर्ष विहीन समाज की कल्पना करते हैं । दोनों को विश्व महान क्रान्तिकारी चिन्तक के रूप में स्वीकार करती है और पूंजीवादी व्यवस्था का विकल्प प्रस्तुत करने वाले चिन्तक मानते हैं । यद्यपि गाँधी और मार्क्स के चिन्तन में उपयुक्त वर्णित समानतायें देखने को मिलता है, दोनों के विचार में कुछ मौलिक अन्तर भी विद्यमान हैं । सर्वप्रथम अन्तर अहिंसा के प्रति दृष्टिकोण है । गाँधी के चिन्तन में एक वांछनीय और अपरिहार्य मूल्य के रूप में

अहिंसा को स्वीकारा गया है । अहिंसा में विश्वास और सर्व कल्याण के लिए उसकी सार्थकता गाँधी चिन्तन में केन्द्रीय स्थान लिए हुए है । वांछनीय परिवर्तन लाने के लिए अहिंसा को अपरिहार्य माना गया है । अहिंसा के साथ-साथ गाँधी सत्य को भी अपने चिन्तन और कर्म में केन्द्रीय स्थान प्रदान करते हैं और साधन और साध्य की पवित्रता और धर्म, ईश्वर और नैतिकता को व्यक्ति और समाज के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं । मार्क्स के विचारों मैं लक्ष्य प्रधान है और प्राप्ति के लिए आवश्यकता अनुरूप हर प्रकार के नैतिक-अनैतिक और हिंसक-अहिंसक साधनों के प्रयोग का समर्थन दिखता है जिसके कारण उनके चिन्तन में साध्य की पवित्रता तो दिखाई पडता है परन्तु साधन की पवित्रता और नैतिकता महत्वपूर्ण बनता हुआ दिखता है । धर्म को मार्क्स द्वारा जनता के लिए अफीम के रूप में स्वीकार गया है । मानवीय जीवन में भौतिकता अथवा पदार्थ की महत्व के संबंध में भी दोनों विचारकों में गहरा अन्तर है । गाँधी चिन्तन में नैतिकता को अत्यधिक महत्व प्रदान कर सम्पूर्ण भौतिक विषयों को उसके अधीन रखा गया है । मार्क्स के चिन्तन में भौतिकता और पदार्थ को सर्व-निर्णायक तत्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है । गाँधी सरल और सादा जीवन पर बल देते हैं जबकि मार्क्स औद्योगिक जीवन द्वारा प्रदत्त भौतिक सुख और साधन को सभी व्यक्तियों को उपलब्ध कराने पर बल देते हैं । शक्ति, व्यक्ति का उत्थान, शान्ति, विकास, इत्यादि विषयों पर भी गाँधी और मार्क्स के विचारों में गहरा अन्तर है । इस कारण कुछ विद्वान मानते हैं कि गाँधीवाद मार्क्सवाद से लगभग सभी बिन्दुओं पर भिन्न है और मात्र यह मानना कि मार्क्सवाद से हिंसा हटा दिया जाये तो गाँधीवादी समाजवाद बन जायेगा, भ्रम-मूलक है।

4.2 कार्ल मार्क्स: संक्षिप्त जीवन परिचय

कार्ल मार्क्स एक दार्शनिक, अर्थशास्त्री, समाजवादी, इतिहासकार, पत्रकार क्रान्तिकारी थे जिन्हें आधुनिक समाजवादी आन्दोलन के प्रवर्तक के रूप में स्वीकारा जाता है । इनका जन्म के ट्रेविस शहर में 5 मई 1818 को हुआ था । उनके माता-पिता यहूदी थे । बीन और बर्लिन विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त कर मार्क्स ने पत्रकारिता का पेशा चुना । मगर उनके कट्टरपंथी विचारों के कारण जर्मनी कि सरकार उनसे नाराज रही । 1843 में मार्क्स जर्मनी छोड पेरिस गए जहाँ वे फ्रांसिसी समाजवाद और प्रौधान जैसे महान चिन्तक से प्रभावित हुए। 1845 में वे पेरिस से निष्कासित किए गये और वे ब्रसेल्स चले गए । यहाँ उनका सम्पर्क फ्रेड्रिक एन्जेल्स के साथ हुआ। मार्क्स और एन्जेल्स का संबंध तत्पश्चात जीवन पर्यन्त रहा । 1848 में मार्क्स और एन्जल्स ने संयुक्त रूप से 'साम्यवाद का घोषणा पत्र' जारी किया जो क्रान्तिकारी समाजवादियों के लिए पंथ समान और महत्वपूर्ण कार्यक्रम बन गया । उदार सरकारी नीतियों के चलते 1648-49 के लगभग वर्ष की अवधि के लिए मार्क्स जर्मनी आकार रहने में सफल हुए। परन्तु 1848 में परन्तु: अनुदारवादीयो सरकारी की प्राधान्यता के कारण उन्हें जर्मनी छोड़ना पड़ा और वे इंग्लैण्ड चले गये जहाँ उन्होंने काफी लेखन का कार्य किया । मार्च 14, 1883 को उनका निधन हो गया ।

1867, 1885 और 1895 में मार्क्स की कृति 'दास केपिटल' के तीन संस्करण एक के बाद एक एन्जेल्स द्वारा प्रकाशित किए गये और मार्क्स और मार्क्सवाद विश्व-भर में प्रसिद्ध हुए

। मार्क्स ने अपने दर्शन के माध्यम से विद्यमान समाज और विश्व के इतिहास को समझने का द्वन्दात्मक भौतिकवाद सिद्धांत प्रस्तुत किया और वैज्ञानिक पद्वति अपनाते हुए शोषण युक्त और असमान समाज को परिवर्तित कर न्यायोचित और समतायुक्त समाज स्थापित करने का विकल्प प्रस्तुत किया । इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या कर समाज में पूँजीपतियों और श्रमिकों में सदैव हित टकराने के कारण वर्ग संघर्ष विद्यमान रहने की बात मार्क्स ने की और आहान किया कि पूँजीपतियों के शोषण से मुक्त होने के लिए विश्व भर के मजदूरों को एक होकर मुकाबला करना चाहिए और शासन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर पूंजीपतियों का सर्वनाश करने के लिए उसका प्रयोग करना चाहिए ।

1917 की रूसी क्रान्ति के पीछे मार्क्स का दर्शन एक प्रमुख कारण माना जाता है । तत्पश्चात रूस में शासन और पूर्व सोवियत संघ की स्थापना और संचालन का आधार मार्क्सवादी चिन्तन ही बना । 20वी शताब्दी में माओ के नेतृत्व में साम्यवादी चीनी गणतन्त्र की स्थापना भी मार्क्स के विचारों से काफी प्रभावित था । विश्वभर में अनेक मजदूर आन्दोलन मार्क्स के दर्शन से आज भी प्रभावित हैं । दुर्खाइम, वेबर के साथ मार्क्स को समाजविज्ञान के तीन प्रमुख वास्तुकारों मे एक के रूप में स्वीकार जाता है ।

4.3 गाँधी दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त: संक्षिप्त परिचय

गाँधी को 20वी शताब्दी का एक महान दार्शनिक या चिन्तक के रूप में स्वीकारा जाता है तथा उनके विचारों की तुलना उत्तर आधुनिकता, आधुनिकता और भौतिकवादी जीवन का विकल्प, वैकल्पिक आर्थिक विकास का मार्ग पर्यावरण संरक्षण, नारीवाद, इत्यादि अनेक धाराओं द्वारा प्रस्तुत चिन्तन से की जाती है । नैतिकता, स्वतंत्रता समानता तथा न्याय पर आधारित समाज का पुनर्गठन करने के लिए गाँधी ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था में सुधार के संबंध में महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं जो निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित हैं

4.3.1 सत्य और अहिंसा

सत्य और अहिंसा महात्मा गाँधी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं । सत्य और अहिंसा उनके अनुसार मानव जीवन तथा सामाजिक संबंधो की आधारशिला है । उनके अनुसार वास्तविकता में केवल सत्य का ही अस्तित्व है, अन्य सब कुछ मिथ्या है । उनके अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य सत्य की खोज करना है और तदानुरूप जीवन को व्यवस्थित करना है । मानव में निहित कमियों के कारण गाँधी ने पूर्ण अथवा निरपेक्ष सत्य व्यक्ति द्वारा अप्राप्य माना, परन्तु इस बात पर बल दिया कि मनुष्य को फिर भी उसके द्वारा प्राप्य सापेक्ष सत्य पर सदैव अडिग रहना चाहिए और निरपेक्ष सत्य की खोज में आगे बढ़ना चाहिए ।

सत्य की खोज के लिए गाँधी ने अहिंसा पर दृढ संकल्पित रहने को अपरिहार्य माना । उनके अनुसार अहिंसा के बिना सत्य नहीं प्राप्त किया जा सकता है । इसलिए अहिंसा का अनुसरण करना मनुष्य के लिए जरूरी है । गाँधी ने अहिंसा के तीन प्रकार पर प्रकाश डाला है । प्रथम, जीवन सिद्धान्त के रूप में अपनाये जाने वाली अहिंसा, जिसे गाँधी ने वीरों की अंहिसा

कहा है क्यों कि इसे हर परिस्थिति में अपनाया जाने की बात निहित है । द्वितीय, नीतिगत अहिंसा, जिसे गाँधी ने अवसरवादियो की अहिंसा कहा है क्यों कि इसे उन्हीं परिस्थितियों में अपनाने की बात की जाती है जब ऐसा करना फायदेमंद लगता हो । तृतीय, डर के मारे असहायों के द्वारा अपनाया गया अहिंसा जिसे गाँधी ने कायरों की अहिंसा कहा है । गाँधी की अहिंसा कायरता अथवा अवसरवाद का सशक्त विरोध करती है और जीवन सिद्धान्त के रूप में अहिंसा को अपनाने पर बल देते हैं ।

4.3.2 साधन तथा साध्य की पवित्रता

गाँधी ने साधन तथा साध्य को अलग नहीं माना । उनके अनुसार साधन ही कालान्तर में साध्य बनता है । उनके अनुसार साधन बीज तथा साध्य पेड़ू के समान हैं और इन दोनों का अटूट सम्बन्ध हैं । इस कारण गाँधी ने साध्य की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता को अपरिहार्य माना गया है । गाँधी इस मत पर दृढ थे कि चाहे कितना ही महान् उद्देश्य या बडा लाभ अथवा हानी हो, अनैतिक साधनों का प्रयोग नहीं किया जा सकता । उनके अनुसार नैतिकता का परित्याग करना हर परिस्थिति में वरजित है । साध्य व साधन की पवित्रता के प्रबल समर्थक होने के कारण ही गाँधी ने जीवन के हर क्षेत्र में इसे अंगीकार करने तथा उसे आध्यात्मिकता से अभिन्न बताते

हु ये व्यक्ति की सामाजिक व आर्थिक गतिविधियों का ही नहीं, अपितु राजनीति का भी आध्यात्मीकरण करने की आवश्यकता पर बल दिया ।

4.3.3 ईश्वर में आस्था

संपूर्ण ब्रह्माण्ड के सत्य को निर्धारित और मर्यादित करने की शक्ति को गाँधी ने ईश्वर के रूप में पहचाना और कहा कि सत्य ही ईश्वर है । ईश्वर में आस्था उनके अनुसार सभी नैतिक मूल्यों की नीव है । उन्होंने ईश्वर को किसी विशेष रूप में परिभाषित करने का प्रयास नही किया अपितु प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रता प्रदान की कि वह ईश्वर और सत्य को खुद पहचाने और तदानुरूप जीवन जीने का प्रयास करे । गाँधी नास्तिक विचार रखने वाले व्यक्ति से भी आपत्ति नहीं थी यदि वह व्यक्ति सत्य और नैतिकता को अपने में अंगीकृत करने वाला हो । गाँधी ने अपनी ईश्वर में आस्था को विकटतम परिस्थितियों में भी उनका पथ-प्रदर्शन करनें वाली शक्ति के रूप में भी स्वीकार किया है ।

4.3.4 व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा की पूर्ण एकता

गाँधी ने मनुष्य को मूल रूप से एक नैतिक प्राणी माना जिसमें ईश्वर के अंश के रूप में अन्तरात्मा विद्यमान है । मनुष्य के आदर्श अस्तित्व में गाँधी ने उसके शरीर, मन और आत्मा में पूर्ण एकता विद्यमान होने की बात की है । उन्होंने यह भी स्वीकारा कि भौतिक जगत के चकाचौंध में व्यक्ति फँसकर खुद के अस्तित्व से पतित हो जाता है । इसलिए गाँधी बार-बार कहते थे कि शरीर पर मन का और मन पर आत्मा का नियंत्रण होना जरूरी है । वे केवल आत्मिक बल के विकास पर ही बल नहीं देते थे अपितु स्वस्थ शरीर और मन के विकास पर भी बल देते थे । शरीर, मन और आत्मा के श्रेष्ठ विकास के लिए उन्होंने उपयुक्त शिक्षा

व्यवस्था निर्मित करने पर बल दिया । वे केवल स्वस्थ चिंतन तक सीमित नहीं रहना चाहते थे बल्कि कर्म को महत्वपूर्ण मानते थे । वे व्यक्ति को निशकाम कर्मयोगी बनने की प्रेरणा देते थे । स्वयं उपर्युक्त सिद्धान्त का अनुसरण गाँधी ने अपने जीवन में कथनी और करनी के अन्तर को समाप्त कर दिया था । स्वयं की आवश्यकताओं को कर 'सादा जीवन, उच्च विचार' उनकी जीवन शैली बन गई थी और वे आध्यात्मिक जीवन के जीते-जागते उदाहरण बन गए थे ।

4.3.5 व्यक्ति के सर्वागीन विकास और सर्वोदय के लिए सभी संस्थायें समर्पित

गाँधी ने समाज, राज्य या कोई भी अन्य संस्था का महत्व व्यक्ति के संबंध में ही स्वीकार किया । उनके अनुसार समाज, राज्य या कोई भी अन्य संस्था का महत्व तब तक है जब तक कि वह शक्ति के सर्वागीन विकास के लिए कार्य करता है । गाँधीजी राज्य को हिंसा का संगठित स्वरूप मानते थे और आदर्श के तौर पर एक राज्य विहीन सर्वोदय समाज की कल्पना करते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति उसके समाज में रहने वाले सभी अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिए समर्पित है । इस तरह गाँधी ने समाज को व्यक्ति के लिए और व्यक्ति को समाज के लिए समर्पित किया और सौहार्दपूर्ण समुदायिक जीवन की नीव रखी । अपने समकालीन में जो कोई भी व्यवस्था अन्यायपूर्ण हो और व्यक्ति के सर्वागीन विकास के लिए बाधक हा, गाँधी उसे बदलना चाहते थे । उनके द्वारा सम्पन्न राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सुधार के कार्य और कार्यक्रम इसी सोच से प्रभावित । वे समाज को समानता व न्याय के आधार पर पुनर्गठित करना चाहते थे । उनके समाज सुधार की योजना रचनात्मक कार्यक्रम का महत्वपूर्ण स्थान था । इसके द्वारा वे गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी को समाप्त कर के साथ ही आर्थिक रूप से देश को सक्षम बनाना चाहते थे । वे भारत को केवल अंग्रेजी शासन से मुक्त स्वराज नहीं समझते थे । उनका मानना था कि स्वराज सही अर्थ में तभी प्राप्त माना जा सकता है जब औसतन ग्रामीण में यह चेतना आये कि वह स्वयं अपना भाग्यदाता है तथा अपने द्वारा चयनित प्रतिनिधि के रूप में वह स्वयं विधायक है । सत्ता के केन्द्रीकरण को वे हिंसा का प्रतीक और लोक हित के विरूद्ध मानते थे । इसलिए उन्होंने सत्ता के अधिकतम विकेन्द्रीकरण करने की बात की और इसे ग्रामीण इकाई के आधार पर लागू करने का विचार रखा ।

4.3.6 न्यासिता का सिद्धान्त

गाँधी का आदर्श समाज एक सर्वोदय समाज है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति उसके समाज में रहने वाले सभी अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिए समर्पित है । ऐसे सर्वोदय समाज के लिए गाँधी ने न्यासिता सिद्धान्त को अपनाना जरूरी समझा है । न्यासिता सिद्धान्त व्यक्ति की क्षमता या कौशल और पूँजी को स्वकेन्द्रित विकास के लिए प्रयोग न करके समाज के सभी लोगों के कल्याण हेतु इनका प्रयोग करने की बात पर बल देता है । इस तरह गाँधी ने सभी व्यक्तियों द्वारा अपनी योग्यता या क्षमता अनुरूप समाज को देने और आवश्यकता अनुरूप समाज से प्राप्त करने के सिद्धान्त का भी समर्थन करते हैं । न्यासिता के माध्यम से गाँधी वर्ग संघर्ष और हिंसा को दूर कर वर्ग सहयोग और अहिंसा और परोपकार पर आधारित समुदायिक जीवन को प्रतिस्थापित करना चाहते थे ।

4.3.7 श्रम का महत्व और अंधाधुन्ध औद्योगीकरण का विरोध

गाँधी ने वैज्ञानिक आविष्कारों पर आधारित अंधाधुन्ध औद्योगीकरण और मशीनीकरण का तीव्र विरोध किया है । उनके विरोध का आधार नैतिक है । बडे उद्योगों की स्थापना के लिए बहुत अधिक मात्रा में कच्चे माल तथा बडे बाजारों की खोज की यह प्रवृत्ति साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद को जन्म देती है जो शोषण पर आधारित और नैतिकता के विरूद्ध है । इसी तरह गाँधी द्वारा मशीनीकरण के विरोध का मूल कारण यही था कि मशीनों ने ही एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का अथवा एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र का शोषण करने में समर्थ बनाया है । मशीनों के कारण ही मानव का शारीरिक तथा नैतिक पतन हुआ है । वे केवल ऐसे अपरिहार्य औद्योगिकरण का समर्थन करते थे जो मानव कल्याण पर आधारित हो । गाँधी ने औद्योगीकरण के स्थान पर कुटीर उद्योगों का समर्थन किया क्योंकि इसके द्वारा ही भारत के करोड़ों ग्रामीण बेरोजगार, भूखे लोगों को शारीरिक श्रम द्वारा आजीविका का साधन मिल सकता था और उत्पादन जनता के हाथ में आने से अर्थ-व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण होता था । अत: उनका कहना था कि मशीनें भी कायम रहे लेकिन वे पूर्णतया मानवीय श्रम का स्थान न लें । मानव श्रम को वे मनुष्य के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण मानते थे और कहते थे कि हर व्यक्ति को कुछ-न-कुछ प्रकार का कायिक श्रम रोज करना चाहिए । कायिक श्रम की अनिवार्यता और उसे महत्व प्रदान कर गाँधी शारीरिक श्रम के प्रति समाज की हेय दृष्टि और फलस्वरूप श्रमिकों को समाज में प्राप्त असमान और अन्यायपूर्ण अवस्था को बदल देना चाहते थे ।

4.3.8 सत्याग्रह का सिद्धान्त

सत्य महात्मा गाँधी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं । इसकी प्राप्ति ही उनके अनुसार मनुष्य जीवन का लक्ष्य है । सत्याग्रह संस्कृत भाषा के दो शब्द 'सत्' और 'आग्रह' को जोड कर बना है । इसका शाब्दिक अर्थ है 'सत्य के लिए आग्रह करना', 'सत्य पर अडे रहना' और 'सत्य का अनुसरण करना' । उपर्युक्त अर्थ से एक और अर्थ निगमनात्मक रूप से निकाला जा सकता है और वह है 'असत्य का विरोध' करना । चूँकि समाज में फैले अनेक अन्याय का आधार असत्य पर टिका हुआ है इसलिए सत्याग्रह 'अन्याय का विरोध' भी करना है । सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सत्याग्रह से गाँधीजी का अभिप्राय सत्य एव न्याय के रास्ते पर चलना तथा असत्य व अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करना है । यह संघर्ष नैतिक और अहिंसात्मक संघर्ष है जिसमे शुद्ध अथवा नैतिक साधन का प्रयोग किया जाना अनिवार्य है और मन, वचन और कर्म से हिंसा को त्याग कर अहिंसा को एक सिद्धान्त के रूप मे स्वीकार किया जाता है । सत्याग्रह को अपनाने वाला कर्ता और कार्य भेद करते हुए पाप अथवा अन्याय को समाप्त करना चाहता है पापी अथवा अन्यायी को नहीं । यह घृणा और हिंसा को समाप्त कर उनके स्थान पर प्रेम और अहिंसा को विराजमान करना चाहता है । ऐसा करके यह प्रतिपक्ष हृदय परिवर्तन कर उसे अन्याय के रास्ते से प्रथक कर अन्याय को जड से समाप्त करना चाहता है।

4.3.9 वसुधैव कुदुम्बकम या अन्तरराष्ट्रीयता का सिद्धान्त

गाँधी केवल अपने देश के लोगों के लिए ही स्वतंत्रता, समानता, न्याय और की कामना नहीं करते थे बल्कि उनकी सेवा का कार्य-क्षेत्र सम्पूर्ण मानवता या विश्व है। सम्पूर्ण मानवता विश्व को गाँधी एक बडा पेरवार मानते थे । उनका कहना था कि वे भारत की स्वतंत्रता के लिए जीने-मरने को तैयार है, लेकिन यह स्वतंत्रता वे किसी अन्य देश के शोषण या पतन की कीमत पर प्राप्त नहीं करना चाहते हैं । वसुधैव कुटुम्बकम की उनकी सोच में यह शिक्षा निहित है कि व्यक्ति को परिवार के लिए, परिवार को गाँव के लिए, गांव को जिले के लिए, जिले को प्रान्त के लिए और प्रान्त को देश के लिए मर जाना चाहिए और अवश्यकता पडने पर विश्व के कल्याण के लिए देश को भी बलिदान हाने के लिए तैयार होना चाहिए ।

4.4 कार्ल मार्क्स के प्रमुख सिद्धांत: संक्षिप्त परिचय

कार्ल मार्क्स ने वैज्ञानिक समाजवाद का सिद्धान्त दिया । मानव सभ्यता के सम्पूर्ण इतिहास को मार्क्स ने भौतिकवाद के आधार पर समझाने का प्रयास किया है । मार्क्स ने पदार्थ अथवा को इतिहास में आए परिवर्तन के लिए निर्णायक कारक माना है । उनके अनुसार समाज सदैव दो वर्गो में बटा हुआ है - सम्पत्तिवान वर्ग और सम्पत्तिविहीन वर्ग। उत्पादन शक्तियों के नियंत्रण पर समाज में जैसे- परिवर्तन आता है वैसे ही सामाजिक संरचनाओं में भी परिवर्तन आता है । आदि काल से सम्पत्तिवान वर्ग का उत्पादन शक्तियों पर नियंत्रण कर रहे है और वे इस शक्ति का प्रयोग अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए करते हैं और ऐसा करने के लिए वे सम्पत्तिविहीन वर्ग का शोषण करते हैं । आधुनिक समय में जहाँ पूँजीपति सम्पत्तिवान वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं और मजदूर या श्रमिक सम्पतिविहीन वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । कार्ल मार्क्स ने शोषणयुक्त पूँजीवादी व्यवस्था को जड़-सहित उखाड़ फैंकने के लिए विश्व भर के श्रमिकों को एक होने का नारा दिया । उनके अनुसार श्रमिकों में एकता से राजनीतिक शक्ति उनके पास आयेगी और इस शक्ति का प्रयोग पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करने के लिए किया जाएगा । इस व्यवस्था को मार्क्स ने समाजवादी व्यवस्था कहा जो उनके अनुसार क्रमश: एक वर्गविहीन राज्यविहीन, शोषणविहीन और समतावादी समुदायिक समाज में परिवर्तित होगा । यह मार्क्स द्वारा प्रतिपादित आदर्श व्यवस्था है और इसे साम्यवादी व्यवस्था का नाम दिया है ।

'साम्यवाद का घोषणा पत्र' और 'दास केपिटल' में मार्क्स ने उपर्युक्त विचारों को प्रस्तुत किया है । मार्क्स के इन विचारों को मार्क्सवाद कहा जाता है और इसके कुछ प्रमुख सिद्धान्त हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
3. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त
4. वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त

4.4.1 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दो शब्दों 'द्वन्दवाद' तथा दूसरा 'भौतिकवाद' से मिलकर बना है एक । 'द्वन्दवाद' 'वाद-प्रतिवाद' की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है । मार्क्स के अनुसार 'वाद' एक विचार है और 'प्रतिवाद' इस 'वाद' का विरोधात्मक विचार है । 'वाद-प्रतिवाद' के चलते 'द्वन्दवाद' में गतिशीलता निहित है और परिणाम स्वरूप एक नया विचार उत्पन्न होता है जिसे संश्लेषण या संवाद कहा गया है । किसी विशेष समय का संश्लेषण अन्य किसी समय में नए 'वाद' का रूप धारण कर लेता है जो नए 'प्रतिवाद' को जन्म देता है और पुन: कुछ नया संश्लेषण होता है । ऐसा निरंतर चलता रहता है । 'भौतिकवाद' पदार्थ को महत्वपूर्ण मानता है और समस्त 'वाद-प्रतिवाद और संवाद' के पीछे इसे निर्धारक मानता है । मार्क्स के अनुसार पदार्थ में गतिशीलता निहित है जिसके विद्यमान होने के कारण इसमें परिवर्तन होते रहते हैं । गतिशील पदार्थ मानव चेतना को प्रभावित करता है ।

मार्क्स का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था । वे केवल उसे ही सत्य मानते थे जो दिखायी देता है, जिसका स्पर्श किया जा सकता है या जिसकी जाँच की जा सकती है । इसलिए भौतिक पदार्थ ही मार्क्सवाद मे सर्वथा सत्य माना गया है, अदृश्य विचार या विश्वास नहीं । मार्क्स ने कहा कि निरन्तर प्रयासों और प्रयोगों द्वारा इस सत्य को समझा जा सकता है और वांछित परिस्थितियों का, जैसे समाजवाद और साम्यवाद, निर्माण किया जा सकता है ।

4.4.2 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

मार्क्स ने मानव इतिहास को आर्थिक आधार पर समझाने का प्रयास किया है । उनके अनुसार मानव जीवन के कुछ मूलभूत आवश्यकतायें होती हैं जिनकी पूर्ति करने के लिए वे सामाजिक जीवन जीते हैं । मानव समाज में जो भी परिवर्तन या विकास हुआ है उन्हें समझने के लिए उनके द्वारा जीवन के मूलभूत आवश्यकताओं को सामूहिक रूप से पूर्ति करने के लिए किए गए सामूहिक प्रयास के आधार पर समझा जा सकता है । आर्थिक गतिविधियाँ समाज में विद्यमान होने वाली वर्गो और उनके परस्पर संबन्ध को और सामाजिक और राजनीतिक सोच और व्यवस्थाओं को निर्धारित करती हैं । मार्क्स के अनुसार जीवन के मूलभूत आवश्यकताओं को उत्पादित करने के लिए विभिन्न व्यक्ति अलग-अलग प्रकार के काम करते हैं और इस आधार पर उनमें परस्पर उत्पादन संबन्धों का विकास होता है । मार्क्स के अनुसार किसी विशेष समय में समाज में स्थापित उत्पादन सम्बंध उसमें उस समय विद्यमान उत्पादक शक्तियों पर निर्भर करता है । उत्पादक शक्तियों में मार्क्स ने उत्पादन के विभिन्न साधन जैसे उपकरणों, प्रोद्योगिकी, भूमि, कच्चा माल और उत्पादन-साधन संबंधी मानव ज्ञान और कौशल को सम्मिलित किया है । मार्क्स का यह भी कहना है कि कुछ व्यक्ति उत्पादन के साधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेते हैं और अनेक अन्य व्यक्तियों को इनसे वांछित कर देता हैं । इस तरह समाज में 'सम्पन्न वर्ग' और 'सम्पन्न-विहीन वर्ग' उत्पन्न हो जाते हैं । 'सम्पन्न वर्ग' अपनी सभी आवश्यकतायें 'सम्पन्न-विहीन वर्ग' के श्रम से पूर्ति करवाते हैं । प्राकृतिक संसाधनो की सीमितता, मनुष्यों में सम्पन्नता और सम्पन्न-विहीनता और परिस्थितिजन्य मनुष्यों मे

स्वार्थ की प्रकृति जैसे अनेक कारणों से 'सम्पन्न वर्ग' 'सम्पन्न-विहीन वर्ग' का शोषण करती है और समाज में वर्ग संघर्ष उत्पन्न होता है।

मार्क्स ने मानव इतिहास को आर्थिक आधार पर समझाते हुए इसकी छः अवस्थाएँ उल्लेख की है

(i) आदिम साम्यवादी अवस्था - इसमें उत्पादन की शक्तियाँ बहुत कम थीं इसमें भोजन प्राप्त करने का मुख्य स्त्रोत प्राकृतिक खाद्य पदार्थ और शिकार था । उसके साधन पत्थर, तांबे, कांसे, लोहे के बने हथियार थे । उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व सामाजिक था । इस अवस्था में न कोई शोषक था और न कोई शोषित ।

(ii) दास अवस्था - इस अवस्था में कृषि का आविष्कार हुआ । मानव पालन और खेती करने लगे । पशुओं, भूमी और उत्पादन-साधना पर कुछ लोगों का नियंत्रण स्थापित हुआ और इस अवस्था में निजि सम्पत्ति की धारणा विकसित हुई । पशु भूमी और उत्पादन-साधन सम्पत्ति बने और इन पर जिसका आधिपत्य था वे स्वामी बन गए । इनसे वांछित व्यक्ति दास बन गए और वे जीवन के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्पत्तिवान वर्ग पर आश्रित हो गए । इस प्रकार इतिहास में दास अवस्था का प्रारंभ हुआ । दास भी स्वामी की सम्पत्ति का अंग बन गए ।

(iii) सामन्तवादी अवस्था - दास अवस्था में निहित कमजोरियों के कारण वह विनाश होने लगता है और अभिजात वर्ग का विकास होता है । अभिजात वर्ग अन्ततः दास का विनाश कर समाज को नवीन अवस्था की ओर ले जाता है । अभिजात वर्ग आर्थिक, और सामाजिक व्यवस्था पर नियंत्रण शक्ति स्थापित करने में सफल होते है और वे समाज का नेतृत्व करने लगते हैं । अभिजात वर्ग में राजा और उनके सामन्त समिलित होते हैं जो शासक बन जाते हैं और जिन पर वे शासन करते हैं वे गुलाम कृषक-दास बन जाते हैं । क्रमशः व्यापार का महत्व बढ़ने लगता है और पूँजी का उदय होता है । व्यापार और पूँजी मध्यम वर्ग के विकास में योगदान देते हैं । इतिहास में यह अवस्था यूरोप की छटे से तेरहवीं शताब्दी के 'अंधकार युग' को दर्शाता है । मध्यम वर्ग अन्ततः सामन्तवादी अवस्था का विनाश करती है ।

(iv) पूँजीवादी अवस्था - इस अवस्था में विज्ञान और तकनीक का महत्व बढता है । यह अवस्था सामन्त अवस्था के पतन और पूँजीवाद के विकास से प्रारम्भ होती है । ज्ञान में विकास होने से उत्पादन के साधनों में क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं । कृषि का कम और उद्योगों का महत्व बढ जाता है । मध्यम वर्ग अपनी पूँजी उद्योगों में निवेश करता है और आर्थिक शक्ति के आधार पर राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित में सफल होता है । उद्योगों के विकास के साथ मध्यम वर्ग पूँजीपति वर्ग बन जाते हैं। सामंतवादी अवस्था के गुलाम वर्ग पूँजीपति वर्ग के उद्योगों में अपना श्रम प्रदान कर अपनी आजीविका का प्रबन्ध करते हैं । ये इस अवस्था के श्रमिक वर्ग कहलाते हैं । पूँजीवादी अवस्था में इस तरह समाज दो वर्गो में पूँजीवादी और सर्वहारा या श्रमिक वर्गो में विभक्त हो जाता है । पुनर्जागरण और औद्योगिक क्रांति का समय

पूँजीवादी अवस्था का समय माना जा सकता है । पूंजीपतियों में आपसी फूट और श्रमिकों में बढ़ती एकता पूँजीवाद अवस्था के पतन में अन्ततः परिणीत है ।

(v) सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की अवस्था - यह अवस्था पूँजीवाद के पतन से उदय होता है । इसमें सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवादी शासन स्थापित होता जो समस्त उत्पादन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर पूँजीपति वर्ग का समुचय विनाश करने का लक्ष्य रखती है ।

(vi) साम्यवादी अवस्था - सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवादी शासन स्थापित होने और पूँजीपति वर्ग का समुचय विनाश करने का उद्धेश्य से कार्य करते हुए अन्तत. साम्यवादी अवस्था का निर्माण होगा जो वर्ग-विहीन और राज्य-विहीन समाज होगा । इसमें न कोई शोषक होगा और न ही कोई शोषित । इसमें सभी सौहार्दपूर्ण और सीयोग पर आधारित समुदायिक जीवन व्यापन करेंगे ।

4.4.3 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

मार्क्सवाद में विवेचित अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त के मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं -

(i) 'मूल्य' दो अर्थो में प्रयोग किया गया है - मार्क्सवाद में विवेचित अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त समझने के लिए 'मूल्य' को जिस अर्थ में प्रयोग किया है उसे समझना जरूरी है । 'मूल्य' के दो अर्थ हैं । इसका एक अर्थ है 'किसी वस्तु का उपभोगिता के लिए व्याप्त महत्व या मूल्य जिसे 'उपयोग मूल्य' कहा गया है ।'मूल्य' का दूसरा अर्थ तब उत्पन्न होता है 'जब किसी वस्तु को बाजार में बेचा जाता है । जब कोई क्रेता किसी विक्रेता से कोई वस्तु खरीदता है तो उसे कोई मूल्य चुकाना पडता है । जिस मूल्य पर क्रेता विक्रेता से वस्तु खरीदता है उसे उस वस्तु का विनिमय मूल्य कहा जाता है ।

(ii) वस्तुओं का विनिमय मूल्य उनकी उपयोगिता अर्थात् उपयोग मूल्य पर निर्भर नहीं करता बल्कि उनके उत्पादन में लगाये गये श्रम की मात्रा पर निर्भर करता है । प्रत्येक वस्तु का विनिमय मूल्य इस आधार पर निर्धारित होता है कि उसमें मानव श्रम खर्च किया गया है या नहीं ।

(iii) वस्तुओं के विनिमय मूल्य और श्रमिकों द्वारा प्राप्त पारिश्रम में अन्तर होता है जिसे अतिरिक्त मूल्य कहा गया है । मार्क्स के अनुसार इस मूल्य पर श्रमिकों का हक होना चाहिए पर वास्तविकता यह है कि पूँजीपति इसे हडप लेते हैं ।

4.4.4 वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त

वर्ग संघर्ष भी मार्क्सवाद का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है । मार्क्स के अनुसार मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है । मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या करते हुए कहा है कि आदि काल से समाज दो वर्गो में बटा हुआ है । ये दो वर्ग हैं सम्पन्न-वर्ग और सम्पन्न-विहीन वर्ग । अलग-अलग युग में ये दो वर्ग अलग-अलग नाम से जाने जाते हैं, जैसे दास अवस्था में स्वामी और दास, सामन्तवादी अवस्था में सामन्त और कृषक-दास पूँजीवादी अवस्था में पूँजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग । दोनों वर्गो के आर्थिक-सामाजिक हितों में

विरोधाभास होने के कारण उनमें निरन्तर संघर्ष विद्यमान रहता है । इतिहास के हर बीते युगों में समाज इस तरह दो वर्गो के मध्य संघर्ष से परिलक्षित है जैसे दास अवस्था में स्वामी वर्ग का दास वर्ग से, सामन्तवादी अवस्था में सामन्त वर्ग का कृषक-दास वर्ग से और पूँजीवादी अवस्था में पूँजीपति वर्ग का श्रमिक या सर्वहारा वर्ग से संघर्ष । मार्क्स के अनुसार वर्ग-संघर्ष इतिहास के विकास में समाज का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन दो विरोधी वर्गो के निरन्तर संघर्षो से हुआ है । मार्क्स के अनुसार अन्ततः यह संघर्ष स्पष्टतः पूँजीपति और सर्वहारा में होता है जिसमें सर्वहारा वर्ग की विजय अवश्यम्भावी है । वर्ग संघर्ष सिद्धान्त के आधार पर मार्क्स ने यह भी कहने का प्रयास किया है कि पूँजीवाद की प्रकृति आत्मघाती है । पूँजीवाद की लाभ की प्रवृत्ति, अतिरिक्त मूल्य को अकेले हडप करने की अभिलाषा, पूँजी का केन्द्रीकरण, श्रमिक वर्ग की बढती हुई बेरोजगारी की समस्या, निर्धनता, शोषण, इत्यादि अन्ततः श्रमिकों मे वर्ग चेतना का विकास करता है और उनमें सहयोग की भावना उत्पन्न होता है । ये सब मिलकर अन्तत, पूँजीवाद की कब को तैयार करते हैं

4.5 गाँधी और मार्क्स के विचारों की तुलना

4.5.1 गाँधी और मार्क्स के विचारों में समानता

गाँधी एवं मार्क्स के विचारों में अद्भुत समानतायें हैं । जब भी समाज में फैले अन्याय को दूर करने की बात की जाती है ये दोनों महान विचारकों द्वारा बताये गये परिवर्तन या क्रान्ति - के दर्शन पर विचार किया जाता है ।

गाँधी एवं मार्क्स के विचारों में विद्यमान समानताओं को हम निम्नलिखित आधार पर व्यक्त कर सकते हैं :-

4.5.1.1 सामाजिक संघर्ष के संबन्ध में विचार

महात्मा गाँधी एवं मार्क्स ने सामाजिक संघर्ष को मानवीय जीवन का यथार्थ माना । भौतिक जगत की चकाचौंद रो भ्रमित होकर अपने आध्यात्मिक अस्तित्व से जुडे मूल्यों को भूलना और जीवन व्यापन करना, गाँधीजी के अनुसार सामाजिक संघर्ष का कारण है । गाँधी ने मनुष्य को एक दिव्य प्राणी के रूप में स्वीकार किया है जिसके जीवन के साथ कुछ नैतिक मूल्य जैसे सत्य, अहिंसा, परोपकार, सहिष्णुता, अस्तेय त्याग, इत्यादि जुडे हुए हैं । वे मानते थे कि जिस हद तक मनुष्य इन नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात कर सकेंगे उतनी ही मात्रा में मनुष्य अपनी मूल प्रकृति के करीब होंगे और आन्तरिक स्तर पर संघर्षो का अभाव होगा । उनके अनुसार जिस समाज में ज्यादा से ज्यादा लोग मानवीय अस्तित्व से जुडे नैतिक मूल्यों को आत्मसात कर आचरण करेंगे उस समाज मे संघर्ष न्यूनतम होगा । इसलिए सामाजिक संघर्षो को कम करने के लिए गांधी व्यक्ति के नैतिक उन्नयन पर जोर देते है । उनका विश्वास था कि मनुष्य ऐसी प्रगति कर भी सकते हैं ।

मार्क्स के अनुसार सामाजिक संघर्ष के पीछे उत्पादन शक्ति पर नियंत्रण मूल कारण है । उनके अनुसार प्रत्येक समाज में उत्पादन शक्ति पर कुछ लोगों का नियंत्रण होता है और बहुत लोग ऐसे नियंत्रण से वंचित होते हैं ।इस तरह समाज सदैव दो वर्गो में बटा हुआ रहा है

जिसे सम्पन्न वर्ग सम्पन्न-विहीन वर्ग कहा जा सकता है । दोनों के हितों में अन्तर-द्वन्द होने के कारण वर्ग संघर्ष विद्यमान है । आर्थिक व्यवस्था के क्षेत्र में विद्यमान संघर्ष अन्य व्यवस्थाओं जैसे सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं और उनमे व्याप्त संघर्षो को निर्धारित करता है । मार्क्स के अनुसार मानव आचरण भौतिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होती हैं, वह मूल रूप से अच्छा या बुरा नहीं है । सामाजिक संघर्षों को नियंत्रित करने के लिए उत्पादन शक्ति पर नियंत्रण जरूरी करना है । मार्क्स ने कहा कि जब 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवादी शासन' में राज्य सत्ता श्रमिकों के हितानुसार उत्पादन शक्ति पर नियंत्रण स्थापित कर पूँजीपति वर्ग को सम्पूर्ण रूप से समाप्त करने में सफल हो जाएगा तो आर्थिक संघर्ष समाप्त हो जायेंगे और इसके साथ सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष भी समाप्त हो जायेंगे ।

4.5.1.2 मानव शोषण और शोषितों के उत्थान संबंधी विचार

गाँधी ने हर प्रकार के शोषण का विरोध किया । आध्यात्मिकता से प्रेरित होने के कारण गाँधी शोषण को ईश्वर, सत्य और अहिंसा विरोधी मानते थे । उनका मानना था निर्पेक्ष सत्य जिसे ईश्वर कहा जा सकता है, वह संपूर्ण सृष्टि में विद्यमान है । मनुष्य जीवन का लक्ष्य इस सत्य या ईश्वर का प्राप्त करना है । उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य में यह निर्पेक्ष सत्य या ईश्वर अन्तरात्मा के रूप में विद्यमान है और अत: सभी व्यक्ति मूल रूप से समान भी है और आदर प्रदान करने के पात्र भी । मानव होने के नाते उसमें कुछ नैसर्गिक कमियाँ भी हैं जिसके कारण उसके लिए अहिंसा अपनाना जरूरी भी है क्योंकि इसके अभाव में वह सत्य की ओर अग्रसर नहीं हो सकता है । गाँधी ने अहिंसा को व्यापक अर्थ में प्रयोग किया । उनके लिए इसका अर्थ केवल अन्य मनुष्यों के विरूद्ध मन वचन और कर्म से हिंसा नहीं करने तक सीमित नहीं है अपितु सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति ऐसा भाव रखना है । इसके साथ-साथ गाँधी ने अहिंसा को निष्किय व्यवहार से मुक्त कर उसे सक्रिय व्यवहार से जोड़ा । अस अर्थ में अहिंसा उनके लिए आत्मशुद्धि, प्रेम, परोपकार, सहिष्णुता, त्याग और आत्मपीडा जैसे मूल्यों को आत्मसात करना भी है । इस तरह किसी का शोषण नहीं करना गाँधी द्वारा कल्पित अहिंसा का अन्तरंग भाव है पर इस तक सीमित नहीं है । अपितु इसके आगे क्या किया जाए और कैसे किया जाए, इसका मार्ग प्रशस्त करने का कार्य उनके द्वारा कल्पित अहिंसा का अहम हिस्सा है । उनके द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह और सर्वोदय का दर्शन इस संदर्भ में समझा जाना आवश्यक है ।

मार्क्स ने समाज में व्याप्त हर प्रकार के शोषण का विरोध किया । आर्थिक नियतिवाद से प्रेरित मार्क्स के अनुसार शोषण का मूल कारण उत्पादन शक्ति पर नियंत्रण की प्रकृति है । मार्क्स के अनुसार निजि सम्पत्ति के उद्भव के साथ-साथ सामर्थ्यवान लोग उत्पादन शक्ति पर नियंत्रण स्थापित करने में सफल हुए और इसके माध्यम से अर्थ-व्यवस्था और तदुपरान्त राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं पर अपना नियंत्रण स्थापित करने में सफल हुए । अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए इन सामर्थ्यवान लोगों ने सामान्य लोगों को उत्पादन शक्ति पर नियंत्रण से वांछित किया और इस तरह सामान्य लोग सामर्थ्यवान लोग जो सम्पन्न हो चुके थे, उनपर अपनी आजीविका के लिए आश्रित हो गए और शोषित होने लगे । इस तरह शोषण परिस्थितिजन्य है, वह विद्यमान भौतिक परिस्थितियों का परिणाम है ।

मार्क्स के अनुसार दास युग, सामन्तवादी युग और पूँजीवादी युग में केवल कुछ के पास सम्पत्ति या सम्पन्नता थी और बहुत सारे लोगों में सम्पत्ति-विहीनता या सम्पन्न-विहीनता थी और परिणामस्वरूप बहुतायत में समाज में शोषण और अन्याय फैला हुआ था । इसलिए कुछ लोग सुखी और अधिकांश लोग दुखी रहने लगे । मार्क्स के अनुसार सम्पत्तिवान लोगों को तर्क के आधार पर या भावुकता के आधार पर स्वैच्छा से अन्यायपूर्ण और शोषणयुक्त व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिए प्रभावित नहीं किया जा सकता और बल प्रयोग और हिंसा अपरिहार्य बन जाता है । अत: ऐसी अन्यायपूर्ण व्यवस्था को बदलने के लिए मार्क्स ने सम्पत्ति-विहीन वर्ग, जिसे अपने समकालीन समाज में मार्क्स ने श्रमिक वर्ग के रूप में पहचाना, उनमें चेतना जागत कर उन्हें संघटित कर सर्व-प्रथम उत्पादन शक्ति पर अपना नियंत्रण स्थापित करने और तदुपरांत अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित करने को कहा और ऐसा करते हुए पूँजीपतियों के अस्थित्व को मिटा देने को कहा ।

4.5.1.3 समाजवाद संबंधी विचार

गरीब, शोषित और असहाय जनता के उत्थान के लिए गाँधी और मार्क्स सक्रिय प्रयास और कर्म पर बल देते हैं । दोनों ने निजी सम्पत्ति का विरोध किया और चहते थे कि सम्पत्ति का प्रयोग समाज हित को ध्यान में रखते हुए किया जाए । इस दृष्टि से गाँधी और मार्क्स समाजवाद के समर्थक कहे जा सकते हैं । गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य ने जो भी प्राप्त किया है वह प्रकृति अथवा समाज से लिया हुआ है इसलिए निजी सम्पत्ति की धारणा गलत है । मनुष्य को प्रकृति से उतना ही प्राप्त करना चाहिए जितना कि उसे जरूरत है । सम्पत्ति या धन संचयन करना गलत है । उनके अनुसार इसकी जरूरत भी नहीं है क्योंकि प्रकृत्ति में इतनी मात्रा मे सम्पदा विद्यमान है कि वह प्रत्येक मनुष्य की हर आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है । उनका मानना था कि विलासिता मनुष्य को उसके जीवन के आध्यात्मिक लक्ष्य से प्रथक करती है । अत: सरल सादा जीवन भी गाँधी के अनुसार महत्वपूर्ण है । उन्होंने स्वीकारा कि हर व्यक्ति में आवश्यकताओं और क्षमताओं के आधार पर भिन्नतायें विद्यमान हैं । परिणामस्वरूप समाज से प्राप्त करने या उसको प्रदान किए जाने वाले योगदान मे भिन्नतायें देखने को मिलती हैं । गाँधीजी ने अत: उस समाजवादी सिद्धान्त को स्वीकार किया जो यह प्रतिपादित करता है कि 'प्रत्येक से उसकी क्षमता अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता अनुसार' । समाजवादी विचार के साथ-साथ गाँधी ने न्यासिता का सिद्धान्त भी दिया जो प्रत्येक क्षमतावान व्यक्ति को उसके समाजिक दायित्व के प्रति सजग करता है । ऐसे व्यक्तियों को गाँधी निजी सम्पत्ति रखने की अनुमति देते हैं परन्तु प्रयोग निजी सुख या विलासितापूर्ण जिन्दगी जीने के लिए नहीं अपितु समाज में रहने वाले अन्य सभी, विशेष रूप से सबसे पिछडे हुए व्यक्तियों का, सर्वागीन विकास के लिए प्रयोग करने का उपदेश देते हैं ।

मार्क्स ने भी समाजवादी विचारों का प्रतिपादन कर उसे वैज्ञानिक का नाम दिया । मार्क्स का मानना था कि निजी सम्पत्ति की धारणा के विकास के साथ ही समाज दो वर्गो में बट गया, शोषण प्रारम्भ हुआ और समाज में संघर्ष उत्पन्न हुआ । उनका मानना है कि जब तक निजी सम्पत्ति समाप्त नहीं किया जाएगा तब तक समाज में शोषण और संघर्ष विद्यमान

रहेंगे । मार्क्स का कहना है कि पूंजीपति आसानी से निजी सम्पत्ति को त्याग करने के लिए तैयार नहीं होंगे । उनसे बलपूर्वक ही यह काम पूरा किया जा सकता है । मार्क्स के अनुसार यह काम तब किया जा सकता है जब विश्व भर के श्रमिक संगठित होकर 'सर्वहारा का अधिनायकवाद' स्थापित करेंगे और राज्य सत्ता का प्रयोग पूँजीपतियों का अस्थित्व मिटाने और सम्पूर्ण का सामाजीकरण कर उसका प्रयोग श्रमिकों के हित में करेंगे । इसे मार्क्स ने समाजवाद की अवस्था है । मार्क्स के अनुसार इस समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन श्रमिकों के हितों और आवश्यकताओं को ध्यान रखते हुए प्रचुर मात्रा में की जाएगी और ऐसे उत्पादन कार्यो में श्रमिक अपना श्रेष्ठ योगदान भी देंगे । मार्क्स द्वारा प्रतिपादित आदर्श साम्यवादी व्यवस्था 'प्रत्येक से उसकी क्षमता अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता ' सिद्धान्त पर आधारित है ।

4.5.1.4 राज्य और साम्यवाद संबंधी विचार

गाँधी और मार्का दोनो ही राज्य-शक्ति के विरोधी हैं । दोनो राज्य की को संदेह की दृष्टि से देखते हैं और आदर्श व्यवस्था में राज्य-विहीन व्यवस्था प्रतिपादित करते हैं । गाँधी राज्य संगठित हिंसा को प्रतिबिंबित करने वाली संस्था मानते हैं और चूंकि हिंसा सत्य विरोधी है इसलिए गाँधी राज्य-सत्ता विरोधी हैं । उन्हें इस कारण अराजकतावादी भी कहा गया है । गाँधी जी मनुष्य को स्वभाव से अच्छा मानते थे और अहिंसा और प्रेम उसके प्रमुख सद्गुण मानते हुए व्यक्ति को राज्य की बाध्यकारी सत्ता से मुक्त रखने का समर्थन करते थे । वे मानते थे कि व्यक्ति स्वत: ही समाज में व्यवस्था, कल्याण और सुरक्षा को सुनिश्चित के लिए वांछित आचरण कर सकता है । इस कार्य के लिए कोई बाध्यकारी सत्ता की जरूरत नहीं है । केवल इस बात की है कि व्यक्ति को उचित शिक्षा प्रदान कर उसे जागरूक और जिम्मेदार नागरिक बनाया । अपने आदर्श राज्य-विहीन व्यवस्था में गाँधी ने ऐसे राजनीतिक दृष्टि से प्रबुद्ध नागरिकों की कल्पना की जिनपर शासन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये समुदायिक सिद्धान्तों के आधार पर और सर्वोदय लक्ष्य से प्रेरित होकर अपना सामाजिक जीवन व्यापन करते हैं । इस आदर्श व्यवस्था में पूँजीपति और श्रमिक वर्ग भी है और वर्ण व्यवस्था भी, पर ये न तो ऊँच-नीच की भावना से ग्रसित है और न ही शोषण पर आधारित है अपितु अहिंसा, सहयोग और निस्वार्थ भावना से प्रेरित होकर सौहार्दपूर्ण अन्तर-वैक्तिक संबन्धों का संचालन करते हैं । यह व्यवस्था समानता और न्याय का ध्योतक भी हैं।

मार्क्स ने राज्य को पूँजीपतियों के हाथों की कटपुतली माना जो श्रमिकों के शोषण के लिए प्रयुक्त किया जाता है । अपने शोषण से मुक्त होने के लिए मार्क्स श्रमिकों को संगठित होकर राज्य सत्ता पर अपना आधिपत्य स्थापित करने को कहते हैं । इसे वे 'सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद' कहते हैं और इसका लक्ष्य पूँजीपतियों का अस्थित्व मिटाने और सम्पूर्ण सम्पत्ति का सामाजीकरण करना बताते हैं । राज्य जब उपर्युक्त लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हो जाएगा तो मार्क्स ने माना कि राज्य की उपयोगिता समाप्त हो जाएगा और लुप्त हो जाएगा । इस अवस्था को मार्क्स ने साम्यवादी अवस्था कहा । पूँजीपतियों का अस्थित्व खत्म किए जाने के कारण वर्ग मार्क्स की साम्यवादी अवस्था राज्य-विहीन होने के साथ वर्ग-विहीन भी है । सभी श्रमिक हित से सरोकार रखते हैं इसलिए सभी में समानता भी हैं । इस आदर्श व्यवस्थ में

संघर्ष नहीं अपितु सहयोग और सौहार्द विद्यमान है और यह न्यायोचित व्यवस्था का ध्योतक भी है ।

4.5.1.5 द्वन्दवाद संबंधी विचार

गाँधी के विचारों में 'सत्य का आग्रह' और मार्क्स विचारों में 'आर्थिक नियति' का केन्द्रीय महत्व है। दोनो विचारक मानते हैं कि संघर्ष जीवन की सच्चाई है मगर इनका समाधान करके बेहतर अवस्था की ओर बढ़ने का प्रयास किया जा सकता है । गाँधी ने सत्याग्रह का दर्शन दिया और मार्क्स ने वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त प्रस्तुत किया । दोनो ही विचारकों के उक्त दर्शन या विचारों में द्वन्दवाद का सिद्धान्त विद्यमान है । सत्याग्रह दो विरोधाभासी प्रतीत होने वली सोच या अवस्था में सच के खोज की अहिंसात्मक प्रक्रिया है । सत्याग्रह संघर्ष मे लिप्त व्यक्ति को संघर्ष के केन्द्र में विद्यमान मुद्दों को पहचानने, खुद का आत्मावलोकन और पुनर्निरीक्षण करके और पवित्र साधनों के प्रयोग से खुद और विरोधी का बेहतर अवस्था की ओर अग्रसर होने में मदद करता है । इस कारण सत्याग्रह का द्वन्दवाद मूल रूप से सृजनात्मक और रचनात्मक माना गया है ।

मार्क्स के विचारों मे भौतिक पदार्थ का केन्द्रीय स्थान है, यही अनुभविक ज्ञान का आधार है । मार्क्स के अनुसार पदार्थ में गतिशीलता निहित है जिसके विद्यमान होने के कारण इसमें परिवर्तन होते रहते हैं । गतिशील पदार्थ मानव चेतना को प्रभावित करता है । पदार्थ निर्धारित मानव चेतना निरंतर वाद, प्रतिवाद और संवाद की प्रक्रियाओं से गुजरती है । मानव इतिहास के विकास में उत्पादन शक्ति में परिवर्तन के साथ नई आर्थिक परिस्थितियों का विकास होता है जो कि अन्य व्यवस्थाओं, जैसे राजनीतिक और सांस्कृतिक, में परिवर्तन को प्रभावित करती है । वैज्ञानिक रूप से इतिहास में उत्पादन शक्ति में आये परिवर्तन को समझा भी जा सकता है और नियंत्रित भी ताकि वांछित परिवर्तन या व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है ।

4.5.1.6 वैज्ञानिक सोच की समानता

गाँधी और मार्क्स दोनो ही वैज्ञानिक सोच का समर्थन करने वाले विद्वान थे । गाँधी ने अपनी सम्पूर्ण जीवन को सत्य की खोज में संलग्न प्रयास माना । सत्य को उन्होंने अनेक अर्थो में प्रयुक्त किया है जिसमें एक अर्थ 'वास्तविकता' को प्रतिबिंबित करने के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है । सत्य को पहचानने के लिए उन्होंने मनुष्य का अनुभव और तर्क को तो महत्वपूर्ण आधार माना ही परन्तु मानव क्षमताओं की सीमितता के कारण सत्य को पहचानने और समझने के लिए आस्था को भी जरूरी माना । पर गाँधी ने आस्था को तर्क संगत करने पर भी जोर दिया और कहा कि यदि आस्था को तर्क संगत नहीं बनाया गया तो वह मरणासन्न हो जायेगा ।

मार्क्स का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था और वे केवल अनुभविक ज्ञान को सही अर्थो में ज्ञान मानने को तैयार थे । उनके अनुसार विचार अनुभवपरक नहीं है परन्तु पदार्थ अनुभवपरक है । उनका मानना है कि वैज्ञानिक रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है पदार्थ ही मानव चेतना को

निर्धारित करता है और पदार्थ और उससे जुड़ी उत्पादन प्रणालियों में विज्ञान की भाँति सुनियोजित परिवर्तन कर इच्छित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है ।

4.5.1.7 आदर्श के लिए व्यक्ति द्वारा महान त्याग के लिए तैयार रहने संबंधी विचार

गाँधी और मार्क्स असमानता, शोषण, दरिद्रता और अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष का आह्वान करते हैं । दोनों विद्वान जानते थे कि समाज से इन्हें दूर कर आदर्श की ओर अग्रसर होने का राह आसान नहीं है अपितु क्रान्ति लाने के समान है । इस क्रान्ति के लिए दोनों मानते हैं कि व्यक्ति का अपना श्रेष्ठ प्रदर्शन और महानतम बलिदान देने के लिए, यही तक कि अपना जीवन भी न्योछावर करने के लिए, तैयार होना चाहिए । जहाँ गाँधी ऐसा बलिदान सक्रिय अहिंसा और नैतिकता पर अडिग रहकर करने की बात करते हैं वहीं मार्क्स के लिए लक्ष्य प्राथमिक साधन भले कुछ भी हो ।

4.5.1.8 आम आदमी की अपार क्षमताओं में विश्वास संबंधी विचार

गाँधी और मार्क्स को साधारण व्यक्ति की अपार क्षमताओं में बहुत विश्वास था । गाँधी के लिए सत्याग्रही कोई भी बन सकता है यदि वह सत्याग्रह के नैतिक मापदण्डों को पूरा करता हो । गाँधी ने इस कारण शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्ति जैसे नारी, बूड़े, अपंग, आदि कोइ भी सत्याग्रही बनने योग्य बताया । गाँधी का सत्याग्रही चैतन्य अवस्था प्राप्त किया हुआ व्यक्ति है जिसमें सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने का अदम्य साहस है और हर प्रकार का बलिदान करने के लिए तैयार है । गाँधीजी ने जन-जागृति लाकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को जन-आदोलन बनाया और भरत को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र करने में सफल हुए ।

मार्क्स भी जन-सामान्य लोग जैसे श्रमिकों और कृषकों द्वारा क्रान्ति लाने की क्षमताओं में विश्वास करते थे । जन-सामान्य लोग द्वारा सफलतापूर्वक क्रान्ति लाने के लिए मार्क्स उनकी चेतना को जागृत करने और उन्हें संगठित होने के लिए कहते थे । चैतन्य जागृत और संगठित श्रमिक वर्ग मार्क्स के अनुसार 'सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवादी शासन' स्थापित करने और राज्य सत्ता के माध्यम से पूँजीपतियों का अस्थित्व मिटाने में सफल हो जायेंगे और एक समता मूलक और न्याय युक्त साम्यवादी समाज की स्थापना करने में सफल हो जायेंगे ।

4.5.1.9 कोरा सिद्धान्त नहीं सक्रिय प्रयास की आवश्यकता संबंधी विचार

गाँधी और मार्क्स केवल सिद्धान्तों का जाल बुनकर सक्रिय प्रयास से दूर रहने में विश्वास नहीं करते थे । दानों ने अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया । गाँधी ने किसी वाद को प्रतिपादित करने का खण्डन करते हुए कहा कि वे अकादमिक सिद्धान्त निर्माण करने में विश्वास नहीं करते अपितु कर्म करना उनकी प्राथमिकता है । उन्होंने कहा कि वे काई नए सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर रहें है अपितु हजारों साल पहले प्राचीन भारतीय सभ्यता द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्तों और विचारों को दोहराया है । अपने संदेश के लिए जब उनसे निवेदन किया गया तब उन्होंने कहा कि उनका जीवन ही उनका संदेश है ।

यद्यपि मार्क्स ने गाँधी के समान परिवर्तन लाने के आन्दोलनों में व्यक्तिगत भाग नहीं लिया, तदापि उनका समर्थन ऐसे कार्य करने की प्राथमिकता निश्चित रूप से इस कथन से

झलकता है जब वे कहते हैं कि "दार्शनिकों ने विश्व को अनेक प्रकार से व्याख्या की है, मुद्दा यह है कि इसे कैसे बदला जाए ।" इस तरह यह कहना गलत नहीं होगा कि गाँधी और मार्क्स के लिए कोरा सिद्धान्त बिना सक्रिय प्रयास अर्थहीन है ।

4.5.1.10 आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था संबंधी विचार

गाँधी और मार्क्स आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था के कटु आलोचक है । दोनो का मानना था कि आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था ने मनुष्य जीवन को बर्बर बना दिया है । गाँधी ने आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था को मनुष्य के सरल और आध्यात्मिक जीवन में अनेक बाधायें उत्पन्न करने और उसे नैतिक जीवन व्यापन के मार्ग से पथभ्रष्ट करने के लिए आलोचना की । वे अन्धाधुन्ध औद्योगीकरण के विरोधी थे क्योंकि उनके अनुसार यह समाज में अनेक प्रकार की बुराइयाँ, शोषण और अन्याय उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार है । आधुनिक सभ्यता की व्यक्ति को भ्रमित करने वाली भौतिकवादी प्रवृत्तियों के कारण गाँधी ने इसे शैतानी सभ्यता की संज्ञा दी ।

मार्क्स भी आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था को व्यक्ति को बौना करने, उसका जीवन बर्बर बनाने और शोषण एवं अन्एाए फैलाने के लिए आलोचना करते हैं । उनकी आलोचना भौतिकवाद से प्रभावित है और निदान भी वे भौतिकवादी ही देते हैं । मार्क्स के अनुसार आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में जो बर्बरता, अन्याय और शोषण फैला हुआ है, उसके पीछे जो कारण है वह पूँजीपतियों द्वारा उत्पादन की शक्तियाँ जैसे मशीनों का प्रयोग की प्रकृति के कारण है । पूँजीपति अपने स्वार्थ को संरक्षित और संवर्धित करने के मशीनों का प्रयोग करते हैं । उनका उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना है और इसको पूरा करने के लिए वे श्रमिकों का वाजिब हक छीन लेते है । मार्क्स के अनुसार यदि उत्पादन शक्तियों का नियंत्रण पूँजीपतियों से छीन कर श्रमिकों को दे दिया जाए तो उद्योगों और मशीनों का उचित प्रयोग होगा और समाज से अन्याय, असमानता और शोषण दूर हो सकेगा ।

4.5.2 गाँधी और मार्क्स के विचारों में अन्तर

उपयुक्त अध्ययन में हमने देखा कि गाँधी और मार्क्स के विचारों में कुछ समानतायें विद्यमान हैं । परन्तु इन समानताओं के साथ दोनों के विचारों में कुछ अन्तर भी स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं जो निम्नलिखित हैं :-

4.5.2.1 मानव प्रकृति के बारे में व्यक्त विचार

गाँधीजी के विचार अनुसार मनुष्य स्वभावत: अच्छा या गुणों का पुंज है । उसमें ईश्वरीय तत्व के रूप में अन्तरात्मा विध्यमान है । वह बुद्धिमान एवं सामाजिक है । मनुष्यों की असीमित प्रगति करने की क्षमता में गाँधी विश्वास रखते थे और मानते थे कि यद्यपि भौतिक जगत की सांसारिक मायामोह के जंजाल में मनुष्य कभी फँस जाते हैं तदापि वह इससे मुक्त होने और सद्गुणी जीवन व्यापन करने की क्षमता रखते हैं ।

साम्यवादी विचार में मनुष्यों के बारे में विचार व्यक्त करते हुए यह कहा गया है कि उनका स्वभाव न तो अच्छा है और न बुरा । उनका स्वभाव परिस्थितियों द्वारा प्रभावित है । अत: साम्यवाद मनुष्य को 'परिस्थितियों का दास' के रूप में स्वीकारता है ।

4.5.2.2 परिवर्तन में मानव चरित्र और पदार्थ के संबन्ध में व्यक्त विचार

गाँधीजी के विचारों में मानव चरित्र का नैतिक उन्नयन अत्यधिक प्रधान स्थान रखता है । वे मानते थे कि मानव अस्तित्व के मूल मे कुछ नैतिक मूल्य निहित हैं, जैसे सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, आस्थेय, ब्रह्मचर्य, इत्यादि । मानव जीवन का उद्देश्य इन नैतिक मूल्यों को अधिकाधिक अंगीकृत कर श्रेष्ठ व्यापन करना है और ऐसा करके ही मानव आदर्श समाज निर्माण करने में सफल हो सकेंगे । गाँधीजी आत्मिक परिवर्तन और हृदय परिवर्तन पर बल देते हुए व्यवस्थाओं और व्यक्तियों में परिवर्तन लाने की बात करते हैं ।

साम्यवाद भौतिकता को महत्व देता है । मार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सिद्धान्त में पदार्थ को महत्वपूर्ण माना गया है और उत्पादन शक्तियों द्वारा समाज में परिवर्तन किये जाने की बात कही गई है । उत्पादन शक्तियों को वैज्ञानिक तरीके से नियन्त्रित कर उत्पादन सम्बन्धों में और इस आधार पर सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन लाने की बात मार्क्स द्वारा की गयी है । बाह्य परिस्थितियों में परिवर्तन के आधार पर मनुष्यों के विचारों और व्यवहार में परिवर्तन की बात मार्क्स द्वारा की गई है ।

4.5.2.3. संरचनाओं के संबन्ध में मानव का स्थान और महत्व

गाँधीजी के विचार अनुसार सम्पूर्ण व्यवस्थाओं में मनुष्य का केन्द्रीय स्थान हैं । मनुष्य की नैतिक उन्नति और कल्याण के लिए जहाँ तक कोई व्यवस्था मदद कर सकता है वहीं तक गाँधी उसके औचित्यता को स्वीकार करते हैं । अन्य शब्दों में गाँधी के विचारों मे व्यक्ति का केन्द्रीय स्थान है । व्यक्ति साध्य है और अन्य सभी संस्थायें साधन मात्र हैं ।

मार्क्स के लिए साम्यवाद और उसकी प्राप्ति के लिए क्रान्ति बहुत महत्वपूर्ण है । साम्यवादी व्यवस्था की प्राप्ति मार्कर्न के लिए साध्य था और इस उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति साधन मानकर ही मार्क्स ने विश्वभर में श्रम कर रहे मजदूरों को संगठित होने का आह्वान किया । पूँजीपतियों को इस साम्यवादी लक्ष्य प्राप्ति के लिए बाधा मानकर मार्क्स प्रत्येक पूँजिपति का सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवादी में राज्य सत्ता द्वारा सर्वनाश करने की बात की है।

4.5.2.4 राज्य के प्रति दृष्टिकोण

गाँधीजी राज्य को हिंसा का संगठित स्वरूप मानते थे और चूंकि वे हिंसा को सत्य के विरूद्ध और विनाषकारी मानते थे इसलिए वे राज्य सत्ता का सैद्धान्तिक रूप से विरोध करते थे । राज्य का व्यक्ति के जीवन में हस्तक्षेप का समर्थन गाँधीजी नहीं करते थे । इसलिए उन्हें अराजकतावादी भी कहा गया है । अपने आदर्श समाज को उन्होंने एक राज्य-विहीन समाज के रूप में प्रस्तुत किया । राज्य सत्ता लगाये जाने वाले नियंत्रण और अंकुश के स्थान पर वे व्यक्ति के आत्मानुशासन का समर्थन करते थे ।

मार्क्स भी अपनी आदर्श व्यवस्था में राज्य-विहीन समाज की कल्पना करते हैं । सर्वहारा वर्ग की अधिनायकवादी शासन से पूर्व अवस्थाओं में राज्य सत्ता मार्क्स के अनुसार सम्पन्न लोगो के हाथ सम्पन्न विहीन लोगों का शोषण करने हेतु एक साधन है । मार्क्स के अनुसार 'सर्वहारा वर्ग की अधिनायकवादी शासन' मे राज्य सत्ता श्रमिकों के नियंत्रण मे कार्य करेगी और यह पूँजीवादियों के विनाश के लिए कार्य करेगी । पूँजीवादियों के विनाश के बाद राज्य के अस्तित्व का औचित्य समाप्त हो जाएगा और अन्तिम अवस्था, जिसे मार्क्स ने साम्यवादी अवस्था के रूप में स्वीकार किया है, वह समुदायिक जीवन और उद्देश्यों के आधार पर अनुशासित होगा ।

4.5.2.5. अहिंसा के प्रति दृष्टिकोण

गाँधीजी अहिंसा को निरपेक्ष एव शाश्वत मूल्य मानते थे । सम्पूर्ण सृष्टि का उनके अनुसार अहिंसा ही है । वे सत्य और अहिंसा में गहरा संबंध विद्यमान होने की बात करते थे और मानते थे कि अहिंसा के बिना सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती । अहिंसा की अपार शक्ति में गाँधीजी का बहुत विश्वास था और वे इसे साहसी व्यक्तियों का साधन मानते थे । अहिंसा उनके लिए केवल मन, वचन और कर्म से हिंसा से प्रथक रहना मात्र नहीं था बल्कि सक्रियता, त्याग, प्रेम और सहिष्णुता को अपनाते हुए विरोधी को अन्याय और गलत कार्य करने से स्वैच्छिक रूप से मुक्त करना था । गाँधीजी के अनुसार समाज में परिवर्तन लाने के लिए अहिंसा का कोई प्रभावी विकल्प नहीं है । यही सबसे प्रभावी साधन है ।

मार्क्सवाद में निरपेक्ष और शाश्वत मूल्य का कोई स्थान नहीं है अपितु सापेक्ष मूल्य की धारणा है। परिस्थितियों को बदलने के लिए जो भी अनुकूल साधन और मूल्य हैं, भले वे हिंसक हों या अहिंसक मार्क्स के अनुसार परिवर्तन लाने के लिये प्रासंगिक हैं । वर्ग विभेद और अन्तर्द्वन्द्व के चलते मार्क्स अहिंसा को निरपेक्ष मूल्य के रूप में स्वीकार करने में विश्वास नही रखते थे । उनके मतानुसार घोषणात्मक पूँजीवादी वर्ग द्वारा स्थापित व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिए अहिंसा सार्थक नहीं हो सकता क्योंकि सम्पन्न वर्ग अपने स्वार्थ को आसानी से त्याग नहीं कर सकते और इसलिए बल का प्रयोग परिवर्तन के लिए अपरिहार्य हो जाता है ।

4.5.2.6 भौतिक आवश्यकताओं के संदर्भ में दृष्टिकोण

मनुष्य को जिन्दा रहने और श्रेष्ठ जीवन की ओर अग्रसर होने के लिए कुछ मौलिक आवश्यकताओं जैसे रोटी कपड़ा और मकान एव कुछ अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । गाँधी और मार्क्स के विचारों में भी मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के बारे में विचार व्यक्त किया गया है । गाँधी के लिए जीवन का आध्यात्मिक पक्ष महत्वपूर्ण है । फिर भी वे भौतिक संसार को मनुष्य जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं ओर स्वीकार करते हैं कि यह भौतिक संसार आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने के लिए महत्वपूर्ण साधन हैं । भौतिक संसार की चकाचौंद और भोग विलास में फंसकर मनुष्य अपने जीवन का आध्यात्मिक लक्ष्य भूल जाए यह उनके लिए स्वीकार नहीं था । इसलिए वे कहते थे कि मनुष्यों को अपनी आवश्यकताओं को

सीमित करना चाहिए और सादा और सरल जीवन जीना चाहिए । उनके द्वारा प्रतिपादित अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों में मूल में यही विचार अन्तर्निहित हैं । गाँधीजी स्वामित्व की भावना को मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के लिए अवरोध और समाज में ऊँच-नीच, शोषण एवं अन्य कई बुराइयों का कारण मानते थे । अंधाधुन्ध औद्योगीकरण का विरोध भी उपयुक्त कारणों के आधार पर गाँधीजी ने किया । उन्होंने न्यासिता सिद्धान्त प्रतिपादित कर इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति की जो भी क्षमतायें हैं - आर्थिक, बौद्विक और शारीरिक, वह उन्हे उसके समाज के परोपकारी कार्य के लिए लगाये । इस तरह गाँधीजी सम्पति और स्वामित्व से जुडे अहं-भाव को समाप्त कर देना चाहते थे और व्यक्ति को समाज के कल्याण के प्रति कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहते थे ।

मार्क्स के विचारों में भौतिक तत्वों को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है और जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति उदासीनता का भाव प्रकट किया गया है । भौतिक तत्व और आर्थिक संरचना को समस्त अन्य राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं का निर्धारक तत्व माना गया है और इन पर नियन्त्रण स्थापित कर वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने की बात कही गई है । सम्पन्न वर्ग द्वारा स्थापित आर्थिक शक्तियों पर नियंत्रण के कारण वे मानते हैं कि समाज में आर्थिक विषमताऐं विद्यमान हैं । नैतिक उपदेश मात्र देकर सम्पन्न वर्ग के सदस्यों को अपने स्वार्थपूर्ण आचरण या घोषणात्मक कार्यो से पृथक नहीं किया जा सकता । अत: श्रमिकों को संगठित होकर राज्य सत्ता पर अपना आधिपत्य स्थापित कर पूंजीपतियों का विनाश कर उनकी सम्पति अपने नियंत्रण में लाना चाहिए । राज्यत्ता द्वारा समाज में आर्थिक समानता लाने का उद्देश्य मार्क्स ने 'सर्वहारा वर्ग' के अधिनायक सिद्धान्त के माध्यम में प्रस्तुत किया । मार्क्स ने उपयुक्त विचारों में कहीं भी जीवन की भौतिक आवश्यकताएं को सीमित करने, न्यूनतम आवश्यक औद्योगिकरण तक सीमित रहने और सम्पन्न वर्ग के व्यक्तियों को अपनी सम्पति न्यासी के रूप में रखकर समाज के हित के लिए प्रयोग करने की बात नहीं की है । वह केवल व्यक्तिगत स्वामित्व और सम्पति का निराकरण आदर्श समाज के लिए अनिवार्य मानते हैं ।

4.5.2.7 ईश्वर और धर्म सम्बन्धी विचार

महात्मा गाँधी का चिन्तन आध्यात्मिक प्राथमिकता से प्रेरित था । सम्पूर्ण सृष्टि को निर्धारित करने वाली शक्ति को उन्होंने परम सत्य के रूप में स्वीकारा और इसे ईश्वर भी कहा । उनके अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य इस परम सत्य को प्राप्त करना है जो सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणी जगत एवं निष्प्राण तत्वों में विद्यमान है । गाँधी ने इसे सापेक्ष सत्य के रूप में स्वीकारा । इन सापेक्ष सत्य को क्रमश: पहचानकर परम सत्य या ईश्वर की खोज में निरन्तर अग्रसर रहने के लिए गाँधीजी ने बल दिया ।

धर्म से उनका आशय किसी मत विशेष से नहीं था अपितु उनके लिए धर्म सत्य और अहिंसा पर आधारित एक नैतिक जीवन पद्धति है । गोपीनाथ धवन के अनुसार "गाँधी के लिए धर्म एक सजीन भावना है, जिसका विकास समाज के विकास के अनुसार होता है । धर्म का कार्य सामाजिक व्यवस्था को सामंजस्यपूर्ण बनाये रखना तथा व्यक्ति की आत्मा का मार्गदर्शन

इस प्रकार करना है कि उसे अपनी अन्त:निहित शक्तियों को प्राप्त करने की शिक्षा मिल सके ।" गाँधीजी धर्म को किसी विशेष सम्प्रदाय जैसे हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, सिख धर्म, इत्यादि से नहीं जोडना चाहते थे । धर्म से उनका आशय किसी विशेष रूप से पूजा-पाठ अर्चना करने की विधि से भी नहीं थी । गाँधी की धर्म संबंधी धारणा में नैतिक मूल्यों, मानवता के शाश्वत और सार्वभौमिक सिद्धान्तों और मानवीय आचरण के विवेकसम्मत नियमों को सम्मिलित किया गया है ।

मार्क्स के चिन्तन में ईश्वर और धर्म सम्बन्धी विचारों का कोई महत्व नहीं हैं । ईश्वर और धर्म सम्बन्धी आध्यात्मिक बातें उनके अनुसार व्यक्ति को भ्रमित कर यथास्थिति को बनाये रखने हेतु प्रयोग किए जाने वाले साधन हैं । धर्म को मार्क्स ने जनता के लिए अफीम कहा । उनके अनुसार धर्म के माध्यम से शासक वर्ग शासित वर्ग में झूठी आशाओं को पनपाने के लिए प्रयोग करते हैं ताकि विद्यमान व्यवस्था को यथावत रखा जा सके । चूँकि विद्यमान व्यवस्था शोषणयुक्त और अन्यायपूर्ण है इसलिए मार्क्स श्रमिकों द्वारा धर्म का विरोध करने का समर्थन करते हैं । उनके मतानुसार श्रमिकों द्वारा धर्म का विरोध भ्रम की अवस्था को दूर कर सही अर्थो में सुख और न्यायपूर्ण व्यवस्था के लिए प्रयास करना है । मार्क्स के लिए भौतिकता या पदार्थ सर्व महत्वपूर्ण है और सम्पूर्ण परिवर्तन के पीछे आर्थिक करण निर्धारक भूमिका अदा करते हैं । मार्क्स के लिए इहलौकिक दुनिया में मानव और उसका कल्याण ही महत्वपूर्ण और तर्क संगत लक्ष्य है क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि में मानव अस्तित्व का केन्द्रीय स्थान है । मार्क्स ईश्वर को सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माता या निर्धारक सत्ता नहीं मानते थे । उनके मतानुसार ईश्वर ने मानव की सृष्टि भी नहीं की न ही उसके लिए सुख-दुख का प्रावधान किया है, अपितु मनुष्य ने ही धर्म, बनाया और मिथ्या कल्पित ईश्वर का निर्माण किया है । मार्क्स के अनुसार धर्म अन्य सामाजिक संस्थाओं की तरह समाज में विद्यमान भौतिकवादी और आर्थिक वास्तविकताओं के द्वारा ही निर्धारित है ।

4.5.2.8 वर्ग संघर्ष के प्रति दृष्टिकोण

गाँधीजी ने स्वीकार किया कि जहाँ भारत जैसे देश में वर्ण व्यवस्था के माध्यम में सामाजिक संरचना और अविरल आवश्यक आर्थिक प्रक्रियाओं को सम्पन्न कराने के लिए विकसित किया है, वहीं पश्चिम के समाजों ने उपर्युक्त कार्य सम्पन्न करने के लिए वर्ग रूपी संस्था का विकास किया है । अपने मूलभूत स्वरूप में जाति व्यवस्था को गाँधी सकारात्मक मानते थे । परन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि कालान्तर में भारतीय वर्ण व्यवस्था में अनेक दोष प्रविष्ट हो गए हैं जिनके कारण समाज में संघर्ष और तनाव की स्थितियाँ विद्यमान है । इसलिए इन विक्रतियों को तत्काल दूर करना बहुत जरूरी है । वे वर्ण व्यवस्था में मौजूद ऊँच-नीच की भावना और अस्पृश्यकता को जड़ से उखाड फैंकना चाहते थे । उन्होंने विभिन्न वर्णो में व्याप्त संघर्ष को आपसी समझ, सहयोग और सहिष्णुता के आधार पर दूर कर सामंजस्य और सौहार्द स्थापित करने का प्रयास किया । आपसी संघर्षो को दूर करने के लिए गाँधीजी हृदय

परिवर्तन और अहिंसा पर भी जोर देते है । अपने आदर्श व्यवस्था में भी वर्ण व्यवस्था को उन्होंने स्वीकार किया बशर्त कि कालान्तर में उसमें आयी विक्रतियों को दूर कर दिया गया हो ।

मार्क्स ने माना कि मानव इतिहास में प्रत्येक समाज सम्पन्न और सम्पन्न विहीन वर्ग में बंटा हुआ है । दोनों वर्गो के हितों में सदैव अन्तर-द्वन्द्व विद्यमान रहने के कारण समाज में वर्ग संघर्ष स्वभाविक है । मार्क्स मानते थे कि 'सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवादी' शासन' मे श्रमिक संगठित होकर और राज्य सत्ता का प्रयोग करते हुए पूँजीपतियों को जड-मूल से नष्ट कर देंगे और तत्पश्चात समाज में केवल श्रमिक ही रहेंगे और समाज वर्गविहीन हो जाएगा । मार्क्स मानते थे कि पूँजीपति अपने स्वार्थ का बचाये रखने के लिए हर संभव प्रयास करेंगे और उन्हें समझाने का प्रयास करना और अहिंसा या हृदय परिवर्तन के द्वारा बदलने का प्रयास करना सार्थक परिणाम नहीं दे सकता है । इसलिए हिंसा का प्रयोग अपरिहार्य है ।

4.5.2.9 विश्व-बन्धुत्व की धारणा

गाँधी और मार्क्स दोनों ही विश्व-बन्धुत्व और शोषण-मुक्त समाज की बात करते हैं परन्तु जिन मूल्यो पर ये दोनों विश्व-बन्धुत्व और शोषण-मुक्त समाज स्थापित करना चाहते हैं उनमें गहरा अन्तर है । गाँधीजी अहिंसा को जीवन सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते थे । वे बुरा करने वाले व्यक्ति का अन्त नहीं, बुराई का अन्त करने में विश्वास करते थे । अहिंसा के सक्रिय पक्ष पर महत्व डालते हुए उन्होंने माना कि विरोधियों के प्रति असीम प्रेम, सहनशीलता और कल्याण की भावना प्रदर्शित करते हुए व्यक्ति को विरोधियों का हृदय परिवर्तन कर उन्हें स्वैच्छा से बुराई त्याग करने के लिए प्रेरित करना चाहिए । व्यक्तियों, समूहों, समाजों और राष्ट्रों के बीच विद्यमान सभी संघर्षो को गाँधी उपर्युक्त मूल्यों और सिद्धान्तों के आधार पर समाधान करना चाहते थे । सम्पूर्ण विश्व को गाँधी एक बड़ा परिवार के रूप में देखते थे जिनमे प्रचुर मात्रा में आपसी प्रेम, सौहार्द, सहयोग और सामंजस्य विद्यमान है । उनके द्वारा प्रतिपादित आदर्श सर्वोदय समाज में अभिव्यक्त भाव इस बडे परिवार के सभी सदस्यों का सर्वागीन विकास और अधिकाधिक कल्याण की कामना करता है ।

मार्क्स भी विश्व-बन्धुत्व की बात करते हैं जब वे सम्पूर्ण विश्व के श्रमिकों को एक होने के लिए कहते हैं । श्रमिकों में एकता और उनके संगठित होने के फलस्वरूप मार्क्स के अनुसार वे सत्ता प्राप्त करने के लिए शक्तिशाली और समर्थ बन जाते हैं । मार्क्स के अनुसार पूँजीपति और श्रमिक वर्गो के हितों में सदैव अन्तर-द्वन्द्व विद्यमान रहने और पूँजीपतियों द्वारा अपने स्वार्थ का हर संभव बचाये रखने की प्रवृत्ति विद्यमान रहने के कारण अहिंसा या हृदय परिवर्तन के द्वारा पूँजीपतियों को बदलने का प्रयास करना बेकार है और व्यवस्थाओं में परिवर्तन लाने के लिए हिंसा का प्रयोग अपरिहार्य है । मार्क्स के अनुसार पूँजीपतियों का अस्तित्व मिटाकर ही शोषण-मुक्त समाज की ओर बढा जा सकता है । इस तरह मार्क्स का विश्व-बन्धुत्व हिंसक संघर्ष और केवल एक वर्ग विशेष के बन्धुत्व की भावना पर आधारित है ।

4.6 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गाँधी और मार्क्स विश्व के दो महान दार्शनिक हैं जिन्होंने अपने समकालीन समाज में व्याप्त असमानता, शोषण, दरिद्रता और अत्याचार को दूर करने और विश्व को बदलने का क्रान्तिकारी दर्शन दिया है । विद्यमान आधुनिक समाज की बुराइयों का विश्लेषण और आदर्श व्यवस्था के प्रतिपादन में बहुत सी समानतायें देखने को मिलती है । परन्तु दोनों के दृष्टिकोण में मूलभूत अन्तर है । जहाँ गाँधी आध्यात्मिकता और व्यक्ति को सर्वोच्च स्थान देते हैं वहीं मार्क्स भौतिकता और व्यवस्था को सर्वोच्च महत्व देते हैं । गाँधी साधन और साध्य दोनों की पवित्रता बनाये रखने के लिए प्रतिबद्ध होने की बात करते हैं परन्तु मार्क्स लिए लक्ष्य या साध्य महत्वपूर्ण है और इसे प्राप्त करने के लिए जो भी प्रभावी साधन हो सकते हैं वे सब उचित हैं । मार्क्स के लिए साधन की पवित्रता बनाये रखने के लिए प्रतिबद्धता नहीं है । मानवीय चरित्र के जिन सदगुणों की बात की जाती है जैसे सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, परोपकार, सहिष्णुता इत्यादि, जिन्हें गाँधी व्यक्तिगत मूल्य के रूप में ही नहीं बल्कि सामाजिक स्तर पर सक्रिय करना चाहते हैं और वाँछित परिवर्तन लाने और आदर्श की ओर अग्रसर होने के लिए अपरिहार्य मानते हैं, मार्क्स के दर्शन में ऐसी प्राथमिकता का स्पष्ट अभाव दिखता है । मार्क्स के दर्शन में ऐसी प्राथमिकताओं के अभाव में यह कहना उचित होगा कि यद्यपि गाँधी और मार्क्स के दर्शन में कुछ समानतायें विद्यमान हैं तदापि मौलिक रूप से ये दोनों भिन्न दर्शन हैं । आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में व्याप्त शोषण, अन्याय और असमानता को दूर करने के ये दो प्रथक विकल्प प्रस्तुत करते हैं ।

4.7 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
2. मार्क्स द्वारा प्रस्तुत प्रमुख सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
3. गाँधी और मार्क्स के विचारों में विद्यमान समानताओं पर प्रकाश डालिए ।
4. गाँधी और मार्क्स के विचारों में विद्यमान असमानताओं पर प्रकाश डालिए ।

4.8 सदर्भ ग्रन्थ सूची

5. गाँधी, मदन गोपाल, गाँधी और मार्क्स, मंथन पब्लिकेशन, रोहतक, 1982
6. टण्डन, विश्वनाथ, स्टडीस इन गाँधीयन थॉट एण्ड मार्क्सिसम विथ स्पेशल रेफरेन्स टू विनोबा भावे, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006
7. प्रसाद,प्रधान एच., गाँधी मार्क्स एण्ड इण्डिया एन आल्टरनेटिव पाथ ऑफ प्रोग्रेस, मानक पब्लिकेशन्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली ।
8. चतुर्वेदी, एस. एन., कार्ल मार्क्स के साम्यवादी और गाँधी के साम्ययोगी आर्थिक विचारों द्वारा नये समाज की रचना, कल्पज़ पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2007
9. मशरूवाला के. जी. गाँधी एण्ड मार्क्स, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 2007
10. बोस, एन.के., सेलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद,1972

11. बोंदुरां,जे., कॉनवेस्ट ऑफ वायलेंस : द गाँधीयन फिलॉसॉफी ऑफ कान्फ्लिक्ट, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूजर्सी, 1958
12. दण्डवते, मधु, मार्कर्स एण्ड गाँधी, पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1977
13. सिंह, केदार नाथ, गाँधी एण्ड मार्क्स एन एथिको- फिलॉसोफिकल स्टडी, एसोसिएटेड बुक एजेन्सी,
14. पटना, 1979
15. कुमार, बी. अरूण, गाँधीयन प्रोटेस्ट, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2008
16. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000

इकाई - 5

गाँधी एवं माओ

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 गाँधी और माओ: जीवन, राजनीतिक सक्रियता और विरासत

5.3 गाँधी और माओ की ऐतिहासिक परिस्थिति

5.4 गाँधी और माओ: समानता के बिन्दु

5.5 गाँधी और माओ: भिन्नता के आधार

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्न

5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी :-

- गाँधी और माओ तुंग के जीवन और चिन्तन के बारे में जानकारी प्राप्त सकेंगे ।
- यह समझ सकेंगे कि गाँधी और माओ तुंग की तुलना क्यों की जाती है ।
- गाँधी और माओ तुंग के विचारों में समानता को पहचान सकेंगे ।
- गाँधी और माओ तुंग के विचारों में विद्यमान मौलिक भिन्नतायें समझ सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

गाँधी (1869-1948) और माओ तुंग (1893-1976) 20वी सदी से उल्लेखनीय विचारक थे । उन्होंने जिन विचारों को प्रतिपादित किया और तरीकों का प्रयोग किया वे अद्वितीय और नवीन थे । ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो दोनों ने शोषण पर आधारित उपनिवेशवादी विदेशी शासन (गाँधी के लिए ब्रिटेन और माओ के लिए जापान) के विरुद्ध ही नहीं बल्कि आन्तरिक स्तर पर विद्यमान अनेक संरचनात्मक या व्यवस्था सम्बन्धी बुराइयों के विरुद्ध भी संघर्ष करने और उन्हें अस्वीकार कर नई वैकल्पिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए अथक प्रयास किया । जहाँ गाँधी ने पश्चिमी सभ्यता, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण का सक्रिय विरोध,वहीं माओ ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और पूंजीवाद का सक्रिय विरोध किया । परन्तु दोनों के विचारों में मौलिक अन्तर विद्यमान है और यह अन्तर है राजनीतिक क्षेत्र में हिंसा के स्थान सम्बन्धी इन महापुरुषों का विमर्श । जहां माओ मानते थे कि राजनीतिक सत्ता या शक्ति बन्दूक की नाल से निकलती है, वहीं गाँधी का मानना था कि सक्रिय और संगठित अहिंसा राजनीति का केन्द्रीय निर्धारक तत्व होना चाहिए । माओ राजनैतिक-सामाजिक परिवर्तन के लिए सैन्य शक्ति और शारीरिक बल की परम्परा को आगे बढ़ाना चाहते थे, जबकि गाँधी

सत्याग्रह और रचनात्मक परिवर्तन लाने में विश्वास रखते थे । इन अन्तरों के बावजूद गाँधी और माओ ने आधुनिक चिन्तन राजनीतिक को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । दोनों ने अपने राष्ट्र की मुक्ति और उत्थान के लिए अद्वितीय योगदान दिया है ।

5.2 गाँधी और माओ: जीवन, राजनीतिक सक्रियता और विरासत

गाँधी और माओ दोनों आरामदायक परिस्थितियों में पैदा हुए थे । गाँधी पोरबन्दर (गुजरात) के दीवान के बेटे थे और माओ शाओशान हुनान :ईईंवोंदए भ्नदंदद्ध के एक धनी कृषक के बेटे थे । इस तरह दोनों ने सम्पन्न परिवारों में जन्म लिया था । गाँधी ने इंग्लैण्ड जाकर तीन साल के अध्ययन के पश्चात कानून की पढ़ाई पूरी की और दक्षिण अफ्रीका में 1893- 1915 ई. तक वकालत की। इस दौरान वे उपनिवेशवाद और उसकी शोषणात्मक प्रवृत्ति को अच्छी तरह समझ सके।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी ने सत्याग्रह के नाम से विश्व प्रसिद्ध अहिंसक सविनय अवज्ञा की तकनीक का विकास किया । इसके प्रयोग से दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले अनेक हिन्दू-मुस्लिम भारतीयों के नागरिक अधिकारों को सुनिश्चित करवाए जाने के कारण गाँधी जी को सर्वप्रथम प्रसिद्धि मिली । 1915 में वे भारत आए और 1921 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सर्वोच्च नेता के रूप में स्वीकार किए गए । उन्होने अनेक राष्ट्रव्यापी आन्दोलनों का नेतृत्व किया जिनके उद्देश्य बहुआयामी थे । गरीबी को दूर करना, धार्मिक और जातीय एकता और सौहार्द को बढावा देना, नारी और सामाजिक दृष्टि से कमजोर कहलाने वाले अन्य लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष करना, अस्पृश्यता उन्मूलन, आर्थिक दृष्टि से भारतीय नागरिकों को आत्मनिर्भर बनाना और भारतीयों को स्वराज दिलाने में महात्मा गाँधी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । उन्होंने तीन प्रमुख अहिंसक आन्दोलन प्रारम्भ किए (1920 में असहयोग आन्दोलन, 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन और 1947 में अंग्रेजो भारत छोडो आन्दोलन) और अन्त में 1947 में भारत को आजादी दिलाने में सफल हुए । उन्हों ने राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति बदलने में महत्वपूर्ण योगदान इस रूप में भी दिया कि उनके नेतृत्व में स्वतन्त्रता आन्दोलन एक जन आन्दोलन बन गया था और प्राथमिक रूप से यह आन्दोलन अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित किया गया । गाँधी जी भारत को अहिंसा के आधार पर पुनर्जीवित करना चाहते थे और यह रचना केवल राजनीति तक सीमित नहीं थी बल्कि आर्थिक और सामजिक भी थी । उन का उद्देश्य भारत में बसे हजारों गांवों को हर दृष्टि से आत्मनिर्भर और आत्म समानता युक्त बनाना था और ऐसे गांवों को वे ग्राम स्वराज कहते थे । वे एक सर्वोदयी समाज की स्थापना करना चाहते थे, एक ऐसा समाज जिस में सभी का, विशेष रूप से सर्वाधिक असहाय और पीड़ित व्यक्तियों का भी अधिक से अधिक कल्याण सम्भव हो सके ।

गाँधी के समान माओ भी एक सम्भ्रान्त परिवार में पैदा हुए थे । जब वे आठ साल के थे तो उन्हें गाँव के ही एक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था की गई । परन्तु इस व्यवस्था से उन्हें शिक्षा-प्राप्ति के नाम पर कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ । जब वे 17 वर्ष के हुए तब उन्होंने घर छोड कर हुनान प्रान्त की राजधानी यांगशा के एक माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश लिया । 1911 में जब राजतन्त्र के विरुद्ध जिन्हुया क्रान्ति की शुरूआत हुई तो माओ

रेवोल्यूशनरी आर्मी (Revolutionary army) और कुओमिनटांग (Kunomintang) या राष्ट्रवादी दल के सदस्य बन गए । 1918 में माओ एक अध्यापक के रूप में हूनान फर्स्ट नार्मल स्कूल से पास हुए । वे 1919 के मई फोर्थ आन्दोलन (May For Movement) से विशेष रूप से प्रभावित हुए । उन्होंने मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण को अपनाया और शीघ्र ही चीन के साम्यवादी दल के सदस्य बन गए और इस दल में उन्हें आला दर्जे के पद पर आसीन किया गया । सन् 1949 में माओ ने चीन जनवादी गणराज्य की स्थापना की घोषणा की जिसमे साम्यवादी दल द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र और राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था पर नियन्त्रण स्थापित किया गया । वे चीन को एकीकृत कर के मजबूत बनाने के लिए साम्यवादी क्रान्ति के विरोधियों के विरुद्ध अभियान चलाया । उन्होंने व्यापक भूमि सुधार कार्यक्रम को अधिनियमित किया और सामन्ती जमींदारों की सम्पत्ति का अधिग्रहण कर उन्हें अपदस्थ किया और उन की सम्पत्ति को जन समुदाय(People's communes) की भूमि के रूप में मान्यता प्रदान कर उसका बंटवारा किया । उन्होंने 1958- 1961 तक ग्रेट लीप फारवर्ड (Great Leap forword) नामक राजनैतिक अभियान का नेतृत्व किया ताकि चीन आधुनीकृत और औद्योगीकृत हो सके । 1966 में उन्होंने चीन में सांस्कृत क्रान्ति का सूत्रपात किया जिसके माध्यम से साम्यवादी क्रान्ति के विरुद्ध कार्य करने वाले सभी समूहों के प्रभावों को प्रभावी रूप से समाप्त किया जा सके । उन का प्रयास जीवन पर्यन्त चलता रहा ।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि गाँधी और माओ ने गरीब कृषकों और गांव के लोगों से घनिष्ठ नाता जोडा । जैसा कि विदित है, भारत और चीन की जनसंख्या की अधिकांश मात्रा इस प्रकार के गरीब किसान और ग्रामवासियों द्वारा ही निर्मित थी गाँधी ने भारत में और चीन में माओ ने एक दीर्घकालीन विरासत छोडी है और विश्व भर में दोनों ने अनेक लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ा है । माओ ने 1968 के फ्रांस के विद्यार्थी आन्दोलन को, वियतनाम और क्यूबा के राष्ट्रवादी आन्दोलनों को प्रेरित करने का कार्य किया था । उन की विचारधारा आज भी अनेक क्रान्तिकारियों को प्रभावित करती है । गाँधी ने भी सत्याग्रह के दर्शन और से मार्टिन लूथर किंग जूनियर, नेल्सन मण्डेला और अनेक शान्ति, पर्यावरण सम्बन्धी और निःशस्त्रीकरण' को प्रभावित किया है

5.3 गाँधी और माओ की ऐतिहासिक परिस्थिति

चीन और भारत के लिए 20वी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्ष या अवधि इन, पारम्परिक समाजों के लिए साधारण नहीं थी । दोनों महापुरुषों में बदलाव लाने की तीव्र इच्छा ऐसी व्यवस्थाओं सम्बन्ध में उत्पन्न हुई जिन व्यवस्थाओं को ये पश्चिमी सभ्यता की प्रतिनिधि मानते थे । जहां गाँधी जी ने विदेशी द्वारा भारत को उपनिवेश बनाने के विरुद्ध आन्दोलन चलाया, वहीं माओ ने जापान द्वारा चीन का उपनिवेश के कूप में शोषण करने के विरुद्ध आन्दोलन का संचालन किया । गाँधी के अनुसार ब्रिटेन ने भारत पर पाश्चात्य सभ्यता, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण को अपनाने के लिए मजबूर किया । मार्क्स के अनुसार जापान ने चीन पर आक्रमण कर के पाश्चात्य व्यवस्था जैसे साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और पूंजीवाद को आरोपित करने का प्रयास किया था । यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो

दोनों नेताओं ने समान उद्देश्यों से प्रेरित राष्ट्रीय आन्दोलनों को नेतृत्व प्रदान किया, परन्तु इन के द्वारा नेतृत्व किए जाने वाले आन्दोलन एक दूसरे से प्रथक प्रकृति के थे । लेकिन ऐसा होने पर भी जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये प्रवृत हुए और जिन व्यवस्थाओं के विरुद्ध ये लड़े, वे वैश्विक, व्यापक और समग्र थे ।

5.4 गाँधी और माओ: समानता के बिन्दु

गाँधी और माओ ने 20वी शताब्दी में अपने समकालीन समाज का पूंजीवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्थाओं के विरुद्ध अपने-अपने तरीके से पुनर्निमाण करने का प्रयास किया । दोनों महापुरुषों का समय भी ऐसा था जब राष्ट्रवादी विचार का उद्भव हो चुका था । ऐसे वातावरण में गाँधी और माओ सक्रिय हुए और उन्होंने राष्ट्रवादी आन्दोलनों के स्वरूप को बदलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । इन के में चीन और भारत में राष्ट्रवादी आन्दोलन का जनाधार काफी व्यापक हुआ । अब यह केवल मध्यम और शिक्षित संप्रभ्रांत लोगों तक सीमित न रह कर आम जनता की सक्रिय सहभागिता का आन्दोलन बन गया । अपने-अपने तरीकों से गाँधी और माओ ने राष्ट्रीय चेतना और जन-जागृति उत्पन्न करने का प्रयास किया । इस प्रयोजन के लिए दोनों महापुरुषों ने व्यक्तिगत परिवर्तन के क्रान्तिकारी तरीकों का प्रयोग किया । दिलचस्प बात यह है कि उनके निजी परिवर्तन के सिद्धान्त और तरीके उनके राष्ट्र की समृद्ध परम्परा से प्रेरित थे । जिन रणनीतियों का दोनों ने प्रयोग किया, उनमें बड़े पैमाने पर सामाजिक सुधार सम्पन्न हुए । इसके अलावा दोनों ने अपने-अपने राष्ट्र के लोगों को पुन: समाजीकृत कर 'माओवादी' (माओ द्वारा) या 'अहिंसक' (गाँधी द्वारा) व्यक्ति बनाने का प्रयास किया । दोनों सामाजिक बदलाव लाने के लिए आम व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित करते हैं । दोनों आदर्शवादी विचार से प्रेरित होते हुए भी यथार्थवादी थे । अपने समकालीन समाज की समस्याओं की वास्तविकता के अनुरूप दोनों ने समाज की समस्याओं के उन्मूलन के लिए सक्रिय व्यावहारिक प्रयास किए । जिन सिद्धान्तों को दोनों ने आदर्श के तौर पर प्रतिपादित किया उन्हें क्रियान्वित करने के प्रयास इन महापुरूषों ने ऐसे सिद्धान्तो को अनुभवजन्य वास्तविकता का रूप देने में काफी सफलता अर्जित की । दोनों ने अपने-अपने देशों के वंचित और शोषित आम आदमी के उत्थान के लिए सक्रिय प्रयास किए और इस प्रयास में आम व्यक्ति को नायक के तौर पर सक्रिय सहभागिता करने के लिए प्रेरित किया । गाँधी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और माओ ने कम्युनिस्ट पार्टी के माध्यम से ऐसी सहभागिता को सुनिश्चित किया ।

विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के सम्बन्ध में गाँधी और माओ के विचारों में समानता के कुछ बिन्दु देखने को मिलते हैं । गाँधी ने 'समुद्रीय तरंग' और 'सर्वोदय' एवं 'ग्राम स्वराज' सिद्धान्तों से और माओ ने 'सहकारी समितियों' और 'पीपुल्स कमुन्स' के सिद्धान्तों के आधार पर विकेन्द्रीकृत शासन-व्यवस्था संबंधी अपने विचार व्यक्त किए और प्रसारित किए । दोनों इस बात पर विश्वास करते थे कि जो भी करना है, तत्काल किया जाए, अवसरों का इन्तजार नहीं किया जाए और दूसरों के द्वारा वांछित कार्य करने के लिए निर्भर भी नहीं रहा जाए । उन के अनुसार जा सही है, वह कालातीत है, और अवसर से स्वतन्त्र भी है । वे विश्वास करते थे कि समाज को भीतर से अन्तर्जाति क्रिया से बदलने का प्रयास किया जाना चाहिए । सामाजिक

परिवर्तन बाहर से मुक्ति की नोक पर नहीं परोसा जा सकता है । स्वयं की शक्तियों पर निर्भर रह कर और इन का उपयोग कर के ही क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया जा सकता है और समस्याओं से मुक्ति पाई जा सकती है । दूसरे शब्दों में सामाजिक परिवर्तन नीचे से ऊपर की ओर होना चाहिए न कि ऊपर से नीचे की ओर या बाह्य से अन्दर की ओर । दोनों यह भी मानते थे कि क्रान्ति निर्बाध रूप से या अविरल चलनी चाहिए । जहां माओ का विचार था कि संघर्ष और विरोधाभास एकान्तर रूप से चलते रहते हैं, एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद अगला, इरा प्रकार संघर्ष जीवन में निरन्तर विद्यमान है और व्यक्ति को इन संघर्षो से जूझना पडता है । इसी तरह गाँधी के लिए 'स्वराज' का संघर्ष भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक सीमित नहीं था अपितु यह संघर्ष व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास और आत्मनिर्भरता की ओर प्रगति का निरन्तर प्रयास था ।

गालतुंग ने गाँधी और माओ मे विद्यमान समानताओं को निम्न बिन्दुओं के आधार पर व्यक्त किया है:-

1. सामाजिक परिवर्तन आम आदमी के साथ शुरू होता है ।
2. सामाजिक परिवर्तन के बुनियादी वाहक किसान हैं ।
3. संघर्ष ठोस अनुभवजन्य मौलिक तैयारियों को पूर्वानुमानित करता है ।
4. दोनों समाज के वंचित लोगों की पीडा के प्रति संवेदनशील हैं ।
5. दोनों की मान्यता थी कि किसानों से सदैव विनम्र अनुनय किया जाए न कि उन्हें मजबूर किया जाए।
6. मनुष्य को साधन नहीं, साध्य माना जाए ।
7. संघर्ष का उद्देश्य एक और अधिक विकेन्द्रीकृत समाज की स्थापना है ।
8. तत्काल कार्य जो करना है वह किया जाए ।
9. समाज को भीतर से ही परिवर्तित करने का प्रयास किया जाए ।
10. क्रान्ति की निरन्तरता।

गाँधी और माओ ने विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों का सामाजिक किया और इस आधार पर ही वे कुछ परिवर्तन लाना चाहते थे या अन्य शब्दों में, वे पूर्व निर्मित व्यवस्था बदलना चाहते थे।

गाँधी और माओ में विद्यमान एक समानता यह भी है कि दोनों ने समकालीन परिस्थतियों का सामाजिक विश्लेषण किया और इस आधार पर कुछ नए सामाजिक निर्माण की कल्पना की और कुछ पुराने निर्माण को ध्वस्त करने या बदलने का प्रयास किया । जहां तक गाँधी का प्रश्न है, उनका था कि पश्चिम और भारत में बहुत विरोधाभास है और भारत को स्वराज प्राप्त करना है, इस के लिए वे थे कि गांवों को सर्वोदय सिद्धान्त से निर्देशित होना पडेगा । गाँधी मानते थे कि अस्पृश्य कहलाने वाले लोग, कृषक और मजदूर और सभी महिलाओं को संगठित करना होगा, यदि एक बेहतर और सच्चे अर्थो में स्वतन्त्र का निर्माण करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया हो । उन का मानना था कि भारत में कुछ ही संख्या में

लोग हैं, जिन्होंने पाश्चात्य सभ्यता को अपनाया है और इन्हें न्यायोचित उद्देश्य के लिए सत्याग्रह के माध्यम परिवर्तित किया जा सकता हे

माओ के लिए भी चीनी और गैर चीनी लोगों में बड़ा विरोधाभास है । परन्तु गाँधी से भिन्न माओ के अनुसार चीन के भीतर जो विरोधाभास विद्यमान है, वह केवल गांवों और शहरों विरोधाभास नहीं है, अपितु 'जनता' और 'जनता विरोधी' वे लोग हैं जो अपने ही लोगों का शोषण करते हैं, जैसे सामन्त वर्ग, उच्च नौकरशाह शीर्ष व्यापारी, इत्यादि सेना की मदद से उपरोक्त कार्य करते हैं । अत: माओ के अनुसार चीन के भीतर 'जनता' और 'जनता विरोधी' लोगों के बीच संघर्ष है । इस संघर्ष में 'जनता' में भीतरी स्तर पर सर्वहारा वर्ग विद्यमान है जिस में अधिकांश मात्रा में चीन की जनसंख्या का प्रमुख आधार यानी किसान सम्मिलित है । 'जनता' में माओ ने विद्यार्थियों को भी सम्मिलित किया था ।

गाँधी और माओ में एक महत्वपूर्ण समानता समाज के संगठन के सन्दर्भ मे व्यक्त विचार हैं । जहां गाँधी का सर्वोदयी ग्राम स्वदेशी सिद्धान्त पर आधारित है, वहीं माओ का 'पीपुल्स कम्यूनिस' चीनी सिद्धान्त 'ट्सूली केंग शेगं' पर आधारित है जिस का मतलब है 'स्वयं के प्रयासों से ऊत्थान करो' ।गांधी और माओ व्यक्ति की आत्मनिर्भरता को काफी महत्व देते हुए संघर्ष को समस्या निराकरण के लिए आवश्यक समझते थे । अत: दोनों मनुष्य की अन्यों पर निर्भर रहने की चेष्टा के प्रबल विरोधी थे ।

गाँधी और माओ ने विद्यमान परिस्थितियों और व्यवस्थाओं की न केवल की बल्कि वैकल्पिक व्यवस्था का भी प्रतिपादन किया । गाँधी ने आदर्श के तौर पर 'राम राज्य' प्रस्तुत किया और माओ ने अपना आदर्श 'तातोंग' के रूप में प्रस्तुत किया । ये दोनों आदर्श अपने पृथक सांस्कृतिक और पूर्व आधुनिक सन्दर्भो से ओतप्रोत हैं । यद्यपि इन आदर्शो की विषय-वस्तु का परीक्षण किया जाए तो दोनों में बहुत अन्तर देखने को मिलता है, परन्तु दोनों माओ और गाँधी ने इन के प्रति जनता को आकर्षित करने के लगभग समान तरीके अपनाए । राजनीतिक संघर्ष दोनों के लिए समान रूप से अनुभव और शिक्षण का भी कार्य था जिस के माध्यम से राष्ट्र में एक नवीन राजनैतिक संस्कृति विकसित हो सके । दोनों महानायकों का पसन्दीदा तरीका था व्यक्तिगत और नेतृत्व द्वारा उदाहरण प्रस्तुत कर के लोगों को अपने विचारों या सिद्धान्तों के प्रति आकर्षित करना ।

गहन विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि माओ की 'पीपुल्स कम्यून' संकल्पना और गाँधी के 'सर्वोदय ग्राम' में कुछ अन्तर विद्यमान है । सर्वोदय ग्रामों में समन्वय 'समुद्री तरंग' सिद्धान्त पर आधारित है, जिस के अन्तर्गत प्रत्येक तरंग में स्वायत्तता और स्वतन्त्रता के साथ दायित्वों का समावेश भी है । परन्तु माओ की 'पीपुल्स कम्यून' संकल्पना में एक शक्तिशाली समन्वयक केन्द्रीय शक्ति का समावेश है, जो समाज में केन्द्र और परिधि दोनों को शक्ति प्रदान करती है । एक और अन्तर यह है कि गाँधी द्वारा जो सर्वोदय-व्यवस्था की कल्पना की गई है, उसे सामाजिक विकास के श्रेष्ठ और अन्तिम स्तर के रूप में प्रस्तुत किया गया है । गाँधी परतन्त्र उपनिवेशवादी अवस्था से स्वतन्त्र राष्ट्रवादी अवस्था की ओर और तत्पश्चात सर्वोदय की ओर विकास की कल्पना करते हैं । लेकिन माओ 'पीपुल्स कम्यून' को

विकास की क्रमोतर अवस्था के रूप में देखते हैं जहां स्थानीय स्तर पर सम्पत्ति का सार्वजनीकरण इस उद्देश्य से किया गया है कि राष्ट्रीय हित में इस का प्रयोग किया जा सके । अत. माओ का 'पीपुल्स कम्यून' सामाजिक विकास की एक सम्भवत: अवस्था या क्रम है, यह विकास की अन्तिम अवस्था नहीं है ।

गाँधी एवं माओ : जन जागृति और सहभागिता सुनिश्चित करने सम्बन्धी सोच और तकनीक

जनवरी 1940 में माओ ने अपने एक भाषण में चीन के लिए भविष्य की योजना पर प्रकाश डालते हुए कहा कि समकालीन समाज प्रमुख रूप से औपनिवेशिक, अर्द्धऔपनिवेशिक और अर्द्ध सामन्ती है । इस की संस्कृति भी औपनिवेशिक, अर्द्धऔपनिवेशिक और अर्द्ध सामन्ती है । इन्हीं प्रमुख राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक ताकतों के विरुद्ध वे क्रान्ति कर परिवर्तन लाने के लिए प्रतिबद्ध थे । उन्होंने कहा कि "हम जिन का उन्मूलन करना चाहते हैं वे हैं, पुरानी औपनिवेशिक, अर्द्धऔपनिवेशिक और अर्द्ध सामन्ती राजनीतिक एवं अर्थव्यवस्था और उस संस्कृति का, जो इन की सेवा में संलग्न है और जिन का निर्माण हम करना चाहते हैं, वे उपर्युक्त (औपनिवेशिक, अर्द्धऔपनिवेशिक और अर्द्ध सामन्ती राजनीति और अर्थव्यवस्था) ठीक उल्टी व्यवस्था है यानी चीनी राष्ट्र की एक नई राजनीति, नई अर्थव्यवस्था और नई संस्कृति ।"

चीन की नई राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था और उस को प्रभावित करने वाली संस्कृति के बारे में माओ का कहना था कि चीन की उक्त क्रान्ति के ऐतिहासिक विकास को दो स्तरों से गुजरना होगा । पहला स्तर है प्रजातान्त्रिक क्रान्ति और दूसरा है समाजवादी क्रान्ति और अपनी प्रकृति में ये दोनों ही दो अलग क्रान्तिकारी प्रक्रियाएं हैं ।

उपर्युक्त वैचारिक सन्दर्भ में माओ ने चीन की जनता को संगठित करने का प्रयास किया । परन्तु पूर्व के मार्क्सवादी-लेनिनवादी प्रवर्तकों से भिन्न माओ ने शहरी सर्वहारा वर्ग पर ध्यान केन्द्रित न कर के किसानों को एक क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में विकसित करने पर जोर दिया । वे मानते थे कि साम्यवादी दल अपने ज्ञान और नेतृत्व के आधार पर कृषकों को संगठित कर सकता है । जो प्रतिमान इस सन्दर्भ में विकसित किए गए थे उन्हें

चीन के 1920 और 1930 के दशकों में साम्यवादी ग्रामीण विद्रोहों के रूप में देखा सकता है जिस ने अन्त में साम्यवादी दल को चीन में सत्तासीन किया था । माओ ने वृहत स्तर पर को भी एक सकारात्मक शक्ति के रूप में नहीं स्वीकार किया वरन गांव के चहुंमुखी विकास को प्राथमिकता प्रदान की । उन का मानना था कि जिस देश में अधिकांश जनता कृषक है और गांवों में निवास करती है वहां के चहुंमुखी विकास द्वारा ही समाजवाद को स्थापित करने का उचित और प्रारम्भिक प्रयास किया जा है ।

माओवाद का एक अभिन्न सिद्धान्त है जो सैन्यवाद से जुडा हुआ है । गृह सोच उस के राजनीतिक विचारों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है । उन्होंने अपने प्रसिद्ध वक्तव्य में कहा था, "राजनीतिक शक्ति बन्दूक की नाल से निकलती है।" माओ ने किसानों को संगठित कर 'जनता का युद्ध' संचालित करने की योजना भी बनाई । किसानों द्वारा सशस्त्र संघर्ष में गुरिल्ला युद्ध नीति का भी माओ ने समर्थन किया । माओ ने सशस्त्र संघर्ष के तीन चरणों का उल्लेख किया

। पहले चरण में कृषकों को संगठित करना सुनिश्चित किया जाना, दूसरे चरण में गुरिल्ला संगठनों का ग्रामीण आधार तैयार करने और आपसी समन्वय बढाने पर बल दिया जाना तथा तीसरे चरण मे पारम्परिक युद्ध में इस संघर्ष को परिवर्तित करने पर जोर दिया जाना आवश्यक माना गया ।

माओवाद क्रान्तिकारी जन संगठन पर बल देता है, जिस का तात्पर्य है कि समाजवाद स्थापित करने हेतु किए जाने वाले संघर्ष में अधिक से अधिक संख्या में आम जनता को संगठित कराने का उद्देश्य रखना । माओ ने नूतन प्रजातन्त्र का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया और ग्रामीण स्तर पर बाहरी दुनिया से स्वतन्त्र, उद्योगों पर उत्पादक शक्तियों सिद्धान्त भी लागू किया । माओवाद में सैन्य शक्ति और आर्थिक शक्ति को जानबूझ कर संगठित करने की बात की जाती है ताकि क्रान्तिकारी क्षेत्रों को बाहरी खतरों से सुरक्षित रखा जा सके । राजनीतिक शक्ति को भी मजबूत नियन्त्रण में रखने पर बल दिया जाता है ताकि भ्रष्टाचार को रोका जा सके । माओ ने समस्त राजनैतिक शक्ति को चीन के साम्यवादी दल में केन्द्रित किया और रूस में जैसे लेनिन ने साम्यवादी क्रान्ति के पश्चात जिस प्रकार का शासन स्थापित किया था लगभग वैसी ही केन्द्रीकृत और शक्तिशाली शासन व्यवस्था चीन में स्थापित की । माओ के नेतृत्व में चीन के साम्यवादी दल द्वारा 'लोकतान्त्रिक अधिनायकवाद' की स्थापना की गई जिस के अन्तर्गत चीन के साम्यवादी दल को नेतृत्व प्रदान करने वाले पदाधिकारियों द्वारा देश की नीति और कानून सम्बन्धी फैसले किए और अधिकारियों के चयन में निर्णायक भूमिका का निर्वाह किया । पूंजीवाद और उस के द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति के अधिकार, लाभ और मुक्त बाजार या के महत्व को माओ ने अस्वीकार किया । माओ के निर्देशानुसार जमींदारों से उन की भूमि को जब्त कर लिया गया और जिन जमीनदारों ने भूमि-अधिग्रहण का विरोध किया उन्हें मार दिया गया ।

1950 के दशक में माओ ने 'सामूहिक खेती' के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देना प्रारम्भ किया जिस में प्रत्येक 'सामूहिक खेत' में एक सौ से अधिक संख्या में किसान परिवार खेती करते थे। सैद्धान्तिक रूप से सभी परिवार इन खेतों से होने वाली आय में बराबर के हकदार माने गए। नतीजा ये हुआ कि ऐसी खेती में तुलनात्मक रूप से अधिक मेहनत करने वाले किसानों के लिए कोई विशेष प्रोत्साहन का प्रावधान नहीं था, जिस के कारण कृषि उत्पादन में गिरावट आई । शहरों में माओ ने उद्योग और व्यापार को राज्य-नियंत्रण के अधीन रखा और राज्य द्वारा उत्पादन लक्ष्य, मच्छी और कीमतों को निर्धारित करने पर बल दिया ।शहर के अधिकांश श्रमिक राज्य स्वामित्व वाले उद्यमों के कर्मचारी बन गए । राज्य ने श्रमिकों को नौकरी की गारण्टी के साथ जीवन भर स्वास्थ्य की देखभाल करने की व्यवस्था भी की । चीन के श्रमिकों ने इसे 'लोहे के धान का कटोरा' कहा और इस व्यवस्था का नकारात्मक परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों को उत्पादन बढ़ाने, कुशलतापूर्वक कार्य करने और उत्पादन की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने में उत्साह की कमी उत्पन्न हो गई । नतीजतन औद्योगिक उत्पादन में भी गिरावट आई । 1950 के दशक के अन्त तक माओ के ग्रामीण चीन में मुक्त बाजार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, जिस के कारण गांवों में किसान पर अपने छोटे-छोटे भूखण्डों का

विक्रय करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । शहर में लगभग सभी उद्योगों और व्यवसायों का राज्य द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया और उन का प्रबन्धन और संचालन पूर्णतया राज्य के अधिकार क्षेत्र में ले लिया गया ।

जनवरी 1958 में माओ ने 'ग्रेट लीप फॉरवर्ड' (Great Leap Forword) नामक योजना प्रारम्भ की जिस के अन्तर्गत बडे उद्योगों पर ध्यान दिया गया था । किसान श्रमिक जो सामूहिक कृषि के अन्तर्गत काम कर रहे थे उन्हे लोहा और इस्पात से जुडे छोटे-छोटे उद्योगों में काम करने का कहा गया और उन्हें बुनियादी ढांचे के अनुसार निर्माण सम्बन्धी परियोजना में काम करने के लिए निर्देशित किया जाने लगा । सभी निजी खाद्य उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और पशुओं और कृषि औजारों को भी सामूहिक स्वामित्व के तहल लाया गया । परन्तु माओ का 'ग्रेट लीप फारवर्ड' कामयाब नहीं हुआ बल्कि एक बहुत बडी त्रासदी में परिणित हुआ । कृषि और औद्योगिक उत्पादन में भारी गिरावट आई और अकाल भी पडा । परिणाम स्वरूप लाखों लोगों की मौत हुई । बिगडती स्थिति को देखते हुए सरकार ने मजबूरन कुछ नए सुधार किए । कम्यून्स के आकार को कम किया गया, परिवार को उनकी कृषि भूमि लौटा दी गई और श्रमिकों को बोनस और अन्य प्रोत्साहन देने का निर्णय लिया गया ।

सन 1966 में माओ को लगा कि अनेक लोग चीन को साम्यवादी क्रान्ति से पृथक कर उसे पुन: पूंजीवाद के रास्ते पर धकेल रहे हैं । इन्ही परिस्थितियों में माओ ने सांस्कृतिक क्रान्ति (Cultural Revolution) का शुभारम्भ किया । इस जन आन्दोलन के माध्यम से उन लोगों के विरुद्ध कार्यवाही करने की बात की गई जो माओ द्वारा उद्देशित आदर्श साम्यवादी व्यवस्था का विरोध करते हों । माओ ने लाखों की संख्या में युवाओं को साम्यवादी क्रान्ति की पवित्रता को बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित किया । इन्हें माओ ने 'रेड गार्डस' (Red Guards) का नाम दिया और उन्हें अपने सन्देश की किताब 'लिटिल रेड बुक' (Little Red Book) थमा कर पूंजीवाद के समर्थकों को पूर्ण उत्साह से निन्दा करने के लिए प्रोत्साहित किया । लगभग 10 साल तक 'रेड गार्ड्स' का आतंक पूरे चीन में फैला रहा और इस का परिणाम स्वरूप अर्थव्यवस्था पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पडा । खाद्य और औद्योगिक उत्पादन में पुन: बहुत गिरावट आई । 1966 से प्रारम्भ माओ की सांस्कृतिक क्रान्ति माओ के निधन (1976) के साथ समाप्त हुई ।

महात्मा गाँधी द्वारा जन संगठन के प्रयास उन के सत्याग्रह और रचनात्मक कार्यक्रम से घनिष्ठ रूप से जुडे हुए थे । गाँधी जी ने जन आन्दोलन न केवल अंग्रेजों के शासन से भारत को मुक्ता कराने के लिए संगठित ही नहीं किए बल्कि भारत के पुनर्निमाण के लिए भी प्रयास किए । गाँधी जी ने सत्याग्रह के माध्यम से अंग्रेजों और भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों के विरुद्ध अहिंसक लडाई लड़ी । वहीं रचनात्मक कार्ययोजनाओं द्वारा वे आम आदमी की सहभागिता से अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहते थे । गाँधीजी के अनुसार इस रचनात्मक कार्यक्रम को सत्य और अहिंसक साधनों के आधार पर पूर्ण स्वराज प्राप्त करने का सृजनात्मक कार्य भी कहा जा सकता है । रचनात्मक कार्यक्रम में आर्थिक समानता, कृषकों के उत्थान, श्रमिकों और अधिकारियों के उत्थान और ग्रामीण घरेलू उद्योगों के विकास के कार्यक्रमों को गाँधीजी ने सम्मिलित किया था । श्रम और पूंजी के बीच सम्बन्ध के सवाल पर गाँधी ने

माओ से अलग दृष्टिकोण अपनाया. उन के अनुसार श्रम और पूंजी एक दूसरे के पूरक हैं । वे एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं, बल्कि उन्हें एक दूसरे की मदद करनी चाहिए ।

गाँधी पूंजीवाद के खिलाफ थे । परन्तु माओ की तरह पूंजीपतियों के खिलाफ नहीं थे और न ही उन के अस्तित्व को खत्म करना चाहते थे । उन का मानना था कि कुछ करोड़पतियों के विनाश से असंख्य गरीबों का शोषण दूर नहीं किया जा सकता, अपितु यदि गरीबों में यह जागृति लाई जाए। कि वे उन का शोषण करने वालों के साथ असहयोग करेंगे तो ऐसा करने से गाँधी शोषकों में भी परिवर्तन आएगा और अन्ततः दोनों पक्ष बराबर के भागीदार बन जाएंगे । गाँधी जी कहते थे कि पूंजी अपने आप में बुरी नहीं है, उस का जिस प्रकार गलत उपयोग किया जाता है, वह बुरा है । गाँधी जी के अनुसार पूंजी की जरूरत किसी न किसी प्रकार से हमेशा ही पड़ती है । इस लिए आवश्यक यह नहीं है कि पूंजीपतियों को समाप्त किया जाए अपितु पूंजीपतियों का हृदय परिवर्तन करना आवश्यक है ।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त प्रतिपादित किया । ट्रस्टीशिप सिद्धान्त के माध्यम से गाँधी जी ने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि पूंजीपति और सम्पन्न वर्ग के लोग अपनी सम्पत्ति ट्रस्टी के रूप में संभालेंगे और उस का उपयोग समाज के हित में करेंगे । उन का कहना था कि वे सम्पत्ति के मालिकों को निमण्त्रण देना चाहते हैं कि वे न्यासी (ट्रस्टी) के रूप में व्यवहार करें । ये लोग सम्पत्ति पर अपना निजी मालिकाना हक त्याग कर, जिन के शोषण के आधार पर यह संपत्ति जमा हुई है उन के कल्याण के लिए इस सम्पत्ति का उपयोग करें । यही गाँधी जी का अहिंसक प्रयास था जिस।। के द्वारा अमीरों और गरीबों को राष्ट्र के विकास के लिए संगठित किया जा सकता था ।

यह कहना ठीक होगा कि यदि माओ के राजनीतिक-आर्थिक आदर्श मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित थे, तो गाँधी के राजनीतिक-आर्थिक आदर्श नैतिकता से निर्धारित थे । उन का मानना था कि आलस्य का स्वभाव और कार्यशीलता का अभाव भारतीयों में भारी शारीरिक और आध्यात्मिक क्षति का कारण बन सकता है । परिणाम स्वरूप गाँधी ने माना कि यदि व्यक्ति शारीरिक और नैतिक रूप से कमजोर होंगे तो उन में बड़े राजनीतिक या किसी विचारधारा पर आधारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए चेतना जागृत नहीं की जा सकती है । उन्हों ने यह भी अनुभव किया कि आधुनिक सभ्यता के प्रतीक जैसे अत्याधुनिक मशीनीकृत उद्योग जो बड़े पैमाने पर उत्पादन करते हैं, वे परम्परागत स्वदेशी ग्रामीण तकनीकों या घरेलू उद्योगों को नष्ट करने पर आमादा हैं और बेरोजगारी और आलस्य अर्थात निकम्मेपन को बढ़ावा दे रहे हैं । इस लिए गाँधी राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण करना चाहते थे और भारत के विशेष सन्दर्भ में ग्राम को उत्पादन और प्रशासन की मूल इकाई के रूप में बहाल करना चाहते थे । ग्राम्य अर्थव्यवस्था और प्रशासन की मूल इकाई के रूप में ग्राम पर जो बल गाँधी द्वारा दिया गया है, उस में सादगी, नैतिकता और प्रत्यक्ष सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को महत्वपूर्ण माना गया हैं ।

भारतीय जनता को संगठित करने के लिए गाँधी ने स्वराज की अवधारणा का प्रतिपादन किया । यद्यपि स्वराज का अर्थ है, आत्मानुशासन, गाँधी ने इरा क्षेत्र में सम्पूर्ण जीवन प्रभावित करने वाले विषय को सम्मलित कर के इसे एक समग्र क्रान्ति का रूप प्रदान किया है

। वैयक्तिगत स्तर पर स्वराज आत्म मूल्यांकन, लगातार आत्म शुद्धि और स्वदेशी या आत्म निर्भरता का द्योतक है । स्वराज का राजनीतिक पक्ष है, स्वशासन न कि 'अच्छा शासन' । महात्मा गाँधी के लिए 'अच्छा शासन' स्वशासन का विकल्प नहीं हो सकता । स्वराज का राजनीतिक अर्थ सरकार के नियन्त्रण से स्वतन्त्र रहने का निरन्तर प्रयास है, सरकार भले ही विदेशी हो या स्वदेशी । दूसरे शब्दों में यह शुद्ध नैतिक अधिकार के आधार पर लोगों की सम्प्रभुता है । स्वराज का आर्थिक पक्ष है, मेहनत करने वाले लोगों के लिए पूरी आर्थिक स्वतन्त्रता । गाँधी के लिए जनता का स्वराज उन सभी व्यक्तियों के स्वराज का योग है, जो उस जन समूह में सम्मिलित है । इस लिए उन्हों ने यह स्पष्ट किया कि उन के लिए स्वराज का मतलब सब से निम्नस्थ व्यक्ति का स्वराज भी है । अपने पूर्ण अर्थ में स्वराज बाहरी नियन्त्रण से मुक्त रहने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आत्मानुशासन और आत्म-संयम है और मोक्ष या मुक्ति के बराबर माना जा सकता है ।

स्वराज कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इस पर भी गाँधी ने गम्भीरता से ध्यान किया । उन्हों ने अपने देशवासियों को याद दिलाया कि स्वराज आसमान से टपक कर उन के पास नहीं आएगा बल्कि यह धैर्य. दृढ़ता, लगातार परिश्रम, साहस और बुद्धिमत्ता पूर्वक पर्यावरण के साथ सम्बन्ध जोड़े जाने से प्राप्त हो सकेगा । उन्हों ने याद दिलाया कि स्वराज का अर्थ वृहद संगठनात्मक कौशल या सक्षमता, ग्राम की सेवा हेतु गांवों तक पहुंचना, राष्ट्रीय शिक्षा और जनता की शिक्षा है । जनता की शिक्षा के माध्यम से गाँधी समस्त जन समूह की आत्मा को जागृत कर, तदनुरूप आचरण करने, संगठित होने, सशक्त होने, सक्षमता बढ़ाने और शोषणकारी शक्तियों के विरुद्ध दृढता पूर्वक खड़े होने के सद्गुण विकसित करना चाहते थे । अत: उन्हों ने कहा था कि यही अर्थ में स्वराज की प्राप्ति तब नहीं होगी जब सत्ता का अधिग्रहण किया जाएगा अपितु तब आएगा जब इस क्षमता का विकास होगा कि जब भी सत्ता का दुरूपयोग हो तो उस का विरोध किया जाए । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि स्वराज प्राप्ति के लिए आम जनता को इस प्रकार शिक्षित किया जाना चाहिए कि वे सत्ता को संयमित और नियन्त्रित रख सके ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि गाँधी और माओ ने साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष किया और राष्ट्रीय विकास के अपने-अपने आदर्श प्रस्तुत किए, तदापि जन संगठन के लिए जिन तरीकों का दोनों ने इस्तेमाल किया वे क्रियात्मक रूप से अलग-अलग स्वरूप के थे । गाँधी ने अहिंसात्मक सिद्धान्तों के आधार पर आम जन को संगठित करने का प्रयास किया, माओ ने मार्क्स और लेनिन द्वारा प्रतिपादित क्रान्तिकारी विचारों के आधार पर ऐसा करने का प्रयास किया।

5.5 गाँधी और माओ: भिन्नता के आधार

वास्तव में गाँधी और माओ के बीच बुनियादी अन्तर है । उद्देश्यों की जिन तरीकों के प्रयोग से प्राप्त करने का प्रयास किया गया वह दोनों के नजदीक भिन्न स्वरूप का है । गाँधी मानते थे कि व्यक्ति और समाज में परिवर्तन लाने के लिए आहिंसा का कोई प्रभावी विकल्प नहीं है, जब कि माओ हिंसात्मक और खूनी क्रान्ति में विश्वास रखते थे ।

माओ के लिए हिंसा सामाजिक परिवर्तन का एक अभिन्न हिस्सा है । उन्हों ने कहा था कि क्रान्ति एक डिनर पार्टी, निबन्ध लेखन, चित्रकला या कढाई का काम नहीं है । यह इतना परिष्कृत, इत्मीनानबख्स और कोमल नम्र, दयालु, संयमित और उदार नहीं हो सकता । क्रान्ति एक विप्लव है, हिंसा वह कृत्य है, जिस के द्वारा एक वर्ग दूसरे वर्ग को अपदस्थ करता है । वर्ग आधारित समाज में माओ हिंसक क्रान्ति को अपरिहार्य मानते हैं ।

माओ के अनुसार क्रान्ति और क्रान्तिकारी युद्ध वर्ग-युक्त समाज में अपरिहार्य है । इन के बिना सामाजिक विकास की दिशा में छलांग लगाई जा सकती है, सत्ताधारी शोषक वर्ग को अपदस्थ किया जा सकता है और जनता द्वारा राजनीतिक शक्ति को प्राप्त किया जा सकता है । इस लिए उन्हों ने कहा था कि प्रत्येक साम्यवादी को यह सत्य जान लेना चाहिए कि राजनीतिक शक्ति बन्दूक की नाल से निकलती है ।

माओ द्वारा प्रतिपादित संघर्ष का सिद्धान्त उन के समकालीन चीन की समकालीन परिस्थितियों से जनित था । अपने लोगों की ही पीडा और क्रान्ति की परिस्थितियां और माओ की स्वयं मार्क्सवाद सम्बन्धी समझ से उन का सोच प्रभावित हुआ । माओवाद मूल रूप से मार्क्सवादी-लेनिनवादी है । माओ ने चीन की विद्यमान परिरिथतियों में मार्क्स के विचारों को सैन्य रणनीतियों और अन्य नीतियों के आधार पर क्रियान्वित करने का प्रयास किया । जो शक्तियां अपने समकालीन समाज की जनता का शोषण कर रही थीं उन्हें माओ ने दुश्मन मान कर तदनुरूप उन के विरुद्ध कार्य करने का विचार प्रस्तुत किया ।

इस प्रकार माओ उपस्थित राजनीतिक परिस्थितियों में दो तरीकों को अपनाने की कोशिश करते हैं । पहला तरीका था समाजवाद के विरोधियों या दुश्मनों के विरुद्ध सत्तावादी तरीकों का प्रयोग । इस के अन्तर्गत अधिनायकवादी तरीकों का तब तक प्रयोग करने का समर्थन था जब तक कि विरोधियों में परिवर्तन नहीं आ जाए । अपने विरोधियों को राजनीतिक गतिविधियों से पृथक रखने और जनवादी चीनी सरकार के नियमों का जब्रन अनुसरण करने और श्रम में संलग्न होने को तब तक विवश करना आवश्यक समझा गया जब तक कि उन में एक 'नया मानव' उभर कर सामने न आ जाए । माओ के सत्तावादी उपाय युद्ध की संस्कृति को अपनाते हैं । उन्हों ने कहा कि हिंसा को दुश्मन की ओर मोड़ना चाहिए ।

दुश्मनों की श्रेणी में माओ ने सामन्तों, सरदारों, नौकरशाहों और प्रतिक्रियावादी बुद्धिजीवियों को सम्मलित किया । उन्हों ने 'बिना बन्दूक धारण किए हुए दुश्मन' के विरुद्ध सावचेत और सतर्क रहने के लिए कहा । उन्हों ने कहा कि यह क्रान्ति के लिए बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्रान्तिकारी यह पूर्व में ही सुनिश्चित कर ले कि कौन उन के दोस्त होगे और कौन दुश्मन ।

दूसरा तरीका था प्रजातान्त्रिक साधनों का जो जनता की तरफ निर्देशित था । जनता को अनिवार्य रूप से राजनीतिक गतिविधियों में सहभागिता करने को यह महत्वपूर्ण मानता है । परन्तु साथ ही यह उन्हें बाध्य नहीं करता कि उन्हें कोई विशेष कार्य के लिए प्रतिबद्ध होना है या उस से पृथक रहना है, अपितु प्रजातान्त्रिक तरीकों के माध्यम से उन्हें शिक्षित करने और उन्हें राजी करने पर बल देता है ।

जहां तक गाँधी का सम्बन्ध है, उन्हों ने उच्च आदर्शात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हिंसा को एक प्रभावी साधन के रूप में अपनाना अस्वीकार किया । उन्हों ने कहा कि वे हिंसा का विरोध इस लिए करते हैं क्यों कि जब भी इस के प्रयोग से कुछ अच्छा होता हुआ प्रतीत होता है तब वास्तव में यह केवल कुछ क्षणों के लिए ऐसा प्रतीत होता है और बुराई का यह फैलाता है वह स्थायी हो जाती है । माओ से भिन्न गाँधी ने वास्तव में साधन और साध्य में कोई अन्तर नहीं किया । गाँधी के लिए साधन निर्माणाधीन साध्य है । उन्होंने समझाया कि जिस प्रकार का साधन हम उपयोग में लाएंगे, उदाहरण के तौर पर हिंसात्मक या अहिंसात्मक, रहस्यमयी या पारदर्शी, लोकतान्त्रिक या अधिनायकवादी, सत्यवादी या धोखा देने वाला, हमारे द्वारा तदनुसार समाज की ही नींव रखी जाएगी । माओ और उन के समान विचार वाले लोगों की यह मान्यता थी कि 'साध्य की पवित्रता जरूरी है, साधन भले ही कुछ भी हो', लेकिन गाँधी इस से सहमत नहीं थे और कहते कि क्रांतिकारी हिंसक संघर्ष केवल हिंसक स्वराज दिला सकता है और उन के अनुसार यह स्वराज सही अर्थो में स्वराज नहीं होगा ।

गाँधी ने न केवल हिंसा को नकारा बल्कि इस बात को जोर दे कर कहा कि अहिंसा मनुष्य की सब से बडी ताकत है, यह मानव द्वारा निर्मित सब से ताकतवर विनाशकारी हथियार से भी अधिक शक्तिशाली है । विनाश मानव के लिए सहज नहीं हैं । मनुष्य स्वतन्त्र रहता है क्यों कि वह मरने के तैयार रहता है, जरूरत पड़ने पर अपने भाई के हाथों ही मरने को तैयार होता है और कभी भी भाई को मारने की नहीं सोचता है । प्रत्येक हत्या या चोट, चाहे वह किसी भी कारण के लिए की गई हो, मानवता के समक्ष एक अपराध है ।

गाँधी अहिंसा के कानून की सर्वोच्चता में विश्वास रखते थे । असमानता और शोषण की परिस्थितियों गाँधी ने सत्याग्रह और असहयोग के अहिंसक तरीकों के प्रयोग का समर्थन किया और कहा कि यह पाया गया है कि अहिंसक तरीके यदि पूर्ण ईमानदारी और पर्याप्त इच्छा शक्ति से पर्याप्त मात्रा में लाग किए जाएं तो यह हिंसा का पूर्ण विकल्प सिद्ध होते हैं ।

माओ ने हिंसा में अपना विश्वास व्यक्त किया और उस के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के निराकरण का प्रयास किया । परन्तु गाँधी की दृष्टि में अहिंसा एक ऐसा सार्वभौमिक सिद्धान्त है जो जीवन के हर क्षेत्र में लागू किया जा सकता है । उन्हों ने कहा कि अहिंसा और उस की क्रियान्विति प्रतिकूल परिस्थितियों से बाधित नहीं होती है, बल्कि वे तो यह भी मानते थे कि इस की क्षमता का परीक्षण तभी किया जा सकता है, जब विरोध के बीच और उस के बावजूद काम करना हो ।

माओ ने अपने देशवासियों को दो वर्गो में बांटा था- साम्यवाद के विरुद्ध लोग, जिन्हें दुश्मन कहा गया और जन सामान्य । अपने आदर्श समाज में साम्यवाद के दुश्मनों को पूर्णत: नष्ट करना या उन्हें भी जब्रन जन सामान्य की तरह साम्यवादी व्यवस्था के पक्षधर बनाना माओ की रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा था । दूसरी ओर गाँधी ने अपने सर्वोदय की आदर्श व्यवस्था में किसी भी व्यक्ति को पृथक नहीं रखा और न ही किसी के साथ जोर-जबरदस्ती या हिंसा के उपयोग से उस के अस्तित्व को समाप्त करने का विचार प्रस्तुत किया । उन्हों ने तो उपयोगितावाद के उस सिद्धान्त से भी आगे बढने का प्रयास किया जो अधिकतम लोगों के लिए

अधिकतम सुख का समर्थन करता है । गाँधी की आदर्श व्यवस्था में सभी लोगों को अधिकतम सुख-संसाधन जुटाने के प्रयासों की पालना पर बल दिया गया है । ऐसी व्यवस्था में सभी व्यक्ति इस सिद्धान्त और आदर्श के प्रति प्रतिबद्ध रहेंगे और इस की क्रियान्विति के लिए एक दूसरे की सेवा में संलग्न रहेंगे और दूसरो के लिए अपने जीवन का त्याग भी करने के लिए भी तैयार रहेंगे ताकि दूसरे जी सकें ।

उपर्युक्त आधार पर गाँधी राजनैतिक विरोध की प्रक्रिया को भी सुनिश्चित करते हैं और सत्याग्रह का दर्शन और तकनीक का प्रतिपादन करते हैं । गाँधी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य और आत्मपीडा सहने के सिद्धान्त पर आधारित है । उन का मत था कि आत्म पीडा मनुष्य जाति के लिए नैसर्गिक है, हिंसा जंगल का कानून है । आत्मपीड़ा को सहन करने के ही आधार पर उस विरोधी को भी परिवर्तित किया जा सकता है जो तर्क के आधार पर भी बदलने को तैयार नहीं हैं । इस कारण अहिंसा और आत्म पीडा को गाँधी ने हिंसा से अधिक ताकतवर माना है । गाँधी विरोधियों को दुश्मन के समान नहीं मानते । उन के द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह सिद्धान्त इस दृढ़ विश्वास पर भी आधारित है कि विरोधियों को तर्क के आधार पर और उन में अन्तर्निहित सहानुभूति के तार के माध्यम से परिवर्तित किया जा सकता है । इस तरह यह प्रत्येक मनुष्य में अच्छाई के तत्व पर भरोसा करता है । हिंसा का इस में कोई स्थान नहीं है, भले ही वह शब्दों के द्वारा था फिर कृत्य के द्वारा किया जा रहा हो । न्यायोचित कार्य के लिए और अनन्त रूप से पीड़ा सहने की क्षमता और हिंसा का परित्याग, गाँधी के अनुसार अवश्य रूप से सत्याग्रह को सफल बनाता है ।

5.6 सारांश

गाँधी और माओ के उपर्युक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि दोनों के विचार, उद्देश्य और कार्य में कुछ समानता के तत्व विद्यमान हैं । दोनों ने उपनिवेशवाद के विरुद्ध लड़ाई लडी और अपने देश का पुननिर्माण करने का प्रयास किया । दोनों मानते थे कि उपनिवेशवाद शोषणात्मक, दमनकारी, हिंसक और अमानवीय है । आम जनता की शक्ति में दोनों विश्वास करते थे और सोचते थे कि समाज को आन्तरिक प्रयासों से किया जा सकता है । देश की प्रगति के लिए दोनों ने आम जनता को संगठित करने का प्रयास किया इस के लिए उस समय के सन्दर्भो और सांस्कृतिक प्रतीकों का उपयोग किया । गाँधी और माओ ने एक मूल्य-केन्द्रित वैकल्पिक व्यवस्था का प्रतिपादन किया और नवीन राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं और सामाजिक संबन्धों के साथ प्रयोग कर के एक आदर्श व्यवस्था का प्रतिपादन किया ।

उपर्युक्त समानताओं के बावजूद गाँधी और माओ में काफी भिन्नता विद्यमान है! । यह भिन्नता तब स्पष्ट होती है जब दोनों के द्वारा लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रस्तुत किए गए साधनों का विस्तृत विश्लेषण किया जाता है । माओ हिंसक साधनों से शक्ति प्राप्त करने में विश्वास रखते थे और सैन्य शक्ति और राजनैतिक शक्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं । विरोधियों का सर्वनाश कर या उन्हें जब्रन अपनी विचारधारा के प्रति समर्पित करने की नीति माओ के विचार का प्रमुख लक्षण है । उन के लिए साध्य महत्वपूर्ण है साधन नही । गाँधी की दृष्टि में साधन और साध्य दोनों ही पवित्र होने चाहिए । यह पवित्रता उन के अनुसार हिंसा से

सुनिश्चित नही की जा सकती अपितु इस के लिए अहिंसा अपरिहार्य है । गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह तकनीक विरोधियों को भी साथ ले कर चलने और उन के भी कल्याण की कामना का सोच रखने पर बल देती है । इस मे विरोधियों के विरुद्ध हिंसात्मक रवैया अपनाने के बजाए विरोधियों द्वारा दी गई पीडा को स्वयं सहन कर के उन के हृदयपरिवर्तन के प्रयास को अधिक महत्व दिया गया है । गाँधी ने जिस स्वराज की कल्पना की है वह केवल विदेशी शासन से मुक्ति नहीं है, बल्कि आत्मानुशासन की परिणिति है जो सर्वोदय की ओर बढने में मदद करता हैं । स्वराज उन के लिए नैतिक या आध्यात्मिक शक्ति है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि माओ के विचार हिंसा और क्रान्ति पर आधारित हैं जब कि गाँधी के विचार अहिंसा और सत्याग्रह को परिवर्तन का आधार बनाते हैं ।

5.7 अभ्यास

1. माओ तुंग द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रीय उत्थान संबंधी विचारों को स्पष्ट कीजिये ।
2. गाँधी और माओ के विचारों में विद्यमान समानताओं पर प्रकाश डालिए ।
3. गाँधी और माओ के विचारों में विद्यमान असमानताओं पर प्रकाश डालिए ।

5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी, मदन गोपाल, गाँधी और मार्क्स, मंथन पब्लिकेशन, रोहतक, 1982
2. टण्डन, विश्वनाथ, स्टडीस इन गाँधीयन थॉट एण्ड मार्क्सिसम विथ स्पेशल रेफरेन्स टू विनोबा भावे, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006
3. प्रसाद, प्रधान एच., गाँधी मार्क्स एण्ड इण्डिया एन आल्टरनेटिव पाथ ऑफ प्रोग्रेस, मानक पब्लिकेशन्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली ।
4. चतुर्वेदी, एस. एन., कार्ल मार्क्स के साम्यवादी और गाँधी के साम्ययोगी विचारों द्वारा नये समाज की रचना, कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2007

इकाई - 6

गोखले एवं गाँधी

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 गोपाल कृष्ण गोखले के प्रमुख विचार

6.3 महात्मा गाँधी के प्रमुख विचार

6.4 गोपाल कृष्ण गोखले व महात्मा गाँधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

6.5 सारांश

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.6 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

6.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप

- गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विचारों से परिचित हो सकेंगे,
- महात्मा गाँधी के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक दृष्टिकोण को समझ सकेंगे,
- महात्मा गाँधी एवं गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों के मध्य समानताओं और असमानताओं के पक्षों से भिन्न हो सकेंगे
- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गोपाल कृष्ण गोखले एवं महात्मा गाँधी के योगदान का विश्लेषण कर सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गोपाल कृष्ण गोखले एवं महात्मा गाँधी का महत्वपूर्ण योगदान है । गोपाल कृष्ण गोखले ने जहां कांग्रेस को उद्भव काल में स्थिरता व आधार प्रदान कर नवोदित भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की. नींव को पक्का किया वहीं महात्मा गाँधी ने सत्य एवं अहिंसा पर आधारित विभिन्न तकनीकों एवं अहिंसक आंदोलन द्वारा आंदोलन को चरम परिणिती अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्ति तक पहुँचाया । गाँधी, गोखले को अपना राजनीतिक गुरू मानते थे । इसलिए दोनों के चिंतन में कई समान दृष्टिकोण व पक्ष परिलक्षित होते है । अग्रलिखित बिन्दुओं के माध्यम से गोखले एवं गाँधी का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है-

6.2 गोपाल कृष्ण गोखले के प्रमुख विचार

गोपाल कृष्ण गोखले कांग्रेस के आरम्भिक नेताओं की तरह उदारवादी थे । गोखले ने देश सेवा हेतु राष्ट्रीय राजनीति में पदार्पण किया और सम्पूर्ण देश में अपने विचारों और कार्यो के माध्यम से जन जागृति संचारित करने का अथक प्रयास किया । उनके द्वारा बनाए आधार

पर ही गाँधी और अन्य नेतृत्वकर्ताओं ने भारतीयों को स्वतंत्रता प्रदान करवाने में अतुलनीय योगदान दिया । गोखले द्वारा प्रतिपादित विचारों को अग्रलिखित बिन्दुओं के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है:-

(I) राजनीतिक विचार

गोखले द्वारा सुव्यवस्थित ढंग से राजनीतिक विचारों को उद्भासित नहीं क्रिया अत: उनके राजनीतिक विचारों को विभिन्न आयोगों के समक्ष दिए गए साक्ष्यों, उनके राजनीतिक वसीयतना में कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों में दिए गए वक्तव्यों तथा प्रस्तावों के संदर्भो में विश्लेषित किया जा सकता है जो अग्रांकित हैं-

(i) गोखले को उदारवादी मूल्यों यथा स्वतंत्रता, समता, विधि का शासन, सीमित सरकार, न्याय अधिकार इत्यादि में गहन विश्वास था कि वे मानते थे ब्रिटिशों को इन मूल्यों को उसी तरह भारतीय व्यवस्था में स्थापित करना चाहिए जिस तरीके से ये ब्रिटिश व्यवस्था के आधार थे ।

(ii) गोखले की यह मान्यता थी कि ब्रिटिश शासन भारतीय जनता के लिए वरदान है जिसके माध्यम से वे भारतीय जनता की इस प्रकार सहायता करना चाहते थे कि वह दृढ़ता से (ब्रिटिश प्रजाजन के रूप में) समानता की स्थिति की ओर बढ सके और कालान्तर में, उच्चतर पाश्चात्य मूल्यों के अनुरूप, खुद अपना शासन चलाने मे समर्थ हो सके । उनके अनुसार ब्रिटिश शासन को भारत में वास्तव में एक "नैतिक-न्यास" के रूप में कार्यशील रखने के लिए, ब्रिटिश सरकार द्वारा उदार और विवेक सम्मत नीति अपनाई जाने की आवश्यकता थी ताकि भारतीयों की कृतज्ञता और लगाव के प्रति इंग्लैण्ड का दावा न्यायोचित हो सके ।

(iii) गोखले ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत ही भारतीयों के स्वशासन की संकल्पना के समर्थक थे । उनके अनुसार कांग्रेस का लक्ष्य है कि भारत का शासन स्वयं भारतीयों के हितों में किया जाये तथा आने वाले समय में इस देश मे उस शासन प्रणाली की प्राप्ति हो, जो ब्रिटिश साम्राज्य स्वायत्तशासी उपनिवेशों में मौजूद है । वस्तुत: गोखले की आकांक्षा थी कि भारतीय अपनी आंतरिक शासन संचालन में पूर्ण स्वतंत्र हो तथा सम्प्रभुता का निवास ब्रिटिश ताज में हो । दूसरे शब्दों में गोखले. स्वशासन या स्वराज्य का आशय कनाडा की भांति औपनिवेशिक स्वराज्य या अधिराज्य से था न ब्रिटिश शासन से पूर्ण प्रथक्करण ने।

(iv) गोखले राजनीतिक उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदैव संवैधानिक संसाधनों के प्रयोग पर बल देते थे । उनके अनुसार मनुष्य एक नैतिक जीव है अत: नैतिक साध्यों की प्राप्ति हेतु साधन भी नैतिक होने चाहिए । गोखले द्वारा ब्रिटिश शासन की कमियों को उजागर करने एवं नीतियों का विरोध करने हेतु आग्रह, प्रार्थना पत्र, प्रतिवेदन, प्रतिनिधिमण्डल, स्मरण पत्र, विचार-विमर्श इत्यादि साधनों का प्रयोग किया गया जिनको उनके राजनीतिक विरोधी 'भिक्षावृति' की संज्ञा देते थे किंतु गोखले उन्हे नैतिक आग्रह की संज्ञा देते थे ।

(v) गोखले एक ऐसे आदर्शवादी थे जो विद्यमान व्यवस्था के आमूल-चूल परिवर्तन करने या उसकी जगह नवीन व्यवस्था स्थापित करने के स्थान पर विद्यमान व्यवस्था को ही दोष रहित कर आदर्श स्वरूप प्रदान करने हेतु कटिबद्ध थे । इसलिए गोखले भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में क्रमिक सुधारों के माध्यम से व्यवस्था को त्रुटि रहित बना स्वराज्य को स्थापित करने की संकल्पना को प्रतिपादित करने वाले प्रथम विचारक थे । उनका मानना था कि भारतीय जनता अभी राजनीतिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से परिपक्व नहीं है । इसलिए गोखले क्रमिक सुधारों और भारतीय जनता के राजनीतिक व प्रशासनिक प्रशिक्षण को भारत के भविष्य हेतु समानान्तर रूप से अनिवार्य मानते थे ।

(vi) गोखले का यह मत था कि पवित्र साधनों के माध्यम से पवित्र साध्य की प्राप्ति की जा सकती है । उनके अनुसार राजनीति आत्म उत्थान एवं राष्ट्र सेवा का क्षेत्र तभी बन सकती है जबकि उसमें कार्यरत लोग उच्च चरित्र एवं नैतिक गुणो से युक्त हों । इसी लक्ष्य की पूर्ति तथा राजनीतिक के आध्यात्मीकरण हेतु गोखले ने 1905 में भारत सेवक समाज संस्थापित किया । इसके संविधान में कहा गया था "सार्वजनिक जीवन का अवश्य ही आध्यात्मीकरण होना चाहिए । देश के प्रति अनुराग से हृदय इतना भरा हुआ होना चाहिए कि शेष सब निस्सार प्रतीत हो । वह देशभक्ति जो मातृभूमि पर बलिदान के प्रत्येक अवसर में आनन्द का अनुभव करती है, वह निर्भय हृदय जो कठिनाई का खतरे की स्थित में अपने लक्ष्य से हटने से इन्कार करता है जिसका ईश्वर पर विश्वास कभी डगमगाता नहीं, इन गुणों से युक्त होकर एक कार्यकर्ता को अपने मिशन के कार्य को शुरू करना चाहिए और अपने देश की सेवा में व्यतीत किए गये जीवन से ही सम्मानपूर्वक आनन्द प्राप्त करना चाहिए ।"

(vii) गोखले ने रचनात्मक, आर्थिक, मनौवैज्ञानिक एवं नैतिक आधारों पर स्वदेशी आदोलन का समर्थन किया किंतु इसके नकारात्मक पक्ष 'बहिष्कार' का विरोध किया । गोखले के अनुसार, "मातृभूमि के प्रति समर्पण, जो कि स्वदेशी की भावना में पूर्णत: अर्न्तव्याप्त है, एक ऐसा गम्भीर ओर उत्कृष्ट भाव है कि उसका विचार मात्र व्यक्ति को पुलकित कर देता है और उसके वास्तविक स्पर्श से व्यक्ति अपनी तुच्छता के भाव से मुक्त होकर, अपने स्वयं के महत्व के प्रति जागरूक हो जाता है । आज भारत की सर्वोपरि आवश्यकता है कि स्वदेशी के प्रति समर्पण को इस मंत्र के प्रत्येक व्यक्ति के मन में चाहे वह छोटा या बडा, राजा हो या किसान, संचारित किया जाये । "गोखले स्वदेशी को आर्थिक आत्मनिर्भरता के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रमुख साधन मानते थे । इस संदर्भ में उन्होंने स्वदेशी को व्यवहार मे लागू करने से पूर्व चार सूत्री कार्यक्रम के माध्यम से पृष्ठभूमि बनाने का विचार भी प्रस्तुत किया । किंतु वे बहिष्कार से सहमत नही थे । उनके अनुसार बहिष्कार एक ऐसा विचार है जो उग्र है और प्रतिशोध की भावना को दर्शाता है । गोखले के अनुसार, "बहिष्कार निश्चित रूप से विरोधी पक्ष के क्रोध को जन्म देगा और देश का कोई भी सच्चा शुभ-चिन्तक तब तक ऐसे क्रोध को उकसाने का विकल्प नही चुनेगा जब तक कि यह नितान्त अनिवार्य न हो जाये ।"

(viii) यद्यपि गोखले ने ब्रिटिश शासन को भारतीयों के लिए वरदान बताया तथा ब्रिटिश ताज के अधीन स्वशासन का समर्थन किया तथापि गोखले का राष्ट्रवाद मे अगाध विश्वास था । गोखले के अनुसार, "अपनी मातृभूमि के लिए मेरी आकांक्षाएँ अनन्त और असीमित हैं । मैं अपने देश में अपने देशवासियों के लिए उसी स्तर और समान की अपेक्षा करता हूं जो किसी भी दूसरे देश में वहाँ के देशवासियों को प्राप्त हो । मेरी आकांक्षा है कि मेरे देश के स्त्री पुरूषों को, उच्चतम स्तर तक विकास के अवसर प्राप्त हों और उनकी उन्नति के प्रयासों में, बाधाएँ प्रतिरोध और अप्राकृतिक प्रतिबंध नहीं लगायें जाये... । मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरी यह आकांक्षा व्यवहारत: ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन ही पूरी हो सकती है । "उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि गोखले का ब्रिटिश सम्पर्क का पक्षधर होना उनकी राजनीतिक यथार्थवादी नीति का द्योतक था । यही वजह है कि ब्रिटिश नौकरशाही उन्हे 'छुपा हुआ राजद्रोही' कहती थी ।

(ix) गोखले का साम्प्रदायिक सौहार्द एवं सद्भावना में अटूट विश्वास था । उनका मत था कि साम्प्रदायिक एकता राष्ट्रवाद की पूर्व शर्त है । गोखले के अनुसार, "इस देश का भविष्य सुनिश्चित रूप से हिंदुओं और मुसलमानों के मध्य सौहार्दपूर्ण सहयोग पर निर्भर करता है । इन दोनों में से किसी भी समुदाय के लिए एक-दूसरे से पृथक हो जाना संभव नहीं है । इन दोनों को ही इसी भूमि मे एक साथ रहना है, और इसलिए यह आवश्यक है कि ये दोनों एक साथ मिलकर राष्ट्र-निर्माण का कार्य करे । "गोखले का यह मत था कि शनैःशनै भारत में शिक्षा का विकास होगा वैसे वैसे ही दोनो सम्प्रदायों में राष्ट्रीय गौरव की भावना विकसित होती जाएगी और एकता मजबूत हो जाएगी ।

(x) गोखले प्रशासनिक स्तर पर शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक है । उन्होंने वित्तीय विकेन्द्रीकरण को आवश्यक बताया तथा केन्द्र और प्रान्तों के मध्य राजस्व के न्यायपूर्ण वितरण का भी समर्थन किया । गोखले गृहशासन, केन्द्रीय शासन एवं प्रान्तीय स्तर पर भी सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना चाहते थे । इस दृष्टि से उन्होंने हॉब हाउस विकेन्द्रीकरण आयोग समक्ष ग्राम पंचायत, तालुका बोर्ड, नगर पालिका एवं जिला परिषद नामक स्थानीय संस्थाओं के गठन की बात की तथा ब्रिटिश नौकरशाही की अधिनायकवादी एवं साम्राज्यवादी प्रवृति का विरोध करते हुए जिला कलेक्टरों की शक्ति सीमित करने पर बल दिया ।

(II) आर्थिक विचार

गोखले भारत की आर्थिक दुरावस्था से अत्यन्त चिंतित थे । उन्होंने भारत की आर्थिक स्थिति का व्यवहारिक विश्लेषण करके यह निष्कर्षित किया की जब तक व्यापक स्तर पर सुधार नहीं होंगे तब तक राजनीतिक प्रयास निरर्थक है । गोखले के आर्थिक विचार दादाभाई नौरोजी, रानाडे, जी.वी. जोशी, रोमेश दत्त इत्यादि विचारकों से प्रभावित थे । उनके आर्थिक विचारों को अग्रांकित बिन्दुओं में समझने का प्रयास किया जा सकता है :-

(i) गोखले की मान्यता थी कि ब्रिटिश शासन द्वारा अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति हेतु भारतीय सेना का प्रयोग कर अत्यधिक व्यय किया जा रहा है । अत: उन्होंने वेल्वी

आयोग के समक्ष इस अपव्यय को कम करने हेतु सेना का भारतीयकरण करना, रिजर्व सेना की व्यवस्था, सेना का भारतीय सीमाओं के बाहर करने संबंधी सुझावों को प्रस्तुत किया ।

(ii) गोखले ने ब्रिटिश सरकार की कर नीति का प्रबल विरोध किया । उनके अनुसार कर नीति का झुकाव ब्रिटिश हितों की ओर अधिक था । कर संग्रहण की अधिकांश व्यय जनकल्याणाकारी कार्यो की बजाय नागरिक प्रशासन एवं सेना पर किया जा रहा था । इस संदर्भ में उन्होंने आयकर की छूट की सीमा में बढ़ोतरी, नमक पर कर की मात्रा में कमी, दुर्भिक्ष के समय भू राजस्व की माफी इत्यादि सुझावों को प्रस्तुत किया ।

(iii) गोखले एक उदारवादी थे किंतु वे भारत में आर्थिक क्षेत्र में मुक्त व्यापार की नीति अर्थात: अहस्तक्षेप के सिद्धांत का समर्थन नहीं करते थे । उनका मानना था मुक्त व्यापार की नीति औद्योगिकरण के लिए आवश्यक आधारभूत ढाँचे को निर्मित करने वाले देशों के लिए अच्छी है नाकि औद्योगिकरण से विहिन कृषि पर आधारित भारत के लिए । अत: जब तक भारत में औद्योगिकरण के लिए आवश्यक आधारभूत ढांचे का निर्माण नहीं हो जाता तब तक संरक्षण की सतर्क एवं विवेक सम्मत नीति अपनाई जानी चाहिए।

(iv) गोखले भारतीय कृषकों की ऋण ग्रस्तता की समस्या से अत्यधिक चिंतित थे । अत: इस संदर्भ में राजकीय हस्तक्षेप के समर्थक थे । उन्होंने किसानों को भूमि गिरवी रखने के अधिकार का वचन करने वाले 'लैण्ड एलिनिएशन बिल' का विरोध करते हुए सहकारी साख समितियों की स्थापना पर बल दिया ।

(v) गोखले ने रेलों के विस्तार को भारत के प्रशासन पर नियंत्रण रखने तथा ब्रिटिश वाणिज्य हितों के पूर्ति के रूप में देखा । किंतु वे रेलों कें विकास के विरोधी नही थे अपितु रेलों के विस्तार को प्राथमिकता देने के विरोधी थे क्योंकि इस से अन्य जनकल्याणकारी कार्यो में कोष की सीमितता हो जाती थी ।

(III) शिक्षा सम्बन्धी विचार

गोखले का मत था कि शिक्षा के बिना व्यक्ति की कुशलता में वृद्धि, बुद्धिमता के सामान्य स्तर में वृद्धि और समुदाय के एक बडे भाग में चारित्रिक सुदृढ़ता को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता । गोखले ने स्वंय भी 'दक्खन शिक्षा समाज' में अल्प वेतन पर कार्य कर भारत में शिक्षा के प्रचार प्रसार का कार्य किया । उनके शिक्षा संबंधी विचारों का सार अग्रलिखित है ।

(i) गोखले के अनुसार प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य होनी चाहिए क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति की नैतिक क्षमताओं और आर्थिक दक्षताओं में वृद्धि होती है और सम्पूर्ण समुदाय का बौद्धिकता का स्तर बढता है ।

(ii) उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक विभेद का विरोध किया और स्त्री शिक्षा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा कि "प्रत्येक राष्ट्र के यथार्थ कल्याण में नारी शिक्षा एक उच्चतम मूल्य है ।"

(iii) गोखले ने भारतीयों हेतु पाश्चात्य शिक्षा का समर्थन किया । इस पद्धति के माध्यम से वे समाज में चिंतन का लौकिक विकासवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहते थे ।

(iv) गोखले के अनुसार भारत में ओद्योगीकरण व आर्थिक विकास हेतु आवश्यक दक्षता के लिए तकनीकी शिक्षा का प्रसार अत्यन्त जरूरी है अत: इसके लिए उन्होंने एक आयोग गठित करने की मांग भी की ।

(v) गोखले भारत में उच्च शिक्षा के प्रसार एवं विश्वविद्यालयों की स्वायत्ता के हिमायती थे । उनके अनुसार उच्च शिक्षा प्राप्त करके ही युवा अधिक उदारवादी तथा अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के बारे में भिन्न हो सकेंगे ।

(IV) सामाजिक विचार

गोखले ने समाज सुधार सम्बन्धी कार्यो एवं आंदोलनों में प्रत्यक्ष एवं सक्रिय भाग नहीं लिया तथापि वे भारत में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों एवं रूढियों को समाप्त करने के पक्ष में थे । इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होने पाश्चात्य पद्धति पर आधारित शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया व्यक्ति में तर्क एवं विवेकशीलता को उत्पन्न करती है । गोखले जाति और नस्लीय विभेद के घोर विरोधी थे ।

उनका मानना था तक जब कि भारतीय समाज जाति, अस्पृश्यता और ऊँच-नीच के विभेदों से ग्रस्त रहेगा तब तक एक राष्ट्र के रूप मे अपनी पहचान स्थापित नही कर सकेगा ।

6.3 महात्मा गाधी के प्रमुख विचार

महात्मा गाँधी आधुनिक भारत के महान नेतृत्वकर्ता, समाज सुधारक और नैतिक दार्शनिक थे । गाँधी को सम्पूर्ण चिंतन नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित एक विशिष्ट निगमनात्मक अनुभवात्मक के समन्वय संयुक्त पद्धति पर आधारित है । इस प्रकार गाँधी का चिंतन सत्य ईश्वर और धर्म के प्रत्ययों के आधार पर एक व्यापक, मानवतावादी विचारो को उद्भवित करता है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक सभी आयाम निहित है । गाँधी के प्रमुख विचार अग्रलिखित है-

(I) राजनीतिक विचार

(i) अहिंसा

गाँधीजी के अनुसार लोकतंत्र केवल अहिंसात्मक राज्य में ही संभव है । लोकतन्त्र आर्थिक समानता व स्वतंत्रता पर निर्भर है और आर्थिक स्वतंत्रता बिना लोकतंत्र के संभव है । गाँधीजी कहते हैं कि पूंजीवादी समाज में व्यक्तिगत शोषण होता है जो कि अनेक प्रकार की हिंसा कारण है । उनका मानना है कि यदि नव-स्वतंत्र देश अहिंसा नही अपनाते है तो संवैधानिक लोकतन्त्र उनकी पहुंच से दूर हो जायेगा ।

गाँधीजी कहते है कि स्वतंत्रता व आर्थिक समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने का एक रास्ता समाजवाद भी है । परंतु यह भी सर्वहारा का अधिनायकवाद है जो कि सर्वहारा वर्ग पर हिंसात्मक नियंत्रण है । यह तो बीमारी से भी भयानक उपचार होगा ।

सर्वाधिकार वादी राज्य अधिनायकतंत्र का आधुनिक पर्याय है । यहाँ तक कि इसमें अधिनायकतंत्र की स्वतंत्रता व लोकतंत्र को भी कर दिया जाता है ।

गाँधीजी के अनुसार सच्चा लोकतंत्र या जनसाधारण व स्वराज्य असत्य हिंसापूर्ण उपायों से कभी नहीं आ सकता इसकी सीधा कारण यह है कि इनको काम में लेने का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि विरोधियों का दमन या विनाश करके सारा विरोध हटा दिया जायेगा । इससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पनप नहीं सकती । व्यक्तिगत स्वतंत्रता विशुद्ध अहिंसा के शासन में ही पूरी तरह काम कर सकती है ।

(ii) ग्राम स्वराज्य

गाँधीजी के अनुसार आदर्श समाज राज्य-रहित लोकतंत्र है, प्रबुद्ध और जागृत अराजकता की अवस्था है, जिसमें सामाजिक जीवन इतनी पूर्णता के स्तर पर पहुँच जाता है कि वह स्वयंशासित और स्वयं नियंत्रित हो जाता है इनके अनुसार आदर्श अवस्था में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होती, क्योंकि किसी राज्य का अस्तित्व नहीं होता । गाँधीजी एक व्यवहारिक आदर्शवादी थे । वे जानते थे कि राज्य का पूर्ण उन्मूलन संभव नही हैं अत: उन्होंने ग्राम स्वराज्य की संकल्पना प्रस्तुत की । ग्राम स्वराज्य में राज्य का अंत नही होना परंतु राज्य का विकेन्द्रीकरण होता है । गाँधी के अनुसार, "सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठे हुए बीस व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता । उसे प्रत्येक गांव के लोगों को नीचे से चलाना होगा ।" ग्राम स्वराज्य में प्रत्येक व्यक्ति सीधे रूप से शासन या सरकार का निर्माता होगा । उसकी सरकार और वह दोनो अहिंसा के नियम से नियंत्रित होंगे । गाँधीजी के अनुसार, "गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी । इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गाँव के वयस्क स्त्री पुरूषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें । चूंकि इस ग्राम स्वराज्य में सजा अथवा दंड की कोई प्रथा नहीं रहेगी इसलिए यह पंचायत । अपने कार्य अपने एक वर्ष के कार्यकाल में स्वयं ही धारा सभा, न्यायसभा और व्यवस्थापिका सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी ।" उनके अनुसार ग्राम स्वराज्य एक ऐसी प्रणाली है जिसमें प्रत्येक स्वाश्रयी और आत्म निर्भर होंगे और गांव के नागरिक सत्ता नियंत्रित ना होकर स्व-नियंत्रित होंगे, वे, कार्य के लिए सरकार की ओर ताकने वाले न होकर हर कार्य अपनी सूझ-बूझ से करने वाले उत्तरदायित्व की उच्च विकसित भावना से युक्त होंगे । ग्राम स्वराज्य में अंतिम सत्ता व्यक्ति के हाथ में होगी । इस प्रकार गाँधीजी का आदर्श ग्राम स्वराज्य एक वास्तविक एवं शक्तिशाली लोकतंत्र है जिसमें राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक स्वतंत्रता विद्यमान रहती है । ऐसा सच्चा विकेन्द्रित लोकतंत्र सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उदान्त संदेश देने वाला होगा ।

(iii) धर्मनिरपेक्ष राज्य

गाँधीजी ने साम्प्रदायिक एकता एवं सद्भाव स्थापित करने हेतु एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की आवश्यकता पर बल दिया । महात्मा ने स्पष्ट कहा था कि, "बेशक, राज्य धर्मनिरपेक्ष

होना चाहिए उसमें रहने वाले हर नागरिक, को बिना किसी रूकावट के अपने धर्म मानने का हक होना चाहिए । जब तक वह मेरे देश के कानून को मानता है । हुकुमत तो सब लोगों के लिए बनाई है ।" उन्होंने कहा कि अपने धर्म पर मेरा अटूट विश्वास है । मैं उसके लिए अपने प्राण दे सकता हूं । लेकिन वह मेरा निजी मामला है । राज्य को उससे कुछ लेना-देना नहीं है । राज्य हमारे लौकिक कल्याण, स्वास्थ्य, आवागमन, विदेशों से सम्बन्ध करेंसी (मुद्रा) आदि की देखभाल करेगा । लेकिन हमारे या तुम्हारे धर्म कीं नही धर्म हर एक का निजी मामला है ।

गाँधीजी के अनुसार, "आजाद हिंदुस्तान मे राज्य हिन्दुओं का नही, बल्कि हिन्दुस्तानियों का होगा और उसका आधार किसी धार्मिक पंथ या सम्प्रदाय के बहुमत पर नही बल्कि बिना किसी धार्मिक भेदभाव के समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर होगा । स्वतंत्र हिन्दुस्तान में लोग अपनी सेवा और योग्यता के आधार पर ही चुने जायेंगे । धर्म एक निजी विषय है जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं होना चाहिए ।

(iv) धर्म और राजनीति

गाँधी ने धर्म और राजनीति के पृथक्करण को अस्वीकार करते हुए धर्म और राजनीति की घनिष्ठता पर बल दिया और राजनीति के आध्यात्मीकरण के सूत्र का प्रतिपादन किया । गाँधी के अनुसार धर्म का अर्थ सार्वभौमिक नैतिकता है और यदि इसे राजनीति से पृथक कर दिया जाए तो राजनीति हिंसा व संघर्ष का स्थान बन जाएगी । गाँधी का कहना है, "मेरे लिए धर्म विहिन राजनीति का कोई अस्तित्व नहीं है । राजनीति धर्म के आधीन होती है धर्म से अलग हुयी राजनीति मृत्यु जाल है, क्योंकि वे आत्मा को मारती है ।"

(v) साधन एवं साध्य

राजनीति एवं नैतिकता के घनिष्ठ सम्बंध को व्याख्ति व स्पष्ट करने हेतु गाँधी ने साधन एवं साध्य दोनों की पवित्रता का समर्थन किया । गाँधी का मत था कि जैसा साधन होगा वैसा ही साध्य प्राप्त होगा । साधन बीच की तरह है जबकि साध्य फल के सदृश्य है । यदि बीज कड़वा होगा तो फल भी अवश्य में कडवा होगा । अत: यदि साध्य अत्यन्त पवित्र व नैतिक है लेकिन अगर साधन अपवित्र है तो साध्य भी भ्रष्ट हो जाएगा । इसीलिए गाँधी ने हमेशा अंहिसा व सत्याग्रह की तकनीकों को स्वराज्य के पवित्र लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयोग किया।

(i) राष्ट्रवाद व अंतर राष्ट्रवाद

गाँधी के चिंतन में राष्ट्रवाद की भावना अंतर्राष्ट्रवाद की भावना की पूर्व शर्त है क्योंकि यदि हम अपनी अस्मिता अर्थात् राष्ट्रीयता को खो दे तो हम अंतर्राष्ट्रीय हो ही नहीं सकते । लेकिन गाँधी संकीर्ण, एकांगी व आक्रामक राष्ट्रवाद का विरोध करते है । उन्होंने कहा, "मैं ऐसी देशभक्ति में विश्वास नहीं करता जो स्वयं अपने देश के अलावा अन्य देशों के कल्याण की भावना समाहित नहीं करती है । "उनके अनुसार राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता मानवता मात्र के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति और चरितार्थ करने के

माध्यम मात्र है । उनके अनुसार, "हम राष्ट्रवादी हो सकते है हम अनन्य देश भक्त हो सकते हैं, किंतु जैसे ही हम सत्य व अहिंसा के साधनों को प्रयुक्त करते है, हमारी देशभक्ति अंतर्राष्ट्रीयता की भावना में इस प्रकार रूपान्तरित हो जाती है कि हमारी कल्याण कामना की परिधि में ईश्वर। की छोटी से छोटी रचना भी समाविष्ट हो जाए।"

(II) आर्थिक विचार

(i) अहिंसात्मक अर्थव्यवस्था

गाँधीजी अर्थव्यवस्था के अहिंसात्मक आधार पर अत्यधिक बल देते हैं । उनके अनुसार दूसरे का दुःख अपना दुःख मानना, दूसरे का सुख अपना सुख मानना ही अहिंसा के सिद्धांत की सामाजिक अभिव्यक्ति है । आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा सह-उत्पादन सम-वितरण, सह-उपभोग, सह-जीवन के रूप में दिखाई देती है । यदि हम दूसरों को भूखा रहकर भोजन करते है या वस्त्र धारण करते है तो यह हिंसा है । इस प्रकार दूसरों को शोषण या आर्थिक कष्ट न पहुँचाए और सभी प्रकार के आर्थिक कष्ट झेलकर भूखा रहकर किसी को भी अपनी आँखों से भूखा न देखे यही अहिंसक अर्थव्यवस्था व समाज की धारणा है।

गाँधीजी के अनुसार, "भारत वर्ष मे एक समय ऐसा था जब ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संगठन अहिंसक धंधों के आधार पर, मनुष्य के अधिकारों के आधार पर नहीं परंतु मनुष्य के कर्तव्यों के आधार पर होता था । जो इन धंधों में लगते थे वे अपनी रोजी बेशक कमाते थे, परंतु उनके । श्रम से समाज की भलाई होती थी ।" अहिंसक धंधों की धारणा से गाँधीजी का तात्पर्य वह धंधा है जो बुनियादी तौर पर हिंसा से मुक्त हो और जिसमें दूसरों का शोषण या ईर्ष्या नहीं हो । उदाहरणार्थ एक बढ़ई गांव के किसान की जरूरते पूरी करता था उसे कोई नकद मजदूरी नहीं मिलती थी, परंतु गांव वाले अपनी पैदावार में यह हिस्सा देते थे ।

(ii) अर्थव्यवस्था का आधार व लक्ष्य-मनुष्य

गाँधीजी के अनुसार आर्थिक क्षमता के लिए मानव तत्व अत्यावश्यक है । उनके अनुसार अर्थव्यवस्था का आधार मनुष्य है सम्पत्ति या सोना चांदी नहीं है । वह देश सबसे ज्यादा समृद्ध है जो अधिक से अधिक संख्या में सज्जन ओर सुखी मानवों का भरण-पोषण करता है । अर्थात गाँधीजी रत्नरूपी सम्पत्ति को अर्थव्यवस्था का आधार बनाने की बजाय सशक्त, तेजस्वी व नीतिमान मनुष्यों रूपी रत्नों को अर्थव्यवस्था का आधार बनाना चाहते थे । उनका कहना था कि "मनुष्य एक इंजन है और उसको गति देने वाली शक्ति आत्मा है । यह विचित्र इंजन अधिक से अधिक कार्य वेतन के लिए या दबाव से नहीं करेगा । यह तभी संभव होगा श्रम तो अवश्य ही करेगा । अत: प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीविका को शरीर-श्रम से अर्जित कर श्रम के प्रति मन में प्रतिष्ठा अन्तर्व्याप्त कर बौद्धिक क्षमताओं का उपयोग परोपकार के लिए करे । इस प्रकार शरीर-श्रम का विचार समानता और सामाजिक सद्भाव दोनो को एक साथ सुनिश्चित करेगा ।

(iii) विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था

गाँधीजी ने अन्याय शोषण व दमन की प्रतीक केन्द्रित अर्थव्यवस्था के स्थान पर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विचार प्रस्तुत किया था । उनके अनुसार, "हमारा ध्येय लोगों को सुखी बनाना और साथ-साथ उनकी सम्पूर्ण बौद्धिक और नैतिक यानि आध्यात्मिक उन्नति सिद्ध करना है । यह ध्येय विकेन्द्रीकरण से ही सद्य सकता है । केन्द्रीकरण की पद्धति का अहिंसक समाज रचना के साथ मेल नही बैठता ।"

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में खादी और ग्रामोद्योग का प्रमुख स्थान है । आर्थिक संगठन इस प्रकार का हो कि ज्यादातर वस्तुओं का उत्पादन गांव में ही हो । प्रत्येक गांव अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुओं का उत्पादन स्वयं ही कर ले । जो वस्तुएं गांव में उत्पादित होती है उनका पक्का माल भी गाँव मे बने । कपास गाँव में पैदा होती है, अत: आवश्यकता इस बात की है कि कपडा भी गाँव में ही बने । गाँधीजी तो मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पहनने भर का कपडा स्वयं तैयार कर ले । खाली समय में हम अपनी आवश्यकता का सूत चरखे के माध्यम से स्वयं कात लें । यदि इतना भी संभव न हो तो प्रत्येक गांव सामूहिक रूप से वस्त्र के मामलें में स्वावलंबी हो । ग्रामोद्योग की अन्य वस्तुएं भी गांव में तैयार होनी चाहिए । गाँधीजी के अनुसार कारखानों की केन्द्रीयकृत सभ्यता पर आज अहिंसा का निर्माण नही कर सकते, लेकिन वह स्वावलंबी और स्वाश्रयी ग्रामों के आधार पर निर्माण की जा सकती है । मेरी कल्पना की ग्रामीण अर्थ-रचना शोषण का सर्वथा त्याग करती है और शोषण हिंसा का सार है ।

(iv) यंत्रीकरण व उद्योगीकरण का विरोध

गाँधीजी ने अंधाधुंध यंत्रीकरण का विरोध किया था । उनका कहना था कि, "मेरा विरोध यंत्रो के संबंध में फैले हुए दीवानेपन से है यंत्रों से नहीं । परिश्रम का बचाव करने वाले यंत्रों के संबंध में लोगों का जो दीवानापन है, उसी से मेरा विरोध है । आज परिश्रम की बचत इस हद तक की जाती है कि हजारों लोगों को आखिर में भूखा मरना पडता है और तन ढँकने को कपडा नही मिलता । मुझे भी समय और परिश्रम का बचाव अवश्य करना है लेकिन वह मुट्ठी भर आदमियों के लिए नहीं, बल्कि समस्त मानव जाति के लिए ।"

गाँधीजी का कहना था कि यंत्रों को काम में लेना तभी अच्छा होता है जब किसी कार्य को निर्धारित समय में करने के लिए श्रम शक्ति कम हो जैसा विदेशों मे होता है किंतु यह हिंदुस्तान के लिए लागू नही होता क्योंकि यहां जितने आदमी चाहिए उससे कही अधिक बेकार पडे हुए है । अत: यंत्रीकरण से बेकारी बढेगी, घटेगी नहीं । उनका मत था कि, "यदि ग्रामवासियों को कुछ काम देना है तो वह यंत्रों के द्वारा संभव नही है । उनके उद्वार का सच्चा मार्ग तो यही है कि जिन उद्योग धंधों को वह अब तक किसी कदर करते चले आ रहे है उन्हीं को भली भाँति जीवित किया जाए ।"

गाँधीजी ने भारत की समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् यह बताया कि बडे पैमाने का उद्योगीकरण भी हिंदुस्तान के लिए लाभप्रद नही होगा । उनके अनुसार

उद्योगीकरण में धन का संचय व व्यवस्था का संचालन कुछ व्यक्तियों के पास होता है जिससे आर्थिक असमानता को प्रोत्साहन मिलता है जो भारत जैसे गरीब देश के लिए घातक है । उनका मत था कि उद्योगीकरण से बेरोजगारी में वृद्धि होती है, अनावश्यक एवं विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है । बडे पैमाने के कारखानों में उत्पादन होने से मालिक व मजदूर की भावना विकसित होने से वर्ग सहयोग की जगह वर्ग द्वेष की भावना का विस्तार होता है । अतएव गाँधीजी यंत्रीकरण को एक निश्चित सीमा तक ही स्वीकार करते थे और कुछ विशेष वस्तुओं का उत्पादन ही भारी उद्योगो के माध्यम से होना चाहिए जैसे बिजली, रेल, डाक, यातायात, जहाज इत्यादि ।

(v) खादी और ग्रामोद्योग पर बल

खादी और ग्रामोद्योग का विचार गाँधीजी के आर्थिक ढांचे की आधार संरचना है । खादी और ग्रामोद्योग परस्पर अंतसम्बन्धित अवधारणा हे । गाँधीजी के अनुसार खादी भारतीय मानव समाज की एकता, उसकी आर्थिक स्वतंत्रता और समानता का प्रतीक है।

खादी-मनोवृत्ति का अर्थ है-जीवन के आवश्यक पदार्थो के उत्पादन और वितरण का विकेन्द्रीकरण अर्थात् प्रत्येक गांव अपनी जरूरत की तमाम चीजें स्वयं पैदा कर ले और शहरों की आवश्यकताओं के लिए उत्पत्ति भी कर ले । इस खादी ग्राम स्वावलम्बन व आत्मनिर्भरता को बढावा देती है ।

ग्रामोद्योग संबंधी विचार गाँधीवादी अर्थव्यवस्था का व्यवहारिक स्वरूप है। गाँधीजी ने गाँवों को ऐसी आर्थिक व्यवस्था की कल्पना की है जो पूर्णतया लघु उद्योग व कुटीर उद्योग पर आधारित होगी । अर्थात् जो सघन खेती, छोटे पैमाने पर व्यक्तियों द्वारा खाद्य पदार्थ, सब्जियाँ, फल-फूल उत्पादन और पशुपालन पर आधारित होगी । उनके अनुसार, ग्रामोद्योग की वस्तुओं जैसे हाथ की बनी चीनी, हाथकुटा चावल, हाथ कुटा अनाज, तेलघाणी का तेल आदि बहुत स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं और उपभोग से मनुष्य स्वस्थ एवं दीर्घायु होता है। गाँधी के अनुसार कुटीर उद्योग धंधों में एक खास तादाद लोगों को मजदूरी दे सकते है । इसलिए ये उद्योग खादी के मुख्य काम में सहयोग दे सकते है । हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और पछोरना, साबुन बनाना, कागज बनाना, चमडा बनाना, तेल पेरना और इसी तरह के सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक व महत्वपूर्ण धंधो के बिना गाँव को आर्थिक रचना सम्पूर्ण नही हो सकती अर्थात् गाँव स्वावलंबी और आत्मनिर्भर नही बनेंगे । हर एक आदमी को, हर हिंदुस्तानी को, इसे अपना धर्म समझना चाहिये कि वह हमेशा गाँवों की बनी चीजें ही उपभोग में लें । अगर ऐसी चीजों की मांग पैदा हो जाये तो इसमें जरा भी शक नही कि हमारी ज्यादातर जरूरते गांवो से पूरी जो सकती है । जब हम गांवो के लिए सहानुभूति से सोचने लगेंगे और गाँव की बनी हुई चीजे पसन्द आने लगेंगी तो ऐसी राष्ट्रीय भावना उत्पन्न होगी जो गरीबी, भुखमरी और आलस्य या बेकारी से मुक्त नए हिंदुस्तान के साथ मेल खाती होगी।

(vi) उदारवादी विचारक निजी सम्पत्ति व्यवस्था के प्रशंसक है । मार्क्सवादी विचारक निजी सम्पत्ति व्यवस्था की आलोचना करते हैं और सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कर देते है । तथा लोकतात्रिक समाजवादी निजी सम्पत्ति व्यवस्था को बनाए रखते है । लेकिन उस पर राज्य का कड़ा नियंत्रण रखते है । लेकिन गाँधी इन तीनो से भिन्न है । उनके अनुसार निजी सम्पत्ति व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि जब तक स्वहित नहीं होगा तब तक सम्पत्ति की सुरक्षा नही होगी । लेकिन सम्पत्ति वान को अपनी मनोभावना या मानसिकता बदल लेनी चाहिए । उसे यह समझना चाहिए कि सम्पत्ति समाज की वस्तु और वो उसका मात्र प्रहरी है । तभी वो अपनी सम्पत्ति का दुरूपयोग नही करेगा और सम्पत्ति शोषण का यंत्र भी नहीं रहेगी । गाँधीजी के अनुसार सम्पत्ति धारी लोग पूंजीपति आवश्यकता से अधिक पूंजी या सम्पत्ति या समुदाय के हित में करें । इससे सम्पत्ति के अर्जन और सम्पत्ति के वितरण के मध्य न्याय सम्मत संतुलन बना रहता हैं।

(III) सामाजिक विचार

गाँधी ने आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारकों में सर्वप्रथम राजनीतिक आंदोलनों के कार्यक्रमों और समाज सुधारों के मध्य समन्वय किया । उनके अनुसार सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन एक दूसरे से अन्तर-सम्बन्धित है । उनके समाज सुधार संबंधी विचारों का सार अग्रलिखित है-

(i) गाँधी ने हिंदु व्यवस्था के आधार स्तम्भ के रूप में वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करते है लेकिन इस संदर्भ वे दृष्टिकोण रूढिवादी नहीं है अपितु उनके मत में वर्ण व्यवस्था मूलरूप में समाज के सदस्यों की क्षमताओं के अनुरूप उनके कर्त्तव्यों के विभाजन की वैज्ञानिक प्रणाली है गाँधी ने वर्ण और जाति के मध्य भेद किया और जाति प्रथा उन्मूलन पर बल दिया ।

(ii) गाँधी ने समाज में पुरूषों ओर स्त्रियों की समानता पर बल दिया । गाँधी का मत था कि स्त्रियों को पुरूषों के समान समस्त राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रदत्त होने चाहिए । गाँधी के अनुसार, "मेरे सपनों का स्वराज्य तब तक असंभव है जब कि भारत की स्त्रियां पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर अपनी पूर्ण भूमिका नही निभाती । मैने स्वराज्य को रामराज्य के रूप में परिभाषित किया है और राम राज्य की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती तब तक समाज में हजारों सीताएं नही हो ।"

(IV) शिक्षा व्यवस्था सम्बन्धी विचार

गाँधीजी ने गांव के बच्चों को गांव का आदर्श निवासी बनाने हेतु बुनियादी शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात किया । उनके अनुसार बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य बच्चों का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास करना है । उनके अनुसार जिस देश में लाखों आदमी भूखे मरते हैं, वहां बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ शिक्षा है । इसलिए गाँधीजी चाहते थे कि बच्चों की शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा आरंभ करे उसी क्षण उसे उत्पादन योग्य बना दिया जाए । उनके अनुसार गरीब देश में हाथ की तालीम देने से दो उद्देश्य सिद्ध होंगे-प्रथमत:

बच्चों की शिक्षा का खर्च निकल आयेगा और द्वितीय: वे ऐसा धंधा सीख लेंगे जिसका अगर वे चाहें तो उत्तर जीवन में अपनी जीविका के लिए सहारा ले सकते हैं । इस पद्धति से हमारे बालक आत्मनिर्भर अवश्य हो जायेंगे ।

6.4 गोपाल कृष्ण गोखले व महात्मा गाँधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

गोखले एवं गाँधी के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक विचारों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि दोनो के विचारों में समानता एवं असमानता के बिंदु अग्रांकित हैं-

- राजनीतिक जीवन को धार्मिक भावना से स्वीकार करना और स्वार्थ व भौतिकता का विचार किए बगैर आध्यात्मिक लक्ष्य के रूप में उनमें सक्रिय रहने भावना दोनों विचारकों में समान है ।
- सार्वजनिक जीवन में आचरण की पवित्रता एवं नैतिक मूल्यों को आत्मसात कर उसकी सार्वजनिक अभिव्यक्तिकरण अर्थात् राजनीति का आध्यात्मीकरण करना दोनों में समान।
- भारतीय जनता में आत्मनिर्भरता और आत्म सम्मान की चेतना को उभारना और आर्थिक दृष्टि से मनोबल बढाने हेतु दोनो ने स्वदेशी की अवधारणा का समर्थन किया । किंतु जहां गोखले स्वदेशी को सकारात्मकता के रूप में स्वीकार कर उसके नकारात्मक पक्ष बहिष्कार के किसी भी स्वरूप को सत्याग्रह का प्रभावशाली उपकरण मानते थे । किंतु इसमें भी बहिष्कृत व्यक्ति से सामाजिक संबंधों के विच्छेद तथा उसकी सेवाओं का अस्वीकरण शामिल है । न कि उसे आवश्यक सुविधाओं से वंचित करना नहीं है ।
- दोनों विचारक साधनों एवं साध्यों की पवित्रता में विश्वास करते थे । दोनो का मत था कि बिना चारित्रिक श्रेष्ठता और नैतिक क्षमताओं के स्वराज्य की प्राप्ति नही हो सकती है ।
- दोनो के अनुसार भारत को एक राष्ट्र के रूप मे एकीकृत होने और भविष्य के स्वर्णिम भारत के हेतु दो प्रमुख समुदायों हिंदु और मुसलमानों के मध्य सहयोग की स्थाई भावना एवं सौहार्दकायम रहना चाहिए । साम्प्रदायिक एकता हेतू तो गाँधी ने प्राण भी न्योछावर कर दिए ।
- गाँधी की ने जहां समाज सुधार कार्यक्रमों के माध्यम से अछूतोद्धार को अपने जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बनाया वही गोखले भी दलित जातियों के उत्थान और अस्पृश्यता जैसी अमानवीय प्रथाओं के उन्मूलन पर बल दिया ।
- गोखले का राजनीतिक दर्शन उदारवादी आग्रहों से युक्त था ओर वे ब्रिटिश शासन को वरदान मानकर औपनिवेशिक स्वराज्य अर्थात ब्रिटिश ताज के अंतर्गत स्वशासन की मांग करते थे । वही गाँधीजी ने राज्य को संगठित हिंसा की अनैतिक मशीन मानते थे । वे राज्य की संस्था का आदर्श व्यवस्था में निषेधन करते है किंतु व्यवहारिक प्रारंभ में न्यूनतम भूमिका स्वीकार करते है । साथ ही गाँधीजी ब्रिटिश शासन से पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे । इसलिए उन्होंने विभिन्न आंदोलनों के माध्यम से भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्ति दिलवाई ।

- गोखले ने जहां प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने, तकनीकी शिक्षा का प्रसार एवं उच्च शिक्षा व विश्वविद्यालयों की स्वायत्ता का समर्थन किया । वहीं गाँधीजी ने बच्चों को । आदर्श नागरिक बनाने हेतु बुनियादी शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात किया । यह शिक्षा बच्चों के त्रियामी विकास के सूत्र पर आधारित थी । अर्थात शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक इसमें प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सीखा कर किया जाता है ताकि बच्चा आत्मनिर्भर हो सके । वस्तुतः गाँधी शिक्षा की पाश्चात्य पद्धति का विरोध करते हुए बुनियादी शिक्षा को व्यक्ति एवं समाज दोनों के विकास के माध्यम के रूप मे स्थापित करते है।

6.5 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से प्रतिध्वनित होता है कि गाँधीजी पर गोखले के जिन का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा उनमें राजनीति में नैतिकता का समावेश, सार्वजनिक जीवन में आचरण की शुद्धता, नैतिक मूल्यों के प्रति समर्पण, साम्प्रदायिक सद्भावना, साध्य और साधन की पवित्रता इत्यादि प्रमुख थे । कुछ मुद्दों पर उनके विचारों में भिन्नता है किंतु यह भी वैचारिक स्तर पर है सैद्धान्तिक स्तर पर नहीं । गाँधी ने मूल्यों और नैतिकता के समावेश से युक्त राजनीति तथा चारित्रिक उत्कृष्टता व आचरण की शुद्धता के गोखले के गुरू मंत्र को अपने राजनीतिक जीवन एवं विचारों का आधार बना लिया । यही वजह है कि गाँधीजी हमेशा गोखले को अपना राजनीतिक गुरू मानते थे।

6.7 अभ्यास प्रश्न

1. गोपालकृष्ण गोखले के सामाजिक-राजनीतिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए ।
2. गोखले के आर्थिक राष्ट्रवाद की संकल्पना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।
3. महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक विचारों का विश्लेषण कीजिए ।
4. गाँधीजी के आर्थिक एव शैक्षिक विचारों को स्पष्ट कीजिए ।
5. गोखले व गाँधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए ।

6.6 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

6. गाँधी, एम. के., मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1960
7. गाँधी, एम. के., हिन्द स्वराज्य, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
8. माथुर, डी. बी., गोखले : ए पॉलिटिकल बायोग्राफी, ए स्ब्डी ऑफ हिस सर्विसस् एण्ड पॉलिटिकल आइडियास, पी.जी. मानकतला एण्ड सन्स् प्रा. लि. लंदन, 1966
9. धवन, गोपीनाथ : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
10. मेहता, वी. आर., फाउण्डेशन्स ऑफ इण्डियन पॉलिटिकल थॉट, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1992

11. देवगिरकर टी. आर. बिल्डर्स ऑफ मॉडर्न इण्डिया : गोपालकृष्ण गोखले, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1992

इकाई - 7

तिलक एवं गाँधी

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 अंग्रेजों के शासन के प्रति तिलक और गाँधी का दृष्टिकोण

7.3 स्वराज, स्वदेशी एवं बहिष्कार के प्रति तिलक और गाँधी का दृष्टिकोण

7.4 ईश्वर, सत्य और गीता: तिलक और गाँधी का दृष्टिकोण

7.5 राष्ट्रवाद और वैश्विक: दृष्टिकोण तिलक और गाँधी

7.6 तिलक और गाँधी के विचारों में राष्ट्रीय आन्दोलन में जन सहभागिता और अहिंसा का स्थान

7.7 राष्ट्रीय परम्परा और पाश्चात्य सभ्यता संबंधी दृष्टिकोण: तिलक और गाँधी

7.8 सारांश

7.9 अभ्यास प्रश्न

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी :-

- गाँधी और तिलक के जीवन और चिन्तन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- गाँधी और तिलक के विचारों में समानता को पहचान सकेंगे । ।?
- गाँधी और तिलक के विचारों में विद्यमान मौलिक भिन्नतायें समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

मोहनदास करमचन्द गाँधी एवं लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भारत के उन कुछ महापुरूषों में से दो ऐसे महापुरूष हैं जो चिंतन एवं कर्मक्षेत्र दोनों में समान रूप से सक्रिय थे । दोनों ने अपने जीवन में बहुत कुछ लिखा है और उनके विषय भी अलग-अलग प्रकार के रहे हैं । भारतीय संदर्भ को उनके चिंतन ने एक नई दिशा दी है । उन्होनें अपने चितंन मे न केवल परम्पराओं को पुर्नव्याख्या करते हुए आधुनिक काल की समस्याओं को सुलझाने के लिए नए एवं व्यावहारिक विचारों को दिया, बल्कि कर्म क्षेत्र में भी उनका योगदान महत्वपूर्ण है । आधुनिक भारतीय राजनीति चिन्तन में महात्मा गाँधी एवं तिलक का महत्वपूर्ण स्थान है । तिलक एवं गाँधी के सिद्धान्तों, प्रभावों एवं व्यक्तित्व में भिन्नता होते हुए भी उनका उद्देश्य एक था देश को स्वतंत्र करवाना या स्वराज्य प्राप्त करना । महात्मा गाँधी ने सर्वधर्म समभाव का सिद्धान्त दिया । उन्होंने धर्म के नैतिक व आदर्शात्मक पहलू को राजनीति का हिस्सा बनाने पर बल दिया । तिलक ने हिन्दु धर्म के सामाजिक धार्मिक उत्सवों के माध्यम से सामूहिक चेतना जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया । गाँधी एवं तिलक लेखक एवं पत्रकार भी थे गाँधी ने

हिन्द स्वराज्य, मेरे सत्य के साथ प्रयोग, सर्वोदय, इत्यादि पुस्तकें एवं हरिजन, नवजीवन, यंग इण्डिया समाचार पत्र प्रकाशित किये तो तिलक ने गीता रहस्य, द आर्कटिक होम इन वेदाज ओरायन पुस्तकें लिखी तथा मराठा व केसरी समाचार पत्र प्रकाशित किये । गाँधी राजनीति में साधुवृति को सम्मिलित करना चाहते थे एवं सन्तशैली से ही राजनैतिक आन्दोलन लड़ना चाहते थे । तिलक ने गाँधी को बताया कि राजनीति सन्तों का कर्मक्षेत्र नहीं । राजनैतिक साधुकरण की यह भावना जहाँ गाँधी को गोखले के जितना करीब ले गई है, तिलक से उन्हें उतना ही दूर ले गई । यही उनके वैचारिक मतभेद का प्रमुख संदर्भ था ।

तिलक ने आदोलन के बहिष्कार, धरना, हडताल आदि को प्रतिरोध के रूप में मान्यता दी । यह तो नहीं कहा जा सकता कि गाँधी का सत्याग्रह या अहिंसात्मक तकनीक तिलक की तकनीक पर आधारित थी, क्योंकि गाँधी ने तिलक के सम्पर्क से पूर्व दक्षिण अफ्रीका में अपने सत्याग्रह आन्दोलन को प्रारम्भ कर दिया था । लेकिन दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह एवं भारत के स्वतंत्रता आदोलन के क्रम में चलाए गए अहिंसात्मक आदोलन में काफी अंतर दृष्टिगत होता है । तिलक के जिन विचारों को गाँधी ने स्वीकार किया उनमें प्रमुखत: विदेशी तत्व विरोधी भावना थी । राष्ट्रीय शिक्षा, विदेशी वस्तु का बहिष्कार, स्वराज्य, धरना आदि कार्यक्रम तिलक के राजनैतिक आदोलन के महत्वपूर्ण अंग थे । गाँधी ने इन तत्वों के महत्व को स्वीकार किया।

तिलक का विचार था कि भारतीयों में यदि सक्रिय विरोध की शक्ति नहीं हो तो विदेशी शासन के साथ सहयोग भी नहीं करे । गाँधी ने असहयोग का विचार तो ग्रहण किया किन्तु वे इसे शक्तिहीन का नहीं अपितु नैतिक शक्ति से परिपूर्ण एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति का अस्त्र मानते थे । असहयोग आंदोलन के तत्वों के रूप में बहिष्कार धरना, स्वदेशी आदि को गाँधी ने तिलक से ही स्वीकार किया है । इनसे पूर्व उनकी तकनीक में इन कार्यक्रमों का स्थान नहीं था स्वराज्य के संदर्भ मे तिलक का भावार्थ गाँधी ने गहराई से समझा । तिलक राजनैतिक स्वराज्य के साथ-साथ राष्ट्रीय आर्थिक स्वराज्य भी चाहते थे । विदेशी वस्तु का बहिष्कार एवं स्वदेशी के उपयोग के उनके आग्रह को इसी संदर्भ में समझा जा सकता हैं ।

स्वदेश प्रेम की भावना में गाँधी तिलक से ही प्रभावित हुए । तिलक ने स्वदेश प्रेम के कारण विदेशी वस्तुओं की जगह स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग की बात ही नहीं कही वरन् एक स्वदेशी प्रेमी की स्वदेशी विचार में स्थायित्व हेतु स्वदेशी राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम का समर्थन किया । स्वदेश प्रेम के कारण ही वे स्वदेशी संस्कृति को गौरवमय मानकर उनके उपासक थे, जी जान से उसका विस्तार चाहते थे एवं पश्चिमी संस्कृति के कट्टर आलोचक थे । गाँधी भी पश्चिमीकरण के विरूद्ध थे ।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए तिलक एवं गाँधी ने जिन साधनों एवं पद्धतियों का प्रयोग किया उनमें गरम, विचारधारा की महत्वपूर्ण भूमिका थी, यद्यपि गाँधी जी के विचारों, साधनों एवं पद्धतियों में गोखले के उदार एवम् नरम विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । भारत में राष्ट्रवादी भावना का विकास पुनर्जागरण आदोलन व उदारवादी राष्ट्रीयता के द्वारा हो चुका था किन्तु तिलक अपने उग्र एवं आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के आधार पर देश को स्वतंत्र करवाना चाहते थे । गाँधी का धर्म सभी धर्मो के सार के रूप में मानव धर्म के रूप में है तो तिलक के धर्म का आशय प्राचीन वैदिक धर्म के पुनरुत्थान से है ।

7.2 अंग्रेजों के शासन के प्रति तिलक और गाँधी का दृष्टिकोण

तिलक ने अपना राजनीतिक जीवन उदारवादियों के साथ शुरू किया था किन्तु धीरे-धीरे उनकी आस्था उदारवादियों की नीति, प्रार्थना, स्मृति-पत्र से समाप्त हो गई । अंग्रेजों द्वारा किये के सुधार अपर्याप्त थे । ब्रिटिश पूंजीवादी के आर्थिक हितों के संरक्षण के रूप में ब्रिटिश प्रशासन जनता का बहुत शोषण कर रही थी । इसका विरोध करते हुए दादा भाई नौरोजी ने "पूंजी के निर्गम सिद्धान्त" के तहत भारतीय जनता को अंग्रेजी प्रशासन के शोषणकारी रूप के प्रति सचेत किया । तिलक ने ब्रिटिश शोषण से मुक्ति के लिए आर्थिक राष्ट्रवाद का प्रारूप स्वदेशी, स्वराज एवम् बहिष्कार के रूप दिया । उन्होनें स्वीकार किया कि जब तक देश की राजनीतिक शक्ति विदेशी सरकार के हाथों में है तब तक देश का आर्थिक शोषण नहीं रोका जा सकता । और उन्होनें जनता से आर्थिक राष्ट्रवाद को यानि स्वदेशी, बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा को व्यावहारिक रूप से अपनाने पर बल दिया । उनके अनुसार ब्रिटिश नौकरशाही के द्वारा भारतीयों को भला नहीं हो सकता वे केवल अपनी तथा अपने आकाओं की इच्छापूर्ति करते हैं, भारतीयों की नहीं । इसलिए तिलक ने भारतीय प्रशासन में नौकरशाही का भारतीयकरण करने पर जोर दिया । अकाल, महामारी, एवं आर्थिक असंतोष का प्रयोग तिलक ने जनता को जागृत करने तथा स्वराज्य की स्थापना के उद्देश्य से किया । उन्होनें कहा कि अंग्रेज भारत का आर्थिक शोषण करके रूपया ब्रिटेन ले जाते हैं और उसके कारण हमारे देश की गरीबी बढ़ती जा रही है और जब महामारी या अकाल यहाँ पड़ता है तो वे हमें सहायता नहीं करते है । जिसके कारण लाखों लोग अकाल व महामारी की भेंट चढ जाते है । शिक्षित वर्ग में जो असंतोष था, उसको वे अंग्रेजों की नीतियों के कारण मानते थे ।

ब्रिटिश सरकार का व्यवहार न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी विशेषकर दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रति उपेक्षापूर्ण रहा । भारतीयों के प्रति विदेशों में रंग भेद यानि काले एवं गोरे का भेद, और जाति द्वेष की नीति अपनाई जाती थी । इनका विरोध करने के लिए गाँधी के नेतृत्व में दक्षिण अफ्रिका, में सत्याग्रह किया गया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से सहयोग की अपेक्षा की गई । तिलक के विचारों पर कर्जन की अदूरदर्शितापूर्ण शासन का भी प्रभाव पड़ा । कर्जन की नीति हिन्दुओं व मुसलमानों में फूट डालने के अन्तर्गत बंग भंग के रूप में परिलक्षित हुई, यह राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौति थी । अत: तिलक ने स्वराज की माँग की तथा स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है का नारा दिया । तिलक के समकालीन उदारवादी राष्ट्रीयता के अन्तर्गत पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारत में पड रहा था लेकिन तिलक राष्ट्रीय आन्दोलन के हिन्दुत्व के सशक्त सांस्कृतिक और धार्मिक पुनरूत्थान के द्वारा बल प्रदान करना चाहते थे । तिलक अपने समय के राजनीतिक संघर्ष को अपने पुराने मूल्यों में रखकर देखते थे । वे नहीं चाहते थे कि पश्चिम के मूल्यों के आधार पर भारतीय सामाजिक जीवन का पुननिर्माण किया जाए ।

गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद में भारतीय राजनीति में प्रवेश किया था । तिलक के साथ उनका सम्पर्क उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था किन्तु उनके साथ कार्य करने का समय उन्हें केवल चार-पाँच वर्ष मिल पाया । तिलक और गाँधी के दृष्टिकोण

और विचारों में पर्याप्त भिन्नता थी लेकिन दोनों का उद्देश्य एक ही था और वह था देश को दासता से मुक्ति दिलाना । गाँधी ने भारतीय संस्कृति के पतन का कारण पश्चिमीकरण एवं अज्ञानता को बताया और इसके पुर्नत्थान के लिए स्वदेशी पर बल दिया । तिलक प्राचीन हिन्दु धर्म की पुर्न: स्थापना एवं सशक्त हिन्दुत्व मे विश्वास करते थे इससे भारत मे अन्य सम्प्रदायों में विरोध बढ रहा था । गाँधी ने राष्ट्रीय एकता एवं देश की स्वतंत्रता के लिए हिन्दु-मुस्लिम एकता पर जोर दिया उन्होनें देश की आर्थिक आत्मनिर्भरता पर बल दिया तथा सर्व धर्म समभाव का सिद्धान्त दिया ।

7.3 स्वराज, स्वदेशी एवं बहिष्कार के प्रति तिलक और गाँधी का दृष्टिकोण

तिलक एवं गाँधी का उद्देश्य एक था और उस उद्देश्य की प्राप्ति का दृष्टिकोण स्वराज एवं स्वदेशी था । लेकिन इसे प्राप्त करने की पद्धति एवं साधनों मे पर्याप्त अंतर था । तिलक का साधन राजनैतिक था । जबकि गाँधी का आध्यात्मिक । लेकिन उदारवादियों को सवैंधानिक पद्धति एवं साधनों में दोनों का विश्वास नही था । तिलक के मतानुसार सवैंधानिक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है जहाँ सशक्त जनमत पाया जाता हैं । भारतीय अपना आंदोलन सवैंधानिक तरीके से नही कर सकते थे क्योंकि निरंकुश सरकार द्वारा बनाये कानून जनता के हित में नही थे । वे कांग्रेस को जनआंदोलन बनाना चाहते थे । इसलिए उन्होनें निष्क्रिय प्रतिरोध की नवीन पद्धति का प्रयोग किया । तिलक सीधी कार्यवाही को महत्वपूर्ण मानते थे ।

उन्होनें अपने विचारों और कार्यो से सम्पूर्ण राष्ट्र में संघर्ष, बलिदान और कष्ट सहन करने की क्षमता का विकास किया । तिलक ने कहा "यदि तुमसे सक्रिय प्रतिरोध की शक्ति नहीं है तो क्या तुमसे आत्मविश्वास और आत्मसंयम की भी इतनी शक्ति नहीं कि तुम अपने ही ऊपर शासन करने में विदेशी सरकार की सहायता न करो ? यहीं बहिष्कार है । हम कर वसूलने व शक्ति स्थापित करने मे सहायता नहीं करेगें । क्या तुम अपने संगठित प्रयत्नों से ऐसा कर सकते हो ? यदि तुम कर सकते हो तो तुम कल ही स्वतंत्र हो जाओगे ।"

तिलक ने स्वतंत्रता आंदोलन का भारतीयकरण करने पर बल दिया तथा स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के निष्किय प्रतिरोध के आवश्यक उपकरण के रूप में स्वीकारा । तिलक का स्वदेशी राष्ट्रप्रेम का प्रतीक था उनके अनुसार स्वदेशी का तात्पर्य आर्थिक रूप में आत्मनिर्भरता है लेकिन ये भी सत्य है कि आर्थिक क्षैत्र को राजनीति से पृथक नहीं किया जा सकता । स्वदेशी के प्रचार के साथ विदेशी सरकार को कमजोर करने के संघर्ष की बात जुडी है । तिलक ने स्वदेशी आंदोलन के लिए शिवाजी एवं गणेश उत्सव का प्रयोग किया । इससे भारतीयों में अद्भूत आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की भावना का संचार हुआ और स्वदेशी देशप्रेम का प्रतीक बन गया । तिलक ने बहिष्कार को राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया । यह गाँधी के असहयोग कार्यक्रम की पूर्व सूचना थी । बहिष्कार के स्वीकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं पर बल देते हुए तिलक ने कहा कि सर्वप्रथम इससे स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन को बढावा मिलेगा और दूसरे ब्रिटिश सरकार भारतीय मांगे मानने के लिए विवश होगी । तिलक के अनुसार जनता को जानना चाहिए कि वह इस प्रशासन का महान तत्व

है जिसके सहयोग से प्रशासन चलाया जा रहा है यदि जनता चाहे तो प्रशासन को असम्भव बना सकती है । तिलक संस्थाओं की सदस्यता ग्रहण करके बहिष्कार चाहते थे, गाँधी संस्थाओं के बाहर रहकर बहिष्कार की नीति को प्रतिध्वनित रहे थे । तिलक के अनुसार बहिष्कार का अर्थ निष्किय और गतिहीन आर्थिक बहिष्कार नहीं था । वह तो वास्तव प्रतिरोध का गत्यात्मक विज्ञान था । तिलक शिक्षा पर स्वयं जनता को नियंत्रण चाहते थे इसीलिए उन्होनें राष्ट्रीय शिक्षा को बढावा देने के लिए पूना में न्यू इंगलिश सकूल, फर्ग्यूसन कॉलेज तथा दक्षिण षिक्षा समाज की स्थापना की । तिलक शिक्षा को पूर्णतया भारतीय बनाना चाहते थे । वे शिक्षा के माध्यम से भारत के प्राचीन आदर्शो पुनर्जीवित करे, यद्यपि तिलक का विरोध अंग्रेजी शिक्षा से नहीं था ।

स्वराज्य प्राप्ति के लक्ष्य मे तिलक का साधन राजनीतिक था । तिलक के स्वराज्य प्राप्ति के साधन का स्वरूप इस शाष्वत सत्य द्वारा निर्धारित हुआ था कि स्वतंत्रता दी नहीं जाती बल्कि ली जाती है । पूरी एक पीढी तक राष्ट्रीय कांग्रेस इंगलैण्ड तथा भारत मे नौकरशाही का दरवाजा खटखटाती रहीं उस वस्तु को देने का निवेदन करती रही जो कि प्रत्येक राष्ट्र को अपने लिये स्वयं प्राप्त करनी चाहिए, वह वस्तु थी "स्वराज्य" । अत: तिलक का साधन के संबंध में मत था कि राजनीति में सब कुछ वांछनीय है । बुरे का प्रतिकार यदि साधुओं से हो सकता हो तो पहले साधुता से करें दार्शनिक रूप में उन्होनें साधनों की शुद्धता को सर्वाधिक महत्व दिया । किन्तु उनका मत यह भी था कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए किसी एक साधन तक सीमित रहना बुद्धिमता नहीं है । किसी कार्य की नैतिकता उसके बाह्य परिणाम से नहीं आँकीं जानी चाहिए बल्कि यह देखना चाहिए कि कर्ता का उद्देश्य व मन्तव्य क्या हैं । उन्होनें हिंसा एवं क्रान्ति का भी समर्थन नहीं किया, न ही सरकारी कानूनों की अनावश्यक रूप से अवज्ञा पर बल दिया । लेकिन तिलक ने निरपेक्ष अंहिसा का भी समर्थन नहीं किया । वे उग्रवादियों को अस्त्रों के प्रयोग की अनुमति नहीं देते किन्तु उन्होनें उनके तरीकों की नैतिक आधार पर निंदा नहीं की । तिलक के अनुसार "राजनीति संसारी आदमियों का काम है साधुओं का नहीं । मैं बुद्ध के इस सिद्धान्त को नहीं मानता कि क्रोध का उपाय केवल प्रेम है, मैं कृष्ण के इस उपदेश को मानता हूँ कि जो तुमसे जैसा बर्ताव करे तुम उसके साथ वैसा ही बर्ताव करो । गीता में धर्मानुकूल हिंसा की बात कही गई हैं किन्तु वह स्वार्थ व अंहकार की भावना शून्य होनी चाहिए । राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए वे सभी प्रकार के साधनों की स्वीकृति देते हैं । तिलक ने 1903 मे केसरी में इसके बारे मे लिखा है कि "यदि सवैंधानिक और कानूनगत साधन असफल साबित हों तो अन्य साधनों के बारे में सोचो । यदि तुम दमनात्मक शासन से उत्पीडन होते हो तो यह तुम्हारी भूल है, यदि ये असहनीय हो जाये उठो और क्रान्ति करो ।"

गाँधी ने देश को आजाद करवाने के लिए अंहिसा का मार्ग अपनाया और आहिंसा पर आधारित संघर्ष की एक नवीन पद्धति सत्याग्रह शुरू की । गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के विरूद्ध अंहिसा के माध्यम से संघर्ष की नवीन पद्धति सत्याग्रह का सफलतापूर्वक प्रयोग किया । सत्याग्रह के अन्तर्गत गाँधी ने शासन के हृदय परिवर्तन हेतु एक नैतिक अपील की जो कि आत्मपीडन के द्वारा उनके हृदय एवं आत्मा से की जाती थी । इसी प्रकार तिलक के मन में सत्याग्रह का जो विचार था वह विशुद्ध रूप में एक राजनीतिक अस्त्र के रुप में ही था । लेकिन

गाँधी ने जिस सत्याग्रह के अस्त्र की खोज की वह तिलक की अपेक्षाकृत अधिक महत्व की थी । गरम दल एंव तिलक ने कभी भी हिंसा के प्रयोग पर बल नहीं दिया । लेकिन दोनों मे से किसी ने सत्य एवं अहिंसा को अपनी नीतियों की आधारशिला भी बनाया । गाँधी का सत्याग्रह में केवल अन्याय एवं बुराईयों के प्रतिकार का अस्त्र है बल्कि जीवन पद्धति भी है । इसका उद्देश्य था प्रेम और धैर्य पूर्वक कष्ट सहन करना विरोधी का हृदय रूपान्तरित हो जाये । गाँधी के अनुसार सत्याग्रह वह शक्ति है जिसका जन्म सत्य एवं अंहिसा में होता है । अंहिसा का अभिप्राय मात्र सहनशीलता अथवा निष्क्रियता नहीं अपितु अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने की शक्ति हैं । यह दुष्टता के विरुद्ध वांछनीय संघर्ष का परित्याग नहीं, अपितु अधिक सक्रिय एवं वास्तविक संघर्ष का भाव है ।"

गाँधी स्वदेशी एव बहिष्कार को सर्वव्यापक बनाना चाहते थे । इसलिए उन्होनें बहिष्कार के असहयोग को अधिक उचित उपाय माना गाँधी का सत्याग्रह जीवन तथा राजनीति का दर्शन था और भार अन्तर्गत सामूहिक कार्यवाही के द्वारा निरंकुश शासन के सम्पूर्ण व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने की कल्पना की गई । गाँधी के निरंकुश शासक के द्वारा आरोपित प्रत्येक व्यवस्था के प्रति असहयोग माना । गाँधी की सत्यता पद्धति मे गोपनीयता का स्थान नहीं था वे प्रत्येक जन आदोलन प्रारम्भ करने से पूर्व उसके उद्देश्य व योजना स्पष्ट रूप से उजागर करते थे । गाँधी ने प्रतिरोधात्मक आंदोलन में वार्ता को महत्वपूर्ण माना । गाँधी ने तिलक के इन विचारो को राजनीति में सब कुछ वाँछनीय है स्वीकार नहीं किया । बुराई का सामना बुराई करने की बात उन्हें भाती थी । गाँधी के मतानुसार हमें पापी से नहीं बल्कि पाप से घृणा करनी चाहिए । इसका प्रयोग बिरले लोग ही व्यवहार में कर पाते है और यही कारण है कि घृणा रूपी विष सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है । गाँधीजी ने साधनों की पवित्रता को हमेशा ही महत्वपूर्ण माना और इसका पालन किया । असहयोग आदोलन को स्थगित भी इसी कारण से किया गया । गाँधी की अहिंसात्मक असहयोग के दो पक्ष नकारात्मक व सकारात्मक है । प्रथम के अंतर्गत सरकार के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग न करना निहित है और संस्थाओं से बाहर रहकर असहयोग की अपील की बात कही दूसरे पक्ष के तहत उन्होनें स्वदेशी आदोलन पर बल देते हुए खादी को स्वावलम्बन तथा स्वाभिमान का प्रतीक बनाया । रचनात्मक कार्य को गाँधी ने स्वीकारते हुए कहा कि "यदि तुम रचनात्मक कार्यक्रम में वास्तविक सफलता प्राप्त कर लेते हो तो तुम बिन सविनय अवज्ञा के भरत में स्वराज्य प्राप्त कर सकते हो ।"

गाँधी के सत्याग्रह की साधना रचनात्मक कार्यक्रम ही है । कई बातों मे समानता होते हुए भी साधनों के प्रयोग में गाँधी के विचार तिलक से अलग थे । तिलक का मत था कि दुष्ट को दण्ड मिलना चाहिए, गाँधी में मत वे वह भी दया का पात्र है । यदि प्रेम व सदाशय के साधन होगे तो हिंसा की पराजय होगी । गाँधी के स्वराज्य में प्रमुख स्तम्भ हैं स्वदेशी, आर्थिक स्वतंत्रता । नवसाम्राज्यवाद के विरूद्ध लड़ने के लिए खादी एक सकारात्मक शक्ति है । गाँधी के अनुसार सत्य एवं साधन अन्योन्याश्रित है । यदि लक्ष्य प्राप्ति में हिंसात्मक साधनों का प्रयोग होगा तो स्वराज्य भी हिंसात्मक होगा । शोषण एवं उत्पीडन मे मुक्त, गाँधीवादी अहिंसात्मक समाज जैसे साध्य की प्राप्ति के लिए, साधन भी अहिंसात्मक होने चाहिए । तिलक उपनिषद् और वेदों से अत्यधिक प्रभावित थे । पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण का विरोध करते हुए

उन्हें भारतीय संस्कृति के गौरव की और आकर्शित करने का प्रयास किया और अपने ग्रन्थों और समाचार पत्रों द्वारा इस ओर प्रयास किया । वे भारत का वैचारिक पुन: निर्माण पाश्चात्य विचारधारा पर आधारित करना नहीं चाहते थे, उन्होनें जीवन मे नैतिक आधार को पुन: प्रतिष्ठित किया । तिलक के अनुसार पश्चिम की नकल करने की आवश्यकता नहीं वरन् भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को भारतीय व्यवस्था के नैतिक मूल्यों व सिद्धान्तों के आधार पर संघटित करना चाहिए । पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा, भाषा, साहित्य एवं राजनीतिक मान्यताओं के ग्रहण करने योग्य बातों को ग्रहण करने को स्वीकार किया । उन्होनें वेदों, उपनिषदों के अध्ययन के साथ पाश्चात्य उदारवादी व राष्ट्रवादी विचारकों हीगल, कान्ट, स्पेन्सर, मिल, रूसों के विचारों का भी अध्ययन किया । उन्होनें प्राचीन संस्कृति के पुनर्जीवित करने पर बल देते हुए परम्पराओं को अन्य परम्पराओं से उच्च माना । उनके द्वारा शुरू किये गये शिवाजी और गणेश उत्सव का उद्देश्य भी प्राचीन संस्कृति के प्रति लोगों में जागृति पैदा करनी थी ।

गाँधी ने "हिन्द स्वराज" में पश्चिमी सभ्यता एंव संस्कृति पर करारा प्रहार किये और उसकी प्रमुख बातों को चुनौती दी । उनके मतानुसार पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति अपनाने से हम ईश्वर से विमुख हो रहे है । अनीति का महत्व बढ रहा है । उनके अनुसार भारत की गुलामी का कारण अग्रेंजी सरकार नहीं बल्कि भारतीयों द्वारा पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण है । इससे सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में मानव सभ्यता का अवमूल्यन हुआ । गाँधी ने भी पाश्चात्य सभ्यता को एक संक्रामक बीमारी मानते हुए तिलक की तरह उसके ग्राहय पक्ष को अपनाने पर जोर दिया । वे पाश्चात्य उदारवादी विचारकों से प्रभावित थे ।

7.4 ईश्वर, सत्य और गीता: तिलक और गाँधी का दृष्टिकोण

तिलक के मत मे ईश्वर ही परम् सत् है और प्रत्येक जीव ईश्वर का अंश है, इसलिए सभी मनुष्यों में वही आध्यात्मिक शक्ति अन्त:निहित है जो ईश्वर में पाई जाती है । तिलक के अद्वेतवाद में स्वतंत्रता को सर्वोच्चता है । व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बडा रूप राष्ट्र की एकता में निहित है । तिलक के अनुसार स्वतंत्रता, मौलिक अधिकार राष्ट्र व व्यक्ति दोनों का है । इसी के अन्तर्गत होमरूल आंदोलन का संचालन हुआ था । और तिलक की स्वतंत्रता का आधार दार्शनिक पक्ष था । गाँधी को भी ईश्वर में असीम विश्वास था । वे उसी को सत्य मानते थे, और उसे (ईश्वर) को मानव से अलग नहीं मानते थे । उनका जीवन की एकता मे विश्वास था।

तिलक एवं गाँधी दोनों ही "गीता" से प्रभावित थे । देश की स्वतंत्रता के लिए निष्काम कर्म की प्रेरणा तिलक को इसी से मिली । स्वतंत्रता आंदोलन में स्वतंत्रता, निर्भय, बलिदान एवं सेवा की प्रेरणा तिलक ने इसी से ग्रहण की । दोनों ने ही गीता पर टीकाएं लिखीं । तिलक ने तो गीतारहस्य के माध्यम से गीता का संदेश आगे बढाते हुए कहा कि वही कार्य जो हमारी आध्यात्मिकता उन्नति के लिए अच्छा हो वही अच्छा है, और जो प्रतिकूल हो वह पाप या बुरा है । गाँधी ने भी अपने जीवन एवं दर्शन को गीता से प्रभावित बताया और कहा कि गीता से उन्हें शक्ति मिली वह सबसे बढकर जीवन की पथदर्शिका, धार्मिक स्त्रोत एवं संकट का सच्चा मित्र थी । अनन्त दुःख और विपतियों से भरे सार्वजनिक जीवन में जो स्थिर और अविचलित रहा, उसका श्रेय गीता को ही है । इस प्रकार इन दोनों का प्रेरणास्त्रोत ग्रंथ गीता ही रहा है

जिसका निर्वचन इन्होने अपने विचार मान्यताओं एवं साधनों की दृष्टि से अलग अलग किया । तिलक ने मांडले जेल में प्रसिद्ध "गीता रहस्य" लिखा जो गीता पर केवल विद्वतापूर्ण भाष्य नहीं है, बल्कि यह देश के युवकों को निष्काम कर्म करने की शिक्षा देती थी ।

तिलक एवं गाँधी दोनों ही धर्म को अपने जीवन दर्शन मे प्रमुख स्थान देते है । तिलक के अनुसार प्राचीन समय में हमारे देश की एकता का आधार धर्म था और उसकी एकता छिन्न-भिन्न होने से देश की एकता को खतरा पैदा हुआ उसके लिए वे वापस हिन्दु धर्म की पुन: स्थापना करना चाहते थे, परिणति वे गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव के माध्यम से करना चाहते थे । उनके धर्म का आशय उस बंधन से है जो व्यक्ति को व्यक्ति से मिलाता है और आत्मा को ईश्वर से । उनके अनुसार धर्म का आधार सत्य है । वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को हिन्दुत्व के सांस्कृतिक एवं धार्मिक पुनरूत्थान द्वारा चलाने पर बल देते थे । वे धर्मपरिवर्तन का विरोध करते थे लेकिन सार्वजनिक जीवन में व्यापकता लिए हुए थे, उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम मे मतभेद दूर करने के लिए 1916 मे लखनऊ समझौता करवाया । बडे-बडे मुस्लिम नेता उनके समर्थक व प्रशंसक थे ।

गाँधी का धर्म से आशय एक पंथ विशेष से नहीं था बल्कि सभी धर्मो की अच्छी बातों से था जो मानव धर्म कहा जा सके वहीं उनकी दृष्टि में सच्चा धर्म हैं उनके अनुसार, "धर्म वह है जो मानव की प्रकृति को परिवर्तित करता है, जो मानव को सत्य से बांधता है और जो उसे परिष्कृत करता है । इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि वह बाहरी प्रदर्शन की अपेक्षा आंतरिक या आध्यात्मिक अधिक है । उसकी अंहिसा में स्वीकृति हैं, अंहिसा कर्म की, विचारों एवं चितंन की गाँधी धर्म परिवर्तन के विरोधी थे । उनके अनुसार इससे हृदय परिवर्तन नहीं होता हैं । उन्होनें सभी धर्मो के प्रति संमभाव का दृष्टिकोण रखा । उन्होनें गोखले की तरह राजनीतिक आध्यात्मीकरण पर बल दिया और उनके अनुसार बिना धर्म के राजनीति निरंकुश हो जाएगी । गाँधी के धर्म का राजनीति के साथ मिश्रण का तात्पर्य राजनीति मे नीति का ज्यादा महत्व देना है । वे धर्मनिरपेक्ष राज्य के पक्षधर थे । गाँधी का आशय नैतिक बातों से जो सभी धर्मो में समाहित है, तिलक हिन्दु धर्म को सर्वोच्च मानते थे तो गाँधी सभी धर्मो के प्रति सम भाव रखते । तिलक राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए हिन्दुत्व का पुनरूत्थान चाहते थे तो गाँधी हिन्दु-मुस्लिम एकता । तिलक एव गाँधी दोनों ही राष्ट्रवादी थे तथा उन दोनों का उद्देश्य एक ही था देश की स्वतंत्रता दिलाना ।

7.5 राष्ट्रवाद और वैश्विक दृष्टिकोण: तिलक और गाँधी

तिलक का राष्ट्रवाद उग्रता लिए हुए है तो गाँधी का उदारता । लोकमान्य तिलक का राष्ट्रवाद पनुरूत्थानवादी और पुनर्निमाणवादी था । उन्होनें राष्ट्र को धर्म से ऊँचा स्थान दिया है । वे भारत की प्राचीन परम्पराओं के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद की स्थापना करना चाहते थे । गीता के कर्मयोग व वेदों की शिक्षा को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया । तिलक का मानना था कि स्वस्थ्य राष्ट्रवाद की स्थिति तभी प्राप्त की जा सकती है, जब भारतीय अपने अतीत की परम्पराओं को सम्मानीय भाव से मानें । उन्होनें मराठा में इसको स्पष्ट करते हुए कहा कि "सच्चा राष्ट्रवाद पुरानी नींव पर ही खड़ा किया जा सकता है । जो सुधार पुरातन के प्रति घोर

असम्मान की भावना पर आधारित है उसे सच्चा राष्ट्रवादी रचनात्मक कार्य नहीं समझते । हम अपनी संस्थाओं को अंग्रेजियत के ढाँचे मे नहीं ढालना चाहते । सामाजिक और राजनीतिक सुधार के नाम पर हम उनका अराष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहते । तिलक की मान्यता थी कि राष्ट्रवाद एक आध्यात्मिक धारणा है, जो हम प्रागैतिहासिक और प्राचीन युगों से देखते आये हैं । लोगों में प्रेम और अनुराग की जो भावना अपने कबीले अथवा गण, पोलिस-सिविटास और देश के प्रति थी । उसी ने वर्तमान युग में विकसित होकर राष्ट्रभक्ति का रूप ले लिया है । अर्थात् प्राचीन काल में जो आत्मिक प्रभाव और लगाव एक क्षेत्र विषेश तक सीमित थे, वे अब राष्ट्रवाद के अन्तर्गत सम्पूर्ण राष्ट्र में व्यापक हो गये हैं । जिसके परिणामस्वरूप आज राष्ट्रवाद की भावना किसी क्षेत्र विषेश के प्रति नहीं बल्कि समूचे राष्ट्र के प्रति अनुभव की जाती है । तिलक के अनुसार जो राष्ट्रवाद प्राचीन विरासत एवं राष्ट्रीय एकता पर आधारित है वहीं सच्चा एवं स्वस्थ राष्ट्रवाद है । तिलक जनता की राजनीतिक चेतना की आत्मा को भी जानता चाहते थे । जब एक भेद है और व्यक्ति विभाजित है, जब तक एक मत दूसरे मत से सामान्जस्य तथा एकता का अनुभव नहीं करता, समाज आगे नहीं बढ सकता । उनका राष्ट्रवाद हिन्दुत्व की भावना लिए एवं प्राचीन विरासत को संजोए होते हुए भी दूसरे सम्प्रदायों के विरूद्ध नहीं था । उन्होनें कभी दूसरे सम्प्रदायों से द्वेष नहीं रखा और तिलक ने स्पष्ट किया कि भारत की भावी नेता कोई भी भारतीय हो सकता है, वह कोई मुसलमान भी हो सकता है । राष्ट्रवाद को व्यापकता देते हुए स्वदेशी एवं बहिष्कार के माध्यम से लोगों में राष्ट्रवाद की भावना पैदा कर दी । उनके मतानुसार हमारे देश की आर्थिक निर्धनता का कारण ही अंग्रेजों द्वारा हमारे धन को देश से बाहर ले जाना और वहां से बना बनाया माल भारत लाकर बेच देना । इससे देश को छुटकारा दिलवाने के लिए देशी वस्तुओं प्रयोग में लाने का आग्रह किया तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की बात की । तिलक ने स्वदेशी के आर्थिक पहलू पर इसलिए महत्व दिया जिससे भारतीय राष्ट्रवाद के आर्थिक आधारों के प्रति जनता में जागृति पैदा हो । और स्वदेशी की अवधारणा ने आध्यात्मिक और राजनीतिक स्वरूप धारणा कर लिया । इस प्रकार तिलक का राष्ट्रवाद यथार्थ के धरातल पर सांस्कृतिक परिवेश के अनूकूल था, वे अपने राष्ट्रवाद में पश्चिम के राष्ट्रवाद की तरह मात्र राजनैतिक पक्ष को शामिल नहीं करना चाहते थे, बल्कि उसके सभी पहलुओं को उसमें शामिल मानते थे । उसमें सांस्कृतिक एवं राजनैतिक रूप के समान ही आर्थिक राष्ट्रवाद भी शामिल था । तिलक की तरह ही गाँधी के राष्ट्रवाद का उद्देश्य भी जनजागृति पैदा करना, राष्ट्रीयता को पुरातन संस्कृति पर आधारित करना था । उनका राष्ट्रवाद विश्व प्रेम का एक अंग था । वे अंग्रेजों द्वारा फैलायी गई इस बात से सहमत नहीं थे कि भारत एक राष्ट्र नहीं था । उसका प्रतिरोध करते हुए गाँधी ने स्पष्ट करते हुए कहा था कि अंग्रेजों ने हमें पढाया कि उनके आने से पूर्व हम एक राष्ट्र नहीं थे तथा एक राष्ट्र बनने में सैकड़ों वर्ष लगेंगे । यह बात निराधार है, बेबुनियाद है । जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे हम एक राष्ट्र थे हमारे विचार एक थे हमारा रहन-सहन एक था । हिन्दुस्तान में विविध धर्मो के लोग रहते है उनमें आपस में भाईचारा है किसी भी धर्म के अनुयायी रह सकते है । जो नये लोग आते है वो घुल-मिल जाते हैं ऐसा होता है, तभी देश को राष्ट्र माना जाता है । उसमें उद्धार प्रवृत्ति होनी चाहिए । दूसरे लोगों की विविधाताओं का समावेश करने की शक्ति ही

राष्ट्रवाद का प्रमुख गुण है । हिन्दुस्तान ऐसा राष्ट्र था और आज भी है । प्रत्येक व्यक्ति को अपना मत मानने का अधिकार है तथा दूसरे धर्म के मामले मे कोई दखल नहीं देना भी उसका कर्तव्य है एक राष्ट्र का अर्थ यह नहीं है कि हमारे बीच कोई मतभेद नहीं थी लेकिन हमारे देश के लोग पुरे देश की यात्रा करते थे । और एक दूसरे की भाषा सीखते थे और उसके बीच कोई अंतर नहीं था । जिन प्राचीन दूरदर्शी महान पुरूषों द्वारा सेतबंधु रामेश्वर, जगनाथपुरी, और हरिद्वार की यात्रा निश्चित की, उनका भी एक उद्देश्य रहा होगी । वो जानते थे कि ईश्वर भजन घर बैठे हो सकते है और मन छगां तो कसौटी मे गंगा । इन तीर्थ यात्राओं के पीछे राष्ट्रीयता की भावना भी निहीत थी । दो अंग्रेज एक है । वैसे ही हम भारतीय एक थे और एक है । सिर्फ हम आप जो स्वयं को तथा कथित सभ्य मानते है उन्ही के मन में यह भ्रम पैदा होता है कि भारत में हम अलग-अलग भाषा, प्रान्तीय विभिन्नता, होने के बावजूद उनके तीर्थ सांस्कृतिक परिवेश, रिति-रिवाज उनमे एकत्व की भावना पैदा करते थे ।

गाँधी के राष्ट्रवाद में विश्वबंधुत्व और अन्तर्राष्ट्रीयता के तत्व समाहित है । एक व्यक्ति के राष्ट्रवादी हुए बिना अन्तर्राष्ट्रीयवादी होना असंभव है । गाँधी राष्ट्रवादी होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रवादी भी थे । वे आज के कट्टर राष्ट्रवाद के जो कि विश्वशांति के लिए खतरा बन गया है, ऐसे राष्ट्रवाद के गाँधी समार्थक नहीं थे । यद्यपि उनका राष्ट्रवाद संकुचित अथवा अन्तर्राट्रवाद के विकास में बाधक नहीं था । उन्होनें राष्ट्रवाद तथा अन्तर्राष्ट्र,वाद का सुन्दर समन्वय किया । उनके राष्ट्रवाद मे देश प्रेम एवं सेवा के भाव सम्मिलित थे । निसंदेह वे सदैव ही संकिर्ण राष्ट्रवाद से दूर रहे और उन्होनें विश्वशांति का संदेश दिया । और उनके अनुसार राष्ट्रवाद मे कोई बुराई नहीं है तो संकीर्णता एवं स्वार्थ और एकाकीपन की भावना है जिससे आज राष्ट्र ग्रसित है और वे अपने स्वभाव विचार एवं कर्म के पूर्णत: राष्ट्रवादी थे अपने देश तथा राष्ट्र के लिए उन्होनें अपना सम्पूर्ण जीवन दांव पर लगा था । और अंत में उन्होनें देश की स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । उनके लिए राष्ट्रवाद का प्रेम मां के दूध की भांति की सहज रूप जीवनदायी भाव था । वे पड़ौसी की सेवा मानवता की सेवा मानते थे उनके राष्ट्रवाद एक तो भारत की पीड़ित जनता का उद्धार भाव था । तो दूसरी ओर भारत के विश्वबंधुत्व का मानव सेवा साधन बनाने की आकांक्षा और तीसरी प्रमुख बात राष्ट्रवाद को पश्चिमी राष्ट्रवाद की भक्षक रूप ग्रहण से बचाने तथा राष्ट्रवाद को उग्र संकीर्णता से दूर रखने हेतु उनका दरिद्र नारायण प्रेम, मानव सेवा, सादा जीवन इत्यादि बचाव के तरीके है । उन्होनें स्वस्थ्य राष्ट्र निर्माण पर जोर दिया गाँधी भारत को इसी रूप में देखना चाहते थे जो समन्वयात्मक, परोपकारी, आत्मसंयमी तथा समाजवादी और शोषणकारी प्रवृति से पूर्णतया मुक्त हो । राष्ट्रों के बीच झगडों का निपटारा शांतिपूर्ण ढंग से किये जाने पर बल देते थे । इसलिए ऐसा उदार राष्ट्रवाद जो स्वयं शोषणकारी नीति से मुक्त हो उसका अन्य देश भी शोषण नहीं करेंगें । इस प्रकार गाँधी का राष्ट्रवाद उदार है ।

7.6 तिलक और गाँधी के विचारों में राष्ट्रीय आन्दोलन में जन सहभागिता और अहिंसा का स्थान

अपने समय में जितनी लोकप्रियता एवं जनता को पहचानने मे सफलता तिलक को मिली उतनी ही गाँधी को मिली । कांग्रेस को अल्पवर्ग से जन सामान्य की संस्था बनाने में एंव राष्ट्रीय स्वतंत्रता आदोलन को जनआंदोलन बनाने में दोनों ही नेताओं को प्रमुख सफलता मिली । दोनों ही कर्मवीरों का लक्ष्य एक ही था और वह था स्वराज्य की प्राप्ति लेकिन उनको प्राप्त करने में दोनों मे मतभेद थे । तिलक का राष्ट्रवाद उग्र एवं प्राचीन विरासत के पुनरूत्थान पर टिका था तो गाँधी का राष्ट्रवाद उदार एवं विश्वबंधुत्व से परिपूर्ण था । तिलक ने स्वराज्य की प्राप्ति हेतु कभी अवैध कार्य की अनुमति नहीं दी । उनके उदारवादियों की सवैंधानिक पद्धति स्वीकार नहीं थी । लेकिन उन्होनें कानून भंग करने की सलाह कभी नहीं दी । उनकी निष्क्रिय पद्धति का आशय भी स्वदेशी और बहिष्कार था । किन्तु गाँधी ने स्वीकार किया यदि कानून किसी व्यक्ति के अंतःकरण के प्रतिकूल हो तो उसका विरोध करने का उसका पवित्र और अनन्य अधिकार है । सत्याग्रह इसी पर आधारित है । गाँधी एवम् दोनों का ही हिंसा मे विश्वास नहीं था किन्तु तिलक ने निरपेक्ष अहिंसा के सिद्धान्त में कभी विश्वास नहीं । किसी कार्य की नैतिकता बाह्य परिणाम से नहीं आंकी जानी चाहिए बल्कि यह देखना चाहिए कि कर्ता का उद्देश्य तथा मन्तव्य क्या है । अंहिसा के बारे में दोनों मे मतभेद था । विचार, दर्शन एवम् कर्म में इन दोनों मे मतभेद होते हुए भी उनका उद्देश्य एक ही था । उनका स्वदेशी, बहिष्कार एवं स्वराज्य के विचार एक जैसे लगते है, लेकिन साधनों की दृष्टि से उनमें भिन्नता है ।

7.7 राष्ट्रीय परम्परा और पाश्चात्य सभ्यता संबंधी दृष्टिकोण: तिलक और गाँधी

तिलक और गाँधी दोनों को भारतीय परम्परा के प्रति आदर भाव और हिन्दु धर्म के उदान्त शिक्षाओं में गहरा विश्वास था । जीवन के कार्यो के तरीकों में तिलक परम्परावादी सनातनी हिन्दु धर्म की शिक्षाओं को अधिक मानते थे । दोनो पश्चिमी सभ्यता के कटु आलोचक थे और उसके अंधानुकरण को भारतीयों की परतंत्रता का प्रमुख कारण मानते थे । ब्रिटेन के औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत हुए भारतीयों के शोषण से दोनों भलीभांति परिचित थे और जल्द से जल्द इससे मुक्ति चाहते थे । परन्तु गाँधी के द्वारा पश्चिमी सभ्यता की निंदा तिलक के द्वारा की गई निंदा से अधिक आमूल परिवर्तनकारी है । हिन्द स्वराज्य में गाँधी ने पाश्चात्य मूल्यों तथा संस्थाओं की तीक्ष्ण आलोचकों की है तिलक ने अंग्रेजी शिक्षा की कुछ दुर्गुणों की निंदा की । परन्तु उन्होनें स्वीकार किया कि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ने भारत में बहुत बडी राष्ट्रीय चेतना जगाई है गाँधी ने पाश्चात्य के आधारों को चुनौति दी है । उन्होनें भारत में विदेशी-शिक्षा पद्धति की कडी निन्दा की । प्रतिनिधिमूलक प्रजातंत्र के स्वरूप और तरीके में लोकमान्य तिलक की बडी आसक्ति थी । गाँधी कभी पाश्चात्य लोकतंत्र से प्रभावित नहीं थे और कहते है कि नैतिक स्वराज्य राजनीतिक अधिकार से अधिक ऊँचा है । वे यह मानते थे कि

यदि एक आदमी नैतिक दृष्टि से पूर्ण है तो वह जनता की इच्छा को प्रतिनिधित्व करने वाली बड़ी सपा की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह संरक्षित और संवर्धित कर सकता है ।

भारतीय परंपरा के प्रति दोनों ने गहरा आदर भाव प्रकट किया और राष्ट्र के पुनरूत्थान में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकारी है । राष्ट्रीय स्वाभिमान और स्वावलंबन को दोनों ने समान रूप से स्वतंत्रता और राष्ट्रीय सशक्तिकरण के लिए अपरिहार्य माना । राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रयोग से दोनों ने जनजागृति लाने और उन्हें आम जनता को संगठित करने का सफलतापूर्वक प्रयोग किया । तिलक ने स्वराज, स्वदेशी, शिवाजी और गणेश उत्सव का आयोजन, इत्यादि से और गाँधी ने रामराज्य, स्वदेशी, खादी, चरखा, आदि प्रतीकों के प्रयोग से जन आन्दोलन को संगठित करने का प्रयास किया ।

7.8 सारांश

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ब्रिटेन के औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत हुए भारतीयों के शोषण से दोनों भलीभांति परिचित थे और भारत को अल्प समय में ही स्वतंत्र करना चाहते थे । तिलक एवं गाँधी दोनों का उद्देश्य तो एक ही था । लेकिन उस उद्देश्य की प्राप्ति के साधनों एवं विचारों में अंतर था । गाँधी के लिए साधन की पवित्रता उतना ही महत्वपूर्ण था जितना कि साध्य का । इसलिए गाँधी के लिए हर साध्य सत्य के साथ संगत हो यह तो जरूरी है ही, परन्तु साथ में यह भी जरूरी है कि जो साधन प्रयोग किये जा रहें हैं वे भी सत्य के साथ संगत हो, जिसका निगमनात्मक अर्थ है कि वे अहिंसक भी आवश्यक रूप से हों । तिलक के विचारों में साध्य की पवित्रता तो अपरिहार्य है परन्तु साधन को अपरिहार्य रूप से पवित्र और अहिंसक हाने की शर्त रखना पवित्र साध्य की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करना है, और यह अनुचित है । साधन के बारे में चाहे तिलक एवं गाँधी के विचारों में जो भी अन्तर हो, दोनों देश आजादी के लिए सक्रिय रहे और भारतीय राजनीतिक चिन्तन में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान है ।

7.9 अभ्यास प्रश्न

1. तिलक एवं गाँधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए ।
2. तिलक एवं गाँधी के विचारों में विद्यमान समानता को स्पष्ट कीजिए ।
3. तिलक एवं गाँधी के विचारों में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामगोपाल, भारतीय राजनीति, विक्टोरिया से नेहरू तक, ज्ञानमण्डल लि. बनारस
2. पामदत, रजनी, इण्डिया टुडे, मैकमिलन लि लंदन, 1910
3. पार्वते, टी.वी. बालगंगाधर तिलक, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1960
4. प्यारेलाल, लास्ट फेज भाग-1, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद
5. लोकमान्य तिलक, गीतारहस्य (हिन्दी संस्करण), पूना 1950
6. श्यामप्रसाद दुबे, आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

7. हुक्माराम सुथार, गाँधी एवं तिलक धर्म एवं राष्ट्रवाद, रितु पब्लिकेशन, जयपुर 2005

इकाई - 8

गाँधी एवं नेहरू

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 सामाजिक परिवर्तन
8.3 राजनीतिक शक्ति एवं व्यवस्था
8.4 आर्थिक दृष्टिकोण
8.5 नैतिक एवं राजनीतिक मूल्य
8.6 सारांश
8.7 अभ्यास प्रश्न
8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात निम्नलिखित के बारे में विद्यार्थी आपना समझ विकसित कर सकेंगे :-

- गाँधी एवं नेहरू द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक चिन्तन ।
- गाँधी एवं नेहरू द्वारा प्रस्तुत आर्थिक चिन्तन ।
- गाँधी एवं नेहरू द्वारा प्रस्तुत सामाजिक चिन्तन ।

8.1 प्रस्तावना

गाँधी एवं नेहरू दोनों ही न केवल अबाधित सामाजिक परिवर्तन के पक्षघर थे, अपितु वे स्थापित एंव प्रचिलित विचार, अवधारणा, संस्था एवं प्रक्रिया की स्वीकृति केवल उसी स्थिति में देना उचित मानते थे, जब तार्किक, वस्तुगत, विवेकजन्य तथा अनुभविक कसौटी पर उनकी औचित्यपूर्णता बनी रहे । अवश्य ही राजनीतिक शक्ति एवं सामाजिक परिर्वतन के मुद्दों पर गाँधी व नेहरू का चिन्तन अपने विकल्प की प्रस्तुति में कभी भिन्न हैं, किन्तु वैयक्तिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में दोनों ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत ऐतिहासिक घटनाक्रम तथा सनातन राष्ट्रीय प्रायोजनों का गंभीर अध्ययन किया । गांधी एवं नेहरू दोनों ही पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के वरदानों तथा अभिशापों से भी अवगत थे । गंभीर अध्ययन एवं चिन्तन के कर्मण्यवादी दायित्वों को सूत्रबद्ध कर दोनों ने स्वीकारा कि राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता पर स्वराज्य अपूर्ण बना रहेगा, यदि सामाजिक परिवर्तन की दिशा में शिथिलता व्यक्ति-समुदाय अथवा समुदाय-समूह से सम्बद्ध नहीं है । मूलत: इस प्रकरण में मानसिकता तथा मनोवृत्ति के आमूल चूल रूपान्तरण की मनोवृत्ति को स्वीकारना होगा ।

गाँधी एवं नेहरू, दोनों ही सामाजिक परिवर्तन के पक्षघर तथा प्रणेता थे । अनेक बार परिस्तिपरक विवरण में उन्हें गुरू-शिष्य स्थिति में इंगित किया गया है । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अनुभवों तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की अनुभूति को गाँधी तथा नेहरू ने नवीन अर्थ एवं प्रयोजन प्रदान किये । दोनों को परिपूरक स्थिति में ही औचित्यपूर्ण माना जा सकता है न कि एकाकी स्तर पर । विरोधाभासों के कृत्रिम, अस्वाभाविक रूप से आरोपित करने से दोनों की स्वायत्तता इसी सत्य पर निर्भर है कि व्यक्तित्वैभिन्य की भाँति उनके विचार-विकल्पों की प्रस्तुति को भी तदानुसार इंगित करना आवश्यक है । तुलनात्मक दृष्टि के बावजूद, मूल्य। प्राथमिकताओं तथा सम्बद्ध विकल्प प्रस्तुतिकरण की ज्ञातव्यता अपेक्षित है ।

नेहरू ने गाँधीवादी मूल्याधारों का अनुसरण किया किन्तु इस संदर्भ को वे अन्धभक्ति से विलग रखने में भी सफल रहे । प्रारम्भ से ही पश्चिमी संसदीय व्यवस्था प्रक्रिया एवं सम्बद्ध अनिवार्यताओं को स्वीकृति प्रदान कर नेहरू ने लोकतान्त्रिक समाजवादी योजनाबद्ध विकास, सघन औद्योगिकीकरण, प्रविधि प्रसार तथा विकास हेतु आधुनिक संयंत्र की भूमिका को स्वीकारा । राजनीतिक शक्ति के समसामयिक संयंत्र को स्वीकृति देने के बावजूद नेहरू ने शांति अहिंसा एवं विश्वत्व को निश्चित परिप्रेक्ष्य की अनिवार्यता माना । अवश्य ही नेहरू ने गाँधी की अपेक्षा भिन्न प्रस्तुति की । अन्तर स्पष्टता होना आवश्यक है कि गाँधी सत्ता से दूर रहे जबकि नेहरू ने वास्तविक सत्ता को स्वीकारा तथा उसी पर्यावरण में नवनिर्माण को इंगित किया ।

8.2 सामाजिक परिवर्तन

समाज वैज्ञानिक दृष्टि गाँधी की महात्मावादी छवि के संदर्भ में कुछ अर्थो में महत्वपूर्ण है । प्रथम गाँधी के सैद्धान्तिक निर्वचन एवं क्रियात्मक व्यवहार में अन्तराल नहीं है । द्वितीय गाँधी के एवं सार्वजनिक जीवन के आदर्शों एवं शैली में विभेद नहीं है । उक्त दानों का सन्दर्भ राजनैतिक आन्दोलनों मे अपवाद पूर्ण है । वस्तुत: गाँधी की "प्रेक्सिस" की विशिष्टता का मूल भी ही है । गाँधीय प्रेक्सिस उनकी नैतिक प्राथमिकताओं एवं राजनीतिक गतिविधि की अन्तःक्रिया पर आघृत हैं यह अन्तःक्रिया अंशत: श्रीमदभागवद गीता के ज्ञान भक्ति कर्मयोग का अद्भुत संयोग है । अंशत: प्रारम्भिक ईसाई समाजवादियों के ससतुल्यमानव समता के लिए आध्यात्मिक शैली में संघर्ष का भारतीय समानान्तर भी है । निश्चय ही सार्वजनिक जीवन में सम्यक बन, संम्पर्क आचार का समीकरण अन्यत्र उपलब्ध नहीं है । उक्त समीकरण की साध्यता के लिए । गाँधी ने प्रचलित मानदंडों से भिन्न शैली का प्रतिपादन किया जिसे नैतिक परमवाद आध्यात्मिकृत राजनीतिक साधनों की परिशुद्धता साध्य-साधन एकात्मकता आदि संज्ञाए दी गई । गाँधी ने प्रकृति एवं लोक की अन्तर्निहित सूत्रबद्धता को सामाजिक संज्ञान का मूल माना एवं विज्ञान दर्शन एवं धर्म में भी साम्य की खोज को प्रधानता दी ।। अत: गाँधी दर्शन में सम्पूर्ण ज्ञान की कसौटी है । मानवीय संवेदनशीलता पर आधृत दायित्वपूर्ण कर्म जो कृत्रिम आरोपित विषमताओं से जूझने की क्षमता, व्यक्ति एवं समाज को प्रदान करता है । राष्ट्रीय आन्दोल में राजनीतिक संघर्ष के समानान्तर समाजिक परिर्वन की रचनात्मक विद्या के मूल में कदाचित यही आदर्श है ।

गाँधी ने सामाजिक परिवर्तन को "समग्रता" एवं व्यापकता का व्यक्तित्व किया जिसके अन्तर्गत व्यक्ति एंव समाज के किसी भी मूल पहलू को विस्मृत नहीं किया । यदि गाँधी अपने कर्मण्यवादी राजनीति तक ही सीमित रखते तो शायद उनके प्रयासों को इतनी व्यापकता के वृत। में परखना सम्भव नहीं होता । तत्कालीन दक्षिण अफ्रीका में प्रजातिवाद एवं रंगभेद कुनीतियों व्यक्ति के प्रति प्रशासनिक अनाचार, स्वतन्त्रता व समानता एवं न्याय के अधिकारी का अवमूल्यन, आर्थिक शोषण तथा प्रशासितों की असहायता के वातावरण में गाँधी ने प्रशासकों नीतिनिर्माताओं से केवल न्याय की अपेक्षा की थी जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की विस्मृत महत्ता को पुन: स्थापित किया जा सके । इन अनुभवों में गाँधी द्वारा प्रस्तुत सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप है ।

भारत के परिप्रेक्ष्य में गाँधी ने सामाजिक सगठन, सम्बन्ध एवं दृष्टिकोण के रूपान्तरण, आर्थिक विकेन्द्रीकरण एवं न्याय प्रशासनिक व्यवस्था के मानवीकरण तथा राजनीतिक संदर्भ में स्वराज्य प्राप्ति के अधिकारों को प्राथमिक महत्व दिया इस प्रयोजन में किसी अवमूल्यन को वे किसी भी परिस्थिति में स्वीकार करने को बाध्य नहीं थे । इस दृष्टिकोण से गाँधी के प्रयास सामाजिक परिवर्तन की समग्रता से प्रेरित थे । वे मानते थे कि केवल विदेशी सत्ता की समाप्ति एवं स्वराज्य प्राप्ति से ही भारतीय संदर्भ में परिवर्तन प्रक्रिया प्रभावी एवं सृजनात्मक नहीं हो सकती । अतएवं उनका प्रयास था कि भारत में संगठित नैतिक, अहिंसात्मक, सहिष्णु, विवेकी एवं जागृत कर्मठ एवं प्रयोजनशील जनसमाज की स्थापना हो ।

गाँधी की 'मौलिकता इस संदर्भ में अवश्य मानी जा सकती है । कि उन्होंने व्यक्ति एवं समाज की प्रगति एवं नवरूपान्तरण के संयंत्र में आध्यात्मिक मूल्यों के प्रावधान को वरीयता दी । उनके दक्षिण अफ्रीका प्रवास में भी इसी दायित्वपूर्ति के प्रयास देखे जा सकते है । व्यक्ति को अधिकृत अधिकार, स्वतन्त्रता, न्याय एवं अवसर यदि अनवरत एवं असीमित स्तर पर प्राप्त न हों तो अवश्य ही उसका वर्तमान एवं भावी संदिग्ध बने रहेंगे । गाँधी ने व्यक्ति को आधार मान कर ही एक नवीन समाज की परिकल्पना को साकार करने का प्रावधान दिया । इस प्रावधान में गाँधी के सामाजिक परिवर्तन का स्त्रोत एवं उद्देश्य निहित है । ऐसा माना जाता है कि व्यक्ति के इस गरिमायुक्त स्वरूप पर ही उनकी सर्वोदय समाज की प्रतिकृति अवलम्बित है ।

गाँधी के चिन्तन में समाज के नवीन व्यक्तित्व निर्धारण के प्रयास देखे जा सकते हैं । वे इस दिशा में किसी सीमा तक सफल या असफल रहे इस विषय पर अनेक मत हो सकते हैं परन्तु उनके प्रयासों के विषय में दो राय होना असम्भव दिख पडता हैं । उन्होंने माना कि सामाजिक पुन: निर्माण के अभाव में सामाजिक प्रयास एवं सामाजिक शक्ति शिथिल बने रहेंगे । यदि स्वस्थ समाज स्थापित न हो तो राजनीतिक चेतना एवं क्षमता आर्थिक स्वावलम्बन एवं न्याय,अवश्य ही सुदूर के आदर्श बने रहेंगे । इसी आशय से प्रेरित होकर उन्होंने माना कि संकीर्णता, एकाधिकार, अन्याय तथा अंधानुकरण से मुक्त समाज की स्थापना के अभाव में राष्ट्रीय प्रयास तथा उद्देश्य सविराम एवं विलम्बित ही होंगे ।

सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय की प्राप्ति और सामाजिक परिवर्तन के लिये नेहरू ने गाँधी के विचारों को कुछ अंश तक स्वीकार किया । गाँधी की धारणा थी कि व्यक्तियों का सुधार सामाजिक विकास का प्रतीक बन सकता हैं नेहरू को कम समीचीन प्रतीत हुआ ।

इसी प्रकार वे भौतिक सुविधाओं का स्वेच्छा से त्याग तथा सादगी और सीमित आवश्यकताओं से संयमित जीवन के बारे में भिन्न मत रखते थे । नेहरू समाज की प्रगति के लिए विज्ञान की उपलब्धियों एवं सुविधाओं को महत्व देते थे, और गाँधी के साधुवाद और निर्धनता के महिमागमन को उन्होंने अस्वीकार किया । आधुनिक सभ्यता द्वारा केवल शहरी समाज को अपितु ग्रामीण भारत को ऊपर उठाने का उनका स्वप्न सामाजिक परिवर्तन का विशिष्ट विचार था । गाँधी का दार्शनिक अराजकतावाद हिंसात्मक परिवर्तन का विरोधी है । वे न्यासिता के सिद्धान्त की चर्चा करते हुए उसके माध्यम से जनता के कष्टों का निवारण ढूँढ़ते हैं । इस प्रकार मनुष्य का आन्तरिक नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास चाहते हुए वे व्यक्ति के बाहय पर्यावरण में परिवर्तन करना चाहते है ।

नेहरू के लिए उपर्युक्त गाँधीवादी दृष्टिकोण की प्रासंगिता सीमित थी । उनके अनुसार मनुष्य की शक्ति प्राप्त करने की लालसा, धन अर्जित करने का लोभ एवं मानव सुलभ अन्य चेष्टाएँ त्याग नहीं की जा सकती । सामाजिक परिवर्तन का ध्येय इन सभी मानवीय चेष्टाओं के मध्य सामंजस्य तथा सामाजिक नियन्त्रण प्रस्तुत करने का है ताकि साधनहीन तथा सम्पन्न दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके । नेहरू के अनुसार ग्रामोद्योगों की स्थापना तथा पुरातनपंथी जीवन की पुनरावृत्ति से प्रगति प्राप्त नही की जा सकती । प्रगति के लिये आवश्यक है कि समाजवाद का लक्ष्य निर्धारित किया जाए । सार्वजनिक हित में उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था की जाए । यदि राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ ऐसे परिवर्तन का विरोध करें तो उन्हें भी बदल दिया जाए । न्यासिता के नाम पर पहले पूँजीपति को पनपने देना और फिर उससे सार्वजनिक हित में सम्पत्ति के प्रयोग की कामना करना, जमींदारी, जागीदारी तथा सामन्तवादी व्यवस्था को स्वीकार करना, आदि नेहरू को स्वीकार नहीं थे । वे परिवर्तनवादी थे । उन्हें हिंसा, अहिंसा, बल प्रयोग अथवा हृदय परिवर्तन के किसी भी माध्यम के प्रति आग्रह अथवा अनुग्रह नहीं था । उनके सामने मूल प्रश्न था सामाजिक व्यवस्था को बदलने का । उन्होने व्यक्तियों के साथ दुरभाव न रखते हुए पूर्ण व्यवस्था को समय के अनुसार परिवर्तित करने पर जोर दिया ।

8.3 राजनीतिक शक्ति एवं व्यवस्था

गाँधी ने राजनीतिक शक्ति को अस्वीकार कर लोकशक्ति की अनिवार्यता के निर्वचन प्रस्तुत किये । आलोचनार्थ उल्लेख किया जाता है कि गाँधी ने राजनीतिक क्षेत्र में ही विरोभासी विकल्प प्रस्तुत किए एवं तदनुकूल साधन शुद्धता को प्राथमिक मान कर राजनीति का आध्यात्मीकरण किया । फलत: गाँधी ने राजनीति को नीतिप्रदत्त मूल्यों से निर्धारित किया एवं विरोध शैली तथा धनों का नक्कथन प्रस्तुत किया । दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों को भारतीय सदर्भ में विस्तारित कर गाँधी ने मूल कथन प्रस्तुत किया कि राज्याधारित रेखाकथन द्वारा शक्ति के निर्वचन भी, प्रवर्तन अथवा उसकी सम्भावना आशंका से प्रभावित बने रहेंगे । सत्य, अहिंसा, अभय तथा लोकशक्ति के दृष्टिजन्य निर्णायक तत्वों एवं सम्बद्ध मूल्यों के आधार पर गाँधी ने सामाजिक परिवर्तन की परिकल्पना की । राज्य के स्थान पर सामाजिक शक्ति एवं लोकशक्ति कानून के स्थान पर जनसम्मत सहमति केन्द्रित संसदीय, उत्तरदायी व्यवस्था

प्रक्रिया, औपचारिक-संवैधानिक चयन प्रक्रिया के स्थान पर जन सहमति की भागीदारी, विश्वसनीयता, दलसंरचना प्रक्रिया के स्थान पर दल विहीन व्यवस्था जो सदाशयी लोकशक्ति सम्बर्द्धन से अनुप्राणित हो, उपभोक्तावादी आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर स्वदेशी से व्यवस्थित अनिवार्य न्यूनतम आवश्यकताओं की समतावादी उत्पादन क्रिया एवं पूर्ति अर्थ विहीन मशीनीकरण के स्थान पर जनकौशल सामर्थ्य एवं क्षमता की अबाधित स्थापना, सामाजिक संरचना की विकृत एवं दूषित यथा स्थिति के स्थान पर व्यक्ति की गरिमा एवं सामुदायिक स्वायत्तता की प्राथमिकता सामाजिक वैभिन्य प्रदत्त विच्छिन्नता के स्थान पर एकीकृत एवं परिपूरकता, कृत्रिम स्तरीकरण के स्थान पर प्रकार्यात्मक सौजन्य, स्वामित्व, एकाधिकार, लाभसंग्रहण तथा अनियमित प्रतियोगिता के स्थान पर कायिक श्रम, अस्तेय एवं अपरिग्रह की प्राथमिकता तथा, सनियन्त्रित जीवन-यापन, विजय, उपलब्धि-अर्जन एव लोकप्रियता की महत्वाकांक्षा के स्थान पर विपक्षी का हृदयहीन औद्योगिकीकरण, प्रविधी-नवीनीकरण पूँजीवादी शोषण तथा उपभोक्तावाद के स्थान पर परिसीमन प्रेरित जनकल्याण, प्रतिशोध, हिंसा, अतिक्रमण एवं अवमूल्यित दिशा-दृष्टि के स्थान पर सदाशयता, विश्वसनीयता, संस्कारवृत्ति तथा मानवीय मूल्य स्थापना, उग्र-प्रसारवादी-हिंसक राष्ट्रवाद के स्थान पर विश्वत्ववादी सहअस्तित्व उन आग्रहों के प्रतीक हैं जिनके आधार पर गाँधी ने सामाजिक परिवर्तन हेतु समग्र विकल्प प्रस्तुत किए ।

गाँधी ने राजनीतिक शक्ति की अवधारणा को न तो अस्वीकार किया है ना शक्ति की अवधारणा को असंगत ही बतलाया है । गाँधी शक्ति के ऐसे वैकल्पिक केन्द्रों की खोज में थे, जो अहिंसा की धारणा के अनुकूल हो । शक्ति के लिए होने वाले संघर्ष में एक पक्ष की दूसरे पक्ष पर विजय सुनिश्चित । है । गाँधी संघर्ष की स्थिति को इस प्रकार से सुलझाना चाहते हैं कि दोनों में से किसी भी पक्ष को पराजय न देखनी पडे ओर दोनों ही प्रेम भावना से एक दूसरे को समझने का प्रयास करें ।

वे शक्ति का प्रयोग न कर केवल अहिंसात्मक आन्दोलन का ही सहारा लेना चाहते थे । साम्प्रदायिकता का निवारण भी वे राज्य शक्ति के स्थान पर अहिंसा के माध्यम से करना चाहते थे । गाँधी की सफलता का रहस्य यह था कि वे राज्य को प्रमुखता न देकर समाज की महत्ता को स्वीकार करते थे । उनकी यह दृढ मान्यता थी कि यदि समाज अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक रहे तो वह राज्य को अपने नियन्त्रण में रख सकता है । राज्य की त्रुटियों को समाज ही सुधार सकता है । राज्य के निरंकुशवाद पर समाज का नियन्त्रण आवश्यक है । गाँधी ने शक्ति, विघटनकारी एवं भ्रष्ट प्रभाव से अपने आपको दूर रखा । वे शक्ति से दूर रहना चाहते थे । राजनीतिक शक्ति के प्रभाव से मुक्त होने को ही वे मुक्ति मार्ग मानते थे । यही कारण है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात उन्होंने काँग्रेस को परिष्कृत करने की दृष्टि से उसे शक्ति तथा सत्ता की होड़ से विलग हो जाने का आग्रह किया ।

वस्तुत: राजनीतिक शक्ति के बारे में गाँधी का कहना था कि- "मेरे लिए राजनीतिक शक्ति का इससे अधिक कुछ भी महत्व नहीं है कि वह एक जरिया है, जिससे लोग अपने जीवन की अवस्थाओं को सुधार सकते है । राजनीतिक शक्ति का अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधियों

द्वारा राष्ट्रीय जीवन का संचालन । अगर राष्ट्रीय जीवन स्वंय-संचालन की योग्यता हासिल कर लेता है तो प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती । ऐसे राज्य में हर आदमी अपना शासक है । वह अपना शासन इस प्रकार करता है कि पडौसी को उससे कोई अडचन न पहुँचे । इसलिए आदर्श राज्य में राजनीतिक शक्ति नाम को कोई चीज नहीं रह जाती, क्योंकि राज्य रह ही नही जाता । परन्तु यह आदर्श जीवन में पूरी तरह से प्राप्त नहीं है ।

गाँधी दार्शनिक अराजकतावादी थे फिर भी राज्य के द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली राजनीतिक शक्ति में उनका विश्वास था । परन्तु उन्होंने सदा ही राज्य और समाज में भेद करने का प्रयत्न किया । पश्चिमी राजनीतिज्ञ मनुष्यों को राजनीतिक और अराजनीतिक इन दो वर्गो में बांटते हैं, और राजनीतिक मनुष्य का मूल्यांकन भी इस आधार पर करते हैं कि वह शक्तिशाली हैं अथवा शक्ति प्राप्त करने में प्रयत्नशील है अथवा निःशक्त है । गाँधी का विश्वास था कि समाज में जितने भी व्यक्ति है उन सबका राजनीतिक शक्ति में हिस्सा बॉटने का केवल अधिकार ही नहीं कर्त्तव्य भी है । पर साथ ही वह यह मानते थे कि कुछ व्यक्तियों के लिए, जिन्होंने सत्याग्रह की तकनीक में प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है यह आवश्यक होना चाहिए कि वे अपने को राजनीतिक शक्ति से दूर रखें और सदा इस प्रयत्न में लगे रहें कि राज्य-सत्ता को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाए रखा जा सके । देश में रचनात्मक कार्यो के लिए उन्होंने जो अनेक संगठन बनाये थे उनके कार्यकर्त्ताओं के सम्बंध में गाँधी ने स्पष्ट किया कि "मैं उन्हें संसद में भेजना नही चाहता । मैं चाहता हूँ कि मतदाताओं को प्रशिक्षण और निर्देशन देकर वे ससंद को नियन्त्रण में रख सकें ।

परिवर्तन के इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए राज्य शक्ति और लोक-शक्ति का सम्मान पूर्ण सहयोग अनिवार्य है । पृथक रखने से स्वंय शक्ति आगे नहीं बढ़ पायेगी, और दोनों की शक्ति के दो पक्ष है शासक पक्ष तथा विपक्ष । लोक शक्ति जनता और उसके संगठनों से निर्मित होती है । राजनैतिक दलों को राज्य शक्ति के अन्तर्गत रखना उचित ही होगा, यद्यपि लोकशक्ति के विकास ओर संगठन में उनकी उपयोगी भूमिका है । अपने देश के सन्दर्भ में पंचायती राज को लोकशक्ति के अन्तर्गत गिनना चाहिए और इस बात के प्रति सदा जागरूक रहना चाहिए कि पंचायतों का चरित्र सरकारी न बनने पाए गैर-सरकारी बना रहे । अगर ऐसा नहीं तो पंचायती राज जनता को साथ लेकर नहीं चल सकेगा । उससे अपेक्षा है कि वह सरकार का अंग बनकर न रह जाए, बल्कि सच्चे ग्रामस्वराज्य की दिशा में एक समर्थ कदम सिद्ध हो ।

गाँधी के लिए सत्ता का उत्तरदायी होना आवश्यक है । स्वंयसेवी संगठनों का मुख्य कार्यक्षेत्र रचनात्मक है । गाँधी ने रचनात्मक कार्य को जनता के स्वराज्य की कुंजी माना है लेकिन उनका रचनात्मक कार्य कोरी सेवा नहीं है । उसमें सेवा का अपना स्थान है, किन्तु रचनात्मक कार्य का मुख्य उद्देश्य, लोकशक्ति जगाना और संगठित करना है, ताकि राज्य शक्ति के साथ उसका सम्मानपूर्ण सहयोग हो सके, तथा सामान्य जन जीवन के क्षेत्र में वह राज्य शक्ति का विकल्प बन सके ।

गाँधी ने लोकतान्त्रिक राजनीति के तीन पहलू स्पष्ट किये है -

1. राजनीतिक शक्ति प्रेरणा देना - जेनरेटिंग पॉवर (Generating Power)

2. राजनीतिक शक्ति को हाथ में लेना - कैप्चरिंग पॉवर (Capuring Power)

3. राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करना - इक्सरसाईजिग पावर (Exercising Power)

सत्ता को प्रेरणा देना स्वयं सेवी संगठनों का काम है । उसी तरह जनता और उसके अपने संगठनों का काम सत्ता का प्रयोग करना है । जनता अपने संगठनों द्वारा सत्ता का प्रयोग कुशलतापूर्वक और सर्वजन के हित में कर सके इसमें उसकी सहायता करना, उसे शिक्षण-प्रशिक्षण देना, स्वयं सेवी संगठनों का मुख्य भूमिका है । कहीं अनीति या अन्याय होता हो तो उसका सत्याग्रही प्रतिकार करना भी उनकी भूमिका के अन्तर्गत है । राज्य सत्ता अपने हाथ में लेना स्वसेवी संगठनों का स्वधर्म नहीं है । राज्य सत्ता हथियाना और राजकाज चलाना राजनैतिक दलों ओर उन संगठनों का काम है जो इसी काम के लिए बने हैं और जो इस काम के लिए जनता का विश्वास प्राप्त कर उसका प्रतिनिधित्व करते हैं ।

राजनैतिक शक्ति और लोकशक्ति के सहयोग पर जितना भी बल दिया जाए कम है । जो सरकार जनता के मतों से बनती है उससे सामान्य स्थिति में असहयोग का विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता । लेकिन असहयोग उस समय आपद्धर्म बन जाता है, जब राजनैतिक शक्ति लोकशक्ति के मार्ग में तथा लोकतन्त्र की मर्यादा में होने वाले रचनात्मक कार्यो में रास्ते का पत्थर बनकर खड़ी हो जाती है । लेकिन वह असहयोग भी सहयोग पैदा करने के लिए होता है।

लोकतन्त्र में प्रतिकार का प्रथम और सबल अस्त्र लोकमत है । प्रबल लोकमत के मुकाबले किसी भी शक्ति का खडा होना कठिन हो जाता है । इसलिए सर्वमान्य मुद्दों पर व्यापक लोकमत बनाना शिक्षण और रचना का बड़ा कार्य है । लोकमत सत्य और न्याय पर आधारित हो, पक्षपातपूर्ण प्रचार या उन्माद भरे नारों पर नहीं इसके लिए लोकतन्त्र में राजनैतिक शक्ति का होना भी आवश्यक माना गया है । गाँधी को इसलिए शक्ति पुंज माना गया क्योंकि वे सत्य के पक्ष में खडे हो सकते थे । गाँधी के अनुसार सत्य के पक्ष में संघर्ष की वाणी निरंकुश जनता और निरंकुश सत्ता, दोनों पर अंकुश का कार्य करेगी और राष्ट्र में विश्वास का वातावरण पैदा करेगी जिसके बिना करोडों लोगों का सह-अस्तित्व तथा राष्ट्र का शान्तिपूर्ण पुनर्निमाण सम्भव नहीं होगा।

नैतिक शक्ति राजनैतिक शक्ति से बहार रहकर ही उस पर अंकुश रख सकती है । अहिंसा शिव है, सत्ता इन्द्र है । शिव श्मशान में रहेगा तो सिंहासन पर इन्द्र सतर्क रहेगा । अहिंसा हिंसा की विरोधी शक्ति है । इसलिए अहिंसक क्रान्ति का चरित्र नैतिक क्रान्ति का होता है । इस चरित्र के कारण अहिंसक क्रान्ति का मुख्य साधन अहिंसक लोकशक्ति होती है, राज्य शक्ति नहीं और ऐसी लोकशक्ति भी नहीं जो हिंसक हो । जनता की अहिंसक और नैतिक शक्ति संगठित करने से लोकशक्ति का आधार बनता है । एक बार यह आधार बन जाता है तो सत्याग्रह के अनेक हथियारों का प्रयोग परिस्थिति के अनुसार किया जा सकता है अहिंसा आत्म की शक्ति है । गाँधी ने उसे "सोल फोर्स" कहा है । राष्ट्रीय जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति राजनिति के स्थान पर नैतिक दृष्टिकोण का स्वागत होता है । शान्ति और अहिंसा गाँधी और गाँधीवादियों की कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि इस युग की आवश्यकता है । यह सारा प्रयोग लोकशक्ति का होगा । इस सन्दर्भ में लोकतन्त्र में तटस्थ नैतिक शक्ति का बहुत बडा

महत्व है । गाँधी ने भारत के युगनिर्माण के सन्दर्भ में यह कहा था कि अहिंसा में विश्वास रखने वाले क्रान्तिकारी "लोकसेवक संघ" बनाकर लाखों गांव में फैल जाएँ और जनता की संगठित अहिंसक शक्ति विकसित करें । वे संसदीय राजनीति को दूसरों के हाथों में छोड दें । अपने हाथ में नैतिक शक्ति के सूत्र रखें और उसी नैतिक शक्ति से राजनैतिक शक्ति को प्रभावित करें ।

स्वाधीनता के बाद गाँधी ने बार-बार यह प्रश्न उठाया कि स्वतन्त्रता मिल गयी किन्तु गाँव-गाँव, शहर-शहर स्वराज्य कैसे होगा? स्वराज्य सरकार के कानून से नहीं होता: उसके लिए समाज की शक्ति चाहिए लोकशक्ति चाहिए । गाँधी के मत में जब राज्य की शक्ति है तो जनता की शक्ति घटती है । वह ग्राम और शहर में लोकशक्ति को संगठित करना चाहते थे । राज्य शक्ति को क्रमश: सीमित स्वाधीनता प्राप्ति के बाद कोंग्रेस में सत्ता के लिए जो संघर्ष आरम्भ हुआ उससे उन्हें बहुत धक्का लगा । उन्होंने रचनात्मक कार्यकताओं से कहा कि वे "सत्ता की राजनीति और उसकी स्पर्श से अपने को अलग रखें । जितने भी क्रियाशील संगठन है उन्हें अपने साथ ले लो । अपने में से सारी गन्दगी दूर कर दो । सत्ता प्राप्ति करने के विचार को मन में आने भी ना दो इसी में मुक्ति है । तुम्हारे लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं । "

जहाँ गाँधी शक्ति की चिन्ता किए बिना भी अपने सिद्धान्तों के प्रति निष्ठावान रहते थे, वहाँ नेहरू राजनीतिक नेतृत्व को स्थायित्व प्रदान करने हेतु व्यवहारिक दृष्टिकोण रखते हैं । सत्ता व उसके औचित्य को बनाये रखने में नेहरू सदैव सफल रहे । उन्होंने अपनी लोकतान्त्रिक प्रगतिवादी प्रतिभा को बनाये रखा । उन्होने स्वयं के लिए सत्ता का दुरूपयोग नहीं किया ।

1933-34 में नेहरू पर मार्क्स का सबसे अधिक प्रभाव था परन्तु उस समय भी वे गाँधी के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त नहीं हुए थे । यद्यपि गाँधी के तत्व चिंतन ने उन्हें प्रभावित नहीं किया, फिर भी ये गाँधी पर प्रतिक्रियावादी होने का आरोप पसन्द नहीं करते थे । यह आरोप बम्बई के कुछ लोगों ने उन पर लगाया तो नेहरू ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये लिखा था "वह व्यक्ति (गाँधी) हिन्दुस्तान को जितना जानता और समझता है और किसान हिन्दुस्तान का तो वह प्रतिरूप ही बन गया है, और उसने इस तरह हिन्दुस्तान को हिला दिया है, उतना क्रान्तिकारी कहलाने वाले किसी व्यक्ति ने नहीं किया है । इसलिए उन्हें प्रतिक्रियावादी नहीं कहा जा सकता है । "

भारतीय राजनीति में गाँधी के आगमन और उसके प्रभाव पर नेहरू ने अपने पुस्तक "डिस्कवरी ऑफ इण्डिया" में अत्यन्त प्रशंसापूर्ण टिप्पणी की है । गाँधीजी ताजा हवा के उस प्रवाह की तरह थे, जिसने हमारे लिये पूरी तरह फैलना और गहरी सांस लेना संभव बनाया । वह रोशनी की उस किरण की तरह थे, जो अंधकार में बैठ गई और जिसने हमारी आंखों के सामने से आवरण को हटा दिया । वह उस बवंडर की भाँती थे, जिसने बहुत सी चीजों में विशेषत: श्रमिकों के मस्तिष्क मे उथल-पुथल पैदा की । गाँधीजी से आए हुए नहीं थे अपितु भारत के करोडों व्यक्तियों के मध्य उत्पन्न हुए थे । उनकी भाषा वही थी जो आम लोगों की थी, और वे निरन्तर उस जनता की और उसकी भयावह दुर्दशा की ओर ध्यान आकर्षित करते थे ।"

वे व्यक्ति को सामाजिक प्रक्रिया से इस प्रकार एकीकृत करना चाहते थे कि उसमें मानवीय आत्मा समष्टिगत रूप से प्रकट हो सके ताकि आर्थिक न्याय, समानता, वर्गहीनता व शोषण रहित व्यवस्था की स्थापना हो सके । समाज की भौतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के साथ-साथ सहयोग, सौहार्द एवं प्रेम द्वारा विश्व-समाज व शोषण रहित व्यवस्था की स्थापना हो सकती है । तथा साम्यवाद दोनों ही इस प्रकार की सामाजिक क्रान्ति के प्रतीक है । साम्यवाद आवश्य ही मानवीय स्वतंत्रता को सीमित करता है अत: आलोचना का विषय बना है अन्यथा सहयोग एवं समानता के आदर्श द्वारा मानव के रचनात्मक विकास का क्रम निरन्तर प्राप्त किया जा सकता है । वे लोकतांत्रिक पद्धति के प्रति पूर्ण निष्ठावान हैं । किन्तु वे पंच वर्षीय लोकतन्त्र के पक्षपाती नहीं हैं जिसमें जनता चुनाव के समय ही लोकतंत्र का आभास प्राप्त करे, तथा शेष समय के लिए अवसरवादी तथा सत्ता लोलुप नेतृत्व का शिकारी बनी रहे । नेहरू ने स्थितियों को आत्मसात् किया है जिसके अन्तर्गत मानवीय मस्तिष्क एवं आत्मा को परतन्त्रता में निर्बन्ध कर दिया है । वे आधुनिक सभ्यता को मानवीय स्वातंत्र्य के लिए अभिशाप मानते हैं क्योंकि आज का मानव यांत्रिक होकर समष्टिगत समुदाय में विलीन हो गया है ।

गाँधी ने एक मौलिक लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया । गाँधी की लोकतंत्र की अवधारणा पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र एवं परम्परागत और वर्तमान लोकतंत्र की अवधारणा वर्गीकरण से भिन्न है । अन्य अवधारणाओं की भाँति गाँधी का लोकतंत्र मूलत: गाँधी की आध्यात्मिक आस्था से ही सम्बद्ध है । गाँधी ने भारत में लोकतंत्र की सफलता के लिये प्रथम स्तर पर छ: शर्तो को आवश्यक माना हैं । सत्याग्रह जो चरखे द्वारा प्रकट हो, ग्रामीण उद्योगों का विकास, प्राथमिक शिक्षा एवं हस्त उद्योगों का विकास, छुआछूत निवारण साम्प्रदायिक एकता एवं श्रमिकों का अहिंसक संगठन ।

गाँधी चिन्तन में इन्ही जीवन मूल्यों को आधार मानकर ग्राम आधृत लोकतंत्र को यथार्थ धरातल पर स्वराज्य के रूप में अभिव्यक्त किया गया हैं । ग्राम स्वराज्य ऐसी व्यवस्थात्मक संरचना है जिसमें लोकतंत्र केवल राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तरों पर ही सीमित नहीं रहता वरन् उसका निस्तारण वास्तविक अर्थो में सभी स्तरों पर हो । स्वराज्य ग्रामीण जनता की नैतिक शक्ति से प्रेरित लोकतान्त्रिक शक्ति द्वारा संचालित होगा ।

वस्तुत: ग्राम आधृत लोकतंत्र की प्रमुख इकाई ग्राम होगा और गाँव की इकाई मनुष्य होगा । भौतिक शास्त्र की भाषा में मनुष्य परमाणु होगा और ऐसे स्वयं विभिन्न स्वतन्त्र परमाणुओं का संगम अणु होगा । प्रत्येक अणु स्वयं के गुणों का सम्पूर्ण प्रतिनिधि होगा परन्तु अणुओं के आपसी प्रेम एवं संरचना से गाँधी चिन्तन के ग्रामधारित लोकतंत्र की अवधारणा उत्पन्न होगी ।

यह अवधारणा केवल ग्राम आधृत लोकतंत्र का मुखदर्शन मात्र नहीं अपितु किसी देश में लोकतंत्र की बुनियादी इकाई के रूप में ग्राम समृद्ध लोकतंत्र के रूप में विकसित होना चाहिए गाँधी ने इसी समृद्ध लोकतंत्र को स्वराज्य से सम्बोधित किया है यही स्वराज्य ग्राम आधृत लोकतंत्र का भी स्पष्ट किया ।

स्वराज्य ग्राम आधारित लोकतंत्र के विचार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि स्वराज्य गाँधी के जीवन का स्वप्न था । दादा भाई नौरोजी के 1906 में कलकत्ता कांग्रेस में स्वयं के अध्यक्षीण भाषा में "स्वराज्य" को दोहरा अर्थ प्रदान किया गया था "साम्राज्य" के भीतर और आवश्यकता पडने पर साम्राज्य के बाहर स्वराज्य इसी द्वितीय अर्थ को प्रकट करने के लिए पूर्ण स्वराज्य को अभिव्यक्ति के रूप में उपयोगी माना गया ।

अधिक स्पष्ट शब्दों में 'औपनिवेशिक स्वराज्य" के स्थान पर "पूर्ण स्वराज्य का अर्थ है कि ब्रिटिश के साथ बराबरी के दर्जे का सम्बन्ध और दोनो पक्षों को उसे तोडने का अधिकार ।

8.4 आर्थिक दृष्टिकोण

गाँधी के सामाजिक परिवर्तन में प्राचीन जीवन पद्धति, जीवन पद्धति में बुनियादी प्राथमिक ईकाई "ग्राम" को प्रधानता का प्रमुख कारण था गांवों की त्रिविध बीमारी का निराकरण । गाँधी ने 16 मई 1936 को स्पष्ट किया । सार्वजनिक स्वच्छता की कमी, पर्याप्त पोषक आहार की कमी, ग्रामवासियों की जडता । अन्य ग्रामवासी जनता की उन्नति के प्रति उदासीनता, स्वच्छता के आधुनिक उपायों के प्रति अनभिज्ञता भी कष्टप्रद है । स्वयं के खेतों को जोतने या बने के अतिरिक्त अधिक अन्य श्रम के प्रति उतना परिश्रम दृष्टिदोष ऐसी बाधाएँ रही हो जो वास्तविक और गंभीर है ।

पश्चिमी सभ्यता के नकारात्मक परिणामस्वरूप औद्योगिकरण शहरीकरण, बढते हुए भोगवाद के कारण परिसीमित नकारात्मक व्यक्तिवाद और स्वार्थ की भावनाओं को बढावा मिला । जिससे वर्तमान के नर दैत्याकार नगर, विकृति और स्वाभाविकता के परिणाम ही हैं । नगर जुआ, अपराध, व्यसन, व्याभिचार के अड्डे तो हैं हीं साथ-साथ झुग्गी व गन्दी बस्तियों में परिवर्तित होते जा रहे हैं । पानी, सफाई, रोशनी की समस्याएँ इन नगरों में कवराल रूप धारण कर रही हैं । इसके सशक्त क्रियान्वयन के लिए लोक सेवकों की आवश्यकता अवश्य है इसलिए गाँधी ने काँग्रेस के सदस्यों से भी अनुरोध किया था कि अंग्रेजों की छोडी हुई पुरानी पद्धति की गद्दी पर जाकर न बैठे बल्कि लोकशिक्षण के लिये लोक सेवक संघ को जन जन में प्रसारित करें ।

गाँधी का आहवान था कि सामाजिक परिवर्तन के लिए "ग्राम' का पुरूत्थान ही प्राथमिक दायित्व होना चाहिए । चूंकि भारतीय ग्राम भारतीय शहरों की सम्पूर्ण आवश्यकताओं का स्त्रोत रहे हैं इसलिए स्वराज्य में कृषकों के पास राजनैतिक सत्ता के साथ-साथ हर प्रकार की सत्ता रहे । कृषक ही केन्द्र बिन्दु होना चाहिए । गाँवों को जीवित रखने के लिए उन्हें बलवान और समृद्ध बनाना आवश्यक है अत: गाँधी का आहवान था कि हमारे स्वराज्य के दृष्टिकोण में ग्रामों को प्रधानता होनी चाहिए ।

उपरोक्त संकल्पना में स्वराज्य की अवधारणा में "सादा जीवन एवं उच्च विचार" को आधृत कर नैतिकता परक समाज में ग्राम और व्यक्ति की प्रधानता को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए गाँधी ने ग्राम आधृत लोकतंत्र की संकल्पना प्रस्तुत की ।

वर्तमान समाज में सशस्त्रीकरण तथा व्यापक वैज्ञानिकीकरण की अंधी दौड के वातावरण में गाँधी द्वारा ग्रामआधारित लोकतंत्र को मानवीय विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है

क्योंकि गाँधी का स्वराज्य आध्यात्मीकरण की वैचारिक आधारशिला पर स्थित है । भीडवादी बहुसंख्यक लोकतंत्र के निराकरण, अमूर्त सम्प्रभुजा के स्थान पर लोकशक्ति एवं लोकनीति, शासकीय आरोपण के स्थान पर व्यक्ति की क्षमता एवं सामर्थ्य में विश्वास अपव्यय एवं प्रदर्शन के स्थान पर सरल, सहज, सहकारिता एवं व्यैक्तिक, सामूहिक विकासोन्मुख गत्यात्मकता को प्रतिष्ठित करने की कल्पना, सामाजिक परिवर्तन के लिए ग्रामीण लोकतंत्रीय योजना के रूप में दर्शन को यथार्थ में परिवर्तित करने का संकल्प गाँधी चिन्तन की प्रमुख लाक्षणिकता हैं ।

वर्तमान राजव्यवस्था के मूल प्रवाह से अविछिन्न पंचायत व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण के नाम पर रखने से न तो लोकतंत्र को बल मिला न ही विकेन्द्रीकरण की प्रतिष्ठा हुई । केन्द्र एवं राज्यों में' संसदीय लोकतंत्र एवं गाँवों मे पंचायत व्यवस्था एक दूसरे से समुद्री वतुर्ल की तरह अवरूद्ध नही होगी तब तक पंचायत को सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त नही हो सकती और यह मात्र केन्द्रीय या सत्ता की मेहरबानी पर जीवित होगी । निकायों में एवं केन्द्रीय तथा राज्य सरकार अधिकारों के लिए शाश्वत खींचतान का अवसर रहेगा । इसका है कि वर्तमान की केन्द्रित राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित कर विकेन्द्रित । यह किसी प्रकार की समानान्तर व्यवस्था में सम्भव नहीं अर्थात राज्य विधान सभाओं एवं केन्द्र की लोकसभा का आधार पंचायतें या पंचायतों के आधार पर अप्रत्यक्ष चुनाव नही होगे तब तक पंचायतों के संवैधानिक संशाधनों की संजीवनी भी व्यर्थ सिद्ध होगी । वर्तमान में आवश्यकता है समाज व्यवस्था में नागरिकों की आजीविका जा और जमीन जोतने वालों की जमीन का मौलिक अधिकार प्रदान करने से ही सच्चे अर्थो में ग्रामाधारित लोकतंत्र की स्थापना हो सकती है । लेकिन वर्तमान में देश में स्थित राज्य की सरकारें पंचायती राज व्यवस्था के प्रति जिस प्रकार उदासीनता और सौतेलापन का व्यवहार कर रही हैं वह देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था के समग्र विकास के लिए घातक है । इसका एक मात्र और स्थाई निदान यह है कि पंचायती राज संस्थानों को समुचित संवैधानिक दर्जा प्रदान करने हेतु भारत के संविधान में यथाशीघ्र आवश्यक संशोधनों को लागू करें एवं लोकतंत्र दिल्ली और राज्य की राजधानियों में सीमित रहने की बजाय ग्राम स्तर पर पहुँच सके ।

गाँधी राज्य के असीमित तथा उसके ऐतिहासिक दुरूपयोग से परिचित थे । वे मानते थे कि राज्य कि शक्ति न्यूनतम हो एवं कालान्तर में अराजकता ही व्यक्ति एवं समाज के व्यापक कल्याण की संरक्षक हो सकती हैं । राज्य की शक्ति-एकाधिकार प्रवृति, हिंसा, दमन-क्षमता तथा आरोपण की प्रवृत्ति से गाँधी सशंकित थे । व्यक्ति की स्वायत्ता तथा नैतिक साहस के संवर्धन हेतु वे मानते थे कि राज्य वरदान नवीं अभिशाप हैं । व्यक्ति की कर्तव्यपरायणता, जागरूकता, स्वेच्छा एवं सदाशय के उच्चतर कीर्तिमान तभी सम्भव हैं जब राज्य की बाध्यकारी निरंकुशता की समाप्ति हो । राज्य हिंसा का संगठित और केन्द्रित रूप है । व्यक्ति के भीतर आत्मा है, परन्तु राज्य आत्मका रहित मशीन है उसे हिंसा से कभी नही बचाया जा सकता क्योंकि उसकी उत्पत्ति ही हिंसा से है ।

गाँधी ने माना कि राज्य ने व्यक्तित्व एवं समाज का सदैव दमन किया तथा राज्य की सम्प्रभुता वास्तविक स्थिति में व्यक्ति की अवहेलना का सशक्त माध्यम ही हैं । फलत: गाँधी ने राजनीति के स्थान पर लोकनीति की प्राथमिकता एवं औचित्य पर बल दिया । गाँधी के

चिन्तन में स्पष्ट है कि यदि राजनीति शासन पर आधारित है तो लोकनीति अनुशासन पर, यदि राजनीति शक्ति पर केन्द्रित है तो लोकनीति स्वतन्त्र,ता एवं स्वायत्ता पर, यदि राजनीति नियन्त्रण पर आधारित है तो लोकनीति अनुशासन मर्यादा पर, यदि राजनीति 'सम्प्रभुता एवं अधिकारों के अर्जन की प्रतियोगिता पर आधारित है तो लोकनीति कर्त्तव्यपरायणता तथा जागरूकता पर । गाँधी ने माना की लोकनीति आध्यात्मिकता से प्रेरित कर्मयोग की सम्पूर्ति है।

व्यक्ति के प्रति नेहरू का दृष्टिकोण पश्चिमी उदारवादियों से इस अर्थ में भिन्न है कि उदारवाद व्यक्ति के जीवन में राज्य को अनावश्यक हस्तक्षेप निषेध करता है केवल व्यक्ति की अपने हित में निर्णय लेने की बौद्धिक क्षमता में विश्वास करता है । इसके विपरित नेहरू की आस्था में केवल व्यक्ति की क्षमता में नही अपितु मानव की नैतिक प्रेरणा में है । उनकी मान्यता है कि व्यक्ति में कर्तव्यों के प्रति । आत्मत्याग और उच्चतर नैतिक प्रयोजनों के प्रति निष्ठा की सहज भावनाएँ होती है जिसके सन्दर्भ में वे राज्य की दमनकारी शक्ति के भय नही अपितु नैतिक चेतना के कारण ही अपने कल्याण और सामुदायिक हित के मध्य समन्वय स्थापित करने की क्षमता रखता है ।

राज्य के प्रयोजन एवं व्यक्ति तथा राज्य के सम्बन्धो की दृष्टि से जवाहर लाल नेहरू के दृष्टिकोण को व्यक्तिवादी अथवा समष्टिवादी के रूप में वर्गीकृत नही किया जा सकता । उन्होंने राज्य और व्यक्ति के सम्बंध में एक विलक्षण दृष्टिकोण को अपनाया और मानवीय गरिमा तथा सामाजिक व आर्थिक न्याय को एक साथ सुनिश्चित करने पर बल दिया । उन्होंने व्यक्तिवादियों की भाँति व्यक्ति के हितों की वरीयता अथवा व्यक्ति की सर्वोपरिकता का उद्घोष नही किया है और न ही साम्यवादियों की भाँति व्यक्ति की चेतना पर समुदाय के बाध्यकारी नियन्त्रण को ही मान्यता दी है ।

गाँधी के सामाजिक पुन: निर्माण के प्रयास में प्रथम स्थान व्यक्ति का है । समाज प्रश्न वास्तव में व्यक्ति की गरिमा एवं नागरिक महत्ता के प्रश्न है । इसका प्रमुख कारण गाँधी ने मनुष्य की आत्मा की सर्वोपरिकता को माना एवं उनके दृष्टिकोण में समाज की उन्नति साधारण व्यक्ति की आध्यात्मिक शक्ति के विकास पर निर्भर है । व्यक्ति नितान्त भौतिक तत्वों का मशीनी संयुक्तीकरण नही बल्कि एक दैवीय चिंगारी है । "

गाँधी ने माना कि व्यक्ति की मनोवृत्ति एवं दृष्टिकोण को नैतिक व मनोवैज्ञानिक आधारों पर बदला जा सकता है । क्योंकि व्यक्ति सम्पूर्णता की प्राप्ति एवं निरन्तर क्षमता वृद्धि से प्रेरित होता है इसके लिये गाँधी तपस्या और त्याग पर बल देते हैं । "

सामाजिक पुन: निर्माण में गाँधी की आस्था समुदायों की अपेक्षा व्यक्तियों में अधिक रही क्योंकि व्यक्तियों पर नैतिक विचारों का अधिक प्रभाव पड़ता है व्यक्ति समाज का अंग एवं निर्णायक है तथा व्यक्ति के मानस चेतना एंव दृष्टिकोण से पृथक सामाजिक परिप्रेक्ष्य असम्भव है ।

गाँधी के अनुसार वास्तविक लोकतंत्र लोकशक्ति पर आधारित होता है जिसे सर्वोदय सिद्धान्त में लोकनीति का नाम दिया गया । जनमत की प्रतिष्ठा, अहिंसा एवं नैतिकता ही लोकतंत्र के आधार होने चाहिए । इसमें पुलिस एवं सेना की आवश्यकता नहीं बल्कि आवश्यकता है सामाजिक इच्छा शक्ति की । इसके अतिरिक्त गाँधी यद्यपि अपने अहिंसक राज्य में

संक्रमण स्तर पर पुलिस को आवश्यक मानते हैं लेकिन उसके वर्तमान हिंसक तरीकों को सुधार कर उसमें परिवर्तन करना चाहते हैं । वास्तव में वे पुलिस के सिपाही को सेवक एवं सुधारक मानते थे । गाँधी ने स्पष्ट किया, "सच्चे जनतंत्र को किसी भी प्रयोजन के लिये सेना पर आश्रित नहीं रहना चाहिए । सैनिक सहायता पर निर्भर रहने वाला राज्य नाममात्र का जनतंत्र हो जायेगा । सैनिक शक्ति मस्तिष्क के स्वतंत्र विकास में बाधा डालती है । वह मनुष्य की आत्मा का विनाश करती है । इसी कारण गाँधी अहिंसक राज्य में सभी संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के मानवीकरण को अनिवार्य मानते थे ।

इस प्रकार गाँधी द्वारा कल्पित अहिंसक राज्य के अन्तर्गत समाज का स्वरूप पूर्ण लोकतंत्रात्मक और अहिंसक माना गया जो ग्राम स्वराज्य के सिद्धान्त पर केन्द्रित था । उनके अनुसार समाज आत्मनिर्भर और स्वशासी ग्रामों का स्वस्थ सक्षम, संघ ही उचित था । प्रत्येक नागरिक स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर शान्तिपूर्ण और सम्मानित जीवन यापन करें एवं पूर्ण रूप से अहिंसा, आत्मनियंत्रित त्यागपूर्ण और समाज सेवारत बनें । गाँधी ने स्पष्ट किया कि ' प्रत्येक गाँव पूरे अधिकारों से सम्पन्न एक पंचायत होगा, इसलिये निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक गांव स्वावलम्बी होगा और इस योग्य होगा कि वह अपने मामलों का प्रबंध यहाँ तक कर सके कि सम्पूर्ण संसार से भी स्वयं अपनी रक्षा कर सके । इस प्रकार का समाज अवश्य ही उच्च रूप से सुसंस्कृत होता है । उसमें प्रत्येक स्त्री और पुरूष जानता है कि किसी भी ऐसी वस्तु की आवश्यकता नही होनी चाहिए जिसे दूसरे उतना ही परिश्रम करके नही पा सकते ।

इस प्रकार अन्त में सम्पूर्ण संगठन व्यक्तियों से विनिर्मित समग्रता होगी । इस समग्रता की बाहय परिधि अपनी शक्ति का उपयोग, आन्तरिक वृत्त को दबाने के लिए नही करेगी बल्कि वह परिधि के अन्दर शक्ति देगी ओर स्वयं अपनी शक्ति आन्तरिक वृत से प्राप्त करेगी ।

गाँधी कहते है कि आज के युग में स्वर्णयुग की कल्पना करना प्राय: ही हैं लेकिन एक अहिंसात्मक समाज में उनका पूर्ण विश्वास है । उनकी दृष्टि में अहिंसात्मक समाज एक दिशा का संकेत है न कि गन्तव्य का । ये एक प्रक्रिया है न कि निष्पत्ति । गाँधी की स्पष्ट धारणा है कि और लोकतन्त्र सभी मनुष्यों की आत्मिक एकता में केन्द्रित है । गाँधी का कहना है कि यदि अहिंसात्मक तरीके से राजनीतिक शक्ति अर्जित की जाती हैं तो वह सर्वश्रेष्ठ लोकतन्त्र होगा ।

नेहरू ने व्यक्ति तथा राज्य के संबध पर बल देते हुए यह व्यक्त किया है कि राज्य व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति राज्य के लिए । व्यक्ति समाज के प्रति उत्तरदायी है किन्तु राज्य मूलाधार व्यक्ति के कल्याण पर निर्भर करता है । व्यक्ति के अधिकार उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों से किए जाते हैं । कर्तव्यों के बिना अधिकारों का बोध नही हो सकता है । नेहरू पुलिस राज्य से राज्य की ओर विकास को आधुनिक समय की आवश्यकताओं के अनुकूल मानते थे । वे राज्य के बढ़ते हुए कार्यो को दृष्टि में रखते हुए राज्य शक्ति के विस्तार तथा उसके विकेन्द्रीकरण से परिचित थे । वे चाहते थे कि राज्य का विकेन्द्रीकरण किया जाए ताकि व्यक्ति की स्वतन्त्रता की राज्य से रक्षा की जा सके ।

नेहरू मूलत: लोकतन्त्रवादी थे । वे लोकतन्त्र को केवल शासन की प्रणाली नही समझते थे । उन्होंने लोकतन्त्र को जीवन में नैतिक मापदण्डों और मूल्यों की एक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया । नेहरू ने लोकतन्त्र के वैचारिक संस्थागत और प्रक्रियात्मक तीनों पक्षों को महत्वपूर्ण माना उनकी वैचारिक दृष्टि से लोकतन्त्र एक जीवन पद्वति है जो सहिष्णुता उदारता और स्वतन्त्रता को सर्वोपरि प्रदान करती है । एक जीवन दर्शन के रूप में लोकतंत्र शासन से व्यक्ति के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को प्रदान करने व उनमें हस्तक्षेप न करने के संयम की अपेक्षा करता हैं । व्यक्तियों की लोकतान्त्रिक नेहरू के अनुसार अन्य व्यक्तियों और वर्गो के प्रति सहिष्णुता व उदारता के रूप में परिलक्षित होता है । कहा कि लोकतन्त्र की सफलता जनता में लोकतान्त्रिक व्यवस्था का मर्म, जनता के कल्याण के प्रति के समर्पण और अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जनता की चेतना व जागरूकता में निहित है । लोकतन्त्र यह अपेक्षा करता है कि शासन की शक्ति अंतिम रूप से जनता में निहित मानी जाए और राजनीतिक संस्थाओं को इस प्रकार संगठित किया जाए कि इनमें जनता को निर्णायक भागीदारी प्राप्त हो । इस दृष्टि से वे की शक्ति के विकेन्द्रीकरण को लोकतन्त्र के लिये आवश्यक मानते थे ।

गाँधी का वैचारिक वृत्त आध्यात्मिक दर्शन से समीकृत है अत: राजनीति के प्रचलित निर्वाचनों से उनका मत पूर्णरूपेण भिन्न है । गाँधी की दृष्टि में नीति विहीन राजनीति का कोई अर्थ नहीं है । यद्यपि कर्म से प्रेरित गाँधी चिन्तन में धर्म को द्वैतीयक नही माना गया है । तथापि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का हर चरण उनके लिए आध्यात्म से सम्बद्ध है । सत्य के अनवरत अन्वेषण एवं प्रयुक्त नैतिक साधनों के फलस्वरूप ही गाँधी की राजनीति एवं समाज नीति निष्पन्न हुई । वस्तुत: गाँधी ने नीति परक मान्यताओं को राजनीति के साररूप में स्वीकार किया । "

गाँधी का प्रयास धर्म एवं राजनीति के मध्य समरूपता स्थापित करना था । गाँधी ने धर्म को ऐसी शक्ति माना जो जन समान्य के वास्तविक हितों की सुरक्षा कर सकता था । दैनिक जीवन से असम्बद्ध धर्म गाँधी की दृष्टि में निरर्थक था । इसी प्रकार गाँधी ने यह माना कि धर्म विहीन राजनीति अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में सफल नही हो सकती । इसी कारण गाँधी ने राजनीति को धर्म रो समन्वित करने का प्रयास किया । सत्य, अहिंसा, एवं दैविय सर्वोच्चयता के सिद्धान्तों के प्रति प्रतिबद्धता से अधिक गाँधी के राजनीतिक जीवन का कोई पवित्र उद्देश्य नहीं है । इस तरह गाँधी की राजनीति धर्म नति से किसी भी रूप में भिन्न नहीं थी । ऐसी मिसालें तो बहुत मिल सकती है । लेकिन वे ज्यादातर भारत भूमि की ही उपज होंगी । ऐसी रैयत जहाँ है वहीं स्वराज्य है । इसके बिना स्वराज्य कुराज्य है ।

गाँधी अपनी राजनीति को बहिष्कृत समाज के लिए स्वाभाविक मानते हैं और यह मानते है कि पश्चिमीकृत समाज के लोगों को ये चीजें सीखनी होगी । वे अपनी राजनीति को बहिष्कृत समाज के सबसे उत्कृष्ट मूल्यों के अनुकूल मानते है और पश्चिमी सभ्यता की वैकल्पिक सभ्यता की स्थापना में उसे एकमात्र साधन के रूप में देखते हैं । विस्तृत अर्थो में गाँधी की अर्थनीति उनकी राजनीति का ही अंग है और उनकी राजनीति उनकी विश्वदृष्टि का तात्कालिक और ठोस स्वरूप है । अत: उनके सभी कार्यो का वास्तविक आधार उनके दर्शन में

है एक ऐसी वैकल्पिक सभ्यता की कल्पना मे है जो नैतिक हो, मनुष्य केन्द्रित हो और सहयोग पर आधारित हो । उन्होंने 'हरिजन' में लिखा-

"मेरा अभी भी यही विचार है कि मैं राजनीति को धर्म से अलग करके उसकी (राजनीति की) कोई धारणा नहीं बना सकता ।..... इस (धर्म) का अर्थ है दुनियाँ की एक व्यवस्थित नैतिक सरकार में विश्वास । यह हिन्दू इस्लाम, ईसाई, आदि धर्मों का अपने में समावेश करके आगे बढ जाता है । उन्हें नकार कर आगे नहीं बढता । यह उनमें सामंजस्य स्थापित करके वास्तविक बनाता है । "

नेहरू का दृष्टिकोण मूलत: इहलोकवादी और वैज्ञानिक था । प्रचलित अंध-विश्वासों, रूढ़ियों, कट्टरता और मतान्धता को देखकर उन्हें गंभीर क्लेश होता था । वे इस समस्या के प्रति नया रूख अपनाने पर बल देते हैं और स्वयं को एक ऐसा मार्क्सवादी बताते है जो ईश्वर की तलाश में है । उनका विचार था "विज्ञान उन सभी रहस्यों की गुत्थी को नही खोल सकता है न भविष्य में उससे आशा है कि वह ऐसा कर सकेगा । वे विज्ञान और आध्यात्म को एक दूसरे का पूरक मानते थे । उनका मत था कि विज्ञान भी निरन्तर जीवन के रहस्यों की गुत्थियों को खोलने मे लगा हुआ है । जिसे हम सत्य की खोज कह सकता हैं । सत्य की खोज से नेहरू का तात्पर्य ज्ञान सच्चाई और असलियत की खोज से है । उनका स्पष्ट मत है कि जीवन्त जीवन दर्शन ऐसा होना चाहिए जो आज की समस्याओं का हल पेश कर सके ।

नेहरू के लिए लोकतन्त्र तथा समाजवाद दोनों ही साध्य नही अपितु साधन थे । साध्य तो उनके लिये व्यक्ति का कल्याण और प्रगति था । उनके लिए प्रत्येक समाजिक अथवा राजनैतिक सिद्धान्त की कसौटी यह थी कि "उसमें प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति को अपने संकुचित स्वरूप से ऊपर उठने में तथा सबके कल्याण के लिये सोचने में कही तक सहायता मिलता है । तात्पर्य है कि जवाहर लाल की कल्पना के समाजवादी का मूल उनके वैज्ञानिक मानवतावाद में था । उनके समाजवाद के स्वरूप को उनके मानसिक और नैतिक व्यक्तित्व के आधारभूत तत्व का विश्लेषण किए बिना नहीं समझा जा सकता है और यह तत्व था उनका मानव में विश्वास अर्थात मानववाद ।

नेहरू के समाजवाद सम्बन्धी विचार गतिशील तो थे ही उन्होंने भारत की समस्याओं के हल के लिये अपने स्वतन्त्र विचारों के आधार पर अपने समाधान खोजे । इसलिए वे न तो पूर्णत: मार्क्सवादी रहे न ही पूर्णत: गाँधी के विचारों से सहमत हो पाए । गरीबी मिटाने का लक्ष्य स्वीकारते हुए भी वे गाँधी के सम्बन्धी विचारों से भिन्न मत रखते थे । ।

नेहरू, नियोजन की संकल्पना के मूलभूत तत्व इस प्रकार मानते थे :-

प्रथम-नियोजन के लक्ष्य उस समाजवाद के सिद्धान्तों के अनुकूल हो जिसकी उन्होने एक विकासशील और गत्यात्मक संकल्पना के रूप में कल्पना की थी । दूसरे जहाँ वे राज्य को प्रत्यक्ष रूप देश की अर्थप्रणाली में उत्पादन और वितरण का साधन बनाना चाहते थे और वही उन्होंने अनी नियोजन पद्धति में सार्वजनिक क्षेत्र की संकल्पना क्रमागत रूप से की थी न कि अचानक ही । तीसरे उनकी नियोजन की धारणा विवशता के अतिरिक्त एक दूसरे को मानने की शक्ति पर आधारित थी और इसके लिये उन्हें समाज के विभिन्न लोगों का सहयोग अपेक्षित था । चौथे नेहरू का नियोजन सम्बन्धी दृष्टिकोण बहुत ही लचीला था । स्वतन्त्रता के पूर्व वे

विदेशी सहायता के कटु आलोचक थे परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की बदली हुई परिस्थितियों में उन्होंने त्वरित आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता ओर विदेशी ऋणों का समर्थन किया बशर्ते कि उनके साथ कोई राजनीतिक शर्ते न लगी हों । 1947 में भारत के विकास एवं सामाजिक परिवर्तन हेतु विदेशी साझेदारी का स्वागत किया था ।

उन्होंने नियोजन के समस्त राष्ट्र के विशेषकर देश के पिछड़े भागों के विकास की पूर्व कल्पना की थी । जैसाकि उनका विचार था कि यदि समस्त भारत के लिये नियोजन किया जाता है तो औद्योगिक रूप से पिछड़े इलाकों को ऊपर लाकर उन्हें आगे बढ़ने में सरकार को मदद करनी होगी ताकि वे एक संतुलित भारत का हिस्सा बन सकें । यदि देश के कुछ भागों का ही औद्योगिकीकरण किया जाता है और शेष हिस्से कृषि के सहारे छोड दिए जाते हैं तो यह बात भारत के लिए ना सिर्फ रक्षा के दृष्टिकोण से बल्कि प्रत्येक दृष्टिकोण से आपत्तिजनक होगी ।

उपरोक्त बातों का देश के नियोजित आर्थिक विकास की दिशा में नेहरू के लिए बहुत अधिक महत्व था । भारी उद्योग और इस्पात उद्योग की स्थापना पर उनका विशेष बल था परन्तु ऐसा करते हुए भी उन्होंने कृषि की अवहेलना नहीं की थी । नेहरू जी हमारे देश में नियोजित विकास के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं ।

गाँधी ने स्पष्ट किया कि न्यासिता सिद्धान्त कोई ऐसी चीज नहीं है जो काम निकालने के लिए आज रख दिया गया है । अपनी मंशा छिपाने के लिये खड़ा किया गया आवरण तो वह हरगिज नहीं हैं । मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धान्त जब नहीं रहेंगे तब भी वह रहेगा । उसके पीछे तत्वज्ञान और धर्म के समर्थन का बल हैं । धन के मालिकों ने इस सिद्धान्त के अनुसार आचरण नहीं किया है । इस बात से यह! सिद्ध नहीं होता कि वह सिद्धान्त झूठा हैं । उससे धन के मालिकों की कमजोरी मात्र सिद्ध होती है । अहिंसा के साथ किसी दूसरे सिद्धान्त का मेल ही नहीं बैठता । अहिंसक मार्ग की खूबी यह है कि अन्यायी यदि अपना अन्याय दूर नहीं करता तो वह अपना नाश स्वयं ही कर डालता हैं क्योंकि अहिंसक असहयोग के कारण या तो वह अपनी गलती देखने और सुधारने के लिये मजबूर हो जाता है या वह बिल्कुल अकेला पड़ जाता है ।

8.5 नैतिक एवं राजनीतिक मूल्य

गाँधी के मूल्यों में अपनी आस्था प्रकट करते हुए भी गाँधी की विचारधारा से नेहरू की सोच अलग है । नेहरू जिन नैतिक और राजनीतिक मूल्यों को प्राथमिकता देते हैं उन्हें राजनीति में स्थान देने के पीछे उनका अपना दर्शन रहा है ।

गाँधी और नेहरू दोनों सत्य को एक बहुमूल्य वस्तु और महान् राजनैतिक आदर्श मानते हैं । दोनों ही सत्य को पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील दिखाई पडते है । दोनों ही सत्य को प्राप्त करना किसी भी मनुष्य का लक्ष्य मानते हैं । दोनों ही सत्य को शाश्वत और चिरंतन मानते है । परन्तु जहाँ नेहरू दर्शन में निरपेक्ष सत्य का स्थान सीमित है क्योंकि उनके अनुसार इसको पाना और इस तक पहुँचना कठिन है अत: उसे प्राप्त करने में अपना जीवन व्यतीत करना जीवन की मूल समस्याओं से कट जाना है । इसीलिए सत्य के अंश पर केन्द्रित रहना ही नेहरू का प्रमुख लक्ष्य रहा है । वहीं गाँधी के दर्शन में निरपेक्ष सत्य का स्थान सर्वोच्च है वही नैतिकता, राजनीति और धर्म का आदर्श है यही जीवन के अन्य मूल्यों-अर्थ काम और धर्म को

अर्थ प्रदान करता है । यही सापेक्ष सत्य का आधार है । सापेक्ष सत्य को पकड़े रहना ही निरपेक्ष सत्य तक पहुँचने का साधन है और उसका कोई सम्बन्ध मोक्ष या इन्द्रियातीत अवस्था तक पहुचने से नहीं । वहीं गाँधी के लिए सत्य का वास्तविक उद्देश्य इसी इन्द्रियातीत अवस्था को प्राप्त करना है । यही नेहरू और गाँधी के इस अन्तर का समझने के लिए उनके अलग-अलग उद्धरणों को उद्धत करना समीचीन होगा ।

गाँधी की मान्यता थी कि अनेक सम्बद्ध प्रत्ययों, सिद्धान्तों से अभिप्रेरित सत्य की सार्वभौमिकता प्रतिवाद से मुक्त तार्किक वास्तविकता है । गाँधी के विश्वासवृत्त में सर्वेश्वर की उपासना सत्य के प्रतिमान पर्याय की प्रमाणिकता है । उन्होंने स्वीकारा कि चाहे ईश्वर के दर्शन न हुए हो, ईश्वर की खोज सनातन बनाए रखना प्राथमिकता है । जब तक सनातन, शाश्वत सत्य का दर्शन न हो, सापेक्ष सत्य की खोज तथा सम्बद्ध संकल्प विश्वास, प्रतिबद्धता में ही व्यक्ति के मार्गदर्शन की ज्योति संरक्षण तथा सूत्रबद्ध सामर्थ्य स्थापित है ।

इस सन्दर्भ में नेहरू ने स्पष्ट किया यदि सत्य की शाश्वत निर्णायकता को स्वीकारा जाए तो उसके अनन्य अक्षत एंव अपरिवर्तनीय सत्य के विषय में कोई शंका नही हो सकती । सत्य की ऐसी अस्मिता सदैव बोधगम्य नही होती । कारण यह है कि व्यक्ति की परिसीमित विवेक क्षमता तथा सामथर्य के अनुरूप सत्य की अनुग्रहित भी समय सन्दर्भ विवेकजन्यता की विकास क्रिया तथा सामयिक विचारपद्धति से आबद्ध रहती है चाहे सत्य के लाक्षणिक आधार मूलत: अक्षत रहते हैं । विवेकजन्यता की विकासशील सामर्थ्य से अनुशासित दृष्टि, विचार पद्धतियों की परिवर्तनीयता तथा नवीन प्रतीकों के उदय के फलस्वरूप सत्य के निर्वचन प्रकट होते हैं । अस्तु, सत्य का अन्वेषण सत्यापन पुन: स्वरूपण एवं गत्यात्मक विकास सदैव व्यक्ति की अनुभूति से संलग्न बना रहे तथा वैचारिक प्रगतिक्रम और जीवनवृत के अनिवार्य प्रवाह निरन्तर अबाधित रहे-सत्य की सृजनशील सांदर्भिकता हेतु परमावश्यक स्थितियाँ हैं

गाँधी के दर्शन में सत्य विश्वास, मानव-अस्तित्व, मानव चरित्र और समस्त तत्वों का आधार हैं । यह ज्ञान के क्षेत्र में सत्य कहलाता है परन्तु व्यवहार के क्षेत्र में औचित्य और सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में न्याय कहलाता है । गाँधी जी के दर्शन में सत्य को वैज्ञानिकता से नही जोड़ा जा सकता क्योंकि जो कुछ हम देख रहे हैं वह सत्य का केवल अंश मात्र है । सत्य तो सूर्य से भी करोडो गुना तीव्र है । जिस प्रकार सूर्य के अंश मात्र से ही प्राणी जीवित है उसी प्रकार सत्य के अंश मात्र कारण ही मनुष्य का व्यक्तित्व व राजनैतिक जीवन सुरक्षित है ।

वही निरपेक्ष सत्य की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए नेहरू लौकिक जगत के लिए केवल सत्य के उस अंशमात्र को महत्व देते हैं जिसे मनुष्य के जीवन के विकास और विचारों के उत्थान के साथ निरन्तर अपने को ढालता रहा है अर्थात नेहरू के दर्शन में सत्य वैज्ञानिकता को प्राप्त करने का है क्योंकि इसी की सहायता से व्यक्ति रूढ़ियों से लड़ सकता हैं । पुरानी जर्जर अवधारणाओं को नए तथ्यों के प्रकाश में पुन: स्थापित कर सकता हैं ।

सत्य की अवधारणा की तरह ही अहिंसा के बारे में भी दोनों के विचार न है । यद्यपि दोनों के लिए अहिंसा एक वैयक्तिक आदर्श होने के साथ-साथ एक सामाजिक आदर्श है । दोनों लिए अहिंसा कायरता के तरीकों पर आधारित नही है बल्कि बुराई व हिंसा से लडने के लिए बहादुरों का है । दोनों के लिए अहिंसा हिंसा से अधिक प्रभावशाली हैं । परन्तु जहाँ गाँधी के

लिए अहिंसा सत्य को प्राप्त करने का एक मात्र साधन है वहीं नेहरू के लिए अहिंसा सामाजिक व राजनैतिक न्याय को प्राप्त करने व सामाजिक कुरीतियों से लड़ने की एक सशक्त व्यवहारिक तकनीक हैं । उन्होंने अहिंसा को गाँधी की तरह किसी आत्मिक प्रेम से नहीं जोडा बल्कि उसे समसामयिक परिस्थितियों में भारत के लिए सबसे अधिक कारगर अस्त्र माना सत्र सशस्त्र विद्रोह भारतीय जनता के लिए बहार के सवाल जैसा होगा । भारत की अधिकांश जनता अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग तक करना नहीं जानती ।

गाँधी के दर्शन में अहिंसा का प्रयोग राजनीति के क्षेत्र में भी एक नैतिक अस्त्र रूप में होता हैं । उन्होंने स्पष्ट किया कि सकारात्मक दृष्टि से अहिंसा, असीमित सम्पूर्ण प्रेम का प्रत्यय हैं । अहिंसा का उपासक शत्रु के प्रति भी दया, क्षमा, सहिष्णुता, अनुकम्पा से अभिभूत रहता हैं सृजनशील अहिंसा अपवादरहित स्थिति में सत्य एवं अभय से संलग्न एकाकार है । गाँधी ने अहिंसा के शाश्वत पवित्रमय सत्य को स्पष्ट करते हुए स्वीकारा है कि वास्तविक लोकसत्ता टाविा स्वराज्य की प्राप्ति असत्य अथवा हिंसक प्रवृत्तियों के पर नहीं हो सकती । प्रतिवाद एव अपवाद से मुक्त अहिंसा की सार्वभौतिकता के अन्तर्गत ही वैयक्तिक स्वतन्त्रता की व्यवहारिकता सम्भव हैं ।

नेहरू का तर्क है कि मनुष्य अभी इतना महान नहीं हुआ हैं कि उसमें से हिंसा के तत्वों को पूरी तरह से निकाल दिया जाए, न ही वे गाँधी जी की तरह यह मान पाते हैं कि अहिंसा के किसी भी व्यक्ति को पूरी तरह बदला जा सकता है । इस प्रकार अमेरिका के प्रख्यात अहिंसा के समर्थक विचारक जीनशर्प की तरह वे अहिंसको एक नैतिक अस्त्र की तरह नहीं बल्कि एक राजनैतिक रूप में स्वीकार करते हैं। नेहरू के शब्दों में "जब मैं अहिंसा के बारे में बात करता हूँ तो यह नैतिक नहीं सिर्फ राजनैतिक होता है ।" का प्रयोग हमने एक राजनैतिक हथियार के रूप में हमारे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया है और इसलिए इसको छोड़ने का प्रश्न नही उठता है ।

गाँधी का दृष्टिकोण आदर्शवादी, तत्ववादी एवं शाश्वत मूल्यों पर आधारित है वहीं नेहरू का दृष्टिकोण व्यवहारिक एवं परिस्थितिपरक मूल्यों पर अवलम्बित है । एक राजनीति को निरपेक्ष मूल्यों की प्रयोगशाला मानता है तो दूसरा राजनीतिक को कौटिल्य की तरह एक कूटनीति और समन्वय सामंजस्य की प्रक्रिया मानता है ।

इस प्रकार नेहरू के लिए अहिंसा का यह पूर्ण रूप कभी सम्भव ही नहीं । यहाँ तक कि अनेक परिस्थितियों में नेहरू ने हिंसा की सकारात्मक भूमिका का उल्लेख किया है । उनका तर्क है हिंसा का आधार कभी -सद्भावना भी हो सकता हैं और जिस चीज का आधार सद्भावना होता है उसका पूर्ण रूप से बहिष्कार नहीं किया जा सकता है । इसलिए अहिंसा को वे केवल एक सापेक्ष मूल्य के रूप में स्वीकार करते हैं निरपेक्ष मूल्य में नहीं । उन्होंने स्पष्ट किया है "बहुत से मौकों पर मैने साफ-साफ यह जाहिर किया है कि अहिंसा मेरे लिए कोई अटल धर्म नहीं है । अत: दोनो के विचारों मे भिन्नता के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि एक वैयक्तिक मुक्ति और सामाजिक आदर्श में अन्योन्यश्रित सम्बंध मानता है जबकि दूसरा सामाजिक आदर्श को वैयक्तिक आदर्श से स्वतन्त्र होकर देखता है ।

सत्य और अहिंसा के प्रति दृष्टिकोणों का अन्तर गाँधी और नेहरू के साध्य और साधन के सम्बन्ध में भी परिलक्षित होता हैं । दोनों साध्य के साथ-साथ साधन की पवित्रता पर बल देते हैं । दोनों साध्य और साधन को एक-दूसरे के साथ अटूट रूप से जुड़ा मानते हैं । दोनों उचित साधनों के अभाव में वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति कठिन मानते हैं परन्तु जहाँ गांधी जी के लिए साधन की पवित्रता उतनी ही आवश्यक हैं जितनी साध्य की वहाँ नेहरू साधन से अधिक साध्य को महत्व देते है ।

गाँधी जी का तो तर्क है कि साध्य और साधन के बीच बीज और पेड सा सम्बंध है ।" गाँधी के इस विश्वा२न के संदर्भ में नेहरू ने स्पष्ट किया कि ऐसी मान्यता के आधार पर समस्या निवारण की सम्भावनाएँ सीमित हो जाती है । गाँधी द्वारा साधनों को प्रयोजन एवं साध्य की तुलना में प्राथमिक मानने की स्थिति में अहिंसा एवं सत्य की अस्मिता समानार्थक है । अनेक बार जन सामान्य में इस प्रकार का विश्वास उपस्थित नही दीख पडता । सांदर्भिक दायित्व को राष्ट्रीय आन्दोलन की प्राथमिकता से समीकृत कर नेहरू ने माना कि समयोचित कर्मण्यवादी दर्शन मूल अनिवार्यता थी क्योंकि इस प्रकार के उद्घोष की प्रेरणा की व्यैक्तिक नीतिपरक एवं सामाजिक प्रभाव प्रवाह के समकक्ष मानी। जा सकती थी ।

इस संदर्भ में राघवन अय्यर ने स्पष्ट किया कि सामाजिक तथा राजनीतिक विचारकों के मध्य गाँधी एकाकी व्यक्तित्व दीख पड़ते हैं, जिन्होंने "साध्य' युग्म के प्रति अपरिवर्तनीय हठधर्मिता को सशक्त स्तर पर अस्वीकार एवं साधन के प्रति नैतिक परमवादी प्रतिबद्धता की प्राथमिक प्रमाणिकता को ही विश्वसनीय स्वीकृति प्रदान की ।

यहाँ तक कि गाँधी के लिए एक अर्थ में साधन साध्य से भी बढकर है क्योंकि साध्य पर तो मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं है केवल साधनों पर ही उसकी पकड है । परन्तु इसके विपरीत नेहरू का तर्क है कि साध्य को समझना एवं उसकी दिशा को जानना साधन को जानने से बहुत कठिन है और अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि सही साधन निर्बल मनुष्यों के लिए समझ के बाहर चीज होती है । बिना साध्य को जाने साधक लक्ष्य पर आगे नही बढ़ सकता है ।

गाँधी वे पहले विचारक थे जिन्होंने राजनैतिक दर्शन के उस सिद्धान्त का पूरी तरह से खण्डन कर दिया कि साध्य से ही साधन का औचित्य सिद्ध हो जाता है । यह सिद्धान्त भारतवर्ष में कौटिल्य और पश्चिम में मैक्यिावेली से शुरू होता है । मैकिलयावेली ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि राज्य की रक्षा के लिए प्रयुक्त हर साधन उचित हैं । मार्क्सवादियों ने भी वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए हिंसा को उचित बताया । ट्राटस्की ने उन्हीं साधनों को उचित बताया जो मानव समुदाय को स्वतन्त्र कर सकें परन्तु यही भी साधन का औचित्य साध्य से ही निर्धारित हो रहा है । नेहरू ने भी स्पष्ट कहा है कि मनुष्य को कम से कम ऐरने साधनों का चुनाव अवश्य करना चाहिए जो उरने उसके निर्धारित लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा दे । इस प्रकार नेहरू के दर्शन में साधन किसी न किसी सीमा तक साध्य से निर्धारित हैं । यह केवल गाँधी का दर्शन है जिसमें साधन अपने आप में स्वतन्त्र हैं । वह साध्य से जुडा अवश्य है परन्तु साध्य से निर्धारित नहीं । नेहरू और गाँधी के दृष्टिकोणों का यह अन्तर सबसे अधिक धर्म के संदर्भ ' स्पष्ट होता है । गाँधी जी का दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर में विश्वास व्यक्ति को निर्भय होकर उच्च आदर्शो की प्रेरित करता है । मनुष्य को अज्ञान और बुराई से लडने की

क्षमता प्रदान करता है, निरंकुश से निरंकुश शासक को चुनौती देने का साहस प्रदान करता है । गाधी जी भी धर्म से जुड़े हर प्रकार के बाहय आडम्बरों का विरोध करते हैं । उन्होंने स्पष्ट कहा है "धर्म वह है जो मनुष्य की प्रकृति को परिवर्तित कर देता है, जो मनुष्य को सत्य से बाँध देता है और उसे परिष्कृत करता है । यह मानव प्रकृति में स्थाई तथ्य है जो मानव आत्मा को उसकी ' पूर्ण अभिव्यक्ति तक महान बनाने में कोई कमी नही रखता, जो आत्मा को तब तक आराम नही लेने देता जब तक कि वह अपने रचरूप को पहचान न ले, अपने एंव सृजनकर्ता को जान ले और अपने सृजनकर्ता के बीच सच्चे सम्बन्ध को समझ न ले ।"

सत्य, अहिंसा, साधन और धर्म के बारे में दोनों के दृष्टिकोणों के बारे में दोनों अन्तर यही गाँधी को एक आदर्शवादी और मूलत: एक धार्मिक चिन्तक बना देता है वहीं वह नेहरू को एक यथार्थवादी, वैज्ञानिक एवं मानववादी बना देता है । गांधी जीवन के हर क्षेत्र में नैतिक मूल्यों को प्राप्त करना चाहते थे और इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए केवल ईश्वरीय शक्ति को छोडकर अन्य बाहय उपदानों का नही लेना चाहते थे क्योंकि बाह्य उपदानों पर व्यक्ति की निर्भरता, व्यक्ति की स्वतन्त्र आत्मचेतना के विकास में बाधा डालेगी । इसलिए वे राज्यों के केन्द्रीकरण, नियोजन और नौकरशाही आदि के विरूद्ध थे जबकि नेहरू जीवन के हर क्षेत्र में आदर्श और व्यवहार में सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे क्योंकि वे मनुष्य की कमजोरियों से भलिभांति परिचित थे । इन्हीं कमजोरियों के परप्रेक्ष्य में वे शक्ति एव दबाव के महत्त्व को स्वीकार करते थे । सौ इस बात के लिए भी सजग थे कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वचेतना इतनी विकसित करते थे । वे इस बात के लिए भी। सजग थे कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वचेतना इतनी विकसित नहीं हो सकती थी कि वह सामाजिक सहयोग व को जन्म दे बल्कि उनका विचार था कि बहु धा मनुष्य की कमजोरियाँ और एक गलत सामाजिक ढाँचा समाजिक शोषण और अन्याय का कारण होता है । इसलिए जहाँ एक और वे वास्तविक रचनात्मक विकास के लिए स्वातन्त्रय के समर्थक हैं वहीं दूसरी और विषमताओं को समाप्त करने के लिए अनेक बाह्य उत्पादों जैसे आर्थिक नियोजन राष्ट्रीयकरण, सीमित केन्द्रीकरण आदि व्यवस्थाओं का समर्थन करते हैं । इतना ही एक शोषण विहीन समाज की स्थापना की लिए सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाने की बात करते हैं।

यद्यपि नेहरू गाँधी की तरह वास्तविक धर्म के योगदानों को स्वीकार करते हैं परन्तु नेहरू नैतिक आचरण और मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने के लिए किसी धर्म में विश्वास आवश्यक नही मानते हैं । वास्तविकता तो यह है कि धर्म की वर्तमान व्यावहारिक स्थिति को देखते हु ए वे धर्म अलग रहकर ही वैयक्तिक और राजनैतिक जीवन को व्यवहारिक मानते हैं । भारत की वास्तविक परिस्थितियों । में धर्म के नाम पर प्रचलित बुराईयों से भली भांति परिचित थे । उनके लिए सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह आयत महत्वपूर्ण था और इससे पथभ्रष्ट होना राष्ट्र और समाज के लिए नुकसान पहुंचाना है । धर्म के नाम पर प्रचलित बुराईयों से लोगों में ज्ञान की रोशनी फैलानी की बजाए अक्सर उन्हें अंधकार की ओर धकेला जाता है और हृदय बनाने की बजाए अक्सर लोगों को तंगदिल और दूसरों के प्रति असहिष्णु बनाता है । मानवीय के लिए धर्म के नाम पर प्रचलित बुराईयों को वे घातक मानते हैं और मानते हैं कि ये मनुष्य की सृजनात्मक और योग्यता को कुंठित करते हैं ।

वास्तव में नेहरू उन्हीं मुद्दों पर ध्यान देना चाहते है जो मनुष्य के सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन को श्रेष्ठ बनाने में मदद करें । चूंकि विवेकशीलता, सामाजिक सदाचार, सत्य और नैतिकता एक रचनात्मक समाज के निर्माण में बडी अहम भूमिका अदा करते हैं इसलिए वे इन नैतिक मूल्यों में अपनी आस्था प्रकट करते हैं । धर्म जो मात्र "वैयक्तिक मुक्ति" से जुडा हुआ है, उसकी सीमितता को नेहरू ने भली भांति समझा । सामान्यत: पंथ तथा विश्वास के फलस्वरूप ईश्वर के प्रति सामाजिक जिज्ञासा अभिव्यक्त होती है एवं अनुयायी की कामना रहती है कि तुलनात्मक स्थिति में वैयक्तिक निर्वाण आश्वस्त हो जाए और समाज का कल्याण गौण हो जाता है । संस्थात्मक पंथ जब निहित स्वार्थपरकता का प्रतीक बन जाता हैं तो फलत. परिवर्तन तथा: प्रगति की अवमानना को दृष्टिगत दायित्व मानकर प्रतिक्रियावादी तत्व सशक्त हो जाते हैं ।

नेहरू के इस विचारों के विपरीत गाँधी के लिए धर्म व्यक्ति के लिए प्राण समान है । धर्मरहित राजनीति शव के समान है । यह बात और है कि धर्म शब्द का प्रयोग गाँधी ने जिस अर्थ में किया है वह नेहरू को भी मान्य है क्योंकि की गाँधी की धर्म की व्याख्या मूल रूप से नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ही है । परन्तु जहाँ नेहरू धर्म के साथ ईश्वर में आस्था होना आवश्यक नहीं मानते और न ही सत्य और अहिंसा के पालन के लिए धर्म में विश्वास होना आवश्यक मानते है वही धर्म गाँधी को पूर्णत: ईश्वर में विश्वास होने के साथ जोडते है और सत्य और अहिंसा के पालन के लिए ऐसी आस्था का होना आवश्यक मानते हैं । उनके शब्दों में सत्य और अहिंसा के प्रति व्यक्ति का मात्र यांत्रिक लगाव किन्हीं संकटपूर्ण क्षणों में उसे उसके पथ से अलग करता है..... ईश्वर एक जीवित या अवचेतन सत्ता हैं । हमारा जीवन उसी शक्ति का प्रतीक है । वह शक्ति हमारे अन्दर है..... जो उस महानशक्ति के अस्तित्व को अस्वीकार करता है..... वह उस पतवार विहीन जहाज के समान हो जाता है जो कि इधर उधर भटकता रहा है और अपने गंतव्य पर पहुँचे बिना नष्ट हो जाता है ।

इस समन्वय की सबसे बडी विशेषता यह है कि अपने सम्पूर्ण राजनैतिक चिन्तन में मानवीय मूल्यों के प्रति नेहरू का अगाध आग्रह रहा है । वे सत्य, अहिंसा, आत्मानुशासन, सहिष्णुता आदि मूल्यों को प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का अभिन्न अंग बनाना चाहते थे । उनका उदारवाद केवल व्यक्ति स्वातन्त्रय तक सीमित नहीं था । बल्कि उन्होंने उदारवाद के साथ सामाजिक आर्थिक शक्तियों के महत्व को समझने का प्रयत्न किया था । उन्होंने व्यवहारवादियों की तरह राजनीति को केवल तथ्यों के अध्ययन तक सीमित नहीं किया वरन् हैना अरेन्ट, लियो स्ट्रास मैकफर्सन की तरह राजनीति को सामाजिक आदर्शो के साथ जोडा । इस प्रकार गाँधी व नेहरू दोनों के चिन्तन में मूल्यों के अर्थ, उपादेयता और प्रांसगिकता अलग अलग बिन्दुओं पर टिकी है ।

8.6 सारांश

सारांश में कहा जा सकता है कि नेहरू ने गाँधी को अपना गुरू तो माना था किन्तु दोनों के विचारों में अन्तर भी है । गाँधी के चिन्तन में भौतिकता को न्यूनतम महत्व प्रदान करने की दृष्टि तथा भारतीय सामाजिक जीवन की ज्वलंत समस्याओं से निपटने की

आवश्यकता ने उन्हें वैकल्पिक मार्ग के बारे में सोचने और चलने के लिए प्रेरित किया । वे मानते थे कि गाँधी व्यक्ति की आत्मिक शुद्धता, जीवन में संयम तथा अपरिग्रह की धारणा से मानव जीवन को परिष्कृत एवं परिवर्तित करने को दृढसंकल्प थे, किन्तु यथार्थ जीवन में गाँधी की वे धारणाएँ सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं के समक्ष तत्काल और कारगर समाधान प्रदान करने हेतु मान्य नहीं हो सकता । वे व्यक्ति के आध्यात्मीकरण के स्थान पर प्रत्यक्ष एवं स्थूल जगत में आत्मीय अनुभूति को महत्व देते थे । गाँधी और नेहरू के मध्य वैचारिक और व्यक्तिगत संबंधों का निष्पक्ष आकलन यह स्पष्ट करता है कि नेहरू को गाँधी का अनुयायी तो माना जा सकता है, किन्तु उनकी यह अनुयायित्व अंधभक्ति नहीं है । नेहरू के विचारों पर गाँधी के व्यक्तित्व एवं चिन्तन का स्पष्ट प्रभाव अंकित रहा । लेकिन उनके प्रति अनुयायित्व में नेहरू ने अपने विवेक को नहीं छोडा । कठिनाई यह थी कि मूल समस्याओं से सामाजिक पुननिर्माण के सन्दर्भ में किसी प्रकार निबटा जाये । उनके समाजवाद का लक्ष्य निर्धनता को समूल रूप से नष्ट करना था । वे व्यक्ति या समूह द्वारा शोषण के प्रबल विरोधी थे । सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में पूर्ण सामंजस्य, व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य जीवन में सन्तुलन, समूह एवं व्यक्ति के मध्य सन्तुलन, उन्नति एवं बेहतरी के लिए प्रयत्न समाजवाद के माध्यम से प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य था । यदि संक्षेप में गाँधी और नेहरू के राजनैतिक मूल्यों को रेखांकित किया जाए तो वे मूल्य है - वैयक्तिक स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय, शोषण रहित समाज की स्थापना, शान्ति एवं सद्भावना । परन्तु इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए उनके रास्तें भिन्न हैं । इन दोनों के बीच अन्तर का कारण उनके दार्शनिक दृष्टिकोणों में अन्तर है । परन्तु समाज, व्यक्ति और राष्ट्र की उन्नति के लक्ष्य के प्रति दीनों समान रूप सं प्रतिबद्ध

8.7 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी एवं नेहरू के राजनीतिक चिन्तन में समानतायें और अन्तर स्पष्ट " ।
2. आर्थिक चिन्तन के संबंध में गाँधी एवं नेहरू का तुलनात्मक) अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
3. सामाजिक व्यवस्था और परिवर्तन के संबंध मे गाँधी एवं नेहरू का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए ।

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4. गोपीनाथ धवन : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
5. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू"ऐ., दिल्ली, 1973
6. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
7. शंकधीर, एम.एम., अण्डरस्टेंडिन्ग गाँधी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1996
8. नन्दा, बी. आर., द नेहरूस: मोतीलाल एण्ड जवाहरलाल, जे. डेय कं., न्यूयार्क 1963

9. जकारिया, बेन्जामिन, नेहरू, राऊट्लेज, न्यूयार्क, 2004
10. रेंज, विल्लार्ड, जवाहरलाल नेहरू 'स वर्ल्ड व्यू यूनिवर्सिटी ऑफ जोर्जिया प्रेस, ऐथेन्स 1961

इकाई - 9

गाँधी और भीमराव अम्बेडकर

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 अम्बेडकर का जीवन परिचय
9.3 अम्बेडकर का सामाजिक विचार
9.4 अम्बेडकर का धार्मिक विचार
9.5 अम्बेडकर का राजनीतिक विचार
9.6 अम्बेडकर का आर्थिक विचार
9.7 अम्बेडकर और गाँधी
9.8 सारांश
9.9 अभ्यास प्रश्न
9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे -

- अम्बेडकर का जीवन तथा कृतित्व ।
- अम्बेडकर के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक विचार ।
- जाति प्रथा तथा अस्पृश्यता उन्मूलन के प्रति लिये अम्बेडकर का योगदान ।
- गाँधी तथा अम्बेडकर के विचारों में समानता और अंतर ।

9.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज में प्राचीन काल रवे ही समय-समय पर अनेक प्रकार के सुधार आन्दोलन होते रहे है । प्राचीन भारत में ऐसे सुधार आन्दोलनों का नेतृत्व बुद्ध और महावीर जैसे नवीन धर्म के प्रवर्तकों ने किया, मध्यकालीन भारत में अनेक संत जैसे कबीर, नानक, तुकाराम इत्यादि ने किया । भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के परिणामस्वरूप एक बार फिर धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलनों का दौर शुरू हुआ । ब्रिटिश काल में हुये सुधारकों में राजाराम मोहन रॉय, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी, भीमराव अम्बेडकर ऐसे महापुरूष थे जिन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त अनेक धार्मिक और सामाजिक बुराइयों को दूर कर भारत का पुनर्निर्माण कर अधिक तर्क संगत समता युक्त, उदार और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करने का प्रयास किया । इनमे भी महात्मा गाँधी, भीमराव अम्बेडकर ऐसे चिन्तक थे जिन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था की समस्याओं, विशेष रूप से दलित समस्या, को दूर करने के अथक प्रयास सैद्धान्तिक और व्यवहारिक स्तर पर किये।

गाँधी और अम्बेडकर ने राजनैतिक आजादी के समानान्तर सामाजिक समानता तथा न्याय के प्रश्न को प्रासंगिक और ज्वलन्त बनाया । गाँधी का आध्यात्मिक दृष्टिकोण और सर्वोदय दर्शन अन्तिम व्यक्ति जो असहाय पीड़ित और उपेक्षित है, उसका भी अधिकतम कल्याण की कामना करता है । इस डॉ से कमजोर समझे जाने वाले नारी, दलित, किसान, श्रमिक, ग्रामीण आदि सभी के उत्थान की बात गाँधी करते हैं । कालान्तर में जाति व्यवस्था में आयी हुई विक्रितियो को दूर कर जाति व्यवस्था के सकारात्मक पक्ष का लाभ भारतीय समाज को गाँधी पहुँचाना चाहते थे । अम्बेडकर ने समकालीन समाज एवं हिन्दू धर्म में व्याप्त विषमताओं को न केवल स्वयं भोगा था अपितु इसका गंभीर, तार्किक एवं विवेकपूर्ण अध्ययन कर इसके उद्भव एवं कारणों को खोजकर, निदान प्रस्तुत किया था । जाति व्यवस्था में सुधार ही नहीं इसकी समाप्ति को ही वे प्रजातांत्रिक समाज की आधारशिला मानते थे ।

गाँधी और अम्बेडकर अस्पृश्यता को समाप्त कर समरसतापूर्ण और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में विश्वास करते थे, किन्तु दोनों चिन्तकों में गहरे मतभेद थे । दोनों के विचारों के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में हम समानता तथा प्रजातंत्र पर आधारित समाज की स्थापना के प्रयासों के बारे में दानों महापुरूषों के योगदान को महत्वपूर्ण मान सकते हैं ।

9.2 अम्बेडकर का जीवन परिचय

बीसवीं सदी के प्रमुख समाज सुधारक, राजनेता तथा दलितमुक्ति के दार्शनिक भीमराव अम्बेडकर का जन्म 1891 मे महाराष्ट्र की अस्पृश्य महार जाति में हुआ था । उन्होंने नि:षक्तजनके सामाजिक तथा धार्मिक अधिकारों के लिए संघर्ष के साथ सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया । 1927 में पानी के सार्वजनिक उपयोग के लिए उन्होंने महाड सत्याग्रह किया और 1928 में भारत आये, साइमन कमीशन से दलितों के लिए शैक्षणिक सुविधाओं की मांग की । 1930 में अम्बेडकर ने दलित नेता के रूप में प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया और 1932 में दलितों के लिए पृथक निर्वाचक मण्डल की मांग पर महात्मा गाँधी के साथ पूना समझौता किया । समानता पर आधारित समाज की स्थापना के लिए संघर्षरत अम्बेडकर ने 1938 में मुम्बई विधान सभा में खेती (जमींदारी प्रथा) की समाप्ति के लिए विधेयक पेश किया । वे स्त्री तथा श्रमिकों के अधिकारों के लिए भी प्रयत्नशील रहे ।

संविधान प्रारूप लेखन समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री के रूप में आपने "हिन्दू कोड बिल" प्रस्तुत किया, लेकिन कट्टवादियों के विरोध के कारण असफलता मिली जिसके परिणामस्वरूप मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया । दलितों के प्रति सवर्णो के दृष्टिकोण में अपेक्षित बदलाव न पाकर 1956 में हिन्दू धर्म छोडकर अम्बेडकर ने अपनी मृत्यु से पूर्व बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया ।

9.3 अम्बेडकर का सामाजिक विचार

19 वीं सदी से ही भारतीय समाज सुधार के लिये प्रयास किये जा रहे थे, लेकिन अम्बेडकर के प्रयास इन सबसे भिन्न थे । अम्बेडकर ने सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल

परिवर्तन का विकल्प दिया । समाज सुधार को वे दो अर्थो में देखते थे । पहला - पारिवारिक सुधार तथा दूसरा समाज का पुनर्गठन । विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा आदि पारिवारिक सुधार की श्रेणी में आते हैं तो ऊंच-नीच छूआछूत वर्णभेद एवं जातिभेद मिटाना समाज सुधार की श्रेणी में । उनका मानना था कि समाज सुधार के बिना सच्ची राष्ट्रीयता का उदय सम्भव नहीं है । वे सामाजिक अत्याचार की तुलना में राजनीतिक अत्याचार को नगण्य मानते थे और समाज का विरोध करने वाले समाज सुधारक को सरकार का विरोध करने वाले राजनीतिज्ञ को ज्यादा साहसी। इसीलिए उन्होंने समाज सुधार बनाम राजनैतिक चेतना के पुराने सवाल को उठाया जिसको लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में दो धड़े रहे थे और कांग्रेस में समाज सुधार वाले पक्ष की पराजय को वे दुर्भाग्यपूर्ण मानते थे ।

अम्बेडकर ने भारतीय समाज में व्याप्त - जातिवाद, ब्राह्मणवाद. छूआछूत आदि पर तीखे प्रहार किये और कहा कि समाज व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन करने के लिए सामाजिक सुधार मात्र नहीं, समाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है । जातिप्रथा उन्मूलन, दलितोत्थान तथा अस्पृश्यता निवारण अम्बेडकर के सामाजिक विचार के केन्द्र में है

जीवन के कटु अनुभवों से अम्बेडकर ने सीखा था कि भारत में सामाजिक असमानता की जड़ जाति व्यवस्था है । जाति व्यवस्था से स्वयं पीडित अम्बेडकर ने उसके उद्‌गम स्वरूप तथा नष्ट करने के उपायों पर शोधपूर्ण आकलन प्रस्तुत किया । अम्बेडकर का मानना था कि समाज व्यक्तियों से नहीं वर्गो के मिलने से बनता है और जब समूह के बाहर विवाहों के स्थान के अन्दर असगोत्र विवाह की प्रणाली चलने लगती है तो वर्ग जाति में बदल जाते है । भारत में भी इतिहास के किसी युग में पुरोहित वर्गो ने अपने को समाज से अलग एक जाति में बन्द कर लिया जिसका अन्य वर्गो ने भी अनुसरण किया और परिणामस्वरूप कई जातियों का जन्म हुआ । वे इस धारणा में विश्वास नहीं करते थे कि जाति प्रथा के उद्‌गम का उद्देश्य प्रजाति तथा रक्त की शुद्धता की रक्षा करना था, क्योंकि उनके अनुसार भारत की विभिन्न प्रजातियों के रक्त और संतति के आपस में मिलने के बहुत बाद में जाति प्रथा का जन्म हुआ । अम्बेडकर इस बात को नहीं मानते थे कि विधि व्यवस्था के प्रणेता मनु ने जाति व्यवस्था का निर्माण किया । उनका कहना था कि कोई व्यक्ति चाहे कितना ही शक्तिशाली हो, जाति व्यवस्था का निर्माण नहीं कर सकता था । हाँ मनु ने जाति के विद्‌यमान नियमों को संहिताबद्ध करके उन्हें धार्मिक तथा दार्शनिक आधार अवश्य प्रदान किया ।

अम्बेडकर का मानना था कि वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित हिन्दू समाज रचना हिन्दू धर्म द्‌वारा स्वीकृत है क्योंकि यह व्यवस्था इस सिद्धान्त पर आधारित है कि ईश्वर ने मानव को अपने भिन्न-भिन्न अंगों से पैदा किया है । ब्राह्मण ईश्वर के मुख से, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य जंघा से तथानिशक्तजनपैरो से पैदा हुआ है । ईश्वरीय शरीर के अंगों की प्रतिष्ठा के अनुसार ही वर्ण एवं जाति की सामाजिक प्रतिष्ठा होती है । उनका कहना था कि हिन्दू समाज इसी आधार पर जाति व्यवस्था की इस्पाती चौखट में बंधा हुआ है जिसमें एक जाति सामाजिक प्रतिष्ठा में दूसरी से नीचे है और अपने स्थान के अनुपात में प्रत्येक जाति के विशेषाधिकारी निषेध और असमर्थतायें है । अम्बेडकर के अनुसार जाति का आधार जन्म होने के कारण व्यक्ति के कार्य

एवं योग्यता का कोई स्थान नहीं है अत: ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति समानता तथा न्याय की उम्मीद नहीं कर सकता ।

अम्बेडकर के अनुसार जाति का आधार जन्म होने के कारण व्यक्ति के कार्य एवं योग्यता का कोई स्थान नहीं है अत: ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति समानता तथा न्याय की उम्मीद नहीं कर सकता । समुदाय विशेष के व्यक्ति को छूने मात्र को पाप समझने वाले हिन्दू धर्म पर कटाक्ष करते हुये उन्होंने कहा था कि हिन्दू अपनी मानवतावादी भावनाओं के लिए प्रसिद्ध है और प्राणी मात्र के प्रति उनकी आस्था अद्भुत है । कुछ लोग तो विषैले सांपों को भी नहीं मारते । लेकिन प्रश्न यह उठता है कि जो हिन्दू पशु पक्षियों सहित प्राणिमात्र के प्रति उदार है, वे मनुष्यों (दलितों) के प्रति इतना अनुचित तथा निर्दयता पूर्ण व्यवहार क्यों करते हैं?

नि:षक्तजन के साथ पूरे देश में सवर्णो द्वारा किये गये अमानवीय व्यवहार के कई शब्दचित्र अम्बेडकर ने उकेरे । जैसे पेशवा के शासन काल में नि:षक्तजन को उस सड़क पर नहीं चलने दिया जाता था जिस पर सवर्ण आते जाते थे ताकि उनका साये से सवर्ण का धर्म भ्रष्ट न हो जाय । पेशवाओं की राजधानी पूना में नि:षक्तजन को अपनी कमर में झाड़ू बांध कर चलना पड़ता था ताकि जिस जमीन पर वे चलें, वह झाड़ू से साफ होती रहे और सवर्ण हिन्दू उस पर चल कर भ्रष्ट न हो । इसी प्रकार इन्दौर राज्य में बलाई जाति की स्त्रियों को सोने के आभूषण, रंगीन या फैंसी बोर्डर वाली धोती पहनने की मनाही थी क्योकि इससे सवर्ण जातियों का अपमान होता था ।

नि:षक्तजन की उपरोक्त दशा के लिये अम्बेडकर की निगाह में ब्राह्मणवाद भी उतना ही जिम्मेदार था जिसने कि हिन्दू धर्मशास्त्र । उनका मत था कि समाज की सारी गतिविधियों के संचालन का सर्वाधिकार अपने पास सुरक्षित रखकर बाह्मणों ने सारे विशेषाधिकारों को अपने लिये सुरक्षित रख लिया और समाज के अन्य वर्गो का क्षैतिजी आधार पर वर्गीकरण करके शूद्रों को सारे अधिकारों से वंचित कर दिया । निशक्तजनको सम्पति अर्जित करने की अनुमति नहीं दी गई क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि वे सवर्णो पर निर्भर न रहे, उन्हें विद्या प्राप्त करने से रोका गया कि कहीं ऐसा ना हो कि अपने हितों के प्रति सजग हो जाय । उसके लिए शस्त्र धारण करना निषिद्ध था कि कहीं ऐसा न हो कि वह उनकी सता के विरूद्ध विद्रोह करने में समर्थ हो जाय । उनके मानस में कूट-कूट कर यह भरा गया था कि निशक्तजन के रूप में जन्म लेना ही उनके भाग्य में लिखा था ।

ब्राह्मणों द्वारा संचालित एवं नियंत्रित जाति व्यवस्था में निषक्तजन के लिये किये गये विधान तथा उसके परिणामस्वरूप उनकी जो उपरोक्त दयनीय स्थिति हुई, उसकी के कारण अम्बेडकर ने ब्राह्मणवाद को मानवता के दमन की तकनीक तथा षड्यंत्र कहा था ।

अम्बेडकर ने तर्कपूर्ण ढंग से स्पष्ट कर किया कि जाति प्रथा ने भारत की बहुत बडी संख्या को स्थायी रूप से अपाहित बना दिया था । दलित समस्या से व्यथित और आन्दोलित उनके ममनशील मन को एक सवाल हमेशा मथना रहता था कि दुनिया के दूसरे देशों में दमन तथा शोषण के विरूद्ध क्रान्तियाँ हुयी लेकिन भारत में क्यों नहीं हुयी? अपने इस सवाल का उसके पास जवाब भी था, और वह यह कि चतुर्वर्ण व्यवस्था के कारण निम्न जातियां शक्तिहीन

हो गयी थी । शिक्षा शास्त्र, शस्त्र, संस्कृति एवं सम्पति से वांछित यह वर्ग विद्रोह नहीं कर सकता था ।

प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित नवीन भारतीय समाज के निर्माण के लिए वे जाति एवं छुआछूत प्रथा को समूल नष्ट करने का आहवान करते थे । इसके लिए उन्होंने बहुआयामी प्रयास किये । सर्वप्रथम वे चाहते थे कि दलित समुदाय स्वयं अपने उत्थान के लिए सुधार, प्रयास, संघर्ष और संगठन का परिचय दे ।

उन्होंने नि:षक्तजनको वे सब काम करने की मनाही की जो वे हजारों सालों से करते आ रहे थे लेकिन जिन्हें अपवित्र माना जाता था जैसे मरे हुये पशुओं को फेंकना, उनकी खाल निकालना, उनका मांस खाना, सवर्ण स्त्रियों की प्रसूति करना तथा गंदे कपड़े धोना, मलमूत्र साफ करना आदि । उन्होंने दलितों को धार्मिक कर्मकाण्ड, पाखण्ड तथा भाग्यवादी सोच त्याग कर कर्मठ एवं संघर्षशील बनने की प्रेरणा दी ।

उनका मत था कि नि:षक्तजनको हिन्दूओं को किसी प्रकार का कोई डर नहीं है और न ही अस्पृश्यता को समाप्त करने से उन्हें कोई लाभ हो सकता है अत: शूद्रों के उत्थान के लिए बाहर से किये गये प्रयासों का उन्होंने सदैव शंका की दृष्टि से देखा । उनका कहना था कि स्वयं के विरूद्ध होने वाले अन्यायों की समाप्ति तथा अधिकारों की प्राप्ति के लिए दलितों को स्वयं के विरूद्ध होने वाले अन्यायों की समाप्ति तथा अधिकारों- की प्राप्ति के लिए दलितों को स्वयं भय रहित तथा एकजुट होकर संघर्ष करना होगा ।

बहिकृत हितकारिणी सभा नामक संस्था की शुरूआत अम्बेडकर ने रचनात्मक कार्यो से की लेकिन आगे चलकर उन्होंने इसे दलितोत्थान के लिए विरोध, आन्दोलन तथा सीधी कार्यवाही का मंच बना दिया । दलितों को सार्वजनिक सुविधाओं (तालाब, कुँआ आदि) के उपयोग तथा मंदिर प्रवेश का अधिकार दिलाने के लिए महाड़ सत्याग्रह एवं अम्बादेवी मंदिर (अमरावती) कालामंदिर (नासिक) प्रवेश हेतु आन्दोलन किये ।

वे जानते थे कि सदियों से विशेषाधिकारों का उपयोग करने वाले सवर्ण हिन्दू स्वेच्छा से दलितों को समानता का अधिकार नहीं देगें अत: वे स्वतंत्र भारत के संविधान में ऐसे प्रावधान चाहते थे जिनसे जातिगत विभेद एवं अस्पृश्यता पर आधारित दमन एवं शोषण पर रोक लगायी जा सके तथा पीडित वर्ग अत्याचारों से अपनी रक्षा कर सके । उल्लेखनीय है कि अम्बेडकर को अपने इन प्रयासों में महत्वपूर्ण सफलता मिली ।

दलितों के समान ही भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति भी दासों जैसी थी । उनका कहना था कि स्त्रियों के पतन के लिए सतीप्रथा, बालविवाह कन्या वध, विधवा विवाह, निषेध जैसी कुप्रथाओं को जिम्मेदार मानना समस्या को सतही तौर पर देखना है । वे इन सारी समस्याओं की जड़ जाति प्रथा एवं ब्राह्मणवाद को मानते थे । उनका मत था कि जिस जाति में बाल विवाह, कठोर वैधव्य और सती प्रथा का जितना अधिक प्रचलन होगा, उनका स्तर उतना ही ऊँचा माना जायेगा । इसी दृष्टि से पेशवा के शासन काल में महाराष्ट्र में पठारे, प्रभु समुदाय ने विधवा विवाह पर पाबन्दी लगाकर अपनी जाति का स्तर ऊँचा उठाने का प्रयास किया तो पेशवाओं ने ऐसा न करने के लिए हस्तक्षेप किया था ।

वे स्त्री तथा दलित दोनों को ब्राह्मणवादी दमन चक्र का शिकार मानते थे जिसे आगे चलकर मनु ने राज्य कानून के रूप में बदल दिया । जो लोग चातुर्वण्य के आधार पर भारतीय समाज का पुनर्गठन करना चाहते थे उनसे अम्बेडकर का यही सवाल था कि क्या वर्ण विभाजन स्त्रियों पर भी लागु होगा? वे ऐसे प्रजातांत्रिक समाज की स्थापना चाहते थे जिसमें मानव मात्र को गरिमा, सम्मान और समानता के आधार पर जीवन यापन का हक हो । यही कारण है कि उन्होंने दमित मानवता के उत्थान का बीड़ा उठाया, फिर वह निशक्तजन हो या स्त्री । वे दलित महिला की इस पीड़ा के कर्म को भी समझते थे कि वह दोहरे शोषण का शिकार है -एक स्त्री होने के कारण और दूसरा-दलित होने के कारण ।

अम्बेडकर जानते थे कि पुरातनपंथी समाज स्वेच्छा से स्त्रियों को समानता का दर्जा नहीं देगा अत: दलितों के समान ही वे कानून द्वारा स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करना चाहते थे । आजाद भारत में इसी उद्धेश्य से उन्होंने कानून मंत्री की हैसियत से "हिन्दू कोड बिल" प्रस्तुत किया । इस विधेयक में विवाह की आयु सीमा बढ़ाने, स्त्रियों को तलाक का अधिकार देने, मुआवजा तथा विरासत के अधिकार के साथ-साथ दहेज को स्त्रीधन मानने को सुझाव दिये गये थे किन्तु राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में कट्टरवादियों के विरोध के कारण यह विधेयक पारित नहीं हो सका और अम्बेडकर ने विधि मंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया ।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए मनुवादी व्यवस्था में बदलाव न कर पाने के बावजूद न्याय पर आधारित समाज की रचना के लिए अम्बेडकर का नारा था - एकता, शिक्षा और आन्दोलन । साथ ही उनकी मान्यता थी कि स्त्रियों के सहयोग के बिना एकता अर्थहीन है, स्त्रियों की शिक्षा के बिना शिक्षा फलहीन है और स्त्रियों की शक्ति के बिना आन्दोलन अधूरा है।

अम्बेडकर इस बात को जानते थे कि राज्य द्वारा समानता का अधिकार प्रदान कर देने के बावजूद यदि दलित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति उदासीन बना रहा तो सामाजिक न्याय का सपना तथा कानूनों में ही बना रहेगा, यथार्थ नहीं बन पायेगा । वे औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा द्वारा वर्ग में जागृति तथा आत्मबल पैदा करना चाहते थे, ताकि दलित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति व्यग्र हो ।

उनके लिए शिक्षा केवल साक्षरता का नाम अपितु सामाजिक परिवर्तन का थी । वे जन्माधारित वर्णजाति सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों, गरीबी की भाग्यवादी अवधारणा।, आदि को समाप्त करने के लिए ऐसे व्यक्तियों के समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते थे जो प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण तो करे लेकिन तर्क की कसौटी पर कसने के बाद।

उनका मत था कि अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना राज्य का दायित्व है । अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था होने पर ही साधन-सुविधा तथा सम्पत्तिहीन दलित को प्राप्त करने का अवसर मिल सकता है । वे शिक्षा को ऐसा औजार मानते थे जिसकी मदद से दासता की जड़ों को काटकर सामाजिक समानता, आर्थिक उन्नति एवं राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल की जा सकती है । दलितों को शिक्षा प्रदान करने के लिए उन्होंने 'पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी' नामक संस्था की स्थापना की थी । उनका कहना था कि शिक्षा ही नि:षक्तजनमें सवर्णो के समकक्ष खडा होने का साहस पैदा कर सकती है ।

9.4 अम्बेडकर का धार्मिक विचार

अम्बेडकर मानव जीवन में धर्म तथा नैतिकता के महत्व को स्वीकार करते थे । लेकिन भारतीय सामाजिक संरचना जिसे धर्मशास्त्रों द्वारा मान्यता प्रदान की गयी थी उस भारतीय समाज में धर्म के नाम पर समाज में व्याप्त असमानता, अत्याचार, छूआछूत तथा पाखण्डों के वे विरोधी थे । इसी संदर्भ में उन्होंने एक सामाजिक क्रान्तिकारी के रूप में प्रजातांत्रिक समाज की स्थापना के लिए हिन्दू धर्म को समता, स्वतंत्रता तथा, बन्धुता के अनुरूप बदलने की अपील की ।

धर्म के सम्बन्ध में अम्बेडकर की अपनी कुछ मान्यतायें थी । उनके अनुसार एक नैतिक बोध होने के कारण धर्म प्रत्येक समाज की नियामक सिद्धान्त होना चाहिये अर्थात् धर्म एवं नैतिकता पर आधारित होना चाहिए और विवेक विज्ञान का ही दूसरा नाम है । उनका आग्रह था कि धर्म के नाम पर प्रचलित अंध विश्वासों तथा परम्पराओं को तर्क की कसौटी पर खरा उतरने के बाद ही स्वीकार किया जाना चाहिए ।

उनका तर्क था कि धर्म के मूल्य तथा सिद्धान्त सार्वभौमिक होते हैं, वे अपने अनुयायियों में भेद नहीं करते । लेकिन हिन्दू धर्म शास्त्रों द्वारा मान्यता प्राप्त अस्पृश्यता का प्रतिकार करते हुये उन्होंने कहा कि धर्म नैतिक संहिता में स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के मूल सिद्धान्तों को शामिल किया जाय अन्यथा धर्म दण्ड का प्रतिरूप बन जायेगा । वे धर्म को ऐसे जीवन मूल्य के रूप में स्थापित करना चाहते थे जो व्यक्ति था व्यक्ति के बीच सम्मान तथा गरिमामय सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हो और वह सिद्धान्तों पर आधारित हो सके तथा नियमों पर नहीं, क्योंकि उनके अनुसार, सिद्धान्त निरपेक्ष, दायित्व बोध से युक्त एवं विवेक सम्मत होते हैं जबकि नियम सापेक्ष, व्यावहारिक एवं परम्परा पर आधारित होते हैं ।

अम्बेडकर का मत था कि आध्यात्मिक सिद्धान्त के रूप में धर्म शास्त्रों ने एक ओर जाति भेद तथा अस्पृश्यता के नाम पर बड़ी संख्या में मनुष्यों को वंचित, अपेक्षित और दास बना है वहीं दूसरी ओर, एक अन्य वर्ग, ब्राह्मण को सर्वाधिकार सम्पन्न बना दिया है । इसी आधार पर उनका मानना था कि हिन्दु धर्म स्वयं समाज में एकता के स्थान पर अलगाव को प्रोत्साहन देता है । जो धर्म मानव के बीच भेद करता है, अपने ही अनुयायियों के एक वर्ग को दूसरे वर्ग के अधीन रहने के लिए बाध्य करता है, वह धर्म नहीं अपितु मानवता का अपमान है।

हिन्दू धर्म मे व्याप्त कमजोरियों तथा बुराईयों को दूर कर अम्बेडकर एक जीवन्त तथा समता मूलक धर्म के रूप में संगठित करना चाहते थे । वे बर्फ के इस कथन से सहमत थे कि सच्चा धर्म समाज की बुनियाद होता है जिसके आधार पर सच्ची हूकूमत बनती है तथा जनता एवं सरकार दोनों फूलती-फलती हैं । इसके लिए उन्होंने हिन्दू धर्म के विद्यमान स्वरूप पर पुनर्विचार कर उसके विवेक सम्मत पुनर्गठन का प्रस्ताव किया । उनके द्वारा सुधार के लिए निम्न सुझाव दिये गये:

1. हिन्दू धर्म का युगानुरूप कोई सैद्धान्तिक आधार हो जो समता, स्वतंत्रता तथा बन्धुता के अनुरूप हो । इसके लिए उपनिषदों के चिन्तन को आधार बनाया जा सकता है ।

2. हिन्दू यह पता लगाने का प्रयास करें कि संसार में किस प्रकार की नैतिकता, आस्था तथा दृष्टिकोण वाले लोगों ने उन्नति और दृढ़ता हासिल की है ।
3. यह विचार किया जाय कि हमें अपनी सम्पूर्ण सामाजिक धरोहर सुरक्षित रखनी है या उसमें जो उपयोगी हो उसे चुनकर भावी पीढ़ियों को सौंपा जाये ।
4. अतीत के समस्त आदर्शो की आख मूंद कर पूजा करने के बजाय वर्तमान युग में उत्तम उपयोगी एवं उन्नति के शिखर पर ले जाने वाले आदर्शो का पूजा जाये ।
5. हिन्दुओं को मान लेना चाहिए कि संसार में कुछ भी स्थिर, शाश्वत अथवा सनातन नहीं है । व्यक्ति तथा समाज के लिए परिवर्तन जीवन का नियम है अत: बदलते हुये समय में पुराने मूल्यों में सतत तथा क्रान्तिकारी बदलाव आना चाहिए ।

उनका मानना है कि हिन्दू धर्म को सर्वाधिक नुकसान ब्राह्मणवाद ने पहुंचाया है जो जन्म तथा जाति भेद पर आधारित है अत: हिन्दू धर्म में वांछित बदलाव तथा सुधार के लिए वे पुरोहितशाही पर नियंत्रण चाहते थे । उनके अनुसार पुरोहित एक व्यवसाय मात्र है और किसी व्यवसाय का नियंत्रण होना उसकी उन्नति का द्योतक है । हिन्दू पुरोहित परम स्वतंत्र है, उस पर कोई पाबंधी नहीं है । मूर्ख, कदाचारी नशेबाज और जुआरी होने पर भी वह पवित्र संस्कार कराने तथा देव पूजा के योग्य समझा जाता है । उनकी एक मात्र योग्यता है ब्राह्मण के घर जन्म लेना । वह राज अथवा समाज नियम के अधीन नहीं होता अम्बेडकर ऐसी पुरोहित शाही को समाज एवं धर्म के लिए हानिकारक मानते थे । इसलिए उनका विचार था कि न केवल कानून द्वारा पुरोहिती के व्यवसाय पर नियंत्रण स्थापित किया जाय बल्कि इस पर ब्राह्मणों के एकाधिकार को समाप्त कर निश्चित योग्यता के आधार पर इसके द्वारा सब लोगों के लिये खुले जाये । ऐसा होने पर ही हिन्दू धर्म जाति एवं ब्राह्मणवाद से मुक्त प्रजातांत्रिक धर्म बन सकता है ।

अम्बेडकर का दृढ़ विश्वास था हिन्दू समाज में विद्यमान असमानता, शोषण दमन तथा जातिभेदकारी व्यवस्था की जड़ में धार्मिक मान्यताएं है अत: उन्होंने जीवन के लम्बे दौर में इन बुराईयों से संघर्ष किया । उन्होंने विवेक, तर्क तथा मानवता के आधार पर हिन्दू धर्म एवं समाज का पुनर्गठन करने के लिए अथक प्रयास किये किन्तु सवर्णो के दृष्टिकोण में उन्हें कोई प्रभावकारी असर दिखाई नहीं दिया । अब उन्हें हिन्दू समाज में प्रजातांत्रिक आधार पर बदलाव की कोई उम्मीद नहीं दिखाई दे रही थी । इसीलिये उन्होंने धर्म परिवर्तन के निश्चित की घोषणा कर दी ।

उनका बौद्ध धर्म के इन तीन सिद्धान्तों में विश्वास था - प्रज्ञा (विवेक), समता तन करूणा या प्रेम । उनका मानना था कि भारतीय हिन्दू धर्म में ये तीनों सिद्धान्त दृष्टिगत नहीं होते, जो समानता पर आधारित हैं अत बौद्ध धर्म में ही दलितों को सम्मान तथा समानता का दर्जा मिल सकता है । लम्बे विचार के बाद अक्टूबर 1956 में बौद्ध धर्म अंगीकृत करने की घोषणा करते हुये अम्बेडकर ने कहा था कि असमानता तथा दमन पर आधारित अपने पुराने धर्म को त्याग कर वे दुबारा जन्मे हैं ।

9.5 अम्बेडकर का राजनीतिक विचार

मूलत: अम्बेडकर सामाजिक न्याय के पुरोधा थे । उन्होंने राज्य सम्बन्धी पक्षों पर विस्तृत और व्यवस्थित विचार नहीं रखें, तथापि वे एक उदारवादी नेता थे । उन्होंने राज्य, शासन, व्यक्ति एवं अधिकार आदि के विषय में जो विचार दिये वे उनके स्पष्ट तथा सटीक दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं ।

अम्बेडकर ने राज्य के अस्तित्व के प्रयोजन पर उदारवादी दृष्टि से विचार किया। वे यह तो मानते थे कि राज्य एक अनिवार्य एवं उपयोगी संस्था है लेकिन वे उसकी शक्तियों को सीमित तथा मर्यादित रखना चाहते थे । वे चाहते थे कि राज्य एवं सरकार दलित, शोषित तथा असहाय लोगों के उत्थान के कदम उठाकर, समानता एवं न्याय पर आधारित समाज की स्थापना में योगदान दे ।

शासन प्रणाली रूप में उन्होंने संसदीय प्रणाली का समर्थन किया । वस्तुत: वे शासन प्रणाली के पक्ष में थे जिसमें कार्यपालिका समक्ष होने के साथ ही संवेदनशील हो, जो व्यवस्थापिका के नियंत्रण एवं निर्देशन में काम करें तथा जिसमें बहुमत अल्पमत के हितों की उपेक्षा न करें । उन्होंने अपने ग्रंथ स्टेट्स एण्ड माइनोरिटीज में निम्न संस्थागत एवं प्रक्रिया सम्बन्धी शासन व्यवस्था का उल्लेख किया है :

1. बहुमत को अल्पमत पर अपनी इच्छा थोपने का अधिकार नहीं हो ।
2. बहुमत की कार्यपालिका में अल्पसंख्यकों का भी प्रतिनिधित्व हो ।
3. कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का नियंत्रण सैद्धान्तिक एवं वास्तविक दोनों का हो ताकि वह उसके निर्देशों व निर्णयों की अवहेलना नहीं कर सकें ।
4. अवरोध तथा संतुलन के सिद्धान्त की व्यवस्था हो ताकि शासन के विभिन्न अंग स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे पर नियंत्रण व संतुलन बनाये रख सकें ।
5. कार्यपालिका की स्थिरता को सुनिश्चित किया जाय ताकि दक्षतापूर्ण संचालन किया जा सके ।

अम्बेडकर प्रजातंत्र के प्रबल समर्थक थे लेकिन पश्चिमी विद्वानों के समान वे इसे शासन की केवल एक पद्धति मात्र नहीं मानते थे अपितु वे इसे एक जीवन पद्धति के रूप में देखते थे । उनके अनुसार प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली ही ऐसी प्रणाली है जिसमें समाज की आर्थिक-सामाजिक संरचना में जाति रंग, लिंग, सम्पति तथा धर्म के भेदभाव के बिना शान्तिपूर्ण ढंग से क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जा सकते है । लोकतांत्रिक पद्धति में वे दो तथ्यों का समावेश आवश्यक मानते थे - पहला, विधि का शासन तथा दूसरा - सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन द्वारा न्यायपूर्ण समाज की स्थापना । यद्यपि वे संसदीय प्रजातंत्र के प्रबल समर्थक थे किन्तु उसके निर्णयों में होने वाली देरी के प्रति सचेत थे ।

भारत में संसदीय प्रजातंत्र को लागू करने से पहले वे संवैधानिक प्रावधानों द्वारा शासन को सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के प्रति वचनबद्ध बनाना चाहते थे ताकि सामाजिक न्याय की स्थापना कार्यपालिका की स्वेच्छा पर निर्भर ना होकर दायित्व बन जाय । संविधान की प्रस्तावना तथा नीति निर्देशक तत्वों में अम्बेडकर उपरोक्त आग्रह साकार हुये हैं । भारत के

लिए लोकतांत्रिक पद्धति का श्रेष्ठ मानते हुए भी वे जानते थे कि यहां सामाजिक संरचना लोकतंत्र के अनुकूल नहीं है अत: उन्होंने लोकतंत्र की सफलता के लिए कुछ पूर्व शर्तो का आवश्यक बताया-

1. राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए सामाजिक धरातल पर समानता अर्थात् सामाजिक लोकतंत्र होना आवश्यक है । जिस समाज के एक वर्ग के हाथों में केवल विशेषाधिकार हों और उसका दूसरा का प्रतिबन्धों के दोहा से दबा पडा हो वहां लोकतंत्र नहीं पनप सकता । इसलिए वे दलित वर्ग को कानूनी संरक्षण द्वारा सामाजिक समानता का दर्जा प्रदान करना चाहते थे ।
2. लोकतंत्र के लिए वे बहुदलीत शासन प्रणाली तथा सशक्त विपक्ष को भी आवश्यक मानते थे उनका मानना था कि जब तक जनता के सामने एक दल को हटाकर दूसरे दल को ता सौंपने का विकल्प नहीं होगा लोकतांत्रिक शासन सार्थक नहीं हो सकता । इसी प्रकार लोकतंत्र की सफलता में समक्ष विपक्ष होना भी आवश्यक है जो कि शासन की कमजोरियों को उजागर कर जनहितों का प्रहरी बन जाता है ।
3. लोकतंत्र की सफलता के लिए वे तटस्थ तथा कुशल नौकरशाही का होना भी जरूरी मानते थे । उनका मत था कि सरकार के बदलाव के साथ प्रशासनिक शाखा बनाया जाय तथा यह सुनिश्चित किया जाए कि उसके सदस्य सत्तारूढ़ राजनीतिक दल के प्रति निष्ठा रखने के बजाय विधि के प्रावधानों के प्रति निष्ठावान रहें ।
4. अम्बेडकर के अनुसार संविधान में की गई घोषणाओं मात्र से किसी देश का शासन आदर्श स्वरूप प्राप्त नहीं कर लेता अपितु इसके लिए राजनैतिक क्रिया कलापों और शासन में भाग लेने वाले लोगों में संवैधानिक मूल्यों व नैतिकता के प्रति निष्ठा की भावना होना आवश्यक है ।
5. वे जागरूक जनता को भी लोकतंत्र की आवश्यक शर्त मानते थे, क्योंकि जागरूक जनता ही लोकतंत्र की रक्षक भी होती है ।
6. लोकतंत्र दलित तथा शोषित वर्गो के लिए संवैधानिक तथा कानूनी संरक्षणों को सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए आवश्यक मानते थे । उनका मानना था कि इन संरक्षणों के आधार पर दलित संविधान द्वारा दिये जाने वाले मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में सक्षम होंगे । इसी आधार पर वे 1935 के अधिनियम में दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व का प्रावधान कराने में सफल रहे । 1932 में साम्प्रदायिक पंचाट में दलित वर्ग को हिन्दू समुदाय से पृथक समुदाय के रूप में मान्यता दी गयी थी, जिसे बाद में गाँधी के साथ समझौते के बाद पुना पैक्ट मे संशोधित किया गया और जिसके अनुसार हिन्दू समुदाय के ही एक अंग के रूप में दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया, तथा स्वतंत्र भारत के संविधान में भी दलित वर्ग के आरक्षण की व्यवस्था की गई ।

स्वतंत्रता संघर्ष की मुख्य धारा का नेतृत्व करने वाले गाँधी तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से मतभेद एवं कई मुद्दों पर विरोध के कारण कई लोग अम्बेडकर को राजनैतिक प्रतिक्रियावादी एवं साम्राज्यवाद का समर्थक मानते थे किन्तु उनकी देशभक्ति कांग्रेस के नेताओं

की देशभक्ति से किसी प्रकार कम न थी । केवल उनकी प्राथमिकतायें भिन्न थी । वे दो हजार साल से चले आ रहे सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचार ने लड़ना चाहते थे । उन्होंने बम्बई विधान सभा में कहा था कि - मेरे अपने हित और देश के बीच टकराव होगा तो मैं देश के हित को तरजीह दूंगा लेकिन यदि देश के हित और दलित वर्गो के हित में टकराव होगा तो मैं दलित वर्गो के हित प्राथमिकता दूंगा ।

वस्तुत: अम्बेडकर के विचार और व्यक्तित्व को समझने के लिए उनकी परस्पर विरोधी प्रेरणाओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए । वे सच्चे अर्थो में भारतीय थे लेकिन भारतीय समाज में विद्यमान सामाजिक अन्याय को भी समाप्त करना चाहते थे । इन्हीं दो इच्छाओं के बीच उनमें एक सतत् एवं सृजनात्मक तनाव दिखाई देता है । उन्हें जाति एवं अस्पृ श्यता उन्मूलन का संघर्ष न केवल स्वतंत्रता की लड़ाई का पूरक लगता था बल्कि कई बार यह संघर्ष स्वराज प्राप्ति से भी कठिन लगता था । उनका मानना था कि स्वराज्य के लिए संघर्ष में सारा राष्ट्र आपके साथ संघर्ष करता है लेकिन जब आप-पाँत के विरूद्ध लड़ते हैं तो आपके ही राष्ट्र कई साथ लड़ना पडता है । उनका दृढ़ विश्वास था कि हिन्दू समाज से जातिभेद के महारोग के विनाश से ही उनमे अपनी आजादी की रक्षा करने की शक्ति पैदा होने की उम्मीद की जा सकती है । इस आन्तरिक ताकत के बिना हिन्दुओं के लिए स्वराज्य, केवल गुलामी की ओर एक कदम होगा ।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति भी उनका दृष्टिकोण स्पष्ट था । वे ब्रिटिश शासन के सकारात्मक प्रभावों को स्वीकार करते थे किन्तु उसके आर्थिक शोषण के भी स्पष्ट आलोचक थे । वे भारत की आजादी के योद्धा थे और इसीलिए उनका राष्ट्रवाद का सपना न्यायनिष्ठ समाज की स्थापना के संकल्प में अभिव्यक्त हुआ ।

9.6 अम्बेडकर का आर्थिक विचार

सामाजिक क्रान्ति का परचम उठाने वाले अम्बेडकर एक अर्थशास्त्री भी थे । अमेरिका तथा लन्दन में उच्च शिक्षा ग्रहण करते समय उन्होंने जितने भी शोध पत्र या निबन्ध लिखें, उनका सम्बन्ध अर्थशास्त्र के किसी न किसी पक्ष से था । वे तत्कालीन भारत की आर्थिक समस्याओं से भलीभांति अवगत थे । सामाजिक न्याय की अवधारणा निश्चित आर्थिक सिद्धान्तों पर आधारित थी ।

अम्बेडकर का मानना था कि भारत में आर्थिक असमानताओं की जड़ जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता है जिसमें नियोजित षड्यन्त्र द्वारा नि:षक्तजनके अन्य व्यवसाय अपनाने पर प्रतिबंध लगाया गया । वंशानुगत व्यवसायों के नियम का नि:षक्तजनके सम्बन्ध में कठोरता से किया गया पालन उनके लिए अभिशाप तथा पतन का मार्ग सिद्ध हुआ । उनका मत था कि अस्पृश्यता एक अर्थव्यवस्था भी है जो दासता से बदतर है । दास प्रथा में मालिक अपने दासों की मूल आवश्यकताओं रोटी, कपडा और मकान की जिम्मेदारी निभाता था लेकिन सवर्ण हिन्दू अस्पृश्यों की देखरेख की कोई जिम्मेदारी नहीं लेता । अम्बेडकर अस्पृश्यता को अनिमंत्रित शोषण की व्यवस्था मानते थे जिसमें नि:षक्तजनको सम्पत्ति के अधिकार से पूर्ण तथा वंचित कर दिया गया था । इसीलिए वे व्यक्ति की प्रतिभा को कुठिंत करने वाले व्यवसायों के विरोधी

थे, वे चाहते थे कि जातिगत बाध्यता के बिना व्यक्ति को अपनी क्षमता, प्रतिभा एवं इच्छानुसार व्यवसाय तथा रोजगार चुनने की स्वतंत्रता होगी, आर्थिक असमानता की खाई को कम किया जा सकता है । व्यक्ति के स्तर पर आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना के वंशानुगत व्यवसायों के जाल नमो काट कर ही न्यायनिष्ठ समाज का निर्माण किया जा सकता है ।

न्याय, समानता तथा स्वतंत्रता पर आधारित आर्थिक व्यवस्था के लिए अम्बेडकर इस क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक मानते थे । उनका कहना था कि जब तब उत्पादन के साधनों का स्वामित्व कुछ ही लोगों के हाथ में रहेगा तब तक समता तथा न्याय पर आधारित अर्थव्यवस्था स्थापित नही हो सकती । इसीलिए अम्बेडकर उत्पादन के साधनों पर राज्य के स्वामित्व के पक्ष में थे । उनकी आर्थिक अवधारणा की मुख्य विशेषता. यह है कि उन्होंने व्यक्तिवादी विचार गति वैज्ञानिक समाजवाद दोनों की पराकाष्ठा की आलोचना करते हुए संयुक्त अर्थव्यवस्था का समर्थन किया । उन्होंने समाज के प्रगतिशील रूपान्तरण तथा सामाजिक आर्थिक असमानताओं को दूर करने का विचार रखा । उनका मन्तव्य था कि पूंजीपति तथा जमींदार वर्ग अपनी विशाल सम्पत्ति का दुरूपयोग निगमन श्रमिक, भूमिहीन मजदूर तथा किसान वर्ग पर अत्याचार करने में नही करें तथा सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति के आर्थिक विकास में बाधक नहीं बनें ।

राज्य समाजवाद की स्थापना के इस स्वरूप में संसदीय प्रजातंत्र के अन्तर्गत दल बदल के साथ ही परिवर्तन नहीं किया जा सके और समाजवाद, अर्थव्यवस्था का स्थायी आधार बन सके इसके लिए वे संविधान में प्रावधान कराना चाहते थे, लेकिन सरदार पटेल, जे.बी. कृपलानी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं के विरोध के कारण ये प्रावधान मूल अधिकारों की सूची में शामिल नहीं किये जा सके । फिर भी आर्थिक प्रजातंत्र का लक्ष्य नीति निर्देशक तत्वों के रूप में संविधान में शामिल किया जाना महत्वपूर्ण है ।

अम्बेडकर कृषि के राष्ट्रीयकरण तथा सामुदायिक खेती के पक्षधर थे । उनका कहना था कि चकबन्दी या अन्यभूमि सुधार किसानों तथा दलितों की आर्थिक समस्या को हल नहीं कर सकते । उनके अनुसार आधी बुद्धि तथा आधे मन से लागू किये गये सुधार भूमिस्वामियों को ही लाभ पहुंचाते हैं ।

वस्तुत: आर्थिक समानता की सापिना के लिए वे कृषि को राज्य का उद्योग बनाना चाहते थे । उनका विचार था कि राज्य को समस्त प्रकार की कृषि योग्य भूमि अपने अधिकार में लेकर विद्यमान भूमि मालिकों को उचित मुआवजा दे देना चाहिए । राज्य द्वारा समस्त भूमि को अधिगृहित करने के बाद कृषि व्यवस्था संचालन की रूप रेखा प्रकार हो सकती है ।

(i) सामूहिक कृषि सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार हो ।

(ii) जाति तथा धर्म का भेद-भाव किये बिना ग्रामीणों में भूमि का इस प्रकार वितरण किया जाए कि उसमें न कोई जमींदार हो, न आसामी और न ही भूमि-हीन मजदूर ।

(iii) सामूहिक खेती के लिए आवश्यक-सिंचाई, जानवर, खाद, बीज तथा उपकरण आदि के लिए वित्त की व्यवस्था सरकार करे ।

(iv) सरकार द्वारा लगाये धन का उचित मूल्य चुकाने के बाद शेष उत्पादन आसामी आपस में बांट लें ।

राज्य व सरकार के इस निर्णयकारी हस्तक्षेप की अवधारणा के पीछे अम्बेडकर का मन्तव्य यह था कि भूमि सम्बन्धों पर आधारित परम्परागत वर्चस्व तथा शोषण का तंत्र समाप्त हो और उत्पादन के साधनों में समाज के निम्न तबके की भी भागीदारी हो ।

वे भारत की आर्थिक समस्याओं के समाधान तथा दलितों के उत्थान के लिए औद्योगीकरण को एक

प्रभावशाली उपाय मानते थे । उनका कहना था कि औद्योगीकरण की धीमी गति के कारण ही कृषि पर अनावश्यक बोझ बढ़ा है । भारत का औद्योगीकरण भारत की कृषिगत समस्याओं का सबसे ठोस निदान हैं औद्योगीकरण के पक्षधर होते हुए भी अम्बेडकर यह नहीं चाहते थे कि इसके माध्यम से भारत में अनियंत्रित पूंजीवाद का विकास हो । वे उद्योगों के क्षेत्र में भी राज्य समाजवाद के हामी थे जिसके अंतर्गत के को आधारभूत घोषित कर राज्य के अधीन संचालित किये जाने के पक्षधर थे, जैसे:- रेलवे, बीमा आदि । अम्बेडकर का मानना था कि, निजी उद्योगों में भी सरकार का पर्याप्त प्रभाव हो ।

औद्योगीकरण के समर्थक होने के साथ-साथ डॉ. अम्बेडकर श्रमिकों की समस्याओं के प्रति भी संवेदनशील थे । उन्होंने भारतीय मजदूर दल की स्थापना की । उन्होंने कर्नाटक के मजदूरों की बेदखली के खिलाफ तथा अनुचित ईनामदारी प्रथा की समाप्ति के लिए संघर्ष किया । उन्होंने रेलवे तथा सूती कपडा मजदूरों के आदोलन को संगठित किया । उन्होंने मुम्बई विधानसभा में पेश किये गये उस विधेयक का भी विरोध किया था जिसका उद्देश्य मजदूरों के हडताल पर जाने क के अधिकार को गैर कानूनी करार देना था ।

9.7 अम्बेडकर और गाँधी

गाँधी तथा अम्बेडकर दोनों दलितों के उत्थान के लिए समर्पित थे । दोनों मानवीय गरिमा तथा समानता पर आधारित समाज की स्थापना करना चाहते थे । जन्म पर आधारित अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने के लिए दोनों कृत संकल्प थे । दोनों के सामजिक उद्देश्य एक होते हुए भी भारत की ये दो महान् प्रतिभायें साथ नहीं चल सकी । वस्तुत. व्यवहार में गाँधी तथा अम्बेडकर के बीच विद्यमान दूरियां कई बार कटुता की स्थिति तक पहुंच जाती थीं । अम्बेडकर का मत था कि भारत में राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की में सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना अधिक महत्वपूर्ण है । उनका गाँधी तथा कांग्रेस के प्रति यह आक्षेप था कि उन्होने सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना के प्रयासो को अपेक्षित प्राथमिकता नहीं दी । गाँधी तथा अम्बेडकर के बीच कई मसलों पर दृष्टिकोण सम्बन्धी भिन्नता भी विद्यमान थी, जिसके चलते दोनों के मध्य दूरियाँ बनी रहीं ।

गाँधी वर्ण व्यवस्था को सामाजिक संगठन का स्वाभाविक नियम मानते थे, तथा विद्यमान ऊँच-नीच की भावना को कालान्तर में आयी एक विकृति मानते थे । वे अस्पृश्यता के पाप तथा जाति व्यासी की उपयोगिता के बीच कोर्ठ विरोध नहीं देखते थे । जबकि अम्बेडकर का मानना था कि जाति को किये बिना अस्पृश्यता को नष्ट नहीं किया जा सकता है, चर्तुवर्ण सिद्धान्त के उन्मूलन के बिना मानव स्थापित नहीं हो सकती । उनका यह मत था कि जाति

प्रथा ही अस्पृश्यों की दुर्दशा तथा शोषण के लिए है, अत: अस्पृश्यों का उत्थान जाति उन्मूलन के साथ जुडा हुआ है ।

गाँधी वंशानुगत व्यवसायों के भी समर्थक थे । उनके अनुसार, वर्ण व्यवस्था हमे सिखाती है कि हम सब अपने बाप दादा के पेशों को अपनाते हुये आजीविका का निर्वहन करें । यह हमारे अधिकारों का नहीं, कर्त्तव्यों का निर्धारण करती है । सभी व्यवसाय विधि सम्मत तथा समान हैं । ब्राह्मण तथा नि:शक्तजन का व्यवसाय एक समान हैं लेकिन अम्बेडकर ने इसे अस्वीकार करते हुये गाँधी की कथनी व करनी का भेद बताया । उन्होंने गाँधी से सवाल किया कि क्या स्वयं उन्होंने बाप दादों के वकालत का पेशा अपनाया । इसी गाँधी ने अन्तरजातीय विवाह तथा सहभोग पर प्रतिबन्ध को उचित बताया जबकि अम्बेडकर इससे सहमत थे । वे जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए अन्तरजातीय विवाह को आवश्यक मानते थे ।

गाँधी तथा अम्बेडकर दोनों ही अस्पृश्यता को अनैतिक तथा अमानवीय प्रथा मानते थे तथा दोनों ही इस प्रथा को समूल नष्ट करना चाहते थे लेकिन अस्पृश्यता के कारण तग़ि निदान के सम्बन्ध में दोनों के दृष्टिकोण भिन्न थे । गाँधी नि:षक्तजनको हिन्दू समाज का अभिन्न अंग मानते थे । उनका कहना था कि नि:षक्तजनकी समस्या, हिन्दू समाज की समस्या है तथा यदि हिन्दू समाज को जीवित रहना है तो उसे नि:षक्तजनकी समस्या का निराकरण करना होगा । अम्बेडकर की मान्यता इसके विपरीत थी । उनका कहना था कि यदि दलित हिंदू होते तो हिन्दू उनके साथ अमानवीय व्यवहार नहीं करते । उन्होंने तीसरे दशक तक दलित समस्या का निदान हिन्दू समाज के दायरे में किये जाने के प्रयास किये और अन्तत: इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सुधारात्मक प्रयासों से इस समस्या को जड़ रवे मिटाना सम्भव नहीं हैं । अम्बेडकर का कहना था कि हिन्दू जाति और धर्म एक दूसरे के पर्याय है । जाति की जड़ें धर्म में होने के कारण जाति का उन्मूलन संभव नहीं है । इसलिए अम्बेडकर ने अपने साथियों के साथ अन्तत: बौद्ध धर्म ग्रहण करने का निर्णय लिया ।

गाँधी अस्पृश्यता निवारण एवं व्यवस्था परिवर्तन हेतु सवर्णो तथा पूंजीपतियों का हृदय परिवर्तन करना आवश्यक मानते थे । वे सौहार्द, सामंजस्य तथा शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक तरीकों से समाज में बदलाव लाना चाहते थे, लेकिन अम्बेडकर इससे सहमत नहीं थे । उनका मानना था कि व्यवस्था में बदलाव तथा छुआछुत की समापित के लिए संघर्ष जरूरी है । इसलिए उसने दलितों तथा शोषित को संघर्ष के लिए एकजुट होने का आहवान किया । वे कानून द्वारा समस्या के समाधान को महत्वपूर्ण मानते थे । इसी आधार पर उन्होंने सवैंधानिक दायरे में दलितों को राजनीतिक शक्ति प्रदान करने के लिए सरकारी सेवाओं तथा विधायकाओं में पृथक प्रतिनिधित्व दिलाने की कोशिश की ।

अम्बेडकर की पहल पर ही ब्रिटिश सरकार ने दलितों को सन् 1932 में साम्प्रदायिक पंचाट के तहत पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया जिसके विरोध में गाँधी ने आमरण अनशन आरम्भ कर दिया । गाँधी की चिन्ताजनक स्थिति को देखते हुए अम्बेडकर स्वयं गाँधी तथा कांग्रेस के प्रतिनिधियों से मिले जिसके परिणामस्वरूप दोनों पक्षों के बीच पूना पैक्ट हुआ । इस समझौते के अनुसार अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग छोड़ दी और गाँधी ने दलितों के लि आरक्षण का प्रावधान स्वीकार कर लिया ।

इस प्रकार गाँधी एवं अम्बेडकर दोनों समानता तथा न्याय पर आधारित समाज की स्थापना के पक्षधर थे लेकिन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपनाये गये साधनों में भिन्नता थी । अम्बेडकर तथा गाँधी भारतीय समाज की दो भिन्न भिन्न पृष्ठभूमि से आये थे, दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता का एक प्रमुख आधार यह पृष्ठभूमि भी थी । हिन्दू समाज के पदसोपानीय विभाजन की पीडा को गाँधी ने भोगा नहीं, मात्र देखा था अत: अस्पृश्यता जैसी कुरीति के प्रति एक दृष्टा के भाव से उसे उन्होंने समझने व मिटाने की कोशिश की । अम्बेडकर का संदर्भ बिल्कुल अलग था । उन्होंने जाति व्यवस्था में विद्यमान भेदभाव तथा अस्पृश्यता के दंश को स्वंय झेला था, अत: मुक्ता भोगी होने की पीडा तथा इस व्यवस्था के प्रति आक्रोश उनके दृष्टिकोण तथा विचार अभिव्यक्ति में स्पष्ट दिखाई देता है । उन्होंने नैतिकता, सदाचार, व्यवसाय सभी का आधार धर्म शास्त्रों द्वारा स्वीकृति और जन्माधारित जाति व्यवस्था को माना । यही कारण है कि वे जाति आधारित किसी भी प्रकार की व्यवस्था तथा व्यवहार के विरोधी थे और इसलिए वे वर्ण एवं जाति व्यवस्था को नष्ट करने के बाद भी समता पर आधारित समाज की स्थापना को सम्भव मानते थे।

9.8 सारांश

महाराष्ट्र की महार जाति में जनमें भीमराव अम्बेडकर ने जातिगत अपमान और संघर्ष के साथ अध्ययन किया था अत: जाति प्रथा और छुआछुत के प्रतिकार के संकल्प के साथ उन्होंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया । जनम जैसे संयोग पर आधारित जाति व्यवस्था तथा अमानवीय छुआछुत प्रथा की समाप्ति को उन्होंने अपने जीवन तथा चिन्तन का साध्य बना लिया । भारतीय इतिहास, हिन्दू धर्म शास्त्रों के अध्ययन ताकि जीवन के अनुभवों से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जाति तथा अस्पृश्यता के लिए हिन्दू धर्म तथा शास्त्र जिम्मेदार हैं इसलिए उन्होंने ब्राह्मणवाद की समाप्ति तथा हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को समता मूलक आधार पर पुन: परिभाषित करने का आहवान किया ।

वे देश की राजनीतिक आजादी से ज्यादा महत्वपूर्ण सामाजिक समता और स्वतंत्रता को मानते थे । वे लोकतंत्र को सामाजिक धरातल पर उतारना चाहते थे और इसके लिए जाति विहीन समाज के पुनर्गठन करना चाहते थे । समाज के संतुलित विकास के लिए राज्य हस्तक्षेप का उन्होंने समर्थन किया । वे जाति-आधारित व्यवसायों को आर्थिक स्वतंत्रता के विरूद्ध मानते थे । प्राथमिकतायें भिन्न होने के कारण गाँधी और अम्बेडकर के विचारों में मतैकता का अभाव दिखता है परन्तु व्यक्ति के स्वाभिमान सहित जीने और न्याय के उद्देश्य के प्रति दोनों की कटिबद्धता समान थी ।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1. अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों का परीक्षण कीजिए ।
2. जाति अवर या एवं धर्म पर अम्बेडकर के विचारों का परीक्षण कीजिए ।
3. निःशक्तजनो के उद्धार के लिए गाँधी एवं अम्बेडकर के योगदान का विश्लेषण करो ।
4. गाँधी एवं अम्बेडकर के राजनीतिक और सामाजिक विचारों का तुलनात्मक परीक्षण कीजिये ।

9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

5. श्यौराज सिंह, अम्बेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008
6. द्वारका प्रसाद गुप्ता, महात्मा गाँधी और अस्पृश्यता, ज्ञान भारती, दिल्ली, 2008
7. श्यौराज सिंह, अम्बेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता, अनामिका पब्लिशर्स। नई दिल्ली, 2008
8. बारेन रे (सम्पादित), गाँधीस केम्पैन अगेंस्ट अनटचाबिलिटि 1933- 1934, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1996
9. थोमस वेट्टिकल गाँधीयन सर्वोदय : रीयालाइसिंग ए रियलिस्टिक युटोपिया नेशनल गाँधी म्यूसियम एवं ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2002
10. प्रतिभा जैन, गाँधीयन आइडियास सोशल मूवमेन्टस एण्ड क्रियेटिविटी, पब्लिकेशंस, जयपुर, 1985
11. बारेन रे (सम्पादित), गाँधीस केम्पैन अगेंस्ट अनटचाबिलिटि 1933- 1934, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1996

इकाई - 10

गाँधी और विनोबा भावे

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 राष्ट्रवाद पर विचार
10.3 लोकतन्त्र पर विचार
10.4 पंथनिरपेक्षता पर विचार
10.5 मानवाधिकार पर विचार
10.6 शान्ति सेना और विश्व शान्ति संबंधी विचार
10.7 भूदान आन्दोलन
10.8 सारांश
10.9 अभ्यास प्रश्न
10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी -

- विनोबा भावे के राजनीतिक चिन्तन के विभिन्न पक्ष समझ सकेंगे ।
- विनोबा भावे के पंथनिरपेक्षता संबंधी चिन्तन को समझ सकेंगे ।
- विनोबा भावे के शांति संबंधी चिन्तन और कार्य को समझ सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत में सहज ही हमारा ध्यान महात्मा गाँधी और आचार्य विनोबा भावे के दर्शन की ओर जाता है, जिन्होंने अपनी कल्पना के आदर्श समाज का प्रतिमान प्रस्तुत किया । आचार्य विनोबा भावे ने गाँधी के चिन्तन और दर्शन को केवल समझा ही नहीं अपितु उसे आत्मसात् भी किया । भारतवर्ष का स्वतन्त्रता आन्दोलन भारतीयों द्वारा अंग्रेजी शासन की दासता की मुक्ति पाने के लिए भारतीयों द्वारा संचालित एवं संगठित आन्दोलन था । लोकमान्य तिलक के अवसान के पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनीतिक क्षितिज पर महात्मा गाँधी का आविर्भाव हुआ ।गाँधी-युगीन स्वतन्त्रता सेनानियों में विनोबा भावे अग्रणी रहे हैं । परतन्त्रता के इसी युग में समकालीन चिन्तकों की भाँति आचार्य विनोबा के राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा साकार रूप ग्रहण कर सकी । नागपुर जेल में ''स्वराज्यशास्त्र'' जैसी कृति का साकार रूप लेना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है । 'सर्वोदय-विचार और स्वराज्यशास्त्र नामक पुस्तक की प्रस्तावना में विनोबाजी स्वयं स्पष्ट करते हुए कहते हैं- 'सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र विषयक मेरे विचारों का यह संक्षिप्त संकलन पाठकों को समर्पित किया जा रहा है

। मेरी दृष्टि में इसका बहुत महत्त्व है । मेरे दीर्घकालीन चिन्तन, निरीक्षण और कर्मयोग का सार इसमें आ गया है ।'

महात्मा गाँधी के मानस पुत्र, आध्यात्मिक और रचनात्मक उत्तराधिकारी के रूप में विनोबा अनवरत जीवनपर्यन्त चिन्तन और अहिंसक क्रान्ति में संलग्न रहे। स्वातन्त्रयोत्तर भारत में आचार्य विनोबा भावे ने एक प्रबुद्ध नागरिक और गाँधीवादी चिन्तक के रूप में राजनीति को पवित्र करने, मनुष्य के पुरुषार्थ को स्थापित करने, मानव मात्र की आत्मा में प्रेम, श्रद्धा, त्याग और परस्पर विश्वास की सुरसरि प्रवाहित करने का अभिनव कार्य किया । विनोबा ने मानव की अस्मिता, गरिमा और प्रतिष्ठा का पुनर्स्थापना के लिए समाज विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर समाज, राष्ट्र और समूचे विश्व को एक नयी दिशा प्रदान की ।

10.2 राष्ट्रवाद पर विचार

राष्ट्रवाद को बीसवीं शताब्दी का सर्वाधिक प्रभावशाली व सशक्त विचार कहा जा सकता है । आज हम अपने प्रत्येक सार्वजनिक कार्य तथा व्यवहार में राष्ट्रवाद के भाव से प्रेरित करते हैं-और यह भाव आज मनुष्य-मनुष्य के बीच ही नहीं वरन् राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का भी नियामक बन गया है ।

भारतवर्ष में एकता और राष्ट्रवाद की संकल्पना उतनी ही पुरानी है, जितना विश्व का इतिहास । प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद की ऋचाओं में यह भाव प्रस्फुटित हो चुका है । आधुनिक अर्थो में भारत में राष्ट्रवाद के स्पष्ट अंकुर 19वीं शताब्दी में प्रस्फुटित होने लगे । आधुनिक अर्थो में राष्ट्रवाद की संकल्पना को ले तो राजा राममोहन राय को "भारतीय राष्ट्रवाद का पैगम्बर तथा आधुनिक भारत का जनक" कहा जा सकता है । राजा राममोहन राय ने देश में चिन्तन के अभिनव द्वार खोले और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिस पर भावी धर्म एवं समाज सुधारक तथा राजनीतिक चिन्तन आगे बढ़ते रहे ।

गाँधीजी की राष्ट्रवाद की संकल्पना एक विशिष्ट प्रकार की है और राष्ट्रवाद की आधुनिक परिभाषाएँ इस संकल्पना को अभिव्यक्ति देने में न केवल अपर्याप्त है, अपितु एकांगी भी है। गाँधीजी ने कहा था- '..... बिना सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय बने कोई अन्तर्राष्ट्रीय नहीं हो सकता । जब राष्ट्रीयता एक सत्य बन : जाती है, तभी अन्तर्राष्ट्रीयता सम्भव है । यानि जब अलग-अलग देशों के लोग संगठित हो जाते हैं और एक व्यक्ति की तरह काम करते हैं तभी यह सम्भव है । राष्ट्रीयता पाप नहीं है । उसकी संकीर्णता और स्वार्थ भावना बुरी। है । आज के राष्ट्रों में आपस में जो परस्पर घृणा है, वह पाप है । प्रत्येक राष्ट्र मानो दूसरे को शोषित करके, दूसरे के ध्वंस पर अपना निर्माण करना चाहता है ।

गाँधीजी की राष्ट्रवाद की अवधारणा में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य सर्वोपरि थे और यही कारण है कि विनोबा के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों में भी इन्हें उच्च मूल्यों के दिग्दर्शन हमें स्वाभाविक रूप से होते हैं । 'गाँधीजी कभी भी केवल भौतिक जगत और उसके सैन्य,शास्त्र,सत्ता पर आधारित शक्तिशाली राष्ट्र तन्त्र में विश्वास नहीं करते थे । उनके विचार

से ऐसे राष्ट्र का कोई अर्थ नहीं था, जिसका आधार आध्यात्मिक न हो, जिसके पीछे परमात्मा का अधिष्ठान न हों ।

आचार्य विनोबा भावे के राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा स्वराज्यशास्त्र के लेखन के साथ ही आकार ग्रहण करती प्रतीत होती है । नागपुर जेल प्रवास के दौरान रची गई यह कालजयी कृति अपने आप में अनुपम है ।सर्वराष्ट्रीय अविरोध या भ्रातृभाव पर अपने विचारों के प्रकटीकरण के साथ वे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- 'राजनैतिक-पद्धतियों का विचारा करते हुए दूसरी भी एक बहुत महत्व की बात मर ध्यान देना पड़ता है । वह यह कि राष्ट्र की अन्तर्गत व्यवस्था के साथ-साथ अन्य राष्ट्रों से उसका व्यवहार कहीं तक अविरोधी है । पुराने जमाने में जब यातायात के साधन इतने वेगवान नहीं थे, तब भी यह प्रश्न कम महत्व न रखता था । आज तो सर्वराष्ट्रीय अविरोधी ही नहीं, वरन् अनुकूलता और भ्रातृभाव किसी भी राष्ट्र-समूह के व्यवहार का मूलतत्त्व माना जाना चाहिए ।

आचार्य विनोबा भावे के उपर्युका कथन में अन्तर्राष्ट्रवाद के साक्षात् दर्शन होते हैं । राज्य-पद्धति का आदर्श प्रस्तुत करते हुए विनोबा जिन दस आग्रहों पर प्रकाश डालते हैं, उनमें भी विनोबा का प्रथम आग्रह सार्वराष्ट्रीय भ्रातृत्व पर है ।

आचार्य विनोबा का राष्ट्रवाद सतही और संकुचित राष्ट्रवाद न होकर अपने भीतर विशाल अन्तर्राष्ट्रवाद का सागर समेटे हुए है । विनोबाजी की अवधारणा में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, नस्लवाद का सख्त विरोध सम्मिलित था । आचार्य विनोबा भावे इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि संकिर्ण राष्ट्रवाद व्यक्ति को अन्धा बना डालता है, विनोबा के राष्ट्रप्रेम में सब राष्ट्रों का प्रेम निहित था । विनोबा का राष्ट्रवादी चिन्तन अतिव्यापक है । आचार्य विनोबा भावे के राष्ट्रवादी चिन्तन में अन्तर्राष्ट्रवाद के साथ ही मानवतावाद के भी दर्शन होते हैं । सर्वोदयी चिन्तक दादा धर्माधिकारी लिखते हैं "हम विश्व को एक विराट सामुदायिक संस्था नहीं बनाना चाहते । सारे विश्व को कुटुम्ब बनाना चाहते हैं । संस्था में जो रिश्ता होता है, वह सदस्य का होता है और कुटुम्ब में जो रिश्ता होता है, वह आत्मीयता का होता है ।"

सर्वोदय कल्पना के अन्तर्राष्ट्रीय समाज में देशों के बीच मानव निर्मित दीवारें नहीं होंगी । सर्वोदय की अन्तर्राष्ट्रीय प्रचलित संकुचित अर्थो वाली अन्तर्राष्ट्रीयता नहीं है। विनोबा कहते हैं कि हमें चार बातें ध्यान में रखनी चाहिए ।

(1) आज का नारा 'जय-जगत्',

(2) हमेशा का नारा 'जय-जगत्',

(3) हमारा नारा- 'जय-जगत' और

(4) सबका नारा जय-जगत् ।

वे कहते थे, "दुनिया में वेग से विचार आगे बढ़ रहे हैं । धीरे-धीरे सभी देशों की सरहदें टूटने वाली हैं । अब विश्व को सम्मिलित परिवार बनाने की भावनाएँ बढ़ रही है।" विनोबा की मान्यता थी कि राष्ट्र संस्था का अधिक से अधिक उपयोग जनकल्याण-विभाग की तरह हो, यही गाँधीजी की भी मान्यता थी । गाँधी की भाँति विनोबा भी इस मत के थे कि राष्ट्र एक तान्त्रिक

साधन-मात्र है, वह अपने आप में कोई मूल्य या साध्य नहीं। विनोबा मनुष्य के अन्दर सत्ता के केन्द्रित होते ही शुरू होने वाली बुराई से बहुत अच्छी तरह परिचित थे ।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि विनोबा के राष्ट्रवाद को समझने में पश्चिमी राष्ट्रवाद की परिभाषाएँ ना-काफी और अपर्याप्त हैं । वह उनका अपना नया, उदार और व्यापक मानवतावाद था, जिसने राष्ट्रवाद की पुरानी कल्पना में एक अभिनव आयाम जोड दिया था, उन्होंने उस पुराने सामुहिक अभिमान में अनुकम्पा और सहानुभूति, नैतिकता और आध्यात्मिकता का ऐसा जोड़ लगाया कि उसका मूल रूप ही बदल गया ।

10.3 लोकतन्त्र पर विचार

मानव जाति के प्रारम्भिक काल से लेकर अब तक विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ विद्यमान रही हैं और शासन के इन विभिन्न रूपों का मानव जाति के राजनीतिक विकास में विशेष महत्त्व रहा है । वर्तमान युग में लोकतन्त्र विश्व में एकमात्र स्वीकृत शासन पद्धति है । संसार में सर्वत्र लोकतन्त्र में विश्वास का शंखनाद किया जा रहा है । आचार्य विनोबा भावे 'लोकतन्त्र' को एक स्वाभाविक व्यवस्था मानते थे, किन्तु आचार्य भावे का यह भी अभिमत था कि पूँजीवादी व्यवस्थाओं के कारण लोकतान्त्रिक मूल्यों पर पर्याप्त कुठाराघात हुआ है और 'लोकतन्त्र के रहते हुए भी सामाजिक विषमताओं में वृद्धि हुई है । आचार्य भावे गाँधी के उत्तराधिकारी होने के बावजूद गाँधी-मार्ग को संशोधित ही नहीं परिष्कृत और परिमार्जित भी करते हैं । विनोबा लोकतन्त्रवादी थे। समय-समय पर उन्होंने लोकतन्त्र की व्याख्या की । लोकतन्त्र से सम्बन्धित समस्याओं और निराकरण के उपायों का विश्लेषण भी किया । लोकतन्त्र सम्बन्धी उनके प्रमाणिक विचार- 'सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र तथा लोक-नीति' नामक रचनाओं में विस्तार से उपलब्ध है ।

'स्वराज्यशास्त्र' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में अपने राजनीतिक विचारों, मान्यताओं और अवधारणाओं को शब्द देते हुए वे लिखते हैं- 'राज्य' एक बात है और 'स्वराज्य' दूसरी बात । राज्य हिंसा से प्राप्त किया जा सकता है: किन्तु 'स्वराज्य बिना अहिंसा के असम्भव है । इसलिए जो विचारशील हैं, वे 'राज्य' को नहीं चलाते: बल्कि यह कहकर तडपते रहते हैं कि- "आओं, हम सब स्वराज्य के लिए जतन करें ।"

आचार्य विनोबा भावे अपनी इस कृति में राज्य पद्धतियों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उन्हें दोषपूर्ण ठहराते हैं । स्वाभाविक त्रिविध राज्य पद्धति - "व्यवस्था निमार्ण के तीन स्वाभाविक प्रकार होंगे- (अ) कोई प्राज्ञ या समर्थ व्यक्ति सबके लिए व्यवस्था करें । (ब) अनेक प्राज्ञ या समर्थ व्यक्ति एकत्र होकर सबके लिए व्यवस्था करें । (स) सब मिलकर समान जिम्मेदारी से अपनी व्यवस्था कर लें । राज्य व्यवस्था के इन तीन स्वाभाविक प्रकारों को हम "एकायत" "अनेकायतन" और "अनेकयतन' और "सर्वायतन" ये पारिभाषिक नाम दें ।

आचार्य भावे की दृष्टि में सर्वायतन का दावा करने वाली वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था भी वास्तविक अर्थो में सर्वायतन व्यवस्था नहीं है । आचार्य भावे के मत में वर्तमान लोकतन्त्र जो सर्वायतन होने का भ्रम पैदा करती है-वास्तव में यह लोकतन्त्र "लोक" अभावग्रस्त

तन्त्र तथा वैभव परस्त प्रजातन्त्र है । आचार्य विनोबा इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "प्रजातन्त्र" नाम धारण करने वाली और सर्वायतन होने का दिखावा करने वाली एक राज्य पद्धति है, जिसको स्वांग यूरोप और अमेरिका में रचा जा रहा है । लेकिन हिंसा पर आश्रित कोई भी पद्धति भले ही "जितने सिर उतने मत" गिनने का दम्भ करें, वास्तव में सर्वायतन नहीं हो सकती ।

आचार्य विनोबा वास्तविक अर्थो में सर्वायतन की व्याख्या प्रतिपादित करते हुए आगे लिखते हैं- "सब लोग मिलकर स्वेच्छा से और सोच-समझकर अपने में से किसी एक को या अनेक को राग-द्वेष रहित, भूत-हित तत्पर, बुद्धिमान और कुशल जानकर सारी सत्ता सौंप दें तो वह सत्ता आकार में एकायतन या अनेकायतन भले ही प्रतीत हो, अगर उसका आधार अहिंसा है, तो उसे सर्वायतन ही मानना चाहिए ।" आचार्य विनोबा भावे ने "लोकतन्त्र" की प्रतिष्ठा के लिए "लोकनीति" शब्द को प्रचलन में लिया । विनोबाजी लोकतन्त्र के प्राण-तत्त्व जनता की शक्ति को सर्वोपरि मानते हैं । उनके अनुसार लोकसत्ता में लोग ही सब कुछ हैं, सरकार कुछ नहीं । आचार्य भावे अपनी लोक-नीति सम्बन्धी आख्यायिकाओं के माध्यम से जनमानस या जनता की प्राण-प्रतिष्ठा ही नहीं करना चाहते अपितु आचार्य प्रवर अपनी मौलिक और अभिनव मान्यताओं के द्वारा राजनीति के शुद्धिकरण के भी हामी हैं । विनोबाजी की यह दृढ़ मान्यता है कि राजनीति के शुद्धिकरण के उपरान्त ही वास्तविक अर्थो में लोक-नीति की प्राण-प्रतिष्ठा हो पाएगी ।'

विनोबाजी गाँधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं और यही कारण है कि गाँधी का दर्शन उनमें और बड़े पैमाने पर दिखलाई पडता है । विनोबा में लोकतन्त्रात्मक राजनीति को उदार और उदात्त बनाने की एक अजीब सी तड़फ है जो हमें इन शब्दों में दिखलाई पडती है- "राजनीति और धार्मिक क्षेत्र में जो दम्भ दिखता है, वह सब देख मुझे बहुत वेदना होती है और मैं उसे बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करता हूँ । मैं समझता हूँ कि बापू के जाने के बाद भारत में जिस तरह राजनीति चल रही है, इसी तरह आगे चलानी हो, तो बापू के आने से क्या लाभ हुआ? उनके अवतार का कुछ फायदा हमें मिला या नहीं"

विनोबाजी की लोकतन्त्र सम्बन्धी जो धारणा है उसमें केवल वे जनता की प्रतिष्ठा की स्थापना ही नहीं चाहते वरन् लोकनीति को वृहद् अर्थ प्रदान करते हुए जनता की आत्मशक्ति को उभारकर उसे स्वावलम्बी बनाने हेतु भी कृतसंकल्प प्रतीत होते हैं ।

विनोबाजी की लोकनीति की प्रस्थापना नकारात्मक न होकर सकारात्मक है । वे लोकतन्त्रात्मक राजनीति के दोषों को बतलाकर अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री नहीं मान लेते अपितु अपनी लोकनीति को नवीन मान्यताओं से नयी मर्यादाएँ रचने का महान् दायित्व भी पूर्ण करते हैं । इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते हैं- "आज की राजनीति यद्यपि "लोकनीति" नहीं है, फिर भी लोकमान्य अवश्य है । इसलिए जब लोग बदलेंगे, तभी वह बदलेगी । अत: हम राजनीति के दोष ही दिखाते चले जायेंगे, तो अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करेंगे ।"

आचार्य विनोबा भावे वर्तमान लोकतान्त्रिक पद्धति की दुर्बलताओं पर प्रकाश डालते हुए जनता की शक्ति को स्थापित करने का विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं- "लोकशाही का

सबसे बड़ा दोष यह है कि हमारा सारा दारोमदार चंद लोगों पर है । उसमें लोग अपने हाथ में अपना जीवन नहीं रखते । इसमें कुछ लोगों के हाथ में सत्ता दी जाती है और सभी आशा रखते हैं कि सरकार हमारी रक्षा करेगी । इसमें लोकमत का कोई सवाल नहीं, मुख्य व्यक्ति की अक्ल के अनुसार ही काम चलता है । यह बहुत ही शोचनीय बात है ।"

विनोबा लोकतन्त्र का जो वर्तमान रचरूप है उससे सन्तुष्ट नहीं हैं । वे उसकी दुर्बलताओं पर प्रहार करते हुए अपना मत इस रूप में अभिव्यक्त करते हैं- "आज लगभग सभी देशों में सत्ता सरकार जनता द्वारा चुनी हुई है । लेकिन कहीं भी जनशक्ति से काम नहीं होता । यही प्रतिनिधिक लोकशाही है, याने सारा सेवा कार्य हमने प्रतिनिधियों का सौंप दिया है । अपने सारे महत्त्व के काम प्रतिनिधियों को सौंपकर हम शक्तिहीन बन जाते है ।'

वोट की अर्थहीनता के साथ ही साथ विनोबा बहुमत के औचित्य और विधि निर्माण के पारस्परिक सम्बंध पर एक गम्भीर प्रश्न-चिह्न लगाते हैं। विनोबाजी लोकतान्त्रिक पद्धति में चुनाव पद्धति से उत्पन्न होने वाली बहुराइयों के प्रति भी पर्याप्त सचेत हैं और उस पर भी अपनी तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं । चुनाव पद्धति के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं- "चुनाव को कितना भी महत्त्व क्यों न दिया जाय, आखिर वह ऐसी चीज नहीं है कि उससे समाज के ऊत्थान में हम कुछ मदद पहुँचा सके । वह 'डेमोक्रेसी में खड़ा किया हुआ एक यन्त्र है । एक 'फॉर्मल डेमोक्रेसी' (औपचारिक लोकसत्ता) आयी है ।"

चुनाव पद्धति के कारण जातिवाद, धनबल, भुजबल और राजनीति में असामाजिक तत्त्वों के प्रवेश के दुष्परिणामों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए विनोबाजी लिखते हैं- "चुनाव से जाति भेद की वृद्धि पहला दुष्परिणाम है । दूसरा यह है कि आज जो तरीका चलता है, उसमें जिसके पास ज्यादा पैसा है, वही इसमें भाग ले सकता है: जिसके हाथ में ज्यादा सम्पत्ति है, वही चुनाव में खड़ा होता है । इस हालत में गरीब और मूक जनता की आवाज कैसे उठेगी? लाखों मतदाताओं की ओर से जिन्हें चुनना है, उनके गुण तो गुण, उनका चेहरा भी हम नहीं जानते । इस तरह चुनाव से खर्च बढ़ रहा हैं, जाति-भैद बढ़ रहा है और अच्छे मनुष्य ही चुनकर आयेंगे, इसका भी कोई भरोसा नहीं है ।"

विनोबाजी जनतन्त्र में जनता के गौरव उसकी गरिमा को स्थापित करने के लिए आजीवन प्रतिबद्ध रहे, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे इन शब्दों में अपनी पीडा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं- 'नाम 'मालिक' परन्तु अर्थ गुलाम' । किसी दरिद्र की लड़की का नाम रहता है न लक्ष्मी । बेवकूफ लड़कों हो और उसका नाम हो सरस्वती, विद्या इत्यादि । वैसा ही एक नाम "डेमोक्रेसी" है । जनता सारी यजमान है, वह अपने नौकर चुनती है । परन्तु अपने हाथों से पानी पीने का अधिकार उसे नहीं है । हमारी और सारी दुनिया के लोगों की यही स्थिति है ।"

आचार्य भावे अपने लोकतन्त्र सम्बन्धी विचारों में "दलीय राजनीति" के भी विरुद्ध है, उनकी मान्यता है कि पार्टी पॉलिटिक्स के जरिये जो लोक-रक्षा होती है, वह भ्रमात्मक है । इसी के साल उनकी यह भी मान्यता है कि वास्तविक और सही अर्थो में लोकतन्त्र की स्थापना दलीय राजनीति से ऊपर उठकर ही की जा सकती है । वे लोकनीति में स्पष्ट शब्दों में लिखते

हैं कि - ''सत्ता या पार्टी पॉलिटिक्स (दलगत-राजनीति) के जरिये क्रान्ति कभी नहीं होती । वह तो जनमानस में होती है । इसलिए उसे पक्षपाती होना चाहिए ।''

विनोबाजी लोकतन्त्र में जो विसंगतियाँ हैं उनकी ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं तथा उन विसंगतियों से बचने हेतु वैकल्पिक रास्ते भी सुझाते हैं । विसंगतियों की तरफ इशारा करते हुए वे लिखते हैं- "आज हम इधर तो लोकतन्त्र की बात करते हैं, उधर अर्थव्यवस्था पूँजीवादी और लश्करशाही रखते हैं । मुँह में लोकतन्त्र है और बगल में केन्द्रीकरण का लश्कर है । उस मूर्ख को आप क्या कहेंगे, जो सूत कातता भी जाता है और तोड़ता भी जाता है? हम लोकतन्त्र के साथ-साथ उसके विनाश के तत्त्व भी लेते रहेंगे, तो परिणाम कैसे निकलेगा?"

विनोबाजी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एवं केन्द्रीकरण के विकल्प के रूप में अपना मत व्यक्त करते हुए स्पष्ट करते हैं कि- "हमें यह समझना होगा कि जनता को न सिर्फ 'सुशासन' के लिए, बल्कि 'स्वशासन' के लिए तैयार करना है । स्वशासन के दो पहलू हैं- (1) विकेन्द्रित सत्ता, याने सत्ता गांव-गांव में बेटी होनी चाहिए । (2) हम हिंसा में शक्ति हरगिज नहीं मानते, प्रेम और अहिंसा में ही मानते हैं-इस तरह का शिक्षण, इस तरह का मानवशास्त्र और तत्वज्ञान लोगों में चलाना ।"

आचार्य विनोबा भावे की यह दृढ़ मान्यता रही है कि लोकतन्त्र के वर्तमान स्वरूप को तभी परिष्कृत, परिमार्जित और संशोधित किया जा सकता है जबकि सत्ता पक्ष के सम्मुख एक सार्थक, सौद्देश्य और ईमानदार प्रतिपक्ष हो तथा धीरे-धीरे इन दो राजनैतिक क्षेत्रों में काम करने वालों के अतिरिक्त एक तीसरा निष्पक्ष समाज का आविर्भाव हो । उनका स्पष्ट विचार था कि- 'इस तरह की जमात जितनी विशाल शक्तिशाली होगी, राज्य तन्त्र और लोकतन्त्र, दोनों उतने ही शुद्ध और मर्यादित रहेंगे । उस तीसरे निष्पक्ष का एक बड़ा भारी देशव्यापी कार्यक्रम होगा । 'इस पंचविध कार्यक्रम की एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत है-

(अ) जीवन शोधन,

(ब) अध्ययनशीलता,

(स) निष्काम समाज सेवा,

(द) वाणी से निर्देश, कृति से सत्याग्रह और

(इ) मसलों का अहिंसक हल ।

अपने निष्पक्ष समाज के लिए लोक-नीति के प्रति निष्ठा को विनोबा अनिवार्य एवं आवश्यक मानते हैं । विनोबा अपनी भावनाओं और विचारों को प्रकट करते हुए लिखते है- 'लोकनीति के विषय में जितना मैं सोच रहा हूँ उससे इतना निश्चय हो जाता है कि आज की राजनीति को मान्य करके, उसको तोडने के लिए भी जो उसे मान्य करेंगे, वे उसे तोड नहीं पाएँगे, क्योंकि तोडने के लिए बाहर रहना चाहिए । वृक्ष को तोडने में आप वृक्ष के बाहर रहकर उसे काटते हैं, तो काम बनता है उस पर छड़कर ही उसको तोड़ना चाहें, तो नहीं तोड सकते ।"

विनोबा लोकतन्त्र की परिभाषा, 'जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए' को असली जामा पहनाने के लिए एक वैचारिक क्रान्ति के पक्षधर हैं जिससे वास्तविक अर्थो में लोकसत्ता की स्थापना हो, इस पर अपना विचार रखते हुए वे कहते हैं- "हम लोक-क्रान्ति में विश्वास रखते हैं, इसीलिए जनता को स्वावलम्बी बनाना नहीं चाहते । राज्याश्रयी जनता लोकसत्ता के आवश्यक लोकनीति और लोकचारित्र का विकास नहीं कर सकती । यह लोकनैतिक आन्दोलन की मूल प्रतिष्ठा है । उसका अधिष्ठान राज्यसत्ता नहीं, लोकसत्ता होगा ।

विनोबा पार्टी "व्हीप" और संसद पर प्रश्न-चिह्न लगाते हुए अपने एक आहवान में सीधे जनता तक पहुँचने की बात करते हैं- 'कुछ अल्पमत में हैं, कुछ बहुमत में हैं । जो बहुमत में हैं वे चाबुक के नीचे हैं । इसको अंग्रेजी में "कीप" कहते हैं तो जो बहुमत में हैं, वे चाबुक के नीचे हैं और जो अल्पमत में हैं' वे तो अल्प ही हैं । तो जो दोनों प्रकार के लोग पार्लियामेंट में जाकर बोलते हैं कि हम कुछ अच्छी बात वहाँ रख सकते हैं और अपनी आवाज हम सरकार में पहुँचाते हैं, तो क्या सरकार इतनी बहरी बन गयी है कि बाहर सभा में कोई बात बोलेगा, तो वह नहीं सुनेगी और पार्लियामेंट में जाकर गिरफ्तार होकर सुनेगी?"

10.4 पंथनिरपेक्षता पर विचार

धर्मनिरपेक्षता न किसी धर्म को प्रोत्साहित करती है और न ही निरूत्साहित । इससे आशय अधर्मी या धर्म विरोधी विचार भी नहीं हैं । इसका आश्य है धार्मिक-सहिष्णुता और इससे भी आगे बढकर उदार और उदात्त रूप 'सर्व धर्म समभाव' । आचार्य विनोबा भावे महात्मा गाँधी के अत्यन्त प्रिय शिष्य थे । गाँधीजी का समग्र चिन्तन और दर्शन विनोबा में नये प्रतिमानों के साथ परिष्कृत, परिमार्जित होते हुए एक नवीन स्वरूप में विकसित हुआ है । विनोबा भारतीय संस्कृति की एक ऐसी अनूठी विभूति है जिनके चिन्तन एवं दर्शन में नैतिकता तथा आध्यात्मिकता का बल विद्यमान है । विनोबा 20वीं सदी के नैतिक और आध्यात्मिक अग्रदूत भी हैं, जिनके लिए मानव की नैतिकता और आध्यात्मिकता सर्वोपरि है । उनका मूल चिन्तन यही था कि सम्पूर्ण विश्व समाज एक विशाल परिवार के समान है ।

विनोबा के अनुसार सभी धर्म समान हैं और उनके आन्तरिक मूल्य एक ही है । सभी धर्मो का संदेश भी एक ही है जो थोडा-बहुत अन्तर मिलता है या दिखलाई पडता है उसका कारण उन परिस्थितियों और उस काल में छिपा होता है, जिसमें कोई धर्म जन्म लेता है । विनोबा धर्मनिरपेक्ष (सेक्युलर) शब्द के अर्थ पर अपना मंतव्य प्रकट करते हुए 'लोकनीति' नामक अपने ग्रन्थ में लिखते हैं- "सेक्युलर का अर्थ अगर हम पंथातीत या अपथिक करें तो भी ठीक भाव व्यक्त नहीं होता । 'पंथ' याने मार्ग, जिसे अंग्रेजी में 'पाथ' कहते हैं, तो पंथातीत याने 'मार्ग-विहीन' सरकार हुई । किन्तु यह शब्द तो 'गुमराह' का पर्याय है । इसके लिए अपथिक शब्द भी नहीं चल सकता ।" उनके अनुसार हिन्दू धर्म का सारतत्व सर्वधर्म समन्वय है । इसीलिए वे लिखते हैं- "हिन्दू धर्म का स्वरूप : आचार सहिष्णुता, विचार स्वायतन्त्र, नीति धर्म के विषय में दृढ़ता । "वे कहते है "सभी धर्म सत्य के अंशावतार है ।" स्वधर्म का अर्थ प्रकट करते हुए विनोबा कहते हैं- "धर्म का अर्थ जरा समझ लेना चाहिए । हिन्दू मुस्लिम,

ईसाई आदि स्वधर्म के नाते हैं । इनके लिए 'धर्म' शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त स्वतंत्र कर्त्तव्य । वैसा स्वधर्म याने अपना विशेष कर्त्तव्य, हर मनुष्य का अलग-अलग होता है । परन्तु मनुष्य समाज का अंग है । इसलिए हम कहते हैं कि हर मनुष्य अपनी सेवा समाज को समर्पित करें ।"

विनोबा भावे सामान्यत: और सिद्धान्तत: गाँधी के धर्म सम्बन्धी विचारों को स्वीकार करते हैं, लेकिन विनोबा अपनी कतिपय मौलिक मान्यताओं और विश्वास के आधार पर गाँधी के विचारों को, सुव्यवस्थित करते हुए इस विचार का पर्याप्त विस्तार भी करते हैं । एक बार उन्होंने कहा था- "सच्चे हिन्दू में मुसलमान है और सच्चे मुसलमान में हिन्दू । केवल हमारी पहचान सही हो । जो परधर्म का आदर नहीं कर सकता वह धर्म का भी आचरण नहीं करता । धर्म का रहस्य समझने के लिए न कुरान पढ़ने की जरूरत है, न पुरान । केवल एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि 'सारे धर्म' हरि के चरण है' ।"

आचार्य विनोबा गाँधी से आगे जाकर 'व्यापक-प्रार्थना' और 'प्रार्थना सम्पूर्ण अनाग्रह' तक जाकर अपने पथ-निरपेक्षिता सम्बन्धी विचार को एक बडे क्षितिज तक फैलाते है । इस सन्दर्भ में अपना दृष्टिकोण रखते हुए वे कहते हैं कि - "हिन्दुस्तान बड़ा व्यापक देश है । व्यापक देश में हम काम करना चाहते हैं । तो वह भी व्यापक होना चाहिए । हिन्दुस्तान में जितनी विविधता है, उतनी दुनिया में भी है । प्रान्त-भेद, जाति-भेद इस तरह की विविधताएँ वहाँ भी हैं । इसलिए हम हिन्दुस्तान का मसला हल करते हैं, तो दुनिया का मसला भी तय कर सकते हैं । इसीलिए हमारी प्रार्थना भी व्यापक होनी चाहिए । प्रार्थना में हम ऐसे शब्द चुने जिनसे सबको अनुकूलता हो ।हमारे मन में यह आग्रह न रहे कि जिस प्रकार हम प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार सब करें । इसलिए हम आग्रह नहीं करते ।"

विनोबा की पंथ-निरपेक्षता की अवधारणा उनकी अपनी नैतिक एवं. जमीन के कारण व्यापक एवं सार्वग्राहय है । इस विशाल छत के नीचे समूची मानवता को एकत्रित कर संगठित, जा सकता है । विनोबा भावे अपने सर्वधर्म समभाव की पुष्टि के लिये अपने अनुभवजन्य प्रमाण को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि- "आत्म-सन्तोष के लिये जब मैं भिन्न-भिन्न धर्म पुस्तकें उलट रहा था, तब मैंने ईसाई, इस्लाम, जरथुस्ती यहूदी और हिन्दू धर्म की पुस्तकों को अपने सन्तोष-भर के लिए परिचय कर लिया था । मैं कह सकता हूँ कि इस अध्ययन के समय सभी धर्मो के प्रति मेरे मन में समभाव था ।"

विनोबा अपने धर्मनिरपेक्षता के विचारों को तर्कसम्मत और विज्ञानसम्मत आधार प्रदान करते हुए कहते हैं कि- "धर्म के दो विभाग हैं, एक आध्यात्मिकता, दूसरा है, साम्प्रदायिकता । विज्ञान युग में धर्म की आध्यात्मिकता टिकेगी, साम्प्रदायिकता खत्म होगी । धर्म की संकुचित साम्प्रदायिकता ही धर्म के सच्चे तत्व को फैलने नहीं देती । उसके दिन अब लद गये हैं ।

विनोबा पंथनिरपेक्षता अथवा धर्मनिरपेक्षता के साथ भारतीय संस्कृति के अनुकूल 'सर्वधर्म' समभाव' जैसे शब्द का विकल्प प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि- "हमारे व्रतों में सहिष्णुता के नाम से परिचित व्रत को यह नाम दिया गया । सहिष्णुता अंग्रेजी शब्द 'टालरेशन'

का अनुवाद है । मुझे यह पसन्द न था। पर उस समय दूसरा शब्द नहीं था । काका साहब को भी यह नहीं जंचा । उन्होंने 'सर्वधर्म-आदर' शब्द सुझाये । मुझे वह भी नहीं जँचा ।

दूसरे धर्मो को सहने की भावना में उनमें न्यूनता मानी जाती है । आदर में कृपा का भाव आता है । अहिंसा हमें दूसरे धर्मो के प्रति समभाव सिखाती है । आदर और सहिष्णुता अहिंसा की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है । दूसरे धर्मो के प्रति समभाव रखने के मूल में अपने धर्म की अपूर्णता स्वीकार भी आ ही जाती है ।"

उपर्युका सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य विनोबा भावे के पंथनिरपेक्षता सम्बन्धी विचार अतिव्यापक एवं गढ है । आचार्य भावे के इन विचारों में भारत की समन्वय संस्कृति, नैतिकता और वैज्ञानिकता के अतिरिक्त आध्यात्मिकता का प्रबल पक्ष विद्यमान है ।

10.5 मानवाधिकार पर विचार

आचार्य भावे 20 वीं शताब्दी के राजनीतिक चिन्तक थे । यद्यपि उन्होंने आधुनिक राजनीति विज्ञान के राजनीतिशास्त्री की भाँति नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन तो नहीं किया, किन्तु फिर भी राजनीति विज्ञान के मूलभूत प्रश्नों पर उनके विचार और संकल्पनाएँ उनके चिन्तन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । बापू के सम्पर्क में आने के पश्चात् विनोबा की आध्यात्मिक चेतना का विकास और विस्तार नये क्षितिजों तक जा पहुँचा । अपनी नैतिक एवं आध्यात्मिक निष्ठाओं के कारण विनोबा का चिन्तन जहाँ एक ओर गहन हुआ वहीं दूसरी तरफ मानवीय मूल्यों से सम्बन्धित तत्वों को उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से स्पष्ट कर अभिनव स्वरूप प्रदान किया ।

आचार्य भावे के राजनीतिक चिन्तन और दर्शन में मानवाधिकारों सम्बन्धी विचार उनकी आध्यात्मिक और दार्शनिक मान्यताओं में यत्र-तत्र बिखरे पडे हैं । विनोबा केवल मानवाधिकार ही नहीं अपितु मानवतावाद के भी प्रबल प्रस्तोता हैं । मानवाधिकार के विषय में विनोबा अपनी कृति-सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र में 'सर्वोदय' शब्द का स्पष्टीकरण विषयक शीर्षक में गाँधीजी का सन्दर्भ देते हुए वे लिखते हैं कि - "गाँधीजी ने रस्किन की' अस्तु दिस लास्ट' नामक पुस्तक का अनुवाद किया है । उसका उन्होंने सर्वोदय नाम रखा था । उसमें बतलाया गया है कि ऊँच औरी नीच सबके मानवीय अधिकार समान हैं ।"

उपर्युक्त स्पष्टीकरण में यद्यपि विनोबा ने गाँधीजी का सन्दर्भ दिया है, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि गाँधी के पश्चात् सर्वोदयी समाज की स्थापना और सर्वोदय के माध्यम से एक नये विश्व अभिरचना की संकल्पना विनोबा ने की । गाँधी के पश्चात् विनोबा ही सर्वोदय के अधिकारिक प्रवक्ता रहे है ।

विनोबाजी आत्मज्ञान को आधार बनाकर मानव मात्र की समानता के आधार पर मानवाधिकारों की वकालत करते हैं । एक स्थान पर वे कहते हैं कि - "मैं कौन हूँ यह सवाल है । हमारे पूर्वजों ने कह दिया- 'मैं ब्रह्म हूँ, इसको वेदान्त कहते हैं और मैं ब्रह्म हूँ तो मेरी कोशिश होनी चाहिए कि सबके साथ समान व्यवहार करूँ ।"

आत्मज्ञान के ध्येय की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए विनोबा मानवधिकारों का पक्ष मजबूत करते हैं । इस विषय में उनका विचार हैं- 'हमने धर्म-साहित्य का जो कुछ अध्ययन किया है, उस पर से ही यही समझ पाए हैं कि अभी तक मानव समाज को आत्मज्ञान का छोटा-सा अंश ही हासिल हुआ है । यदि आत्मज्ञान हुआ- 'मैं और वह एक है 'तो यह व्यापक आत्मज्ञान होगा।''

विनोबा विश्व की कल्पना की है । विश्व मानव की यह कल्पना विनोबा के मानवाधिकार संबंधी विचारों का दर्पण है । वे चाहते थे कि स्त्रियों को मनुष्यत्व के आधार पर नागरिकत्व (मानवाधिकार) प्राप्त होना चाहिए इस विषय ।

विनोबाजी की लोकनीति नागरिकों को एक-दूसरों की स्वतन्त्रता का अभिभावक मानती है तथा लोकनीति में हर नागरिक अपने कर्त्तव्य के प्रति और पड़ोसी के अधिकार के प्रति जाग्रत रहता है ।

आचार्य विनोबा के मानवाधिकार सम्बन्धी विचार और मानवतावाद में उनका अटूट विश्वास इस कथन में परिलक्षित होता है- "हम विश्व-मानव हैं, किसी देश विशेष के अभिमानी नहीं, किसी धर्म विशेष के आग्रही नहीं, किसी सम्प्रदाय या जाति विशेष के बन्दी नहीं । विश्व के सद्विचार-उद्यान में विहार करना हमारा स्वाध्याय होगा । सद्विचारों को आत्मसात् करना हमारा अभ्यास होगा और विरोधों का निराकरण करना हमारा धर्म होगा । विशेषताओं में सामंजस्य करके विश्व वृत्ति का विकास करना हमारी वैचारिक साधना होगी ।"

10.6 शान्ति सेना और विश्व शान्ति संबंधी विचार

20 वीं शताब्दी के राजनीतिक चिन्तक के रूप में विनोबा भावे भी मानवीय मूल्यों तथा विश्व शान्ति के प्रति गम्भीर तथा चिंतित थे । 'शान्ति सेना और विश्व शान्ति' के विचार के मूल में विनोबा अपने राजनीतिक तथा आध्यात्मिक गुरू तथा अपने उपास्य महात्मा गाँधी से प्रभावित थे । गाँधीजी के अवसान को पश्चात् विनोबा ने शान्ति सेना और विश्व शान्ति के विचार को मानव समाज के समक्ष अपनी पूर्ण क्षमताओं के सत्य प्रस्तुत किया । विनोबा के शान्ति सेना और विश्व शान्ति सम्बन्धी विचार केवल चिन्तन, मनन के लिए ही नहीं अपितु व्यवहार की दृष्टि से भी निःसंदेह स्तुत्य है । विनोबा ने बापू के विचार-बीज को साकार और मूर्तमान स्वरूप प्रदान कर अपनी क्षमता और प्रतिभा का परिचय दिया, किन्तु वे विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि- "शान्ति सेना का विचार पुराना है । यह शब्द बापू का है और कल्पना भी उन्हीं की है । इसके लिए उन्होंने कोशिश भी की थी । वे शान्ति सेना के पहले सेनापति और सैनिक भी थे । सेनापति के नाते उन्होंने 'करो या मरो' का हुक्म दिया और सैनिक के नाते उस पर अमल किया।"

गाँधी का विचार-बीज केरल राज्य में 23 अगस्त, 1957 को कण्णनूर जिले के ग्राम मंजेश्वरम् में शान्ति सेना की स्थापना के साथ साकार हो उठा । इस अवसर पर विनोबा ने अपने वक्तव्य में कहा था- "आज हमारी केरल यात्रा का अन्तिम दिन है । यही अभी शान्ति सेना की स्थापना का गम्भीर प्रसंग बना है । यह शान्ति सेना क्या होगी, यह आप लोगों को

सुनाया गया । आज यहाँ आठ लोगों ने शान्ति सेना की प्रतिज्ञा ली है । इसका अर्थ है कि शान्ति सैनिक अपना जीवन और प्राण जनसेवा में अर्पित करेंगे ।"

शान्ति सेना शब्द ऊपर से परस्पर विरोधाभासी एवं विपरीत प्रकृति के दिखलाई पडते हैं । एक प्रश्न के उत्तर में विनोबाजी ने स्पष्ट किया था कि- "इस प्रश्न के मूल में 'सेना' शब्द के अर्थ के : बारे में अज्ञान है । 'सेना' शब्द वेद में आता है । 'असेन्याव: पणयोस वचांसि' हे कृपणों, तुम्हारा बोलना असैन्य है, सेनारहित है । यानी तुम्हारी वाणी में ताकत नहीं या बोलने में संगति नहीं है । 'सेना' शब्द का अर्थ मर-मिटने की तैयारी से इकट्ठे हुए लोग, जिनमें संगति होती है ।'

दोनों शब्दों को एक साथ रखने का एक विशेष महत्त्व है, जिसे स्पष्ट करते हुए विनोबा का कहना है कि- "नाम शान्ति सेना ही अच्छा है । सेना में जो गुण होते हैं, उन्हें हम चाहते हैं और उसके दोषों के विरूद्ध हमारा- 'शान्ति' शब्द होगा । इस तरह दोनों शब्द मिलकर समाज के सामने एक परिशुद्ध विचार आ जायेगा ।"

गाँधीजी और स्वयं विनोबा की यह दृढ़ मान्यता और विश्वास था कि विचार ही सुन्दर क्यों न हो जब तक उस विचार को व्यवहार अर्थात् आचरण में सुव्यवस्थित एवं संगठित रूप में ढाला जाय तब तक उसकी सार्थकता सदैव संदिग्ध रहती हैं । इसी मान्यता के आधार पर शान्ति सेना का संगठन तैयार किया गया । शान्ति सेना के संगठन पर प्रकाश डालते हुए श्री नारायण देसाई लिखते हैं कि- "गाँधीजी ने एक बार कहा था कि संगठन ही अहिंसा की असली कसौटी में अहिंसा खरी उतर जाय, तो अहिंसा की एक ऐसी शक्ति प्रकट हो सकेगी, जिससे संगठित, हिंसा का मुकाबला हो सकेगा ।"

विनोबा का शान्ति सेना यह ब्रह्मास्त्र किसी 'वाद' या पंथ का धोतक न होकर विश्व कुटुम्ब की ओर बढ़ने का एक सुन्दर और सबल माध्यम है । इस विषय पर प्रकाश डालते हुए विनोबा का विचार है- "एक प्रेरणा काम कर रही है । लेकिन हम लोग केवल प्रेरणाशील नहीं, चिन्तनशील भी हैं । इसलिए कुछ लोगों को लगता है कि पीला साफा वगैरह पहनने से एक पंथ बन सकता है । मेरा ख्याल है कि पंथ का जितना बैरी मैं हूँ उतना और कोई नहीं होगा । यद्यपि मैं निर्वैर हूँ फिर भी पंथ का बैरी हूँ।'

विनोबा के ग्राम दान का विचार जैसे-जैसे बढता गया और मूर्त स्वरूप ग्रहण करता गया वैसे-वैसे शान्ति सेना सम्बन्धी उनके विचारों में जहाँ एक ओर गति आयी वहीं उसका कैनवास विस्तृत होता चला गया । आचार्य विनोबा स्वयं इसे इन शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं- ''मुझे लगा कि ग्रामदान और ग्रामराज्य तो हो चुका है, अब ग्रामराज्य के रक्षण के लिए हनुमान चाहिए । जो ग्राम राज्य बन चुका, उसके रक्षण के लिए देश में शान्ति सेना बननी चाहिए ।"

शान्ति सेना का विचार विनोबा को गाँधी की देन था। गाँधी स्वयं जीवन भर सत्य शोधन, अहिंसा शान्ति एवं एक समतावादी विश्व मानव समाज के प्रति प्रयत्नशील होकर प्रयोग करते रहे । विश्व शान्ति के लिए गाँधीजी जिन उपायों को मानते थे, वे यों हैं-

1. व्यक्तिगत हृदय परिवर्तन और सत्याग्रह ।

2. पंच-फैसले से निर्णय ।
3. कानूनी उपायों से सन्धियाँ आदि ।
4. लीग ऑफ नेशन्स या संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाएँ ।
5. विश्व में एक राज्य की कल्पना ।
6. निःशास्त्रीकरण ।
7. शान्ति दल की स्थापना ।

विश्व शान्ति आज मानवीय सभ्यता की प्रथम आवश्यकता है और शान्ति सेना आस्था और विश्वास का प्रतीक है । शान्ति सेना विश्व शान्ति में सहायक है, ऐसा विनोबा का विश्वास है । शान्ति आज के युग की आवश्यकता हैं, इस पक्ष में दलील देते हुए विनोबा लिखते हैं- "आज सारी दुनिया की मूल समस्या शान्ति स्थापना की है । शायद ही किसी जमाने में दुनिया को आज जैसी शान्ति की भूख रही हो । जो देश कल तक हिंसा के विचार में डूबे हुए थे, वे आज हिंसा से मुक्ति पाना चाहते हैं ।

आचूड गाँधीवादी होने के कारण विनोबा की आस्था और श्रद्धा का मूल केन्द्र अहिंसा और शान्ति रहा । शान्ति के प्रति विनोबा की आस्था समय के साथ बलवती होती गयी । विनोबा ने कहा था- "जिन देशों में खूनी क्रान्ति हुई है, वे भी आज शान्ति चाहते हैं । इसका कारण क्या है? अभी तक शस्त्रास्त्र मानव के हाथ में थे, लेकिन अब वे उसके हाथ में नहीं, मानव ही उनके हाथ में पहुँच गया है । कहीं अगर विश्व युद्ध की आग लग जाय तो कोई भी उसका नियन्त्रण नहीं कर सकेगा ।"

विनोबा की वैचारिक अवधारणाएँ संकुचित और उग्र राष्ट्रवाद से परे 'अंतराष्ट्रीवाद' का प्रतिबिम्ब थी । आध्यात्मिक पुरूष होने के नाते 'आत्मा' के एकता और उसकी अमरता में उनका अटूट विश्वास था और यही कारण है कि मानव निर्मित दीवारें उनके लिए असहय होकर पीडादायक थी उनके अनुसार "छोटे-छोटे अभिमान रहेंगे, तो एक प्रदेश दूसरे प्रदेश के साथ एक भाषा वाले दूसरी भाषा वाले के साथ इसी तरह धर्म-पंथ वाले अलग-अलग देश आपस में लडेंगे । लडने में भयानक शस्त्रों का उपयोग होगा । कुल दुनिया का खात्मा होगा । इसलिए इसके आगे संकुचित प्रेम नहीं रहेगा, यह सोचकर हमने 'जय-जगत्' मंत्र आपके सामने रखा ।"

विश्व में शान्ति विभिन्न साधनों की चर्चा करते हुए एक सुन्दर रूपक बाँधकर विनोबा 'विश्व-शान्ति' के प्रति अपनी वैचारिक निष्ठाओं को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्ति देते हैं- "शान्ति पानी के समान होती है । उसके दो उपयोग हो सकते हैं । फसल उगाने के लिए पानी की जरूरत होती है । पानी से मनुष्य की प्यास बुझती है । तो जिसको फसल उगाने के लिये पानी की जरूरत है, उसे एक प्रकार की जरूरत है। । जिसे प्यास लगी है, उसे पानी की हमेशा के लिए जरूरत है । उसके पास पानी की स्वतन्त्र कीमत है । इसलिए दुनिया में तब तक शान्ति नहीं होगी जब तक शान्ति की स्वतन्त्र प्यास मानव को न लगे ।"

10.7 भूदान आन्दोलन

विनोबाजी ने पूर्णत: अहिंसात्मक साधनों से आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का निराकरण करने एवं सर्वोदय समाज की स्थापना करने के महान् उद्देश्य के लिए अपने-आपको समर्पित कर दिया । गाँधी के अवसान के पश्चात् देश में जो निराशा निर्मित हुई थी उसे दूर करने का कार्य काफी सीमा तक आचार्य भावे ने किया । गाँधी के रचनात्मक कार्यकमों के विषय में भी निष्ठावान में 'निष्ठा कायम', लेकिन उत्साह गायब ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई । आचार्य भावे ने पहले भूदान और उसके पश्चात् ग्रामदान, प्रखण्डदान से प्रारम्भ कर जीवनदान, श्रमदान, सम्पत्तिदान, बुद्धिदान आदि का संदेश गांव-गांव और प्रत्येक घर में 'देश में और कार्यकर्त्ताओं मे एक नई चेतना का संचार किया । गाँधी की अन्तिम वसीयत में निर्धारित रूपरेखा । के अनुसार सर्वोदय समाज का निर्माण करने का निर्णय लिया गया । "विनोबाजी की प्रेरणा से मार्च, 1948 में भारत के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सेवाग्राम में सम्मेलन हुआ और सर्वोदय का कार्य सफलतापूर्वक । बढ़ाने के लिए सर्वोदय समाज की स्थापना हुई । 'अखिल भारत सर्व सेवा-संघ' के निर्माण के पश्चात् सर्वोदय सम्मेलन संगठित करने के उदेश्य से "प्रथम सम्मेलन मार्च, 1941 में इन्दौर के निकट राऊ (म.प्र.) में हुआ, दूसरा ओगूल (उडीसा) में और तीसरा, अप्रेल, 1951 में शिवरामपल्ली (हैदराबाद) आक प्रदेश में हुआ ।

विनोबा स्वीकारते हैं कि, "गाँधीजी के जाने के बाद जब मैं सोचता रहा कि अब मुझे क्या करना चाहिये तो मैं निर्वासितों के काम में लग गया । परन्तु यहाँ के कम्युनिस्टों के प्रश्न के बारे में मैं बराबर सोचता रहा । "इस विषय में वे आगे लिखते हैं कि- "कम्युनिस्टों का तरीका चाहे गलत क्यों न हो, इनके जीवन में कुछ विचार का उदय हुआ हैं और जहाँ विचार का उदय होता है, वहाँ सिर्फ पुलिस से प्रतिकर नहीं हो सकता ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विनोबा की मान्यता थी कि विचार का प्रतिकार करने का श्रेष्ठ तरीका विचार ही हो सकता है और इस प्रकार विनोबा के अवचेतन में आर्थिक-सामाजिक समानता स्थापित करने के लिए 'भूदान-यज्ञ' जैसे क्रान्तिकारी आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार होती चली गई ।

विचार शोधन की प्रकिया में विनोबा का ध्यान भारतीय संस्कृति के 'चरैवेति' की तरफ गया और फिर समूचा चित्र ही बदल गया । विचार शोधन के प्रमुख साधन 'चरैवेति' की महता और गुणों के विषय में विनोबा ने अपने मनोभावों को स्पष्ट करते हुए कहा- "शंकराचार्य, महावीर, बुद्ध, कबीर, चैतन्य, नामदेव जैसे लोग हिन्दुस्तान में घूमे और पैदल ही घूमे । वे चाहते तो घोडे पर भी घूम सकते थे: परन्तु उन्होंने त्वरित साधन का सहारा नहीं लिया: क्योंकि वे विचार का शोधन करना चाहते थे और विचार शोधन के लिए सबसे उत्तम साधन पैदल घूमना ही है । इस जमाने में वह साधन एकदम सूझता नहीं, परन्तु शान्तिपूर्वक विचार करें तो सूझेगा कि पैदल चले बिना चारा नहीं ।

विनोबाजी ने तीसरे सर्वोदय सम्मेलन में भाग लेने के लिए सेवाग्राम से शिवरामपल्ली (अन्ध प्रदेश) तक 300 मील की दूरी पैदल ही तय करने का अद्वितीय निर्णय लिया । 7

मार्च, 1957 को सेवाग्राम से सर्वोदय यात्रा का शुभारम्भ हुआ तथा ठीक 30 दिन पश्चात् विनोबा सम्मेलन स्थल शिवरामपल्ली पर यथा समय पहुँच गये । पदयात्रा के महत्व को बताते विनोबा ने कहा कि- ' 'पदयात्रा से देश का सच्चा दर्शन होता है । जनता के साथ सम्पर्क होता है और सर्वोदय का सन्देश घर-घर पहुँचाया जा सकता है । "प्रतिदिन दस-बारह मील पैदल चलने के बाद गांव-गांव में लोगों को सर्वोदय का सन्देश सुनाते हुए ठीक 30 वें दिन सम्मेलन स्थल (शिवरामपल्ली) पर पहुँचें । विनोबा ने सर्वोदय सम्मेलन में इस बात को उद्घाटित किया कि गांव की हालत की जो परिकल्पना मेरे मन में थी, उससे भी बुरी हालत आज भारत के गांव की है । जरूरत है गांवों की दशा सुधारने की और इसके लिए लाखों कर्त्तव्यनिष्ठ लोक-सेवकों की आवश्यकता है । उन्होंने कहा कि सेवक ऐसे हों जो "अन्तःशुद्धि बहिर्शुद्धि, श्रम:शान्ति समर्पणम्" के सिद्धान्त के हों ।

'आचार्य भावे ने 15 अप्रेल, 1951 रामनवी को तेलंगाना की पदयात्रा प्रारम्भ कर दी । उनका पहला पड़ाव ''नरसिंही'' गांव हुआ । 18 अप्रेल को वे "पोचमपल्ली" पहुँचे । वहाँ वे ए अनुसूचित जाति के लोगों से मिले और उनकी दारूण दुःखों की कहानी सुनी । अनुसूचित जाति के लोगों ने विनोबा से कहा कि यदि उन्हें जोतने के लिए कुछ भूमि मिल जाय तो वे लोग उस पर खेती कर अपना निर्वाह कर लेंगे । विनोबा ने सायं सभा में प्रश्न किया- "भाइयों क्या आप में से ऐसे कोई हैं जो अपने भाइयों को कुछ भूमि देंगे, ताकि वे भूखे न मर जाये ।इनको केवल अस्सी एकड़ भूमि की आवश्यकता है । विनोबा क इस मांग को एक भाई श्री रामचन्द्र रेड्डी ने सहज तथा सहर्ष भाव से स्वीकार कर लिया और बड़ी विनम्रता से कहा- "मैं एक सी एकड़ भूमि दान में देता हूँ ।" विनोबा ने यह जमीन दान स्वरूप स्वीकार कर हरिजन भाइयों को बांट दी । यहीं से पहली बार 18 अप्रेल, 1951 को 'भूदान-गंगा' प्रवाहित हो गयी ।

'भूदान-आन्दोलन' में दान शब्द अपने प्रचलित अर्थ में प्रयुक्त न होकर एक विशिष्ट अर्थ के रूप में प्रयुक्त हुआ हैं । आचार्य भावे इस पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- "भूदान-यज्ञ में इसी प्रकार की कल्पना है । जमीन के मालिक स्वामी नहीं हैं । वे कन्या के पिता की ही भाँति प्रतिपालक मात्र हैं । सुपात्र देखकर उन्हें यह जमीन सम्प्रदान करनी होगी । ऐसे सुपात्रों की खोज भी करनी होगी । इस मामले में स्वामित्व की कल्पना कहीं नहीं है ।"

स्वातन्त्रयोत्तर भारत में संवैधानिक मार्ग के अतिरिक्त आचार्य विनोबा भावे ने प्रेम, अहिंसा के माध्यम से आर्थिक-सामाजिक समता स्थापित करने का बीडा उठाया और समूची दुनिया के सामने एक सुन्दर मिसाल प्रस्तुत की । विनोबा का मार्ग पूर्णत: अहिंसक था । विनोबा इस विषय में कहते हैं कि- "यह भूदान एक अहिंसा का प्रयोग हैं, जीवन परिवर्तन का प्रयोग है मैं तो निमित्त मात्र हूँ । आप भी निमित्त मात्र हैं । परमेश्वर आप लोगों से और मुझसे काम कराना चाहता है । वह काल-पुरूष की, परमेश्वर की प्रेरणा है । इसलिए मैं मॉग रहा हूँ तब आप लोग दीजिए और दिल खोलकर दीजिए । जहाँ लोग एक फुट जमीन के लिए झगडते हैं, वहाँ मेरे कहने से सैकडों-हजारों एकड जमीन देने के लिए तैयार हो जाते हैं । तो आप समझिये कि यह परमेश्वर, की प्रेरणा है ।

भूदान आन्दोलन पूर्णत: एक नैतिक आन्दोलन है जो विचार परिवर्तन तथा हृदय परिवर्तन की शक्ति में विश्वास रखता है । आचार्य भावे का पूर्ण विश्वास था कि मानव को अच्छाइयों को जाग्रत किया जा सकता है और एक साम्य सर्वोदयी समाज की संरचना को आकार भी दिया जा सकता है । विनोबाजी का आग्रह था कि विचार परिवर्तन के माध्यम से जो अहिंसक क्रान्ति जन्म लेगी वह क्षणभंगुर नहीं बल्कि स्थायी होकर एक कालजयी समाज व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करेगी । विनोबा ने इस कालजयी समाज की स्थापना का शस्त्र भूदान-यज्ञ आन्दोलन को बनाया । विनोबा ने इस कालजयी समाज की स्थापना का शस्त्र भूदाम-यज्ञ आन्दोलन को बनाया । विनोबा ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वस्तुस्थिति से सहमत होने के पश्चात् ही इस आन्दोलन में सहभागी बनें । वे कहते हैं कि हमारे तीन सूत्र हैं-

(1) ''हमारी विचार समझने पर अगर कोई दान नहीं देता है, तो उससे हम दु:खी नहीं होते हैं: क्योंकि हम मानते हैं कि जो आज नहीं देता है, वह कल देने वाला है । विचार बीज उगे बगैर नहीं रहता ।

(2) हमारा विचार समझकर अगर कोई देता है तो उससे हमें आनन्द होता है: क्योंकि उससे सब जगह सद्भावना पैदा होती है ।

(3) हमारा विचार समझे बगैर किसी दबाव के कारण अगर कोई देगा तो उससे हमें दुःख होगा हमें किसी तरह जमीन बटोरना नहीं है, बल्कि साम्ययोग और सर्वोदय की वृत्ति निर्माण करनी है।''

विनोबा ने कृषि प्रधान राष्ट्र में सामाजिक समता स्थापित करने के लिए, विश्व शान्ति के लिए एक अहिंसक अस्त्र खोज निकाला और यही अस्त्र'भूदान-यज्ञ आन्दोलन' के रूप में सामने आया। आचार्य विनोबा भावे की सुदृढ मान्यता था कि ईश्वर ने जब सभी मनुष्यों के लिए अपने पंचभूत सरलता से समान रूप में उपलब्ध करवाये है तो किसी भी व्यक्ति को भूमिहीन रखना प्रकृति के नियमों का न केवल उल्लंघन है अपितु अन्याय भी । इस अन्याय की समाप्ति का एक ही सुन्दर हल यह है कि भूमि का असमान वितरण समाप्त किया जाय। अहिंसक और शान्तिपूर्ण मार्ग से भूमि का समान वितरण किया जाकर सर्वोदय समाज की रचना की जाय । इस प्रकार भूदान आन्दोलन सर्वोदय समाज की स्थापना का एक रचनात्मक हथियार बन जाता है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने अपनी अनुपम भाषा में कहा है- ''सूर्य घर-घर जा पहुँचता है । उसकी जितनी रश्मि एक राजा पाता है, उतनी ही एक मेहतर भी । भगवान् कभी भी अपनी चीज का असमान रूप से वितरण नही करता । यदि ईश्वर ने हवा, जल, प्रकाश और गगन के वितरण में भेदभाव नहीं किया है, तो यह कैसे सम्मव है कि उसने भूमि का सब लोगों में बराबर-बराबर वितरण न कर केवल कुछ लोगों के हाथ में उसे छोड़ दिया ।

भूदान-आन्दोलन की औचित्यपूर्णता को सिद्ध करने के सन्दर्भ में विनोबा ने । तनिकेला नामक गांव में कहा था- ''प्राचीन काल में, जब भी देश में अशान्ति होती थी, तो हमारे पूर्वज यज्ञ किया करते थे । मैं भी एक यज्ञ करना चाहता हूँ इसलिए मैंने इस भूदान को आरम्भ किया है । मैंने बहुत से लोगों भूमि का दान करने के लिए कहा है । इस यज्ञ में प्रत्येक व्यक्ति को भाग लेना चाहिए, क्योकि यह जनता के उत्थान के लिए है ।

आचार्य विनोबा भावे ने 'भूदान-आन्दोलन' को 'प्रजासूय-यज्ञ' की उपमा देते हुए आपने कहा कि जिस प्रकार राजसूय यज्ञ से राजा का कल्याण होता है उसी प्रकार भूदान-आन्दोलन एक प्रजासूय यज्ञ है, जिससे प्रजा के कल्याण का आविर्भाव होगा। अपनी अपील में विनोबाजी ने कहा था- "मेरे भारतवासी बंधुजनों,आपसे मेंरी प्रार्थना है कि आप इस प्रजासूय यज्ञ में अपना भाग दें और इस काम को सफल करके आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा की प्रतिष्ठा करें । मेरे इस काम के लिए तिहरा दावा है । एक तो यह कि यह भारतीय सभ्यता के अनुकूल है, दूसरा इसमें आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति का बीज है और तीसरा इससे दुनिया में शान्ति स्थापना के लिए मदद मिल सकती है ।"

आचार्य विनोबा का विश्वास और मान्यता थी कि सर्वोदय की सफलता के लिए इस रचनात्मक माध्यम को पूर्णत: सिद्ध करना आवश्यक है । भूदान जैसे कार्यक्रम की सफलता राज्य सत्ता के स्थान पर जनशक्ति पर निर्भर करती है । उन्होंने कार्यकर्ताओं से आहवान करते हुए कहा था- "भूदान-यज्ञ में हम साक्षात् नारायण की सेवा करते हैं । काल्पनिक सेवा या मूर्ति की पूजा नहीं करते हैं । बल्कि जनता में हम नारायण को देखते हैं और इसमें हम साक्षात् नारायण की ही सेवा करते हैं । इसलिए जो भूदान के कार्यकर्ता हैं, वे यह दावा कर सकते हैं कि हमने भक्ति की राह ली हैं ।"

आचार्य विनोबा ने भारत में भूदान आन्दोलन के लिए 1947 तक वर्ष नियत करते हुए पाँच करोड़ एकड़ का लक्ष्य रखा था किन्तु वह लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ । 7 जून,1970 को विनोबा पवनार के ब्रह्म विध्यामन्दिर पहुँचे और 7 अक्टूबर,1970 को क्षेत्र संन्यास की घोषणा कर दी और इस प्रकार एक अध्याय की समाप्ति हुई । भूदान आन्दोलन जितने व्याप एवं विशाल स्तर पर चलाया गया उतनी सफलताएँ उसे प्राप्त नहीं हुई । विनोबाजी ने जो लक्ष्य निर्धारित किए या था उस लक्ष्य का दस प्रतिशत ही प्राप्त हो पाया । इतने पर भी आन्दोलन की महता और उसका औचित्य समाप्त नहीं होता । विनोबा ने आर्थिक-सामाजिक समता स्थापित करने का जो मार्ग प्रशस्त किया था वह अपने उच्चतम मूल्यों के कारण वर्तमान में भी अद्वितीय है । मानव मे रक्षार्थ यही अहिंसक साधन आज भी प्रासंगिक है ।

विनोबा के पथ-प्रदर्शक तथा भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के अपने चिन्तन में ग्राम स्वराज्य का जो ताना-बाना बुना था वही, गाँधीजी के अवसान के पश्चात् विनोबा के चिन्तन में अभिव्यक्त हुआ: और 'ग्रामदान' आन्दोलन जैसी तूफानी और क्रान्तिकारी कल्पना साकार रूप लेती चली गयी । गाँधीजी कहते हैं- "ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक पूरा गणतन्त्र हो । वह अपनी नितान्त आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसियों पर निर्भर न रहें, लेकिन दूसरी ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, जिन्हें वह स्वयं पूरी न कर सके, दूसरों पर पर२यरावलम्बित रहे । इस प्रकार प्रत्येक गांव को सबसे पहले यह देखना होगा कि वह अपनी जरूरत के अनाज और कपडे के लिए कपास स्वयं पैदा करे। गांव में पशुओं के लिए चरागाह हो और बच्चों तथा वयस्क लोगों के लिए मनोरंजन के साधन और खेलकूद के मैदान हों । इसके बाद अगर जमीन बचे, तो खाद्य वस्तुओं के अलावा ऐसी उपज उपजायी जा सकती है, जिन्हें द्रव्य उपज कहते हैं । लेकिन गांजा, तम्बाकू या अफीम जैसी चीजें नही उपजायी

जायेंगी । गांव में एक नाट्यगृह, एक शाला और एक सार्वजनिक सभा भवन होगे । गांव में स्वच्छ पानी की व्यवस्था होगी । यह कुओं और तालाबों पर नियन्त्रण रखकर किया जा सकता है । पूरी बुनियादी शिक्षा अनिवार्य कर दी जायगी । जहां तक सम्भव होगा हर एक काम सहकारिता के आधार पर किया जायगा ।

भारतीय साम्यता और संस्कृति के प्रतिनिधि मनीषी तथा सन्त विचारक आचार्य विनोबा भावे ने गाँधीजी के इन मूल्यों का सदैव खुले हृदय से स्वागत करते हुए उन्हें आत्मसात् किया । गाँधीजी के अचानक अवसान के कारण जो शून्य को भरने तथा रचनात्मक कार्यकमों को अमली जामा पहनाने का उत्तरदायित्व विनोबा पर आ गया । विनोबा ने इस दायित्व को बखूबी निभाया ।

18 अप्रेल,1951 को पोचमपल्ली में जब पहली बार भूदान आन्दोलन की गंगा प्रवाहित हुई तो फिर उसने रूकने का नाम नहीं लिया और फिर विनोबा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा । 'भूदान गंगा' जब अपना नया इतिहास रचती हुई अबाध गति से आगे बढ रही थी, तभी इसमें से 'ग्रामदान' जैसी एक और । पवित्र धारा प्रस्फूटित हुई, जिसने शान्ति, प्रेम, अहिंसा और सच्चे स्वराज्य की अमृत वर्षा की । इस संदर्भ में विनोबा का कहना है कि- "भूदान आन्दोलन की यह एक विशेष बात है कि इसमें से समग्र ग्रामदान आरम्भ हुआ है । प्लान आन्दोलन का यह अन्तिम कदम है । उसका कदम था, गांव में कोई भी भूमिहीन नहीं रहना चाहिए और अन्तिम कदम यह है कि गांव में कोई भी भूमि मालिक न रहना चाहिए । जमीन और सम्पति का मालिक परमेश्वर है ।" उन्होंने एक नया सूत्र वाक्य दिया- "सबै भूमि गोपाल की ।"

आचार्य विनोबा भावे का स्पष्ट विचार था कि 'ग्रामदान' हो जाने भर से ही 'ग्रामदान' और स्वराज्य की स्थापना होकर सर्वोदय नहीं होगा, अपितु इसे सुविचारित ढंग से कार्यरूप में परिणत होगा तभी वास्तविक स्वराज्य का सपना साकार हो पाएगा । इस हेतु आचार्य विनोबा का विचार है कि 'ग्रामदानी' ग्रामों में मुख्यत: हमें चार महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे । प्रारम्भिक तौर पर उठाए गये चार महत्वपूर्ण कदमों पश्चात् ही आगे का मार्ग सुगम हो पाएगा । इस सम्बन्ध में विनोबा कहते हैं-

1. "जब जमीन बँटेगी तब किसानों को जमीन की पूर्ति में और भी मदद देनी ।
2. खेती की पूर्तिस्वरूप ग्रामोद्योग खड़े करने होगें । ग्रामोद्योग का काम जमीन के बँटवारे के बिना नहीं फल-फुल सकता । जमीन का बँटवारा और ग्रामोद्योग, दोनों मिलकर एक विचार या सर्वोदय होता है ।
3. हमें गांव-गांव में तालीम शुरू करनी होगी । हमारी तालीम ग्रामोद्योग प्रधान, और व्यवहारिक होगी । गांव वालों को उद्योग का ज्ञान होगा, ताकि वे उद्योगों में प्रवीण बनें ।
4. गांव-गांव में आरोग्य की योजना शीघ्रता से करनी होगी । इसके बाद कई करने होंगे । लेकिन ये चार मुख्य काम हैं । नागरिकों को इसमें सहयोग देना चाहिए ।

आचार्य विनोबा भावे ग्रामराज्य का पिरामिड खडा किया और माना कि इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि इससे स्वराज्य की स्थापना हो पाएगी । समाजवादी अधिनायकतन्त्र तथा

पूँजीवादी लोकतन्त्र के जो दोष प्राय: देखने को मिलते हैं उनसे मुक्ति प्राप्त होगी । सत्ता का प्रवाह ग्राम इकाई से ऊपर की ओर जाएगा तथा सम्पूर्ण व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण के लाभ दिखलाई पडेंगे । ग्राम इकाई पर खडी राजनैतिक संरचना अधिक टिकाऊ, उपयोगी तथा पारदर्शी होगी । इस राजनैतिक सरंचना में समाज एक बड़े संयुक्त 'परिवार' के सदृश हो जायेगा । व्यक्तिगत मालकियत की समाप्ति के कारण एक कुटुम्ब योग की प्रवृति को बढ़ावा मिलेगा । कालान्तर में यही प्रवृत्ति विश्व कुटुम्ब योग को जन्म देगी और इस प्रकार जिस मानव समाज का निर्माण होगा उसका एक छोर गांव होगा और दूसरा छोर दुनिया ।

विनोबा ग्रामदान आन्दोलन के माध्यम से जिस ग्रामराज्य अथवा स्वराज्य की प्रेरणा देते हैं वहीं कालान्तर में जाकर इस समूची व्यवस्था को शासन मुक्त व्यवस्था के रूप में परिवर्तित कर देती है । इस प्रकार सम्पूर्ण स्वावलम्बी व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त हो जाता है । विनोबा ने कहा, "ग्राम-स्वराज्य का सही अर्थ यह है कि दूसरों पर या सरकार पर अवलम्बित न रहकर अपने पैरों पर खडा रहा जाय । वर्तमान भेदवर्ग और स्वार्थो को कायम रखकर ग्राम स्वराज्य की स्थापना कभी सम्भव नहीं है । इसलिए गांव को एक रूप बनाकर ग्राम-समाज बनाना होगा । इसके लिए गांव की सारी जमीन एक कर उसकी मालकियत गांव की यानी ग्राम-समाज को करनी होगी । ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य की नींव है । लेकिन केवल ग्रामदान से सारे दुःख होने वाले नहीं हैं । ग्रामदान में से हमें ग्राम-स्वराज्य विकसित करना होगा ।'

10.8 सारांश

आधुनिक भारत में विनोबा भावे ने महात्मा गाँधी के विचारों और कार्यो को ओर आगे बढाने के संबंध में महत्वपूर्ण योगदान दिया । आचार्य विनोबा भावे ने गाँधी के चिन्तन और दर्शन को केवल समझा ही नहीं अपितु उसे आत्मसात् भी किया । विनोबा केवल गाँधी के कथित विचारों का शास्त्रीय ढंग से विवेचन ही नहीं करते तथा उनके द्वारा बतलाए गये रचनात्मक कार्यकमों को ही नहीं प्रस्तुत करते, बल्कि नई-नई परिस्थितियों में नये-नये विचारों और धारणाओं का भी विकास करते हैं । विनोबा भावे की राष्ट्रवाद की अवधारणा में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य सर्वोपरि थे । वे सर्वराष्ट्रीय अविरोध या भ्रातृभाव के समर्थक थे । उनके अनुसार वर्तमान में सर्वराष्ट्रीय अविरोधी ही नहीं, वरन् अनुकूलता और भ्रातृभाव किसी भी राष्ट्र-समूह के व्यवहार का मूलतत्त्व माना जाना चाहिए । विनोबा अपने चिन्तन में 'विश्व मानव' की कल्पना को साकार रूप देने के इच्छुक थे और यही कारण है कि विनोबा जब किसी रवे मिलते, जब किसी से विदा माँगते, किसी को पत्र लिखते तो उनका एक ही नाम रहता-जय-जगत् । आचार्य विनोबा भावे 20 वीं शताब्दी के चिन्तक थे । सर्वोदय लक्ष्य के लिए प्रतिबद्ध और कर्मठ व्यक्ति और महात्मा गाँधी के अनन्य शिष्य तथा उनके वैचारिक तथा आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में सम्पूर्ण विश्व में विनोबा भावे की उल्लेखनीय पहचान है ।

10.9 अभ्यास प्रश्न

1. विनोबा के चिन्तन की विवेचना कीजिए ।
2. विनोबा और गाँधी के विचारों में समानता पर प्रकाश डालिए ।

3. विनोबा और गाँधी के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए ।

10.10 सदर्भ ग्रन्थ सूची

4. भावे, विनोबा, भूदान गंगा, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1957
5. भावे, विनोबा, भूदान योजना लैण्ड-गिफ्ट्स मिशन, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, मार्च, 1957
6. मिश्रा, आर.एन. भूदान मूवमेंट इन इण्डिया एन इकॉनॉमिक असेसमेंट, एस. चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1972
7. उम्मन, टीके., करिश्मा, स्टेबिलिटी, एण्ड चेंज एन एनालिसिस ऑफ भूदान-गाँधीयन मूवमेंट इन इण्डिया, थॉमसन प्रेस, 1972
8. राम, सुरेश, विनोबा एण्ड हिज मिशन, अखिल भारत सर्व सेवा संघ, कॉशी, 1962
9. वेट्टिकल, थोमस वेट्टिकल, गाँधीयन सर्वोदय : रीयालाइसिंग ए रियलिस्टिक युटोपिया, नेशनल गाँधी म्यूसियम एवं ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2002
10. अय्यर, आर. एन., मॉरल एण्ड पॉलिटिकल फिलोसॉफी ऑफ महात्मा गाँधी, ओ यू पी., नई दिल्ली, 1973
11. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000

इकाई - 11

गाँधी और जयप्रकाश नारायण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 समाजवाद गाँधी और जयप्रकाश नारायण का दृष्टिकोण

11.2.1 गाँधी का समाजवाद

11.2.2 जयप्रकाश नारायण का समाजवाद

11.3 जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का प्रभाव

11.4 भारतीय समाजवाद पर जयप्रकाश नारायण के विचार

11.5 समाजवाद के लिए रचनात्मक कार्यक्रम

11.6 लोकतन्त्र एवं समाजवाद

11.7 जयप्रकाश नारायण गाँधीवादी समाजवाद के नजदीक

11.8 सामुदायिक समाजवाद

11.9 सारांश

11.10 अभ्यास प्रश्न

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

- गाँधीवादी और मार्क्सवादी समाजवाद की अवधारणा को समझना ।
- जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद के प्रभाव को समझना ।
- जयप्रकाश नारायण का गाँधीवादी समाजवाद की ओर रूझान ।
- जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रतिपादित सामुदायिक समाजवाद को समझना ।

11.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित करने वाली विचारधारा के रूप मे समाजवाद ने भारत और उसके अनेक महापुरूषों को प्रभावित किया है । विनोबा उन महापुरूषों में से एक हैं । जहाँ पश्चिमी समाजवाद की अपनी अलग दिशा और दशा रही है वहीं भारतीय समाजवाद अपनी अद्वितीय, अनुपम एवं अनोखी विशेषताओं के साथ अनवरत रूप से आगे बढा । भारतीय समाजवाद भारतीय संस्कृति के आधार वाक्यों, "वसुधैव कुटुम्बकम", सर्वे भूमि गोपाल की", "सर्वे भवन्ति सुखिन", "सर्वे सन्तु निरामया' से हमेशा प्रभावित रहा है । महात्मा गाँधी ने समाजवाद का विचार दिया तथा उत्तर गाँधीवादी विचारकों के समाजवाद सम्बन्धी विचारों पर

गाँधी के विचार प्रतिबिम्बित होते दिखाई देते हैं । जयप्रकाश नारायण भी इसी धारा के एक समाजवादी विचारक हैं जिन पर गाँधी का गहरा प्रभाव पडा है ।

11.2 समाजवाद: गाँधी और जयप्रकाश नारायण का दृष्टिकोण

11.2.1 गाँधी का समाजवाद

गाँधीजी का समाजवाद अद्वितीय और अनुपम है यह एक सम्पूर्ण मानव और सम्पूर्ण समाज के सन्तुलित अध्ययन पर आधारित है । उन्होंने व्यक्ति को एक भौतिकवादी मानने के साथ-साथ एक आध्यात्मिक भी माना है । उनका समाजवाद केवल समाज के लिए ही नहीं वरन् वा व्यक्ति के लिए भी है । उनका समाजवाद बिना "कद" का समाजवाद है ।

गाँधीजी को समाजवाद में रस्किन की पुस्तक "अन टू दिस लास्ट" । टालस्टाय की पुस्तक "किगडम ऑफ गोड विद इन यू' और "भागवत गीता" का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है । गाँधीजी का समाजवाद एक प्राकृतिक समाजवाद है । गाँधीजी ने समाजवाद की अभिव्यक्ति सर्वोदय की अवधारणा के रूप में की है जिसमें सभी व्यक्तियों का उदय है । गाँधीजी का समाजवाद पश्चिमी समाजवाद की तरह नहीं है । समाजवादी व्यक्ति निजी सम्पत्ति को अस्वीकार करता है और वह मानता है कि राज्य के रूप । में संगठित समाज जिसे सम्पूर्ण धन का स्वामी होना चाहिए तथा उसे समस्त श्रम का संचालन एवं समस्त सम्पति का समान वितरण लागू करना चाहिए ।

गाँधीजी का समाजवाद सात्विक दृष्टि से वेदान्त के "ईशावास्यमिद' के आधार पर "आत्माओं की मूलभूत एकता" पर आधारित "सर्वभूत हितेरता" या "आत्मावत सर्वभूतेषु" या "वसुहैव कुटुम्बकम" के नीति वाक्य यथार्थ है । गाँधीजी का समाजवाद का विचार सत्य, अहिंसा और नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा मानवता के नियमों पर आधारित है । "गाँधीजी का समाजवाद बैंथम के सिद्धान्त "अधिकतम लोगो का अधिक से अधिक सुख के आदर्श सिद्धान्त से भी आगे है । गाँधीजी ने मानव की सेवा को ईश्वर की पूजा माना है उनके विचार से व्यक्ति का स्थान व्यवस्था, समाज व राज्य से सबसे ऊंचा और सबसे प्रथम, है । अहिंसा के सन्दर्भ में जब हम "दूसरों को खाकर जीओ" से "जीयो और जीने दो" और उसमें "दूसरों के ।लिए जीओ' की भूमिका में पहुंच रहे हैं जो उपयोगितावाद में निहित व्यक्तिगत लाभ की स्पर्धा की गंध अच्छी नहीं लगती है । गाँधीजी का सिद्धान्त डार्विन के सिद्धान्त "जो सबसे अधिक सक्षम है, वही जीवन' में बचेगा" की तरह नहीं है । गाँधी का सिद्धान्त सर्वोदय का सिद्धान्त है ।

सर्वोदय का अर्थ है कि "सभी का सर्वागीण विकास" । इसमें न की अवहेलना है, न आध्यात्मिकता की उपेक्षा है । यह सन्यासवाद एवं भोगवाद के बीच की मध्यम प्रतिपदा है :

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया ।

सर्वे भद्राणि पश्चन्तु मा कश्चिद दुख भागभवेत । ।

के इस बोध वाक्य में मानसिक, शरीक एवं आध्यात्मिक सुखों का समन्वय है । व्यक्ति की निजी सम्पत्ति को अस्वीकार करता है और यह मानता है कि राज्य के रूप में संगठित समाज ,का सम्पूर्ण उत्पादन और वितरण के समस्त साधनों पर अधिकार होता है ।

इससे स्पष्ट है कि समाजवाद का सम्बंध समाज में सम्पत्ति के वितरण से है क्योंकि सम्पत्ति को समाज की सभी बुराईयों की जड मानते हैं ।

11.2.2 जयप्रकाश नारायण का समाजवाद

महात्मा गाँधी जयप्रकाश नारायण को भारत में समाजवाद का अधिकृत विद्वान मानते थे । उनके शब्दों में "वे सामान्य कार्यकर्ता नहीं हैं, वे समाजवाद के अधिकारी हैं । हम यह कह सकते हैं कि पाश्चात्य समाजवाद के सम्बन्ध में जो वे जानते हैं वह भारत में कोई नहीं जानता । "जयप्रकाश नारायण स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत सिपाही रहे हैं । ब्रिटिश समाजवादी नेता रैमजे मैकडोनाल्ड के अनुसार समाजवाद के विकास के इतिहास को परिशीलन करने के लिए जिन चरित्रों का अवलोकन करना होगा इनमें जयप्रकाश नारायण का स्थान अग्रण्य है ।

समाजवाद के विभिन्न सम्प्रदाय हैं । समाजवाद की परिभाषा में अन्तर नहीं है अपितु समाजवाद की स्थापना के तरीकों व साधनों में अन्तर है । इनकी कार्यपद्धति में अन्तर है । जयप्रकाश नारायण समाजवाद को आर्थिक सामाजिक पुर्नरचना का सिद्धान्त मानते हैं । वे समाज के सभी पक्षों का पुर्नगठन व पुनर्रचना करना चाहते हैं । "उनका उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का समन्दित और सन्तुलित विकास करना है" 1929 से 1946 तक जयप्रकाश नारायण पक्के मार्क्सवादी समाजवादी रहे परन्तु भारतीय साम्यवादी और सोवियत संघ के साम्यवादी उन्हें अपने विचारों से प्रभावित नहीं कर पाये । जयप्रकाश नारायण को इनके हिंसात्मक और क्रान्तिकारी साधनों में विश्वास नहीं था । जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का गम्भीर प्रभाव था । उन्हें समाजवाद की प्रेरणा मार्क्स से मिली थी और मार्क्सवाद में उनकी अटूट निष्ठा भी रही- "अत: जयप्रकाश नारायण ने मार्क्सवाद को ही समाजवाद का वास्तविक रूप माना था । वे समाजवाद का सामाजिक आर्थिक पुननिर्माण की एक पद्धति मानते है । समाजवाद व्यक्तिक आचरण की संहिता नहीं है । वह हमारे आपके व्यक्तिगत अभ्यास की कोई चीज नहीं है और न वह शशिमहल में निर्मित की जा सकने वाली वस्तु है । जब हम भारत में समाजवाद लाने की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य देश का सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक, उसके खेतों, खलिहानों, कारखानों, विद्यालयों, नाटक शालाओं आदि का पुन: निर्माण करना है ।'

समाजवाद का उद्देश्य आर्थिक असमानता और कुछ थोडे से हाथों में सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को समाप्त करना है । वे उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व की बात करते हैं । उनके समाजवाद में सभी श्रमिक है- एक वर्गविहीन समाज । उनका समाज एक ऐसा समाज है जिसमें मानव का शोषण नहीं किया जा सकता है । समाजवाद की मुख्य समस्या विषमता की समस्या है, शोषण की समस्या है । इन दोनों के क्या कारण है और इन दोनों को कैसे दूर किया जा सकता है । इस विषमता का क्या कारण है समाजवाद प्राकृतिक विषमता की तो स्वीकार करता है विषमता से उनका तात्पर्य पद, सम्पत्ति आदि की विषमता से है जो अनेक बुराईयों को जन्म देती है, सम्पत्ति का असमान वितरण ही सामाजिक समस्याओं का बीज कोष है । सम्पत्ति का असमान वितरण क्यों होता है? स्मरणीय है जयप्रकाश नारायण प्राकृतिक विषमता को सम्पत्ति वितरण का कारण नहीं मानता । एक धनी पिता का मूर्ख पुत्र

सम्पत्ति को विरासत में प्राप्त करता है, न कि निजी योग्यता के कारण । अत: विषमता का आधार समाज की प्रचलित रीति है ।

हमारे देश में जयप्रकाश नारायण के अनुसार गरीबी का कारण यह है कि उत्पादन के साधनों पर उनका स्वामित्व नहीं है । यदि उत्पादन के साधन प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप से प्राप्त हों तो ऐसी अवस्था मे गरीबी नहीं रहेगी । जब तक कि जनसंख्या में इतनी वृद्धि न हो जाय कि वर्तमान स्थिति में उत्पादन शक्ति उत्पादन के साधन तथा पद्धति से लोगों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त सम्पत्ति का उत्पादन न हो । उत्पादन और वितरण के साधनों पर पूंजीपतियों का स्वामित्व है ।

शोषण सम्पत्ति की विषमता पर आधारित है । धनिकों के पास यह सम्पत्ति कहीं से आयी ? धनिकों के पास जो उनकी अपार सम्पत्ति है वह स्पष्टत: उनका अपना उत्पादन नहीं - । धन संग्रह का प्रकृति के साथ श्रम करने के अलावा कोई अन्य साधन नहीं है । उपभोग से अधिक उत्पादन धन संग्रह का कारण है जितने अधिक उत्कृष्ट उत्पादन के साधन होते हैं उतना ही अधिक उत्पादन है । जबकि श्रमिक को परिश्रमिक के रूप में उसका एक अंश ही दिया जाता है, शेष जो कुछ बचता था जिसे मार्क्स अतिरिक्त उत्पादन कहता है वह श्रमिक द्वारा अर्जित होने पर भी पूंजीपति हड़प लेता है ।

उत्पादन और वितरण के साधनों पर जब एक वर्ग का स्वामित्व होता है श्रमिक को वह नौकर रखता है उसे बरन इतना परिश्रमिक देता है जिससे वह साधारण खाना खा सके, कपड़े सके और दूसरे दिन वह काम करने के लिए आ सके यह प्रक्रिया चलती रहती है और केन्द्रित होती जाती है । औद्योगीकरण के विकास के साथ-साथ शोषण तीव्र हो जाता है ।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार विषमता और शोषण का उन्मूलन के दो हो सकते हैं- प्रथम समाज को इस प्रकार पुनर्गठित किया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति कार्य करने के लिए हो अर्थात् या तो वह बिना लगान दिये अपनी भूमि जोते या अपने औजारों से अपनी कार्यशाला में करे । उत्पादन के साधनों पर किसी अन्य का कोई अधिकार न हो । जितना वह स्वयं हाथ से काम कर सके उसी अनुपात में उत्पादन के साधनों पर उसका स्वामित्व होना चाहिए ।

उपर्युक्त सुझाव के क्रियान्वयन में अनगिनत कठिनाईयाँ हैं अत: है । जयप्रकाश नारायण के अनुसार इसे क्रियान्वित करने के लिए बडे परिवर्तन आवश्यक है । द्वितीय समाजवादियों का है उनके अनुसार सामाजिक विषमता के उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिक स्वामित्व समाप्त करके सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व स्थापित कर दिया जाय इससे शोषण और विषमता का उन्मूलन सम्भव हो सकेगा । इसमें व्यक्ति सामूहिक रूप से अपने हित में कार्य करेंगी । उनके द्वारा उत्पादन उत्पादकों के लाभ के लिए नहीं किया जायेगा अपितु उत्पादन का उद्देश्य उपभोक्ता की आवश्यकता की पूर्ति करना होगा । सामाजिक स्वामित्व से तात्पर्य- सम्पत्ति पर समाज के सामान्य से है । संक्षेप में समाजवाद का मूल सिद्धान्त उत्पादन के साधनों का सामाजीकरण है । नारायण के अनुसार सामाजिक पुन: निर्माण का प्रयत्न उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिक स्वामित्व की समाप्ति से प्रारम्भ होना चाहिए ।

इस अवधि में जयप्रकाश नारायण मार्क्स के द्वन्दात्मक भौतिकवाद में विश्वास करते थे । उनका मानना था कि भौतिक बल सामाजिक और व्यक्तिगत संस्थाओं को प्रभावित करता है । मनुष्य के अच्छे और बुरे विचारों का निर्धारण उन आर्थिक परिस्थितियों से होता है जिनमें वह रह रहा हैं वैसा ही सोचता है । मार्क्सवादी विचारधारा में मनुष्य के विचारों, मूल्यों, आदर्शों का निर्धारण वर्ग विचारधारा और वर्ग हित से होता है । जयप्रकाश नारायण के अनुसार समाजवाद का पहला कारण है- राजाओं, जमींदारों और पूंजीपतियों में आर्थिक असमानता के कारणों को खोजना है जिनसे मानव का शोषण होता है ।

11.3 जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का प्रभाव

मार्क्सवाद के प्रभाव ने जयप्रकाश नारायण को पूंजीवादी व्यवस्था का कटु आलोचक बना दिया । उन्होंने मानव की स्वतन्त्रता को अपनी चेतना, अपने विचारों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है । वे मानव की स्वतन्त्रता में विश्वास करते हैं । जयप्रकाश नारायण आज के आधुनिक राज्य के मजदूरों के लिए बढ़ते कार्यक्षेत्र- शिक्षा, कल्याण, स्वास्थ्य, मकान और दूसरी सेवाओं के क्षेत्र में विश्वास करते हैं । मार्क्सवाद के प्रभाव से उन्होंने माना कि-

1. पूंजीवादी समाज व्यवस्था में राज-व्यवस्था सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए कोई प्रभावशाली काम नहीं कर सकती है ।
2. मनुष्य के विचार और उनके सामाजिक सम्बन्ध उन आर्थिक परिस्थितियों से निर्धारित होते है जिनमें वह रहता है ।
3. राज्य एक मशीन है जिससे एक वर्ग दूसरे के ऊपर शासन करता है ।

वे सामाजिक और आर्थिक समानता में विश्वास करते हैं । उनके लिए समाजवाद एक सिद्धान्त होने के साथ-साथ सम्पूर्ण योजना की तकनीक भी है, इसमें सम्पूर्ण समाज के सभी पक्षों का पुर्ननिर्माण निहित है । उनका उद्देश्य एक न्यायपूर्ण और सन्तुलित समाज का विकास करना है ।

भारत के साम्यवादियों के आचरण ने उन्हें मार्क्सवाद के सम्बन्ध में पुन: विचार करने के लिए बाध्य किया । भारतीय साम्यवादी दल की आन्दोलन सम्बन्धी धारणा से उन्हें घोर निराशा हुई । साम्यवादी दल स्वतन्त्र अभिकरण न होकर मास्को का औजार है । इस दल के सदस्यों की मूल भक्ति पहले सोवियत रूप से के प्रति है । न कि अन्य किसी के प्रति । स्मरणीय है कि लेनिन के बाद स्टालिन रूस का सर्वे सर्वा बना । धीरे-धीरे सत्ता उसके हाथों में केन्द्रित होती गयी । सोवियत रूस में साम्यवाद के नाम पर तानाशाही की स्थापना की गयी ।

साम्यवाद ने जयप्रकाश के अनुसार-मानवीय सभ्यता को नैतिकता विहीन आधार प्रदान किया है । यह ऐसी सभ्यता है जिसमें व्यक्ति और सामाजिक जीवन का हर पहलू शासक द्वारा नियन्त्रित किया जाता है । जीवन का कोई क्षेत्र उसके हस्तक्षेप से परे नहीं है । साम्यवादी समाज का जीवन अपनी ही आर्थिक और राजनैतिक संरचना और सैद्धान्तिक संयुक्तीकरण होता है जो प्राय वास्तविकता से उतना ही दूर है जितना कि दक्षिण उत्तरी ध्रुव से।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार साम्यवादियों के विचार निश्चित और एक दम साफ होते हैं । ये साम्यवादी विचारों की प्रमाणिकता के बारे में तर्क-वितर्क नहीं करते । वे निश्चित और सही होते है, प्रारम्भ में जब साम्यवादी दल में जब स्वतन्त्रता थी तब प्रतिद्वन्दी विचार पाये जाते हैं, किन्तु जब साम्यवादी पार्टी पर एक व्यक्ति का अधिनायकत्व स्थापित हो जाने पर वह सब कुछ बदल गया और साम्यवादी विचारधारा एक ऐसी शक्ति बन गयी है जिसे कोई चुनौती नहीं दी जा सकती है ।

जयप्रकाश नारायण का कथन है कि यदि मार्क्स आज सचमुच जीवित होता तो रूसी तानाशाही की उसने सबसे पहले निन्दा की होती । स्टालिन की नीति मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विपरीत थी । मार्क्स के अनुसार सामाजिक विकास में क्रान्ति के बाद प्रथम अवस्था समाजवाद और अन्तिम अवस्था साम्यवाद है । साम्यवाद वर्गविहीन, शोषणविहीन व एक राज्यविहीन अवस्था यही मार्क्स का सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व है । इसका सिद्धान्त है कि सभी व्यक्ति योग्यतानुसार कार्य करेंगे और आवश्यकतानुसार प्राप्त करेंगे ।

पूँजीवादी व्यवस्था में सत्ता बुजुर्ग वर्ग के हाथों और साम्यवाद में सत्ता नौकरशाही के हाथों में होती है । पूंजीवादी अवस्था के विनाश के बाद सत्ता श्रमिकों के हाथों में न आकर एक छोटे जन समूह के हाथों में केन्द्रित हो जाती है । उस दृष्टि जयप्रकाश नारायण के अनुसार' 'साम्यवाद" मध्यम वर्गी समाज है । सत्ता पूंजीवादी समाज के मध्यम वर्ग के हाथों में आ जाती है । साम्यवादी के लिए साधना, की पवित्रता का कोई मूल्य नहीं है । जयप्रकाश नारायण के शब्दों में मानव कल्याण का लक्ष्य रखने ।वाले द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सर्वसत्तावादी राज्य की धारणा के रूप में पतित हो चुका है । स्मरणीय है कि मार्क्सवाद ऐसा कोई आदेश नहीं देता है कि साधन की पवित्रता महत्वहीन है

जयप्रकाश नारायण के समाने एक गम्भीर प्रश्न था कि क्या मार्क्सवाद सामाजिक क्रान्ति व समाजवादी की स्थापना के लिए पूर्ण और सुरक्षित मार्ग दर्शक बन सकता है ? अनुसार "सोवियत रूस में मार्क्सवादी क्रान्तिकारी नीति के विरूद्ध मेरा मन बगावत कर उठा और मैं सोचने के लिए विवश हो गया हूं कि क्या अशुद्ध साधना से कभी शुद्ध साध्य की प्राप्ति हो सकती है ।" के विनाश की स्थिति को ही जयप्रकाश नारायण समाजवाद नहीं मानते हैं । स्पष्ट है जयप्रकाश नारायण साम्यवादियों के सर्वाधिकारवादी रूप को व्यैक्तिक स्वतन्त्रता विरोधी होने के कारण स्वीकार करने लिए तैयार नहीं थे ।

समाजवाद की स्थापना के लिए दो मार्ग है-

1. हिंसात्मक, जनक्रान्ति या क्रान्तिकारी पद्धति द्वारा ।
2. शान्तिपूर्ण या लोकतान्त्रिक पद्धति द्वारा । ।???

समाजवाद की स्थापना के सम्बन्ध में मत व्यक्त करते हुए जयप्रकाश ने कहा था कि "दल की नीति की घोषणा पत्र में इस विषय के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पद्धति का अर्थ केवल हिंसा और आतंक से नहीं है । यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि समाजवाद की स्थापना का एक मात्र सही तरीका लोकतान्त्रिक पद्धति है ।" जयप्रकाश नारायण के अनुसार समाजवाद की स्थापना दोनों ही तरीकों से हो सकती है, लेकिन किस तरीके से

उद्देश्य को प्राप्त किया जाय यह सम्बन्धित देश की ऐतिहासिक, वस्तुगत परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है । भारत में वे समाजवाद की स्थापना के लिए लोकतान्त्रिक पद्धति अपनाने की बात करते हैं । उन्होंने भारतीय साम्यवादी दल की हत्या, लूट आदि हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण जयप्रकाश नारायण इनके तरीकों में विश्वास नहीं करते हैं ।

11.4 भारतीय समाजवाद पर जयप्रकाश नारायण के विचार

जयप्रकाश नारायण के अनुसार भारत और सोवियत संघ की परिस्थिति के और वातावरण दोनों ही भिन्न हैं इसलिए दोनों देशों में समाजवाद एक समान पद्धति एवं तरीकों से नहीं लड़ा जा सकता है ।

1934 में जयप्रकाश नारायण ने अखिल भारतीय समाजवादी कांग्रेस के 15 कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते हुए मार्क्सवादी विचारो एवं कार्यक्रमों के बारे में बताया-

1. सभी शक्तियों का उत्पादक वर्ग को हस्तान्तरण ।
2. राज्य द्वारा नियोजित एवं नियन्त्रित देश की अर्थव्यवस्था का विकास करना
3. उत्पादन और वितरण के बड़े उद्योगों- रेल जहाज, खनिज, खान, स्टील, जूट, बैंक, बीमा और जनता के उपयोगी विभागों का राष्ट्रीयकरण करना ।
4. विदेशी व्यापार पर राज्य का एकाधिकार ।
5. आर्थिक जीवन का समाजीकृत क्षेत्र में उत्पादन वितरण और ऋण सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना ।
6. राज्य और जमींदारों तथा अन्य सभी शोषक वर्गो का बिना क्षतिपूर्ति का उन्मूलन ।
7. किसानों के बीच भूमि का पुन: वितरण ।
8. राज्य द्वारा सहकारी एवं सामूहिक कृषि को प्रोत्साहित और प्रोन्नति करना
9. किसानों और मजदूरों द्वारा लिए गये ऋणों का परिसीमन ।
10. श्रम करने या पोषण पाने के अधिकारों को राज्य द्वारा मान्यता
11. आवश्यकतानुसार काम और योग्यता के अनुसार दाम के आधार पर आर्थिक वस्तुओं का वितरण और उत्पादन ।
12. व्यवसाय के आधार पर व्यस्क मताधिकार ।
13. राज्य द्वारा किसी धर्म का समर्थन न करना । विभिन्न धर्मो के प्रति भेदभाव न करना और जातियों और सम्प्रदायों के आधार पर भेदभाव को मान्यता न देना ।
14. राज्य द्वारा स्त्री-पुरूष के बीच भेदभाव न करना ।
15. भारत के तथा कथित सार्वजनिक ऋणों की अस्वीकृति ।

जयप्रकाश नारायण ने कांग्रेस के उद्देश्य और कार्यक्रमों की आलोचना की है । इनके अनुसार कांग्रेस के ये उद्देश्य कार्यक्रम और ये घोषणाऐं जनता को कोई प्रतिनिधित्व पूर्ण चरित्र प्रदान कर सकती है । उनके कार्यक्रमों में कम से कम निम्नलिखित कार्यक्रम शामिल होने चाहिए-

1. ब्रिटिश साम्राज्य से सम्पूर्ण स्वतन्त्रता ।

2. सम्पूर्ण राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का उत्पादक जनता के हस्तान्तरण ।
3. बड़े उद्योगों और सार्वजनिक सेवाओं का राष्ट्रीयकरण- बैंक, खान, इस्पात, बीमा आदि ।
4. सभी तरह से जमींदारी प्रथा का उन्मूलन ।
5. जमीन पर किसान का अधिकार ।
6. किसानों और मजदूरों के सभी प्रकार के ऋणों का परिसीमन ।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार जनता को राजनीतिक एवं लोकतान्त्रिक ढंग से स्वतन्त्र करना, समृद्ध एवं सुखी बनाना, सभी प्रकार के शोषण के तरीकों से मुक्त करना और विकास के लिए अनियन्त्रित अवसर देना है तो समाजवाद रूपी लक्ष्य की ओर हमें बढ़ना होगा । स्मरणीय है कि "भारत में वे सभी परिस्थितियाँ विद्यमान है जो समाजवाद की स्थापना के लिए आवश्यक है यथा निर्धनता, भूखमरी एवं अभाव, अमीर-गरीब का व्यापक भेद, बहुसंख्यक वर्ग का धनी वर्ग द्वारा शोषण, उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व, आर्थिक और सामाजिक विषमता ।" इस प्रकार वे जनता की क्रान्ति जिसका समर्थन से हो । इस 'प्रकार क्रान्ति में सभी व्यक्तियों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए वे अपने विचारों को तरीके से व्यक्त करें । इस प्रकार जयप्रकाश नारायण हमेशा ही स्वतन्त्रता और लोकतान्त्रिक तरीके, विश्वास करते थे, उनका कभी भी तानाशाही में विश्वास नहीं था । सोवियत संघ अनुभवों से जयप्रकाश बताते हैं कि पूंजीवाद के नष्ट करने का नाम समाजवाद नहीं है । समाजवाद में पूंजीवाद के नष्ट होने के साथ बडे उद्योगों का- व्यापार, बैंक, कृषि, बीमा, इस्पात, इत्यादि का राष्ट्रीयकरण भी होता है । इस प्रकार जयप्रकाश नारायण एक नये प्रकार के समाजवाद की खोज में थे । वे न केवल पूंजीवाद की बुराईयों को नष्ट करना थे बल्कि वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता को समाज के सभी प्रकार के शोषणों से अक्षुण्य रखना चाहते थे । उद्देश्य एक इस तरह के समाज की संरचना में (मानव मूल्यों, स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के मूल्यों को खतरा पहुंचाये बिना) परिवर्तन करना चाहते थे । अत: समाजवाद के द्वारा उत्पादन के साधनों से व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त कर सम्पूर्ण सामुदायिक स्वामित्व स्थापित कर की जा सकता है । "1940 के कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में बडे उद्योगों पर सामूहिक स्वामित्व एवं नियंत्रण की बात की । राज्य को बड़े उद्योग- यातायात, जहाजरानी, खान इत्यादि बड़े उद्योगों पर राष्ट्रीयकरण की बात करते हैं देश का कानून की स्वतन्त्र इच्छा की अभिव्यक्ति पर आधारित होगा ।" राज्य समाज के वर्गो का संरक्षण करेगा परन्तु जो गरीब वर्ग है उनके भी हितों का ध्यान रखकर एक सन्तुलित सामाजिक न्याय की व्यवस्था करेगा । राज्य उद्योगों पर स्वामित्व एवं नियन्त्रण रखेगा जिसमें श्रमिक अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर अपना प्रतिनिधित्व करेंगे ।

जयप्रकाश नारायण का विश्वास है कि इस व्यवस्था में सभी जातियों और वर्गो के. लोगों के लिए प्रसन्नता, समृद्धि और लोगों की स्वतन्त्रता रहेगी, जिससे एक महान और राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा । जयप्रकाश नारायण ने गाँवों के पुर्ननिर्माण पर बल दिया है उन्होंने कि "गाँवों का शासन स्व-संगठित और स्व-पर्याप्त इकाईयों के द्वारा चलाना चाहिए" उन्होंने सुझाव

है कि "भूमि वास्तविक कृषक की होनी चाहिए । इस प्रकार वे एक सहयोगात्मक खेती करने का सुझाव हैं जिससे किसानों का शोषण न हो, किसानों के ऋणों का परिसीमन किया जाय ।

11.5 समाजवाद के लिए रचनात्मक कार्यक्रम

जयप्रकाश नारायण के अनुसार "नियोजित और सहयोगात्मक प्रयास उद्योग और कृषि में सन्तुलन बना सकेंगे । उन्होंने अगस्त 1946 में ग्राम राज्य स्थापित करने के लिए 13 रचनात्मक कार्यक्रमों का विवरण दिया । इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं-

1. गाँव के प्रत्येक व्यस्क नागरिक को कांग्रेस के सदस्य के रूप में पंजीकृत होना चाहिए।
2. सांस्कृतिक कार्य क्रम आयोजित किये जाये चाहिए जिनसे कि। साक्षरता बढ़ाने के माध्यम बने ।
3. एक सेवादल का गठन किया जाना चाहिए ।
4. सड़क, सफाई, नाली इत्यादि की समस्याओं को व्यवहार में लाना चाहिए जिससे सामान्य उद्देश्य के लिए सामूहिक श्रम की भावना को बल मिलता है ।
5. अस्पृश्यता नहीं होनी चाहिए ।
6. साम्प्रदायिक सद्भाव होना चाहिए ।
7. मद्यपान निषेध ।
8. स्थितियों का जायजा होना चाहिए ।
9. शिकायतों का समाधान होना चाहिए ।
10. अनाज बैंकों की स्थापना करनी चाहिए ।
11. पड़ौस के गाँवों में भी प्रचार करना चाहिए ।
12. सहयोगात्मक बाजार व्यवस्था ।
13. बालश्रम का निषेध ।

जयप्रकाश नारायण सामूहिक खेती के साथ-साथ राज्य को अपने उद्योग स्थापित करने जोर देते है । इस समाजवाद में सम्पूर्ण शक्ति राज्य के एक वर्ग के हाथों में आने की जगह. सम्पूर्ण जनता के हाथों में शक्ति आ जायेगी ।

11.6 लोकतन्त्र एवं समाजवाद

जयप्रकाश ने लिखा है कि लोकतन्त्र के बिना कोई समाजवाद नहीं है । समाजवादी राज्यों में एक वर्ग की तानाशाही होती है, यह हमारा गलत सोचना है, यह मार्क्स की शिक्षा के विपरीत है, एक वर्ग की तानाशाही केवल संक्रमण काल में होती है । जब पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन होता है । इस समाजवाद की अवधारणा में आर्थिक और राजनीतिक लोकतन्त्र की धारणा है । इस प्रकार के समाजवाद में मानव न तो पूंजी का दास है और न किसी पार्टी का, न किसी राज्य का दास है । इसमें मानव का स्वतन्त्र अस्तित्व है । अपने आप में उसकी एक अलग अस्मिता, एक अलग पहचान है । लोकतान्त्रिक समाजवाद शान्तिपूर्ण और क्रमिक विकास में विश्वास रखते हैं । जयप्रकाश के अनुसार " लोकतन्त्र और समाजवाद सहगामी है ' ।

समाजवादी विचारधारा का एक मूल स्त्रोत स्वतन्त्रता की खोज और समाज में व्यक्ति के स्व-विकास के लिए अधिकाधिक अवसर प्रदान करना ।

समाजवाद के अन्तर्गत मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण, अन्याय, असुरक्षा नहीं रहेगी । समाजवादी समाज में सभी स्वतन्त्र और समान होंगे और वह ऐसे मानवीय सामाजिक मूल्यों पर आधारित होगा जिनका कभी भी किसी सिद्धान्त या दलीय नीति के लिए बलिदान नहीं किया जायेगा । जयप्रकाश नारायण के अनुसार समाजवाद की स्थापना लोकतन्त्र और शान्तिपूर्ण साधनों के माध्यम से ही सम्भव है । लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रताओं के अभाव में समाजवाद जीवित नहीं रह सकता । इस प्रकार लोकतान्त्रिक समाज में राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र किसी वर्ग को कोई विशेषाधिकार नहीं होंगे, असमानताऐं नहीं होगी । इस प्रकार के समाज में ही "मानव की स्वतन्त्रता-अवसरो की समानता और प्रत्येक नागरिक को अपने व्यक्तित्व विकास के पूर्ण अवसर मिलेंगे ।"

कांग्रेस के समाजवादी दल की छटी वार्षिक 1947 सम्मेलन के जनरल सेकेटरी रिपोर्ट में जयप्रकाश नारायण ने "नैतिक मूल्यों और समाजवाद लाने के लिए अच्छे साधनों पर जोर दिया" । इस रिपोर्ट में उनके विचार मार्क्सवाद से दूर हटते दिखाई देते हैं । उन्होंने लिखा है कि "महात्मा गाँधी ने हमें बहुत सही बातों को सिखाया है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह सिखायी है कि जैसे साधन हैं, वैसे ही साध्य हैं । बुरे साधनों से कभी भी अच्छे साध्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता, अच्छे साध्यों के लिए तो अच्छे साधन ही होने चाहिए । अच्छे साधनों से ही अच्छे समाज के लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है, जोकि समाजवाद का लक्ष्य है ।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार समाजवाद में व्यक्ति की स्वतन्त्रता सर्वप्रथम है । लोकतान्त्रिक समाजवाद में लोकतान्त्रिक साधन, शान्तिपूर्ण तकनीक और रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा ही इस अपने उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है । समाजवादियों का उद्देश्य पूंजीवादी व्यवस्था को फैंकने और एक पार्टी की तानाशाही स्थापना करना नहीं है । सामाजिक क्रान्ति की लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता एवं लोकतन्त्र की दृष्टि से आवश्यक है । जयप्रकाश नारायण की यह धारणा है कि "समाजवाद की स्थापना तानाशाही से नहीं हो सकती है । पूंजीवाद को समाप्त कर दिया जाय और उद्योग, बैंकिंग, कृषि सभी का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय, फिर भी समाजवाद की स्थापना सम्भव नहीं है । वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जिसमें लोग स्वतन्त्र और समान हो । इस प्रकार का समाज मानव मूल्यों और सामाजिक जीवन पर आधारित होगा । जयप्रकाश नारायण ने एक ऐरने समाज का चित्र करने की कोशिश की है" जिसमें किसी का कोई शोषण नहीं है जिसमें आर्थिक और सामाजिक समानता, सभी के लिए स्वतन्त्रता होगी सभी के लिए खुशहाली और समृद्धि होगी ।"

11.7 जयप्रकाश नारायण गाँधीवादी समाजवाद के नजदीक

1948 के आते आते जयप्रकाश नारायण गाँधी के नजदीक आये और आध्यात्मिक राजनीति की ओर झुकाव बढ़ा । अब उनका मार्क्स के द्वन्दात्मक भौतिकवाद की ओर अविश्वास बढने लगा । 1952 में जयप्रकाश नारायण पूरी तरह गाँधीवादी बन गये । बोध गया

सर्वोदय सम्मेलन में 954 में जयप्रकाश नारायण ने सर्वोदय और भूदान के बारे में बात कहीं । नये समाज की व्यवस्था वर्ग " और जाति विहीन समाज की स्थापना में पहला प्रयास है । 1949 में वर्धा के सम्मेलन में एक सर्वोदय की! रूपरेखा तैयार की जोकि गाँधीजी के राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण पर आधारित थी । हमें एक समाजवादी समाज जिसके उद्देश्य- स्वतन्त्रता, समानता, बंधुत्व और शान्ति थे, की स्थापना ही नहीं करनी है उससे आगे सर्वोदयी समाज में परिवर्तित करनी है जो कि वास्तव में लोगों का समाजवाद होगा । आज की अर्थव्यवस्था की जगह सहयोग पर आधारित सामाजिक अर्थव्यवस्था लाने की बात करते हैं । भूदान को क्रान्ति (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र) का पहला कदम बताया है । उन्होंने आगे कहा है कि "इस समाज में सभी का कल्याण होगा, प्रत्येक व्यक्ति इसमें प्रसन्न और खुश रहेंगे । इस प्रकार के समाज,' में ऊंचे और नीचे व्यक्ति का कोई भेद नहीं होगा, सभी व्यक्ति समान होंगे।"

प्रथम ऐशियाई समाजवादी सम्मेलन रंगून में जयप्रकाश नारायण ने कहा कि "गाँधी के प्रेम और शान्ति के रास्ते से ही समाजवाद लाया जा सकता है"। वे गाँधीजी के मानव में विश्वास करते हैं । समाजवाद के बारे में उन्होंने कहा है कि, "समाजवाद हमेशा ही मेरे लिए एक जीने की कला है" । "1957 में उनका दलीय राजनीति के प्रति अविश्वास बढ़ा और राज्य के की जगह जनता के समाजवाद की बात करने लगे ।'

11.8 सामुदायिक समाजवाद

जयप्रकाश नारायण के अनुसार जनता का समाजवाद (सामुदायिक समाजवाद) में शक्ति प्रवाह नीचे से ऊपर की तरह होगी, जहाँ आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण होगा । प्राथमिक सामुदायिक ईकाईयों एवं स्व:संचालित और स्व-पर्याप्त ग्रामीण ईकाईयों होंगी । जयप्रकाश नारायण के अनुसार राजनीतिक विकेन्द्रीकरण आर्थिक विकेन्द्रीकरण के बिना प्रभावहीन है इस प्रकार की अर्थव्यवस्था कें उद्देश्य समाज के लोगों का कल्याण करना है । इस प्रकार की सामुदायिक समाज में राज्य की भूमिका कम से कम होगी । उन दिनों जयप्रकाश नारायण साम्यवाद की तानाशाही की कल्पना के स्थान पर मानवीय मुक्ति के एक नये तत्वज्ञान की खोज में थे । अब साम्यवाद उन्हें राज्यशाही और पूंजीवाद से भी अधिक सम्पूर्ण दासता का आवाहन करने वाला प्रतीत हुआ । उन्होंने 1950 में समाजवादी पार्टी के सम्मेलन में कहा था कि " मेरा विश्वास है कि मार्क्स ने समाजवाद का जो चित्र उपस्थित किया है वह लोकतान्त्रिक समाजवाद है जिसकी स्थापना के लिए हम प्रयत्नशील है । लोकतान्त्रिक समाजवाद से ही मेहनतकश व्यक्ति मुक्त हो सकते हैं। एम.एन. राय के नये मानवतावाद ने उन्हें आकर्षित तो किया किन्तु अन्त में राजनीतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण के साथ साम्यवादी या फासिस्टवादी तानाशाही के विचार के अनुसार सरकार पर ही सारा आधार रखने के बदले लोकशक्ति पर जोर देने वाली गाँधीवादी संकल्पना में उन्हें अपनी वैचारिक जिज्ञासा का समाधान मिला । जयप्रकाश नारायण का मत है कि यदि आज मार्क्स जीवित होता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने अपने को पूरी तरह पृथक कर गाँधीजी के विचारों एवं पद्धति से आंखे बन्द न की होती।

जयप्रकाश नारायण समाजवाद का एक ऐसा चित्र खींचना चाहते थे जिसमें सभी लोगों में खुशहाली और समृद्धि हो । लोगों के जीवन का संचालन रच-शासित संस्थाओं के द्वारा शासित हो । उन्होंने शक्ति का नीचे से ऊपर की ओर प्रवाह बताया । उस व्यवस्था में शोषण और गरीबी का कोई स्थान नहीं हो सकता । सभी को विकास के समान अवरपर होंगे । समाज के भौतिक और नैतिक स्त्रोतों का विकास किया जायेगा और समाज' की भौतिक आवश्यकताओं के अनुसार उनका प्रयोग किया जायेगा । राष्ट्रीय सम्पत्ति, सामाजिक, शैक्षणिक और अन्य सेवाओं का जो श्रम करते हैं उनमें उपभोग के लिए समान वितरण की व्यवस्था होगी । समाज में कोई विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग नहीं होगा । सभी की स्वतन्त्रता होगी । जमींदारों, राजकुमारों एवं पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त किया जायेगा । सम्पूर्ण भूमि का पुन: वितरण किया जायेगा । जयप्रकाश नारायण के सपनों के भारत के बारे में इस प्रकार " मेरे सपनों का भारत एवं ऐसा समुदाय है जिसमें हरेक साधन निर्बल की सेवा के लिए समर्पित अन्तोदय तथा निर्बल और असहाय की बेहतरी को समर्पित समुदाय । ऐसा वह समुदाय है जिसमें मानवता की कद है । जिसमें सबको बराबर के अवसर प्राप्त हैं । वह समुदाय, जिसमें शक्तिशाली बहु संख्यक स्वयं ही निर्बल वर्ग अल्पसंख्यकों की बाधाओं को समझते हैं, वह एक ऐसा समुदाय है जिसमें हरेक साधन जनता की आवश्यकता की पूर्ति में लगा है । उन्हें पर्याप्त, भोजन, कपड़ा, मकान और पीने का पानी मुहैया करने में ।

11.9 सारांश

जयप्रकाश नारायण गाँधीजी के परम सहयोगी थे । वे गाँधीजी के सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता व सरलता से प्रभावित हुए । वे अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों जब वे मार्क्सवाद से प्रभावित थे तब गाँधीजी के विचारों की आलोचना करते थे । 1947 के आते-आते गाँधीजी के विचारों की ओर झुकने लगे ।

जयप्रकाश नारायण और महात्मा गाँधी के समाजवाद सम्बन्धी विचारों पर । निम्न आधारों पर तुलना की जा सकती है । दोनों समाजवाद में राज्य की भूमिका (गाँधीजी राज्य की को नगण्य मानते हैं जबकि जयप्रकाश नारायण राज्य की भूमिका का आवश्यक मानते हैं) के आधार पर तुलना की जा सकती है । समाजवाद लाने के साधन (ट्रस्टीशिप और सत्याग्रह) इनके लिए साधन साध्य की पवित्रता की बात की है जबकि जयप्रकाश नारायण समाजवाद लाने के लिए लोकतान्त्रिक एवं शान्तिपूर्ण साधनों, सर्वोदय और भूदान ग्रामदान की बात करते हैं ।

जयप्रकाश नारायण की विचारधारा में कई मोड़ आये । उनके विचारों में स्थायित्व का अभाव है । वे निरन्तर बदलते रहे ।"वे समाज को व्यक्तियों का समूह न मानकर समुदायों का समूह मानने लगे थे । न तो समाज व्यक्तियों का समूह और न वर्ग हितों का समूह है अपितु व्यक्ति एवं वर्गहित की दृष्टियों से एक समुच्चय है सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया का नेतृत्व राज्य नहीं करेगा क्योंकि व्यक्ति की समाज में भूमिका स्वेच्छित होगी, न कि बलात । राज्य के नेतृत्व करने पर व्यक्ति की इच्छा। स्वेच्छित नहीं रहेगी । जब परिस्थितियाँ बदलती हैं तो विचारों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है ।

जयप्रकाश नारायण का समाजवादी चिन्तन मार्क्सवाद से आरम्भ हुआ उन्होंने मार्क्सवाद के सिद्धान्त के प्रति विश्वास प्रकट किया । कालान्तर में उनके विचार लोकतांत्रिक समाजवाद की ओर झुके और अन्त में उनके विचार गाँधीवाद की ओर दिखायी देते हैं । जयप्रकाश नारायण ने 'सर्वोदय' को समाजवाद का सर्वाधिक यथार्थ और शुद्ध स्वरूप बताया और यह माना कि सर्वोदय केवल समाजबाद की वैकल्पिक पद्धति ही नहीं है बल्कि एक न दीन मानवीय संस्कृति का आरम्भ माना । उन्होंने सर्वोदय "लोह समाजवाद" की स्थापना करने के लिए एवं मानव की समस्त समस्याओं की मुक्ति करने के लिए तथा नवीन सामाजिक दर्शन के लिए गाँधीवादी सिद्धान्तो में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया ।

11.10 अभ्यास प्रश्न

1. समाजवाद की अवधारणा का विश्लेषण कीजिए ।
2. जयप्रकाश नारायण के समाजवाद सम्बन्धी विचार किन-किन से प्रभावित, स्पष्ट कीजिए?
3. भारतीय समाजवाद पर जयप्रकाश नारायण के विचारों को समझाइये ।
4. जयप्रकाश नारायण एवं गाँधी के समाजवाद सम्बन्धी विचारों को समझाइए
5. सामुदायिक समाजवाद की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ।

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6. गोपीनाथ दीक्षित, गाँधीजी की चुनौती कम्यूनिजम को (नवजीवन प्रकाशन मन्दिर) अहमदाबाद, 1974
7. रामजी सिंह, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1966 '
8. देव, नरेन्द, समाजवाद का मूल आधार मानवता, पद्मा पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1946
9. धर्माधिकारी, दादा, सर्वोदय दर्शन, अखिल भारतीय सेवा संघकाशी 1957
10. लोहिया, राम मनोहर, माक२r गाँधी एण्ड सोशलिज्म नवहिन्द हैदराबाद 1938
11. चम्बूदरीपाद, ई एम, द महात्मा एण्ड इज, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, 1959
12. प्रसाद, उपेन्द्र, गांधीवादी समाजवाद, नमन प्रकाशन दिल्ली 2007

इकाई-12

गाँधी एवं लोहिया

इकाई रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 गांधी के प्रति दृष्टिकोण
12.2.1 सत्याग्रह और गाँधी एवं लोहिया
12.2.2 साधन-साध्य का सिद्धान्त और गाँधी एवं लोहिया
12.2.3 छोटी-मशीनी-तकनीक और गाँधी एवं लोहिया
12.2.4 राजनीतिक विकेन्द्रीकरण और गाँधी एवं लोहिया
12.3 गाँधी एवं लोहिया के विचारों में अन्य अंतर
12.3.1 आध्यात्मिक तथा पारलौकिक तत्वों के संबंध में विचार
12.3.2 धर्म और राजनीति के सम्मिश्रण के संबंध में विचार
12.3.3 संस्था बनाम व्यक्ति का महत्व
12.3.4 कृषकों-मजदूरों द्वारा सत्याग्रह
12.4 सारांश
12.5 अभ्यास प्रश्न
12.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात निम्नलिखित के बारे में विद्यार्थी आपना समझ विकसित कर सकेंगे :-

- गाँधी एवं लोहिया के राजनीतिक विचार
- गाँधी एवं लोहिया के आर्थिक व्यवस्था संबन्धी विचार
- गाँधी एवं लोहिया के सामाजिक और धर्म संबन्धी विचार

12.1 प्रस्तावना

राम मनोहर लोहिया का जन्म उत्तर प्रदेश राज्य के अम्बेडकर नगर जिला स्थित अकबरपुर गांव में 23 मार्च 2010 को हुआ । उनके पिता का नाम हीरालाल और माँ का नाम चंदा था । अपने पिता के सानिध्य में लोहिया ने भारतीय स्वतंत्रता आदोलन में भाग लेना प्रारम्भ किया । उनके पिता हीरालाल महात्मा गाँधी के अनन्य भक्त थे और एक मीटिंग के अवसर पर, जहाँ महात्मा गाँधी भी आने वाले थे, वे राम मनोहर लोहिया को साथ ले गये । यहीं राम मनोहर लोहिया गाँधी से इतना ज्यादा प्रभावित हुए कि उन्होंने महात्मा गाँधी का, अनुयायी बनने का निर्णय लिया । तब वे लगभग दस वर्ष के थे और तभी से भारतीय स्वतंत्रता

आन्दोलन में भाग लेने लगे । इसी दौरान वे नेहरू के संपर्क में आए और उन दोनों में प्रगाढ़ मित्रता विकसित हुई ।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से इंटरमीडियेट पास कर उन्होंने बी. ए. कल्कत्ता विश्वविद्यालय से पूरा किया और बाद में जर्मनी के बर्लिन विश्वविद्यालय दर्शन शास्त्र के अध्ययन हेतु गए । लोहिया ने अपनी पी.एच. डी. महात्मा गाँधी द्वारा प्रारम्भ नमक आदोलन पर किया जिसमें उन्होंने गाँधी के सामाजिक-आर्थिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला ।

जर्मनी से लौटने के बाद वे पुन: स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय हुए । समाजवादी विचारों से प्रभावित, लोहिया ने समाजवादी कांग्रेस पार्टी की नीव 1934 में डाली । द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश शासन के विरूद्ध सत्याग्रह प्रारम्भ करने के हरिजन मे छपे लेख के लिए उन्हे बन्दी बनाया गया । महात्मा गाँधी ने उनके लिए कहा था "मै अब तक उससे (लोहिया) ज्यादा निडर और सरल व्यक्ति को नही जानता । उन्होंने कभी भी हिंसा का प्रचार नहीं किया । उन्होंने जो कुछ भी किया (हरिजन मे छपा उक्त लेख) ने उनका मान-सममान बढ़ाया ही है । "1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में बहुत सक्रिय भूमिका निभायी और कांग्रेस के शीर्ष नेताओं के बन्दी बनाये जाने पर स्वतंत्रता आदोलन को आगे बढ़ाया ।

वे महात्मा गाँधी की तरह न केवल हिंसा के विरूद्ध और अहिंसा के प्रबल समर्थक थे बल्कि भारतीय ग्रामों को सशक्त बनाकर एक सुदृढ भारत निर्माण करने के पक्षधर थे । वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक और भारत विभाजन योजना के विरोधी थे । गाँधी की तरह ही जब भारत 15 अगस्त 1947 को आजाद हुआ तो लोहिया भी भारत में फैले भीषण साम्प्रदायिक दंगों को रोकने और अहिंसा और अमन स्थापित करने के लिये गाँधी के -साथ अथक प्रयास में संलग्न थे ।

युवाओं से विशेष स्नेह और उन्हें निरन्तर देश-प्रेम और सेवा के लिए प्रेरित करना लोहिया की विशेष रूची थी । वे जीवन भर अविवाहित रहे और धन और उपभोगतावादी प्रवृत्तियों से प्रथक रहे । 12 अक्टूबर 1967 को उनका दिल्ली में निधन हुआ और ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने न तो कोई सम्पत्ति छोड़ी और न ही किसी बैंक में उनका खाता था जिसमे पैसा जमा हो।

12.2 गाँधी के प्रति दृष्टिकोण

लोहिया गाँधी से बहुत प्रभावित थे । सन् 1920 में लोहिया ने गाँधी के असहयोग आन्दोलन के आव्हान पर स्कूल छोड़ दिया था । लोहिया ने लिखा है सन् 1919-20 में गाँधी की पहली असहयोग की पुकार पर मेरी उस के 9 या 10 वर्ष के विद्यार्थियों ने स्कूल छोड़ दिया था । मेरे पिता मुझे गाँधी के पास ले गये, उस घटना के सम्बन्ध में मुझे इतना याद है कि मैंने उनके पैर छूए और उन्होंने मेरी पीठ थपथपायी ।..... मैंने गाँधीजी के सिवाय अपने परिवार के बाहर वाले व्यक्तियों में कभी किसी के पांव नहीं छूए ।"

लोहिया के अनुसार वर्तमान सदी में दो बड़े मौलिक आविष्कार हुए । एक महात्मा गाँधी का उद्गम तथा दूसरा अणुबम की खोज । किन्तु उन्होंने अणुबम की अपेक्षा गाँधी को अधिक

महत्व दिया, क्योंकि गाँधी केवल अन्याय का प्रतिकार है, वहां अणुबम अन्याय का प्रतिकार भी है और अन्याय करने वाला भी है, अर्थात् अणुबम सकारात्मक भूमिका के साथ नकारात्मक भूमिका भी निभाता है, जबकि गाँधी में सकारात्मक भूमिका प्रमुख है । किन्तु लोहिया ने चेतावनी दी गाँधी का नाम आज धूमिल होता जा रहा है तथा उसके सिद्धान्त लोकजीवन से दूर होते चले जा रहे हैं । अगर यही प्रकिया चलती रही तो भारत पाश्चात्य तथा साम्यवादी व्यवस्थाओं की प्रतिलिपि मात्र रह जायेगा और एक "निजी भारतीय" समाजवादी व्यवस्था, जिसका कि आधार गाँधीवाद हो सकता है, का निर्माण कर पाना असंभव होगा । लोहिया ने पुरजोर शब्दों में मांग की कि भारत के समाजवाद का यह प्रमुख कृत्य है कि वह गाँधी के परिष्कृत सिद्धान्तों को वैचारिक एवं व्यावहारिक आधार के रूप में । लोहिया ने गाँधी के चिन्तन के चार प्रमुख मुद्दों-सत्याग्रह, साधन-साध्य का सिद्धान्त, छोटी-मशीनी-तकनीक राजनीतिक विकेन्द्रीकरण-में अपनी सहमति व्यक्त की ।

12.2.1 सत्याग्रह और गाँधी एवं लोहिया

गाँधी के अहिंसात्मक सत्याग्रह के सिद्धान्त में लोहिया ने विश्वास प्रकट किया । लोहिया के अनुसार यूरोप परिवर्तन के केवल दो प्रकार के साधनों-संसदीय साधन तथा क्रान्तिकारी साधन-से ही परिचित है । लोहिया के अनुसार गाँधी ने हमें सत्याग्रह के रूप में तीसरा विकल्प सुझाया । इस संदर्भ में गाँधीवाद की देन का विवेचन करते हुए लोहिया ने लिखा है "बुराई के विरोध के लिए जनता के सिद्धान्त के रूप में पू?रे इतिहास में गाँधी-वाद की कोई सानी नहीं है । सिविल-नाफरमानी व्यक्तिगत आदत और एक समूहिक निश्चय में, दोनों ही रूपों में एक सशक्त विचार है, इसके अतिरिक्त और कोई भी चीज या तो एक कमजोर विचार है 'अथवा अनुचित शक्ति । यह सिविल-नाफरमानी गाँधीजी की मानवता की एक देन है । " लोहिया ने संसदीय तथा क्रान्तिकारी साधन-दोनों प्रकार के साधनों की अपूर्णता का उल्लेख किया । संसदीय साधनों की अपूर्णता का विवेचन करते हुए लोहिया ने कहा 'मेरा विश्वास है कि संसद हमेशा ही परिवर्तन की संतोषजनक ऐजेन्सी सिद्ध, नहीं हो सकती । विशेषकर तीसरी दुनिया में जहाँ दो-तिहायी जनता दुःख दारिद्रय से जकडी हुयी है । वहां संसदीय तरीके अक्सर अपर्याप्त ही होंगे । " जहां तक क्रान्तिकारी साधनों का प्रश्न है लोहिया ने उसको भी उतना ही! निरर्थक माना । खूनी क्रान्ति द्वारा न परिवर्तन स्थायी होता है और न ही परिवर्तन का उपयुक्त लक्ष्य प्राप्त कर है ।लोहिया ने अन्यायपूर्ण कानूनों तथा समाज में व्याप्त अत्याचारों का विरोध करने के लिए गाँधी द्वारा रखे । अहिंसात्मक नागरिक अवज्ञा के सिद्धान्त को स्वीकृति दी ।

गाँधी के सत्याग्रह के सिद्धान्त पर लोहिया की सैद्धान्तिक सहमति होते हुए दोनों की चिन्तन संरचनाओं में दो तात्विक अन्तर दिखायी देते है । प्रथम, गाँधी ने अपने सत्याग्रह दर्शन को, धार्मिक तथा आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया । उन्होंने सत्याग्रह का आधार ईश्वर, सत्य तथा धर्म को माना । सत्य के संदर्भ में उन्होने कहा 'सत्याग्रह का आधार सत्य है । वह एक ऐसा अस्त्र है, जिसका प्रभावकारी केवल वे ही कर सकते है, जो कभी रक्तपात पर विश्वास नहीं

रखते। "गाँधी के अनुसार सत्याग्रही के पीछे की शक्ति हैं, जिसके कारण ही वह अत्याचारी तथा आततायी की निर्दय शक्ति को सहन करता है । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी कि जो सत्याग्रही सत्य, ईश्वर तथा धर्म में विश्वास नहीं करेगा, उसे अन्ततः असफलता ही थ लगेगी । गाँधी के शब्दों में 'सत्याग्रही का बल ईश्वर ही है..... वह बाहरी बल पर भरोसा नहीं रखता, ईश्वर! विश्वास भीतरी शक्ति है । इसलिए जो उसे नहीं मानता, वह अंत में हारेगा । ' 'दूसरी तरफ लोहिया ने सत्याग्रह-सिविल-नाफरमानी-के प्रति कोई नैतिक आग्रह प्रकट नहीं किया और न ही यह माना कि इसकी असफलता का कारण ईश्वर, सत्य तथा धर्म में विश्वास का न होना हैं । लोहिया ने सिविल-नाफर-मानी के सिद्धान्त की पूर्ण । निरपेक्ष अर्थ में व्याख्या की । द्वितीय लोहिया ने सिविलनाफरमानी-नागरिकअवज्ञा-अहिंसात्मक हड़ताल तथा धरता आदि में तो आस्था प्रकट की, किन्तु उपवास-जिसे कि गाँधी की सत्याग्रह योजना में एक महत्वपूर्ण साधन मात्रा गया-में लोहिया का कोई विश्वास नहीं था । गाँधी ने उपवास को 'सत्याग्रह का आग्नेय अस्त्र' कहा, जो कभी निष्फल नहीं जा सकता । " हालाँकि गाँधी ने खना कि उपवास का उद्देश्य स्वयं सत्याग्रही की आत्मशुद्धि भी हैं । उपवास द्वारा अपने को कष्ट देकर सत्याग्रही स्वयं अपने दोषों तथा अपनी भूलों को सुधार सकता है ।परन्तु उपवास के प्रति उनका आग्रह सामाजिक अन्याय, आर्थिक शोषण तथा राजनीतिक अत्याचार के विरूद्ध सत्याग्रह के साधन के रूप में ही था । उपवास की प्रभावशीलता के विषय में अपने व्यक्तिगत अनुभवों का उल्लेख करते हुए गाँधी ने लिखा 'भारत और दक्षिणी अफ्रीका में मेरा बार-बार यही अनुभव रहा है कि यदि उपवास का सही ढंग से प्रयोग किया जाये तो यह सर्वाधिक प्रभावशाली उपाय है । साधारण लोग केवल हृदय की भाषा ही समझते हैं और पूर्णतः निस्वार्थ होकर किया गया उपवास हृदय की भाषा है ।"

लोहिया की उपवास में कोई आस्था नहीं थी तथा इरा प्रश्न पर अशोक मेहता तथा आचार्य नरेन्द्र देव भी लोहिया के निकट हैं, किन्तु जय-प्रकाश नारायण ने उपवास में पूर्ण सैद्धान्तिक व्यक्त की । 14 जुलाई 1952 को अपने तीन सप्ताह के अनशन को समाप्त करते समय अपने अनशन पर टिप्पणी करते हुए जयप्रकाश ने कहा ' 'जैसे-जैसे उपवास के दिन गुजरते गये, उपवास आत्मशुद्धि के बलिदान के रूप में विकसित होता गया और प्रतिदिन नयी आन्तरिक शक्ति मिली तथा कभी-कभी अप्रत्याशित अनुभव हुए । प्रारम्भ में मैं आत्मशुद्धि के रूप में कोई कार्य करने का दावा करने से हिचकिचाता था । अपना व्यक्तित्व इतनी कमियों और बुराइयों से भरा हुआ था कि कम से कम सार्वजनिक रूप से आत्म-शुद्धि की बात करना आत्म-श्लाघा प्रतीत होती थी । लेकिन मुझे इसमें राव साहब, अच्युत पटवर्धन और डी. दिनेश मेहता के द्वारा मार्ग दर्शन और प्रोत्साहन मिला..... मैं यह कह दू कि उपवास मेरे लिए आत्म-शुद्धि का अनुभव रहा । ' दूसरी तरफ लोहिया ने गाँधी तथा जयप्रकाश द्वारा किये जाने वाले अनशनों की आलोचना की तथा २यष्ट शब्दों मैं कहा कि राजनीतिक उद्देश्य प्राप्ति के साधन के रूप में हम उपवास को स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि इसके द्वारा होने वाला लाभ साधन की शुद्धता के आधार पर नहीं बल्कि जनता द्वारा अपनी स्वस्थ इच्छाओं को दबाकर

किये गये सहयोग के कारण होता है । बम्बई के कपडा मजदूरों की मांगों के समर्थन में जयप्रकाश द्वारा किये गये अनशन पर लोहिया ने अशोक मेहता के साथ एक संयुक्त वक्तव्य में कहा 'हमने जुलाई 1942 में गाँधी के प्रस्तावित अनशन और उसकी गलती के सम्बन्ध में गाँधीजी से तीन बार भेंट की थी । बिना उपवास के आध्यात्मिक या राजनीतिक उपयोग को स्वीकार किये ही हम गाँधीजी को एक तर्क बताना चाहेंगे कि अगर उनके अनशन का फल लाभप्रद हुआ तो वह उनकी व्यक्तिगत योग्यता के कारण नहीं वरन् जनता से मिलने वाले सहयोग के कारण होता है..... जयप्रकाश कहते हैं कि उनका उपवास पूर्णत: व्यक्तिगत प्रश्न है । लेकिन शरीर को होने वाली हानि को देखकर जनता अपनी स्वस्थ भावनाओं को दबाकर ही अविचलित रह सकती है । " हालांकि लोहिया का उपवास में सैद्धान्तिक विश्वास नहीं था किन्तु उन्होंने कभी भी बल-प्रयोग का समर्थन नहीं किया । किन्तु उनसे भिन्न नरेन्द्र देव ने अनशन की अपेक्षा बल प्रयोग को ज्यादा प्रभावशाली साधन बताया । 'उन्हीं के शब्दों में ' 'मैं सामान्यत: अनशन का विरोधी हूं । अनशन की अपेक्षा बल प्रयोग मैं कहीं ज्यादा अच्छा समझता हूं । ऐसे बहुत कम अवसर हैं, जब अनशन का प्रयोग ठीक समझा जा सकता है । पार्टी के लोग बहस करते समय तो कहेंगे कि अनशन का मार्क्सवाद में स्थान नहीं है किन्तु अवसर आने पर जिसको देखिये वही अनशन कर बैठता है और पार्टी को परेशानी में डाल देता है कि यह चीज हवा में, है और हवा से बचना मुश्किल है । " ये दो तत्व हैं, जो सत्याग्रह के प्रश्न पर गाँधी तथा लोहिया के चिन्तन में कुछ अन्तर ला देते है । अत: स्पष्ट है कि लोहिया द्वारा गाँधी के सत्याग्रह को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने उसे भिन्न रूप दिया।

12.2.2 साधन-साध्य का सिद्धान्त और गाँधी एवं लोहिया

गाँधी द्वारा प्रस्तुत साधन-साध्य-सातत्य सिद्धान्त में लोहिया की पूर्ण आस्था थी । जौन बोन्दुरा के शब्दों में "गाँधी का सबसे बड़ा आग्रह लक्ष्यों और साधनों में उचित सम्बन्ध की स्थापना करने पर है । "गाँधी के अनुसार यदि हम अच्छे लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं तो बुरे साधनों के द्वारा उन्हें कदापि नहीं कर सकते । जैसे साधन होंगे वैसी ही लक्ष्य की प्राप्ति होगी । उन्हीं के शब्दों में, जैसे साधन होंगे वैसी 'ऐ उपलब्धि होगी । साधनों और परिणामों के बीच उन्हें एक दूसरे से अलग कर देने वाली, कोई दीवार नहीं है.....? अच्छे लक्ष्य की प्राप्ति ठीक उसी मात्रा में होती है, जिसमें अच्छे साधनों का प्रयोग किया जाये । यह एक ऐसा सत्य है, जिसका अपवाद हो ही नहीं सकता । "साधन-साध्य के सम्बन्ध में गाँधी बार-बार यह दोहराते थे 'कि जीवन में साधन-साध्य पर्यायवाची शब्द है । गाँधी के पूर्ण समान रूप से लोहिया ने भी यही माना कि साधनसाध्य अन्तर्परिवर्तनिय है । थोडे समय के लिए साधन, साध्य होते हैं, तथा लम्बे समय में साध्य, साधन बन. हैं । लोहिया ने पूर्णत: गाँधी की भाषा में बोलते हुए कहा कि जैसे साधन होंगे, वैसा ही साध्य होगा । बुरे' द्वारा अच्छे साध्य की कल्पना नहीं कर सकते । लोहिया के शब्दो में : 'सत्य की विजय झूठ से, स्वास्थ्य की प्राप्ति हत्याओं से, एक राष्ट्र द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति दूसरे राष्ट्र की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को खत्म करके, प्रजातन्त्र की प्राप्ति तानाशाही द्वारा कदापि संभव नहीं हैं ।"

प्रत्येक कार्य के औचित्य सिद्ध करने वाले तथा भविष्य को वर्तमान से जोड़ने वाले गाँधी के "वन स्टेप इनफ फॉर मी" के सिद्धान्त में लोहिया ने विश्वास प्रकट किया । लोहिया ने उन लोगो' की आलोचना की, जो तात्कालिकता के सिद्धान्त को अस्वीकार करके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करते हैं, 'तात्कालिक साधन के औचित्य की अपेक्षा दूरवर्ती लक्ष्य को तरफ देखते हैं । उनके अनुसार "आज विश्व 'भविष्य के बारे मे, काफी सोचने लगा है, भविष्य के बारे में लक्ष्य चाहे कुछ भी निर्धारित किये जायें, किन्तु वर्तमान का बलिदान अवश्य हो जाता है । व्यक्ति अपने द्वारा तुरन्त उठाये जाने वाले कदमों की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं है, अत: सामूहिक जीवन में कुछ संदेहास्पद स्थिति पैदा हो जानी है । जब यह पूछा जाता है कि एक तत्कालीन तथा विशेष कार्य लक्ष्य से किस प्रकार जुडा हुआ है तो बताया जाता है कि "अगले कार्य तक इंतजार करों "जब वह अगले कार्य तक इन्तजार करता है तो उससे फिर कहा जाता है "फिर अगले कार्य तक इन्तजार करों" इस तरह कार्यों की श्रृंखला बढती जाती है और एक कार्य भी अपने आप में औचित्यपूर्ण नहीं होता । इनका औचित्य निरन्तर आगे आने वाले कार्यो से सिद्ध किया जाता है जो कभी आता ही नहीं और इस तरह श्रृंखला बढ़ती चली जाती है । सत्य व विश्वशान्ति के नाम पर दुष्टता, भ्रष्टता अपना घेरा बनाती जाती हैं । "लोहिया के अनुसार सुन्दर भविष्य की प्राप्ति के लिए वर्तमान को अस्वीकार कर देना भ्रम है । अत: लोहिया ने गाँधी द्वारा व्याख्यापित 'वन स्टेप अनफ् फॉर मी" के सिद्धान्त पर जोर दिया, जो कि भविष्य को वर्तमान से अर्थात् साध्य को साधन. है ।

12.2.3 छोटी-मशीनी-तकनीक और गाँधी एवं लोहिया

गाँधी के चिन्तन का तृतीय पक्ष जिसे कि लोहिया ने सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया, छोटी-मशीनी-तकनीक था । लोहिया का मानना था कि भारत जैसे अविकसित देश में जहां मानव-शक्ति की बहुल्यता तथा लागत पूंजी की कमी है, वहां छोटी-मशीनी-योजना पर ही देश विकास कर सकता है । किन्तु संदर्भ में लोहिया का दृष्टिकोण गाँधी से कहीं ज्यादा उदार था । गाँधी की औद्योगिक अर्थव्यवस्था का, बिन्दु-चरखा था । उनके अनुसार वृहद उद्योगों का आधार शोषण है । अत: शोषणमुक्त व्यवस्था स्थापित करने में प्रधान वस्तु चरखा है और उसी को धुरी बनाकर स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार जगह-जगह दूसरे उद्योग चलाये' जाये । हिन्द स्वराज्य में गाँधी ने हर तरह की मशीनों का विरोध किया । दूसरी तरफ लोहिया ने गाँधी से भिन्न लघु-मशीनों को तेल तथा विद्युत शक्ति से संचालित करने की आवश्यकता पर जोर दिया । छोटी-इकाई-सिद्धान्त के बारे में गाँधी से तुलना करते हुए लोहिया ने कहा : ' 'हम महात्मा गाँधी का भूत नहों चाहते, उसका सिद्धान्त चाहते हैं । " गाधी की अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए लोहिया ने कहा ' 'गाँधीवाद की..... आर्थिक विचारधारा ने विश्व के किसी भी तबके को विशेष प्रभावित नहीं किया है । पिछडे हुए देशों के लोगो के लिए यह एक उपहास है और विकसित लोगों के लिये एक मजाक । लोहिया ने माना कि हालांकि भारतीय अर्थव्यवस्था में चरखे के महत्व को अस्वीकार नहीं कर सकतें, किन्तु उसे औद्योगिक व्यवस्था का आधार नहीं कह सकते । लोहिया के शब्दों में ' 'यद्यपि चरखा क्षण-भंगुर नहीं है, फिर भी

यह शाश्वत तो नहीं । आवश्यकता है कि गाँधीजी की विचारधारा को तत्काल किया के लिए पूर्ण समर्थ, इस तरह का बनाया जाये कि दीर्घकालीन-क्रियात्मकता को भी उतना ही योग दे सके ।

12.2.4 राजनीतिक विकेन्द्रीकरण और गाँधी एवं लोहिया

अन्तिम सिद्धान्त जिसे कि विचारधारा के आधार पर लोहिया ने गाँधीवादी से स्वीकारा है, राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त है ।गाँधी का मानना था कि केन्द्रीकरण का तात्पर्य हिंसा की क्रियान्वित है । अहिंसा व्यावहारिक रूप में तभी प्रभावकारी रह सकती है, जबकि विकेन्द्रीकृत व्यवस्था हो । केन्द्रीयकृत व्यवस्था में मानव गौण पड जाता है तथा उसकी स्वतन्त्रता एवं प्रतिष्ठा गिर जाती है । गाँधी ने कहा 'राज्य वह सबसे अच्छा है, जहां शासन कम से कम होता है । ''गाँधी की भांति लोहिया ने भी माना कि केन्द्रीयकरण प्रशासकीय क्षमता के प्रतिकुल है । विकेन्द्रीकरण प्रशासकीय शाखाओं में नयी शक्ति भर देता है तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व की वृद्धि के लिए पूर्ण अवसर प्रदान करता है ।

12.3 गाँधी एव लोहिया के विचारों में अन्य अतर

जैसा कि पीछे संकेत दिये जा चुके है, ऐसा नहीं है कि लोहिया ने गाँधी के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता अर्थात् अन्धभक्ति का प्रदर्शन किया हो । बहुत रवे ऐसे मुद्दे है, जिन पर लोहिया ने गाँधी से भिन्न मत अपनाया :-

12.3.1 आध्यात्मिक तथा पारलौकिक तत्वों के संबंध में विचार

गाँधी के चिन्तन में आध्यात्मिक तथा पारलौकिक तत्वों-ईश्वर, आला, पुनर्जन्म आदि-की प्रमुखता है । ईश्वर की उपस्थिति को उन्होंने विश्व रचनामूलक, कारणमूलक तथा प्रयोजनमूलक व्यक्तियों देकर सिद्ध करने की कोशिश की । ईश्वर के सम्बंध में अपने मत को स्पष्ट करते हुए गाँधी ने कहा "मैं स्पष्ट देखता हूं कि जहां मेरे चारों तरफ प्रत्येक वस्तु सदा परिवर्तनशील है, सदा सत्य है, जो सबको एक साथ पकड़े हुए है, जो रचना करती है, विनाश करती है और पुन: निर्माण करती है । वह सर्वात्तर निर्मात्री शक्तियाँ आत्मा ईश्वर है । "ईश्वर की भांति गाँधी ने आत्मा की अमरता, कर्मवाद तथा पुन: जन्म में भी विश्वास व्यक्ति किया । दूसरी तरफ जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, लोहिया का ईश्वर, आत्मा तथा पूर्नजन्म में कतई विश्वास नहीं है, जो कि गाँधी के चिन्तन के मुख्य आधार हैं । एक बार गाँधी ने लोहिया से पूछा था कि क्या तुम ईश्वर में विश्वास करते हो' इस बात पर लोहिया ने उत्तर "नहीं" में दिया था । तब गाँधी ने शंका व्यक्त करते हुये कहा कि तुम (लोहिया) कभी भी अच्छे सत्याग्रही नहीं बन सकते । हालांकि लोहिया ने राम, कृष्ण, शिव, गणेश आदि पौराणिक तत्वों का प्रयोग अवश्य किया, किन्तु गाँधी की भांति उन्होंने उन्हें केवल भारतीय समाजवादी मानस को विकसित करने के प्रतीक रूप में ही स्वीकार किया ।

12.3.2 धर्म और राजनीति के सम्मिश्रण के संबंध में विचार

गाँधी ने धर्म और राजनीति के सम्मिश्रण पर जोर दिया । उन्होंने धर्म और राजनीति में कोई अन्तर नहीं माना । गाँधी के शब्दों में ' 'मेरा जीवन धर्म के सहारे चल रहा है । मैं कह चुका हूं मेरी राजनीति का उद्गम ' स्थल भी धर्म ही है । मेरी राजनीति और धर्मनीति में कोई अन्तर नहीं" । विश्व का इस बात का प्रमाण है कि राजनीति सदैव छल, कपट, हिंसा, क्रूरता, अन्याय, शोषण, अत्याचार आदि दुर्गुणों आधारित रही हैं । अच्छा राजनीतिज्ञ उसे माना जाता है, जो उचित-अनुचित साधनों द्वारा अपने देश के हित की रक्षा कर करके । किन्तु गाँधी राजनीति को सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का एक साधन बनाना चाहते थे । केवल स्वार्थ पर आधारित राजनीतिज्ञ उसे माना जाता है, जो उचित-अनुचित साधनों द्वारा अपने देश के हित की रक्षा कर सके । किन्तु गाँधी राजनीति को सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का एक साधन बनाना चाहते थे । केवल स्वार्थ पर आधारित राजनीति को वे धर्म के विरूद्ध मानते थे । उनका दृढ विश्वास था कि इस प्रकार की राजनीति अन्ततः मानव-जाति के लिए घातक होगी । इसी कारण व्यापक अर्थ में धर्म को राजनीति के लिए अनिवार्य (मानते हुए गाँधी ने कहा "मैं यह नहीं मानता कि धर्म का राजनीति से कोई वास्ता नहीं है । धर्म रहित राजनीति शव के समान है, जिसे दफना देना ही उचित है । सच तो यह है कि आप अपने तरीके से चुपचाप राजनीति को काफी प्रभावित करते हैं और मुझे ऐसा लगता है कि यदि राजनीति को धर्म से विच्छिन्न कर देने का प्रयत्न नहीं । किया गया होता, जैसाकि आज भी किया जा रहा है, तो जिस हद तक राजनीति का पतन हुआ दिखाई पड रब्रीं हैं, वह उस हद तक न 1गिरती । " जहां तक लोहिया का सम्बन्ध है, उनके चिन्तन में भी धर्म की अवधारणा जी काफी महत्व मिला है । लोहिया ने माना कि दोनों की-धर्म और राजनीति की-जड एक ही है । धर्म दीर्घकालीन राजनीति है, राजनीति अल्पकालीन धर्म है । किन्तु गाँधी से पूर्णतः भिन्न उन्होंने राजनीति है, राजनीति तथ धर्म के सम्मिश्रण को कभी भी स्वीकार नहीं किया । लोहिया ने कहा कि धर्म तथा राजनीति के मिलन से उसका सैद्धांतिक पक्ष तो नष्ट हो जाता है तथा व्यावहारिक रूप से वह साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लेता है । उन्हीं के शब्दों ' : ' 'धर्म और राजनीति के दायरे अलग रखना अच्छा है ।.....धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों होते हैं । किसी एक धर्म को किसी एक राजनीति रो कभी नहीं मिलाना चाहिए । इसी से साम्प्रदायिक जनमती है । धर्म और राजनीति को अलग रखने का सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक मिलन और रवे बचें । "लोहिया के अनुसार धर्म का उद्देश्य अच्छायी तथा राजनीति का बुराई का अन्त करना होता है किन्तु दोनों स्थितियों में फर्क है । धर्म तथा राजनीति के मिश्रण के फलस्वरूप यह फर्क बढ जाता है तथा एक से सर्म्पक टूट जाता है । इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न सामाजिक प्रश्नों के प्रति धर्म यथास्थिति का समर्थक बन जाता है तथा राजनीति का स्वरूप झगडालू बन जाता हैं ।

12.3.3 संस्था बनाम व्यक्ति का महत्व ।

लोहिया ने संस्था की कीमत पर कभी भी मनुष्य को अधिक महत्वपूर्ण नहीं । जबकि दूसरी तरफ गाँधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बहुत सी बार ऐसे हस्तक्षेप किये जो यह प्रमाणित करते कि उन्होंने स्वयं संस्था को कोई महत्व नहीं दिया । उदाहरणार्थ सन् 1939 में अखिल भारतीय कांग्रेस के सम्मुख गाँधी द्वारा तैयार किये गये अन्य प्रस्तावों के साथ दक्षिणी अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा । लोहिया ने इस प्रस्ताव में दो संशोधन पेश किये-प्रथम, दक्षिणी अफ्रीका में "ब्रिटिश भारतीय की अपेक्षा को केवल भारतीय ही कहा जाये, चाहे वे दक्षिणी अफ्रीका में रहें या भारत में । द्वितीय, दक्षिणी अफ्रीका में सभी वर्गो का एक संयुक्त मोर्चा कायम हो, चाहे वे भारतीय, नीग्रों, अरब तथा अन्य देशों के गरीब लोग हों । इन पर कांग्रेस-कार्यकारिणी ने स्वीकृति दे दी । किन्तु, गाँधी ने इन पर "वीटो" कर दिया और कांग्रेस द्वारा दुबारा उसी मूल प्रस्ताव को पास करा लिया गया । चूंकि लोहिया का आग्रह किसी खास व्यक्ति विशेष की अपेक्षा संस्था पर अधिक था, अत: उन्होंने नेहरू की इस राय की सशक्त शब्दों में आलोचना की कि, "गाँधी की सम्मति का आदर करना चाहिए ।" इसके विपरीत गाँधी ने कांग्रेस कार्यकारिणी को उनकी व्यक्तिगत राय मान लेने के लिए धन्यवाद दिया ।

ट्रस्टीशिप आर्थिक सिद्धान्त

गाँधी के आर्थिक सिद्धान्तों में ट्रस्टीशिप की मान्यता को प्रमुख स्थान मिला है । जैसा कि स्वयं गाँधी ने लिखा है कि "मेरा ट्रस्टीशिप या संरक्षणकर्ता का सिद्धान्त कोई चीज नहीं है, जो काम निकालने के लिए आज घड़ लिया गया हो । अपनी मंशा को छिपाने के लिए खडा किया गया आवरण तो वह हरगिज नही है । मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धान्त जब नहीं रहेंगे, तब भी यह रहेगा ।" पूंजीवादी व्यवस्था शोषण पर आधारित है, इसका एक विकल्प यह भी हो सकता है कि सम्पत्ति को सरकारी नियन्त्रण में रखा जाये । किन्तु गाँधी के अनुसार यह समस्या का उचित समाधान नहीं है, क्योंकि राज्य का आधार हिंसा पर आधारित है । अत: विकल्प यही है कि पूंजीपति लोग स्वेच्छा से अपनी पूंजी के न्यासधारी बन जायें, ताकि समाज के निम्न वर्गो की भलाई और कल्याण हो सके । गाँधी के अनुसार ट्रस्टीशिप के आधार पर एक तरफ पूंजीवादी शोषण से बच सकते हैं तथा दूसरी तरफ हिंसायुक्त सरकारी नियन्त्रण से । गाँधी के शब्दों में ' 'जितना धन फालतू है उस सबको स्वेच्छा से समर्पित कर देने के अलावा पूंजीपतियों के पास कोई चारा भी नहीं है, जिससे उन्हें एक ओर सबकी असली खुशी हासिल हो सके और दूसरी और वह उस आख्य-। अराजकता को रोक सके जो समय रहते न जगाने के कारण करोडों अहा और भूखे लोगों के उठ खडे होने पर सारे देश में छा जायेगी और जिसे देश की शक्तिशाली सरकार की सेनायें भी नहीं टाल सकेंगी ।" दूसरी तरफ लोहिया ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में कोई विश्वास व्यक्त नहीं किया । प्रथम, लोहिया ने माना कि गाँधीजी का यह सिद्धान्त नैतिक उपदेश से ज्यादा नहीं है । व्यवहार में यह कदापि संभव नहीं है कि पूंजीपति स्वेच्छा से अपनी पूंजी का त्याग कर देंगे । "किसी नैतिक उपदेशक की अपील चाहे वह कितनी ही प्रभावी क्यों न हो, इसका सार्थक परिणाम नहीं निकल सकता..... हजारों, लाखों

पूंजीपतियों को अपनी सम्पत्ति के ट्रस्ट के रूप में नहीं बदल सकते ।" **द्वितीय,** लोहिया के अनुसार, ट्रस्टीशिप के द्वारा गाँधी की आर्थिक समानता की कल्पना भी सार्थक नहीं हो सकती । इस दृष्टि से गाँधीजी की ट्रस्टीशिप का मूल्यांकन करते हुए लोहिया ने लिखा है "सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार नष्ट करने वाला मार्ग कई बातों की वजह से वास्तविकवादिता है । प्रथम तो आम लोगों को इसके कारण बहुत आशायें रहती हैं । वे एक ऐसे समय की आशा करने लगते हैं जब मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण न हो सकेगा । इसकी वजह से वे मौजूदा वक्त के शासक समाज से डरते नहीं । ट्रस्टीशिप के तरीके से जनता के दिल में न तो ऐसी आशा ही पैदा हो सकती है और न ऐसी निर्भीकता, क्योंकि ट्रस्टी या संरक्षक उसकी निगाह में एक ऊंचा आदमी और मालिक के समान रहेगा ही । ऊंचे या मालिक की भावना के कारण मनुष्य की शक्तियां पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं रह सकेंगी.....दूसरे, सम्पत्तिशालियों से संघर्ष करने वाला मार्ग मानव समाज और उसकी प्रकृति से ऐक्य रखता हैं । यह गैर मुमकिन है कि सम्पत्तिशाली मनुष्य ट्रस्टीशिप-केवल संरक्षक बने रहने-के लिए राजी किये जा सकें और फिर उनके विरूद्ध अहिंसात्मक लडाई से तो उनको और भी अनेक कारण मिल जायेंगे ।.....तीसरे, सम्पत्ति से निजी स्वामित्व का अंत और उसके सामूहित स्वामित्व का उद्देश्य हमारे सामने भावी समाज का एक ठीक-ठीक स्वरूप दर्शित करता हैं । इसके जरिये हम एक ऐसे समाज के विषय में अच्छी तरह विचार कर सकते हैं कि वह समाज करने अपने उत्पादन के तरीकों को जारी रखेगा । इस स्कीम में एक ऐक्य है, जबकि गाँधीजी को ट्रस्टीशिप, जो कि छोटी और बडी अनेक तरह की होगी, हमारे सम्मुख एक ऐसे समानताहीन समाज और कार्यो की तस्वीर लाता है, जिसके अनेक रचरूप होंगे ।"

12.3.4 कृषकों-मजदूरों द्वारा सत्याग्रह

लोहिया ने कहा कि गाँधी ने कृषकों-मजदूरों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया । इसी करण गाँधी ने इस वर्ग को सत्याग्रह का अधिकार नहीं दिया । हालांकि इस सदर्भ में गाँधी का कहना था कि किसानों-मजदूरों को सत्याग्रह प्रयोग का अधिकार दिये बिना ही इनमे इसके प्रति जागरूकता तथा इसके प्रशिक्षण की बात करना गलत है । लोहिया के अनुसार गाँधी को अपने सत्याग्रह के अन्य रचनात्मक कार्यकमों के घेरे में किसानों-मजदूरों को भी सम्मिलित करना चाहिए । तभी यह संभव होगा कि समाज के सभी वर्गो में गत्यात्मकता पैदा की जाये । जैसा कि लोहिया ने लिखा है कि "गाँधीजी और समाजवादियों की नीति में अन्तर है । दोनों ही जनता की लडाई के पक्ष में हैं, लेकिन दोनों सत्याग्रहों के बीच में गाँधीजी अनेक रचनात्मक कार्यकमों से-जैसे चरखा, गांव के उद्योग-धन्धे, हरिजनोद्वार आदि में-जनता को संगठित और मजबूत करेगें । इसके विपरीत समाजवादी किसानों और पहले से ज्यादा मजदूरों की मांगों को मनवाकर-जनता को अधिक शक्तिशाली बनायेंगे । ये दो तरह के कार्यक्रम अभी तक विरोधी समझे गये हैं और अपना-अपना प्रचार करने के लिए लोगों ने एक की निन्दा की है और दूसरे की प्रशंसा । लेकिन दोनों ही लाभदायक सिद्ध हुए हैं और देश में अपनी जड़े जमा चूके हैं । क्या यह बिल्कुल असंभव है कि हम उन्हें एक दूसरे के पूरक समझें बहुत सी

गलतियों और सोचने-विचारने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि वे एक दूसरे के पूरक हैं और इससे संयुक्त मोर्चा ही मजबूत न होगा, बल्कि देश व्यापी आन्दोलन को भी सहायता मिलेगी ।"

12.4 सारांश

राम मनोहर लोहिया गाँधी के अनुयायी थे । परन्तु गाँधी और लोहिया की चिन्तन संरचनाओं में कुछ अन्तर हैं, जो सिद्ध करते हैं कि लोहिया ने गाँधी के प्रति कभी अन्धभक्ति का प्रदर्शन नहीं किया । हालांकि लोहिया ने अपने भारतीय समाजवाद के आधार के रूप में गाँधीवाद को स्वीकारा, किन्तु वे उसे गाँधीवाद की प्रतिलिपि नहीं बनाना चाहते थे । अत: गाँधीवाद से कुछ तत्व स्वीकार करते हुए भी लोहिया ने अपना मौलिक स्वरूप बनाये रखा ।

लोहिया ने पूंजीवाद तथा मार्क्सवाद से भिन्न अपनी एक निजी वैचारिक व्यवस्था विकसित करने का प्रयत्न किया। लोहिया ने पूंजीवाद तथा मार्क्सवाद-दोनों ही व्यवस्थाओं की निरर्थकता सिद्ध, करके समाजवाद को एक नया आधार प्रदान किया। हालांकि लोहिया ने उदारवाद से स्वतन्त्रता की धारण, मार्क्सवाद से "रोटी की पूर्ति" की धारणा तथा गाँधीवादी से विकेन्द्रीकरण और छोटी-मशीनी-तकनीकी, आदि तत्वों को लिया । किन्तु उन्होंने इन वैचारिक व्यवस्थाओं से ये तत्व निर्देशन रेखाओं के रूप में ही लिये, जबकि उनका रूपान्तरण पूर्णत: निजी-भारतीय परिवेश के अनुकुल था । लोहिया का प्रयास तो एक ऐसी व्यवस्था का सृजन करता रहा, जो कि विश्व की दो-तिहायी जनता के लिए आधार बन सके तथा उन्हें "समानता तथा समृद्धि" की ओर ले जा सके । यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या लोहिया इस तरह की व्यवस्था विकसित करने में सफल हो पाये इस संदर्भ में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उनकी वैचारिक व्यवस्था की सैद्धान्तिक प्रस्थापनायें; जिन पर वह आधारित है, औचित्यपूर्ण सिद्ध होती हैं, साथ ही तीसरे विश्व, विशेषकर भारतीय व्यावहारिक स्थिति में भी सार्थक सिद्ध हो सकती

12.5 अभ्यास प्रश्न

1. लोहिया के गाँधीवादी विचारों का परीक्षण कीजिए ।
2. राजनीतिक विचार के क्षेत्र में लोहिया और गाँधी के विचारों का तुलनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. आर्थिक और सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र संबंधी विचारों में लोहिया और गाँधी कही तक वैचारिक मतैकता रखते हैं?

12.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपीनाथ धवन दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ. यू पी., दिल्ली, 1973

3. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986

इकाई - 13

गाँधी और जे. सी. कुमारप्पा

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 जीवन परिचय
13.3 गाँधीजी एवं कुमारप्पा
13.4 जेल एवं बिहार
13.5 अखिल भारत ग्राम संघ
13.6 सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों पर दृढ़ विश्वास
13.7 मुद्रा एवं विनिमय पर विचार
13.8 केन्द्रीयकृत नियोजन एवं उत्पादन का विरोध
13.9 कृषि व्यवस्था
1310 सारांश
13.11 अभ्यास प्रश्न
13.12 संदर्भ मथ सूची

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि:

- जेसी. कुमारप्पा कौन थे ?
- कुमारप्पा का आर्थिक दर्शन एवं गाँधीयन ग्रामीण अर्थशास्त्र पर उनके विचार क्या थे ?
- कुमारप्पा के जीवन पर रूस की क्रान्ति के बाद जन्में विचारों का क्या असर पड़ा?
- भारत के कृषि क्षेत्र विशेष रूप रो भूमि सुधारों के बारे में उनकी सोच क्या थी? एवं,
- महात्मा गाँधी के विचारों से उनकी सोच पर क्या प्रभाव पड़ा?

13.1 प्रस्तावना

गाँधीजी के जीवन काल एवं उसके बाद उनके विचारों के आधार पर गांधीवादी विचारधारा को जीवन में उतारने वाले अर्थशास्त्रियों में जे. सी. कुमारप्पा का नाम प्रमुख है । गाँधीजी के को आगे बढ़ाने व उन्हें मूर्त रूप देने के लिए अपना जीवन समर्पण करने वाले प्रमुख विचारक कुमारप्पा के एवं विचारों से इस इकाई में आपका जीवन परिचय कराया जाएगा।

13.2 जीवन परिचय

जे.सी. कुमारप्पा का जन्म 4 जनवरी, 1892 को तंजौर, तमिलनाडु के एक इसाई परिवार में हुआ । उनके पिता भी एस.डी. कार्नलियस (S.D Cornelius.) तत्कालिक मद्रास

सरकार के सार्वजनिक निर्माण विभाग में एक अधिकारी थे, एवं माता एस्थर राजनायकम् (Esther Rajanyakam) भी इसाई परिवार की एक समझदार गृहणी थी । अपने समय में उपलब्ध तमिल किताबों का उन्होंने काफी अध्ययन किया था, परन्तु उनके पास औपचारिक विश्वविद्यालय की शिक्षा नहीं थी । उनके जीवन में धार्मिक सहिष्णुता एवं सादगी झलकती थी । जीवन में दयाभाव एवं दीन-दुखियों की पडोसियों की मदद करना उनका स्वभाव था । माता के सादगीपूर्ण जीवन एवं उनके व्यवहार का पुत्र के विचारों पर स्पष्ट प्रभाव था ।

बचपन में जोसफ को पालतू जानवरों से लगाव था । उनकी माता ने उन्हें मुर्गीपालन हेतु प्रेरित किया । वे जब भी बाजार मासिक राशन आदि खरीदने जाती तो जोसफ को साथ ले जाती व उन्हें भी मुर्गीदाना खरीद देती थी । इस प्रकार जोसफ महीने भर मुर्गियों से प्राप्त अण्डों को बेचकर उनसे होने वाली आमदनी का हिसाब रखता और अन्त में हुई आमदनी का हिसाब अपनी माता को देना होता था । इस आय को माता अपने दान दक्षिणा के कामों के लिए एवं अनाथ बच्चों के लिए व्यय करती थी । यह आदत जोसफ के बड़े होने पर भी जारी रही । उनकी माता को उन्हें तिथिज (tithes) भेजना होता था । एक प्रकार से यह आय का दश्मांश हिस्सा था जो वे भेजते थे, जिससे माता के दान दक्षिणा वाले कार्यो में मदद हो सके । अपनी कमाई के हिस्से के साथ-साथ वह अपने साथियों से भी इसी प्रकार कुछ हिस्सा दान एवं मदद के लिए इकट्ठा कर माता को भेजते थे ।

माता के इन नैतिक एवं अध्यात्मिक विचारों के साथ-साथ उनके पिता ने भी उन्हें सामाजिक जीवन के अच्छे संस्कार दिए । पिता अनुशासन प्रिय, एवं समय के बडे पाबन्द थे । उन्होंने बच्चों को उस वक्त के उपलब्ध अच्छे स्कूलों में पढ़ाया व घर पर भी उनकी पढाई पर ध्यान दिया । इस प्रकार माता-पिता दोनों ने अपने तरीके से अच्छे संस्कार दिये ।

जोसफ स्कूल में एक मेधावी छात्र थे । अपनी अच्छी शिक्षा एव बुद्धि को देखकर उन्हें इन्जिनियरी बनने की इच्छा थी परन्तु परिस्थितियाँ उन्हें लेखाकीकी (Accountancy) की तरफ ले गई । 1913 में जोसफ लन्दन चले गए । वही उन्होंने चार्टड अकाउन्टेट की पढाई की । उन्नीस सौ दस के दशक के वर्षो में पढ़ाई कर, प्रथम विश्वयुद्ध के बाद वे 1919 में भारत लौटे । ब्रिटेन प्रवास के वर्षो में उनकी भारतीय राजनीतिक परिदृश्य एवं ब्रिटिश राज्य के विरोध में कोई दिलचस्पी नहीं थी । कुमारप्पा ने वापस लौटकर बम्बई में एक ब्रिटिश फर्म में नौकरी की । 1924 में फर्म से 'अलग होकर स्वयं की प्रेक्टिस प्रारम्भ की ।

कई वर्षा की प्रेक्टिस के बाद 1927 में कुमारप्पा अमेरिका गए । वहाँ उन्होंने लेखाकीकी को छोड़कर 1928 में व्यावसायिक प्रशासन में बी.एस.सी. की पढ़ाई की । इसके पश्चात कोलम्बिया विश्वविद्यालय से सार्वजनिक वित्त में स्नातकोतर की उपाधि प्राप्त की । प्रोफेसर सैलीगमैन ने न्यूयार्क टाईमन अखबार में जोसफ के द्वारा 18 नवम्बर 1928 को कम्यूनिटी चर्च में दिये गए भाषण शेली जीमद डकपं पे च्चवतश की प्रेस रिपोर्ट पढकर इससे प्रभावित हुये कि उन्होंने जोसफ को यह सलाह दी कि उन्हें स्नातकोतर शोध प्रबन्ध के विषय "Bombay Municipal Finance"को बदलकर"Causes of Indian Poverty Through Public Finance' रखना चाहिए । प्रोफेसर सैलीगमैन की राय को मानकर जोसफ ने अपने लेख का

विषय बदल लिया । इस अध्ययन के निष्कर्षो से ब्रिटिश शोषण एवं अन्याय के प्रति पूरी तरह आश्वस्त होकर वे राष्ट्रवादी हो गये एवं उन्होंने परिवार का मूल हिन्दू नाम कुमारप्पा अपना लिया । उनके विचारों एवं दृष्टिकोण का परिवर्तन धीरे-धीरे परन्तु दृढ तरीके से हुआ । प्रारम्भिक दिनों में उनकी सोच शहरी एवं पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी समर्थक रही । यह सोच ब्रिटेन में रहकर और मजबूत हुई । प्रारम्भिक वर्षो में उनकी माता के संस्कारों रो वे मानवता के प्रति नैतिकतावादी दृष्टिकोण रखते थे । परन्तु बड़े होने पर ब्रिटेन में उनकी सोच बदल गई । चार्टड अकाउन्टेट बनने के बाद जिस कार्य में उन्होंने नौकरी की उस फर्म का मालिक कहता था कि हमें ऐसी कोई गलती नहीं करनी चाहिए जिससे अन्य को हानि पहुँचे, अर्थात् व्यक्ति चाहे जो करे परन्तु उसे अपने कार्य अथवा क्रिया का सामाजिक असर अवश्य ध्यान में रखना चाहिए ।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय में उन्होंने एक सेमीनार दिया जिसका विषय था "The Economics of Enterprise" सेमीनार की अध्यक्षता प्रोफेसर (डॉ) डेवनपोर्ट ने की । प्रोफेसर डेवनपोर्ट एडम एवं अन्य अर्थशास्त्रियों की भांति यह मानते थे कि उत्पादन का लक्ष्य लाभार्जन करना है एवं क्रयशक्ति बढाना है । कुमारप्पा को यह दर्शन आ असत्य लगा । उन्होंने इस विषय पर अपनी पूरी शक्ति से बहस की । प्रोफेसर ने उदारता का परिचय देते हुये उनके तर्को को स्वीकार किया व उन्हें । .ब्दम ग्रेड दिया ।

इस सेमीनार एवं इस पर हुई बहस के बाद कुमारप्पा का यह विश्वास दृढ़ गया कि मानव केवल धन उत्पादन के लिए नहीं बना है बल्कि वह समाज का एक अंग है जिसके कई पहलू -धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आध्यात्मिक एवं नैतिकता भी है । इस दृष्टिकोण के कारण उन्होंने कई लेख लिखे एंव उनका मुख्य लक्ष्य धनार्जन नहीं रहा । उनके कुछ लेखों ने महात्मा गाँधी का ध्यान खींचा ।

13.3 गाँधीजी एवं कुमारप्पा

सन् 1929 में कुमारप्पा गाँधीजी से मिले जिन्होंने उनके जीवन में बदलाव किया । गाँधीजी की सलाह पर उन्होंने गुजरात राज्य का आर्थिक सर्वे किया एवं अपनी पुस्तक प्रकाशित की । प्रारम्भ में कुमारप्पा ने जब गाँधीजी के साथ काम करना प्रारम्भ किया तब पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने गाँधीजी कै तारीफ करते हुवे कहा कि उन्होंने कुमारप्पा जी को बहुत अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया है । जवाब में गाँधीजी ने कहा कि कुमारप्पा को मैंने प्रशिक्षित नहीं किया बल्कि कुमारप्पा उन्हें रेडिमेड मिले हैं । जब 1929 में कुमारप्पा भारत लौटे तो वे अपने शोध 'Indian Public Finance" को प्रकाशित करवाना चाहते थे । उनके एक मित्र सी.एच. सुपारीवाला ने उन्हें गाँधीजी से मिलने को कहा । इसके बाद कुमारप्पा ने गाँधीजी से मिलने के लिए प्रयास किये । गांधीजी के सचिव ने कुमारप्पा को फोन कर बताया कि वह साबरमती आश्रम में किसी भी दिन गाँधीजी से मिल हैं । कुमारप्पा आश्रम पहुँचे एवं अतिथिगृह देखकर हैरत में पड़ गए । वहाँ एक चारपाई के अलावा कुछ भी नहीं । उन्होंने वही से शीघ्र चले जाने में ही भलाई समझी, गाँधीजी के साथ उनका मिलने का तय समय दोपहर 2 बजे था । उन्होंने

इधर-उधर डहानकर समय निकाला एवं तय समय पर गाँधीजी से मिलने पहुँचे । उन्होंने देखा था एक बूढ़ा सा आदमी पेड के नीचे फर्श पर बैठा चरखा कात रहा था ।

कुमारप्पा इस कार्य को झुककर उत्सुकतापूर्वक देखने लगे । पाँच मिनिट बाद उस बूढ़े व्यक्ति ने मुंह खोला एवं पूछा कि वह कुमारप्पा है । उन्हें तुरन्त ही अहसास हो गया कि यह बूढ़ा और कोई नहीं महात्मा गाँधी है एवं जवाब में उन्होंने भी पूछ लिया कि वही गाँधी है । बूढ़े व्यक्ति ने जवाब में हिला दिया एवं कुमारप्पा तुरन्त ही अपनी पतलून की परवाह किये बगैर फर्श पर बैठ गए । बैठने की परेशानी पहचान कर कोई उनके लिए अन्दर से कुर्सी ले आया परन्तु उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि चूंकि गाँधीजी। फर्श पर बैठे हैं ऐसे में वह कुर्सी पर नहीं बैठेंगे ।

गाँधीजी ने तुरन्त कहा कि वह कुमारप्पा के लेख में रूचि रखते हैं एवं यंग इण्डिया के अंकों में उसे सीरिज के रूप में लगातार प्रकाशित करना चाहते हैं । गाँधीजी ने तुरन्त ही पूछ लिया कि क्या कुमारप्पा उनके प्रदेश गुजरात के गांवों का सर्वे कार्य करना चाहेंगे? कुमारप्पा ने कहा कि उन्हें गुजराती भाषा नहीं आती । तुरन्त ही गाँधीजी ने कहा वे अर्थशास्त्र विभाग गुजरात विद्यापीठ के सभी प्रोफेसरों एवं विद्यार्थियों को उनकी मदद के लिए लगा देंगे । गाँधीजी ने कुमारप्पा से कहा कि वे विद्यापीठ के कुलपति काका कालेलकर से भी मिल लें जो अभी उनके लिए कुर्सी लेकर आये थे । बाद में वे काका साहेब से मिले । कुमारप्पा की वेशभूषा देखकर उन्हें लगा कि गाँधीजी के बताये गये कार्य के लिए यह उपयुका नहीं होंगे । दूसरी परेशानी भाषा सम्बन्धी थी अत: कालेलकर साहब ने कुमारप्पा पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया एवं कुमारप्पा गाँधीजी से पुन: मिले बिना ही बम्बई लौट गये । लौटकर उन्होंने गाँधीजी को पत्र लिखा कि उन्हें बताए गये कार्य को करने में खुशी होती परन्तु काका साहेब को ऐसा नहीं लगता कि मैं यह कार्य कर पाऊँगा । जवाब में तुरन्त ही काकासाहेब की चिट्ठी मिली जिसमें उन्होंने लिखा कि गाँधीजी के बताए कार्य को वे स्वीकार करलें तो उन्हें खुशी होगी ।

जब कुमारप्पा ने कार्य प्रारम्भ किया तब गाँधीजी अपनी दांडी यात्रा के लिए निकल चुके थे । इस बीच कुमारप्पा के "Public finance and Poverty" लेख प्रकाशित हुवे । गाँधीजी ने उन्हें एक किताब के रूप में प्रकाशित करने को कहा । कुमारप्पा ने उस पर गाँधीजी की तरफ से Foreword लिखने का आग्रह किया । इस पर बातचीत करने के लिए कुमारप्पा को करडी बुलाया जहाँ वे उस समय रूके हुवे थे । कुमारप्पा ने अपनी तरफ से बहुत अच्छा Foreword गाँधीजी के नाम से लिखा एवं गाँधीजी के सामने हस्ताक्षर हेतु आगे कर दिया । गाँधीजी ने उसे हटाकर अलग कर दिया एवं कहा कि मेरा थ्वतमुवातक मैं ही लिखूँगा कोई अन्य नहीं । उन्होंने कुमारप्पा से कहा की उन्होंने केवल Foreword लिखने पर बात करने नहीं बुलाया बल्कि यह पूछने के लिए बुलाया है कि क्या वे यंग इण्डिया के लिए लिखना चाहेंगे, यदि उन्हें एवं महादेव देसाई को सरकार गिरफ्तार कर लेती है' कुमारप्पा ने कहा कि उन्हें लेखाकीकी की जानकारी है एवं कभी किसी जर्नल के लिए उन्होंने लिखा नहीं है । गाँधीजी ने उत्तर दिया कि उनकी योग्यता को परखने के लिए वे स्वयं सम्पादक के रूप में हैं, अत: निर्णय उन्हें लेना है न कि कुमारप्पा को लेना है एवं मैं तुम्हें इस पत्र में लिखने के लिए

आमंत्रित करता हूँ । कुमारप्पा ने यह कार्य स्वीकार कर लिया एवं बाद में जेल चले गए फिर लौटकर वे आडिटर के अपने मूल कार्य के लिए बम्बई नहीं गए ।

1930 में उन्होंने गाँधीजी के कहने पर खेडा जिले के मटर (Matar) तालुका में आर्थिक सर्वे का कार्य किया । 1931 में उन्हें पहली बार जेल जाना पडा । अहमदाबाद जेल में उन्हें 1 वर्ष 6 माह रखने के आदेश हुए । इसके बाद मार्च 1931 में गाँधी-इरविन पेक्ट में उन्हें जेल से रिहा किया गया । इसी वर्ष कराची अधिवेशन में उन्हें आर्थिक समिति का संयोजक चुन लिया गया । जब गाँधीजी एवं महादेव देसाई गोलमेज सम्मेलन के लिए लन्दन गये तो यंग इण्डिया के सम्पादक का कार्य कुमारप्पा ने सम्भाला । इस अवधि में कुमारप्पा ने एक छोटा पाठ्यक्रम तैयार किया जिससे लोगों को आर्थिक सिद्धान्तों की सैद्धान्तिक शिक्षा दी जा सके एवं भारत की आर्थिक स्थिति से कार्यकर्ताओं को अवगत कराया जा सके । सामान्य आर्थिक सिद्धान्तों की जानकारी देने के लिए उन्होंने निम्न पाठ्यक्रम रखा-

उत्पादन के साधना
औद्योगिक उत्पादन की अवस्थाएं
श्रम विभाजन
व्यावसायिक संगठन
टिप्पणी
कीमत निर्धारण
मुद्रा एवं बैंकिंग
सार्वजनिक व्यय एवं आय

इसके साथ ही आर्थिक स्थिति की जानकारी देने के लिए निम्नांकित लेख भी किए-

भारतीय जनता
आर्थिक संगठन (किसान, दस्तकार, व्यापारी)
प्राकृतिक पर्यावरण
व्यावसायिक पर्यावरण (सरकार, शिक्षा बैंक रेल सड़क)
सार्वजनिक वित्त (आय, ऋण पूँजीगत व्यय)

उन्होंने 12 पुस्तकों की सूची भी प्रकाशित की जो उस समय उपलब्ध थी । वह पाठ्यक्रम को कभी पढ़ा नहीं पाए । उन्हें 1932 में पुन: जेल भेज दिया गया एवं इस बार कारा गृह की भी 2 वर्ष थी । जेल में रहकर उन्होंने कई पुस्तकों का अध्ययन किया एवं अपने नोट्स तैयार किए

13.4 जेल एवं बिहार

जेल में रहते हुए उन्होंने जो नोट्स तैयार किए उनसे तीन कॉपिया भर । परन्तु उनकी पहली कॉपी कहीं खो गई । दूसरी व तीसरी कॉपी में कुछ किताबों के नोट्स थे एवं इसके अतिरिक्त बट्रेड रसल के "Marriage & Morals" पर लेख के नोट्स एवं जेन्स जिन्स के "the Universe Arround us" के नोट्स थे ।

1934 में जेल से छूटने के बाद कुमारप्पा के लिए एक दूसरा कार्य इन्तजार रहा था । 1934 में भूकम्प के बाद बिहार में निजी रिलीफ वर्क्स बड़े पैमाने पर चलाए जा रहे थे एवं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के पास कार्य का भार अधिक जानकार गाँधीजी ने जमुना लाल बजाज को उनकी सहायता करने के लिए कहा । इस कार्य के लिए वित्तीय सलाहकार के रूप में जमुना लाल जी ने कुमारप्पा की मांग की । कुमारप्पा को तुरन्त, सूचित कर पटना जाने को कहा गया । लेखा सम्बन्धी कार्य को उन्होंने बड़ी ईमानदारी एवं उत्सुकता के साथ पूरा किया जिसकी स्वयं डी. राजेन्द्र बाबू ने सराहना करते हुए कहा कि कुमारप्पा के कार्य से बिहार का गौरव बच पाया । अनुभव के आधार पर कुमारप्पा ने एक पेम्पलेट तैयार किया जिसका शीर्षक "Organisation and Accounts of Relief Works" रखा । रिलीफ कार्य के लिए कुमारप्पा ने कठोर नियमों का पालन किया एवं प्रति कार्यकर्ता ब्राने पर व्यय को तीन आना तय कर दिया एवं इस नियम का सख्ती से पालन किया । इसी प्रकार मोटर कार के खर्चो को भी उन्होंने सख्ती से सीमित कर दिया । कुछ समय बाद राहत कोष की एक मीटिंग में भाग लेने हेतु हु महात्मा गाँधी पटना आये तो उन्होंने राहत कार्य के कोष से गाँधीजी का व्यय भी स्वीकार नहीं किया एवं महादेव देसाई से कहा कि व्यय की वे स्वयं व्यवस्था करें ।

बात गाँधीजी के पास पहुँची तो उन्होंने कुमारप्पा को बुलाया एवं कहा कि वे विशेष रूप से राहत कोष की बैठक में भाग लेने के लिए ही आये हैं ऐसे में मोटरगाड़ी का व्यय नहीं देने के पीछे क्या कारण है? कुमारप्पा ने कठोर अनुशासन के लिए रखी गई तीन आना की व्यय सीमा का नियम बताया एवं कहा कि यह पैसा दान दाताओं का है एव वे इस नियम को तौडना नहीं चाहते हैं । गाँधीजी को बात समझ में आ गई उन्होंने महादेव देसाई को बिल प्रस्तुत करने से मना कर दिया ।

एक बार गाँधीजी ने कुमारप्पा को संदेश भिजवाया कि वे पटना आ रहे हैं । वे पटना पहुँचे व उन्होंने राजेन्द्र बाबू से कहा कि कुमारप्पा को सूचित कर दे । राजेन्द्र बाबू ने बताया कि राहत कोष के लेखा में कुछ पैसों का फर्क आ रहा है । यह फर्क आडिटर भी नहीं पकड पाए हैं चूँकि अगले दिन मीटिंग है कुमारप्पा ने दो अन्य साथियों के साथ अपने को कमरे में बन्द कर रखा है एवं वह कार्य पूरा करके ही बाहर आयेंगे । गाँधीजी ने कहा ठीक है उनसे सुबह मिलेंगे । अगले दिन गाँधीजी ने कुमारप्पा को देखा व मिलने का समय मांगा कुमारप्पा ने कहा "आज नहीं शायद कल" परन्तु गाँधीजी ने कहा कि वह तो आज रात ही वरधा चले जाएंगे । कुमारप्पा ने कहा तो उन्हें ऐसी स्थिति में बिना मिले ही जाना पडेगा । गाँधीजी ने कहा मैं बनारस से केवल तुमसे मिलने आया हूँ एवं तुम नहीं मिलोगे, इस पर कुमारप्पा बोले किन्तु "आपने मुझसे मिलने का समय पूर्व निर्धारित नहीं किया है" मैं राहत कोष की मीटिंग के कारण बहुत व्यस्त हूँ । गाँधीजी ने महादेव देसाई को निर्देश दिया कि वे उन कागजों को कुमारप्पा को बाद में दिखा दें । कुमारप्पा एक पखवाडे के बाद वरधा जाकर गाँधीजी से मिले । ऐसी कई घटनाएं है जिनमें उन्होंने अपने सामान्य नियमों को कई बार बडी-बडी हस्तियों के लिए भी नहीं तोडा ।

13.5 अखिल भारत ग्राम संघ

27 अक्टूबर, 1934 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ (AVIVA]) स्थापित करने का निर्णय लिया । कुमारप्पा को इस संघ को सचिव बनाना तय हुआ । उन्हें गाँधीजी के निर्देशन में कार्य करना था । कुमारप्पा ने यह खबर पटना के एक अखबार में पढी । उन्होंने गाँधीजी को लिखा कि इस कार्य हेतु उनकी पूर्व स्वीकृति नहीं ली गई थी । गाँधीजी ने तुरन्त अपनी गलती स्वीकार कर ली एवं कुमारप्पा को कहा कि क्या अब उनकी स्वीकृति ली जा सकती है' कृपया कार्य प्रारम्भ कर दें एवं प्रक्रियात्मक गलती पर ध्यान न दें ।

बाद में कुमारप्पा ने पूछा इस कार्य के लिए कोष कही पर है एवं कार्यकर्ता कही है? गाँधीजी ने कहा कोष की परवाह न करें जितना जरूरी होगा मिल जायेगा एवं कार्यकर्ता तो सबसे पहले कार्यकर्ता कुमारप्पा स्वयं है । इसके बाद कुमारप्पा ने AIVIA का कार्य प्रारम्भ कर दिया एवं पूरे देश का भ्रमण किया । वरधा में इसका मुख्यालय रखा गया । संघ को कार्यो को पाँच भागों में बांटा गया -

1. कोष जुटाना
2. शोध करना
3. साहित्य प्रकाशित करना
4. प्रचार
5. प्रशिक्षण, प्रसार एवं संगठन

इसके सदस्यों ने स्थानीय, स्वदेशी निर्मित वस्तुओं जैसे खादी के प्रयोग को प्रोत्साहित किया व मिल के कपड़े का उपयोग ने करने की प्रेरणा दी गई । गाँव के मिट्टी के बर्तन, नीम व बबूल का दातुन, हाथ का बना कागज, गाँव के मोची के हाथ के बने जूते, गुड़ जैसी स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा देंगे की नीति अपनाई गयी । अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ की स्थापना के तुरन्त बाद 1934 में गाँधीजी ने लिखा कि ग्रामीण उद्योग संघ की केन्द्रीय प्रबन्ध मण्डल एक प्रशासनिक मण्डल नहीं होगा बल्कि एक सलाहकार मण्डल एवं देखरेख करने वाला संस्थान होगा । हम प्रशासन के केन्द्रीकरण के पक्ष में नहीं है । हम केवल ज्ञान एवं नीति निर्माण का केन्द्रीकरण चाहते हैं । इसके सदस्य जाति से ऊपर उठकर सभी का सहयोग लेकर कार्य करेंगे । 1936 AIVIA में एक प्रदर्शनी आयोजित की जिसका उद्घाटन गाँधीजी ने किया । यह प्रदर्शनी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ की मीटिंग के अवसर पर लगाई गई थी । इसका लक्ष्य गाँव की वस्तुओं का प्रदर्शन कर उनके लिए मांग उत्पन्न करना न होकर उत्पादन प्रोत्साहन एवं मांग के अनुरूप उत्पादन करना था । जिन कृषि उत्पादनों को इसमें सम्मिलित किया गया उनकी संख्या कुल 60 थी । इस प्रकार महात्मा गाँधी की इच्छा के अनुरूप ।प्टp। के गठन का उद्देश्य जनता के साथ अधिक से अधिक जुड़ना था । इसके लिए ग्रामीण उद्योगों का पुनरूद्वार कर उन्हें पुनर्जीवित करना था । हरिजन उद्वार के लिए गाँधीजी की भारत यात्रा के दौरान उन्हें यह अनुभव हो गया कि बड़े पैमाने पर व्याप्त बेरोजगारी का इलाज खादी में निहित है । 1934 में गाँधीजी ने अखिल भारत बुनकर संघ की स्थापना भी की थी एवं उसी

कार्य को आगे बढ़ाने के लिए कुमारप्पा जी के सहयोग से अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ बनाया था एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति में अपना पूर्ण सहयोग दिया ।

AIYIA के बनने के दो वर्ष बाद 1936 में कुमारप्पा ने एक ग्रन्थ प्रकाशित किग्रा जिसमें उन्होंने अपने ग्राम आधारित स्वदेशी विकास के ग्रामीण उद्योग मॉडल के सैद्धान्तिक आधारों का विवेचन किया । गाँधीवादी आर्थिक विचारा लगे विस्तृत रूप में उल्लेखित करने वाला उनके इस पहले गन्ध का नाम "Why the Village Movement?" A Quest for Social Order based on Violence" रखा गया । कुछ वर्षो बाद "भारत छोड़ो' आन्दोलन के दिनों में कुमारप्पा को जेल जाना पड़ा । जेल में उन्होंने दो पुस्तके लिखी । पहली पुस्तक का नाम Economy of Permanance:A Quest for a Social based on Non-Violence' था । " रखा गया । इस पुस्तक में कुमारप्पा के आर्थिक दर्शन की विवेचना देखने को मिलती है । यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि कुमारप्पा कोई विद्वान दार्शनिक नहीं थे । गाँधीजी की तरह कुमारप्पा,भी कार्य करने में विश्वास रखते थे ।

13.6 सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों पर दृढ़ विश्वास

गाँधीजी की ही भांति कुमारप्पा का भी सत्य एवं अहिंसा में दृढ़ विश्वास था । इस। वजह से वे अर्थव्यवस्था को (Natural Order) प्राकृतिक आधार पर आगे बढ़ाना चाहते थे । 1930 में खुलकर कार्यक्रमों में भाग लेने से पूर्व वे अपने इसी सिद्धान्त पर कार्य कर रहे थे । उन्होंने कहा कि-

"In studying human institutions we should never lose sight of that great teacher, Mother Nature, Anything that we may devise if it is contrary to her ways, she will ruthlessly annihilate sooner or later. Every that in nature seems to follow a movement. Water from the sea rises as vapour and falls on land in refreshing showers and returns back to the sea again…….A nation that forgets or ignores this fundamental process in forming its institutions will disintegrate"

कुमारप्पा का दृढ विश्वास था कि सभी प्राणी प्रकृति के जन्म एवं क्षय तथा पुनर्जन्म रूपी चक्र से नियंत्रित होते हैं । इस चक्र में किसी भी स्तर पर यदि बाधा उत्पन्न होती है तो उसका परिणाम हिंसा होता है । उनके यह विचार विद्यार्थी जीवन से ही थे कोलम्बिया में पढ़ते हु वे भी उनका मानना था कि सार्वजनिक वित्त किसी भी देश की सरकार के हाथ में शक्तिशाली शस्त्र हैं एवं सरकार को इसका प्रयोग देश के प्राकृतिक संसाधनों के हित में इस प्रकार करना चाहिए कि प्रकृति के नियम की रक्षा हो सके । कर ज्गंद्ध इस प्रकार उन्हीं समूहों पर लगाने चाहिए जो चुकाने के लिए सक्षम है एवं कर देने का उन्हें अहसास ही न हो जैसे समुद्र से पानी भाप बनकर ऊपर उठ जाता है एवं बाद में वर्षा बनकर पुन: आवश्यकतानुसार राहत पहुँचाता है।

इकानोमी ऑफ परमानेंन्स:- विश्व युद्ध के दिनों में कुमारप्पा ने जेल में सार्वजनिक चर्चित पुस्तक "Natural Order"लिखी । प्रारम्भिक पृष्ठों पर उन्होंने लिखा स्थायी क्या है' मानव जीवन तो 100 वर्षो का है जबकि प्रकृति स्थायी है और उसका स्थायित्व प्रकृति के चक्र में निहित है । जब तक क्षय व पुनर्जन्म का यह चक्र चलेगा प्रकृति स्थायी रहेगी ।

कुमारप्पा का यह विश्वास बडा ही दृढ था कि भौमिक एवं जैविक चक्र एव प्रकृति के अनुरूप जीवन (Natural Order) वस्तुत: सत्य, अहिंसा एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित होता है एवं सभी प्राणी इस चक्र से बंधे होते हैं । उस पर विजय प्राप्त कर उसके विरोध में आचरण नहीं करते । केवल मात्र मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी बुद्धि चातुर्य से प्रकृति के इस चक्र के विरूद्ध आचरण करने की क्षमता रखता है अत: मनुष्य मात्र पर प्रकृति के चक्र का पालन करने की बड़ी जिम्मेदारी है । कुमारप्पा सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं । वह इस बात पर विचार करते हैं कि प्राकृतिक चक्र में किस प्रकार उद्विकास सम्भव होता है इस प्रकार वह

विभिन्न उद्विकास क्रम को पाँच भागों में विभक्त करते हैं-

1. परजीवी अर्थव्यवस्था (Parastic Economy)
2. परभक्षी अर्थव्यवस्था (Predatory Economy)
3. उद्यमशील अर्थव्यवस्था (Economy of Enterprise)
4. मिलनसार अर्थव्यवस्था (Economy of Gregation)
5. सेवा अर्थव्यवस्था (Economy of Service)

प्रथम दो प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के उद्विकास में किसी भी प्रकार का प्राकृतिक चक्र नहीं होता न कोई अधिकार होते हैं न दायित्व । उद्यमशील व्यवस्था में व्यक्तिगत हित की भी भावना होती है । यह मानव सभ्यता के विकास का प्रथम चरण है । इसमें परोपकार की भावना की कमी से हिंसा की प्रधानता होती है । मिलनसार अर्थव्यवस्था में स्वहित की भावना का स्थान समाज का हित ले लेता है चूँकि उसकी समझ में यह आ जाता है कि मनुष्य केवल स्वहित के आधार पर समाज का निर्माण नहीं कर सकता । इससे मानव के जीवन में कुछ परोपकार की भावना आ जाती है एवं वह समूह के हित की सोच रखने लगता है । व्यक्ति इस अर्थव्यवस्था में मधुमक्खी की भांति व्यक्ति की जगह समाj: की सोचने लगता है परन्तु फिर भी हिंसा मुक्त समाज की स्थापना नहीं हो पाती ।

सेवा अर्थव्यवस्था एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें अधिकार से अधिक दायित्वों को निभाने की भावना मजबूत हो जाती है । यदि अर्थव्यवस्था में दायित्वों के स्थान पर अधिकारों की भावना है तो वह सामाजिक उद्विकास की सेवा अर्थव्यवस्था का चरण नही है । यहाँ पर समाज अथवा देश में उपलब्ध संसाधनों का दोहन भी लाभ के उद्देश्य को रखकर नहीं होता बल्कि उतना ही होता है जितना दीर्घकालिक विकास में बाधा उत्पन्न न करे । कुमारप्पा के मत में संसाधनों के दो भाग है एक जिनका पुनर्भरण हो सकता है एवं दुसरा जिनका पुनर्भरण नहीं होता । जिस समाज में दूसरे प्रकार के संसाधनों का उपयोग होता है वह भी कुमारप्पा के मत में मिलनसार अर्थव्यवस्था ही है वस्तुत: सेवा अर्थव्यवस्था में मात्र पुनर्भरणयोग्य संसाधनों को ही ' उपयोग में लिया जाता है । वस्तुत: कुमारप्पा को ही पहले पर्यावरण रक्षक के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए क्योंकि वह प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुंध उपयोग के पक्षधर नहीं थे ।

सन् 1937 में राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया गया । श्री जवाहर' लाल नेहरू के अनुरोध पर गाँधीजी ने कुमारप्पा को इस समिति में कार्य करने को कहा । कुछ समय कार्य

करने के बाद कुमारप्पा को ऐसा लगा कि उनके समय का समिति में सद्पयोग नहीं हो रहा है तो उन्होंने नियोजन समिति की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया । इसके बाद केन्द्रीय प्रोविन्स सरकार ने एक औद्योगिक सर्वेक्षण समिति का गठन कुमारप्पा की अध्यक्षता में किया । कुमारप्पा ने यह कार्य स्वीकार कर लिया एवं बताया कि हमारे द्वेश के विकास के लिए किस प्रकार एक केन्द्रीय कार्यक्रम का संचालन किया जाता है । इसके बाद उनकी इस योग्यता के कारण उन्हें ऐसे कई कार्य सौंपे गये । उनके इस कार्य एवं कार्यशैली की काफी सराहना की गई।

13.7 मुद्रा एवं विनिमय पर विचार

कुमारप्पा के मत में वस्तुओं का लेन-देन एवं भौतिक विनिमय नहीं बल्कि नैतिक भी है । उदाहरणार्थ यदि कोई क्रेता ऐसी वस्तु खरीदता है जिसका उत्पादन श्रमिकों के शोषण का परिणाम है तो वह क्रेता भी उस शोषण एवं कार्यदशा के लिए जिम्मेदार है । उत्पादक एवं क्रेता के बीच की दूरी से विनिमय आ नैतिक आधार पर मूल्यांकन में बाधा आती है । इसके लिए कुमारप्पा चाहते थे कि उत्पादन विकेन्द्रित हो जिससे को उन वस्तुओं को क्रय करते समय उन परिस्थितियों को भी देख सके जिनके अन्तर्गत वस्तु विशेष का उत्पादन किया गया है । इस प्रकार गाँधीवादी अर्थशास्त्र की विकेन्द्रित उत्पादन के सिद्धान्त का आधार नैतिक विनिमय की जिम्मेदारी है ।मुद्रा का प्रयोग करने के कारण वस्तु के विनिमय का नैतिक मूल्यांकन असम्मव हो जाता है । मुद्रा का उपयोग शोषण एवं असमानता को बढ़ाता है । मुद्रा का भौतिक रूप में उस प्रकार क्षय नहीं होता जैसे भौतिक वस्तुओं का होता है । नाश्वान वस्तुओं के सन्दर्भ में वस्तुओं का क्षय त्वरित होता है । एक केला अथवा मछली बेचने वाले की मोलभाव क्षमता उस व्यक्ति के मुकाबले काफी कम होगी जो स्वर्ण धातु का व्यवसाय करता है । अत: कुमारप्पा बहु उद्देशीय सहकारी समिति बनाना चाहते थे जिससे मुद्रा अर्थव्यवस्था का प्रसार रोका जा सके । वे मुद्रा व्यवस्था के भी विकेन्द्रीयकरण के पक्षधर थे । मुद्रा आधारित विनिमय व्यवस्था को वे प्रकृति व्यवस्था के विपरीत मानते, थे । हिंसा एवं शोषण के द्वारा ही बड़े पैमाने पर संचय होता है । अत: कुमारप्पा मुद्रा के प्रयोग से विनिमय के पक्षधर नहीं थे । वे उत्पादन के केन्द्रीयकरण के पक्ष में नहीं थे ।

13.8 केन्द्रीयकृत नियोजन एवं उत्पादन का विरोध

रूस के क्रांति के बाद जन्मी समाजवादी एवं साम्यवादी विचारधाराओं में केन्द्रीयकृत उत्पादन एवं नियोजन प्रणाली की सफलता से कई भारतीय नेता भी भारत को तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग पर ले जाना चाहते थे । वे उत्पादन के साधनों का नियंत्रण राज्य के हाथों में देना चाहते थे परन्तु कुमारप्पा समाजवादी केन्द्रीय नियोजन एवं संसाधनों पर सामूहिक स्वामित्व के पक्षधर नहीं थे । उनका मत था कि दोनों ही प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में चाहे वह पूँजीवाद हो अथवा साम्यवाद सत्ता एवं राज्य अधिकारों का संचालन कुछ हाथों तक सिमट जाता है एवं इन व्यवस्थाओं में आम जनता का कल्याण नहीं हो पाता । इसलिये कुमारप्पा ग्राम उद्योग संघ के माध्यम से उत्पादन की विकेन्द्रित व्यवस्था लागू करना चाहते थे ।

सोवियत रूस के आर्थिक विकास माडल का विरोध करने के कारण जयप्रकाश नारायण ने एक पर्चा छपवाकर इसका भारी विरोध किया । केन्द्रीय नियोजन प्रणाली में आर्थिक विकास

की गति अवरूद्ध हो जाती है । वे जानते थे कि कुछ क्षेत्र जैसे यातयात (रेल्वे) विद्युत उत्पादन आदि उद्योगों में प्राकृतिक रूप से एकाधिकार विद्यमान होता है ऐसी स्थिति में राज्य को संसाधनों का नियंत्रण जनता के हाथ में लेकर ग्रामीण उद्योगों को समर्थन देना चाहिए । इस प्रकार कुमारप्पा को ग्राम विकास कार्यक्रमों की बडी समझ थी एवं उनके विचार गाँधीजी के विचारों से मेल खाते थे । उनकी योजनाओं का अक्सर गाँधीजी की सहमति मिल जाती थी ।

13.9 कृषि व्यवस्था

कृषि व्यवस्था के तीव्र औद्योगीकरण के समर्थन की बजाय कुमारप्पा की समझ में कृषि को भारतीय सन्दर्भ में समझना अधिक आवश्यक था । उन्होंने कहा कि कृषि एक उद्योग की भांति भी है तो एक व्यवसाय भी । इसलिये पश्चिमी देशों की औद्योगिक कृषि जहाँ पूँजी की प्रचुरता एवं श्रम की कमी है के स्थान पर वे कृषि को जीवन निर्वाह के एक व्यवसाय के रूप में विकसित देखना चाहते थे । कुमारप्पा ने बताया कि कृषि के तीन प्रमुख अंग है - भूमि, मानव, श्रम एवं सरकार । हमारी तत्कालिक आवश्यकता खाद्यान्न पूर्ति के साथ ही कृषि का दीर्घकालीन विकास भी हमारा लक्ष्य होना चाहिए । कुमारप्पा अपने तर्क देकर प्रकृति व्यवस्था के आधार पर भूमि की उर्वरता के रक्षण के प्रबल पक्षधर थे । उर्वरता की रक्षा के लिए देसी खाद व कम्पोस्ट खाद का उपयोग करने की सलाह देते हैं । क्योंकि उर्वरकों के उपयोग से भूमि की प्राकृतिक उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है एवं प्राकृतिक व्यवस्था भी गड़बड़ा जाती है । जिस भूमि की उर्वरा शक्ति कमजोर है, उनका वैज्ञानिक समाधान खोजा जाय । भूमि की उर्वरा शक्ति का परीक्षण किये बिना उच्छेदन कहा रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं होना चाहिए ।

कुमारप्पा ने संतुलित खेती के बारे में अपनी योजना जून 1946 में ग्राम उद्योग पत्रिका के अंक 8(6) में प्रकाशित की । एक लाख व्यक्तियों की एक क्षेत्र विशेष की इकाई को आधार मानकर 2800 कैलोरी भोजन एवं कपडे की आवश्यकता के आधार पर उन्होंने यह योजना तैयार की एवं इसके क्रियान्वयन में राज्य की एक निश्चित भूमिका का भी उल्लेख किया । कुमारप्पा कृषि के लिए एक निश्चित सरकारी नीति लागू करना चाहते थे जिसमें कृषि उपज किसान की स्वेच्छा पर नहीं बल्कि क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के आधार पर होगी । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1949 में काँग्रेस ने कृषि सुधार पर एक समिति कुमारप्पा के निर्देशन में बनाई जिसमें जमींदारी व्यवस्था समाप्त करने की सिफारिश की । समिति ने विस्तृत भ्रमण कर किसानों की स्थिति उनकी ऋणग्रस्तता पर भी रिपोर्ट दी । 1950 तक भारत में प्रभावी भूमि सुधार लागू नहीं किये जा सके । इसके साथ ही विनोबाभावे के सर्वोदयी विचार एवं भूदान आन्दोलन भी प्रारम्भ हुये । कुमारप्पा ने संतुलित खेती (Balanced Cultivation) के बारे में अपनी योजना जून 1946 में ग्राम उद्योग पत्रिका के अंक 8(6) में प्रकाशित की । एक लाख व्यक्तियों की एक क्षेत्र विशेष की इकाई को आधार मानकर 2800 कैलोरी भोजन एवं कपड़े की आवश्यकता के आधार पर उन्होंने यह योजना तैयार की एवं इसके क्रियान्वयन में राज्य की एक निश्चित भूमिका का भी उल्लेख किया । कुमारप्पा कृषि के लिए एक निश्चित सरकारी नीति लागू करना चाहते थे जिसमें कृषि उपज किसान की स्वेच्छा पर नहीं बल्कि क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के आधार पर होगी । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1949 में काँग्रेस ने कृषि सुधार

पर एक समिति कुमारप्पा के निर्देशन में बनाई जिसमें जमींदारी व्यवस्था समाप्त करने की सिफारिश की । समिति ने विस्तृत भ्रमण कर

किसानों की स्थिति उनकी ऋणग्रस्तता पर भी रिपोर्ट दी । 1950 तक भारत में प्रभावी भूमि सुधार लाग नहीं किये जा सके । इसके साथ ही विनोबाभावे के सर्वोदयी विचार एवं भूदान आन्दोलन भी प्रारम्भ हुये ।

13.10 सारांश

कुमारप्पा एक विचारक विद्वान एवं गाँधीवादी विचारों के नेता थे जिनका जन्म 1892 में तमिलनाडु राज्य में हुआ । इसाई परिवार में जन्मे कुमारप्पा का नाम जोसफ था । जोसफ विद्यार्थी जीवन से ही एक मेधावी बालक थे । ये इन्जिनियरी बनना चाहते थे परन्तु इन्हें परिस्थितियां एकाउटेन्सी की तरफ ले गई । इन्होंने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में गाँधीजी के साथ कार्य किया । इन्होंने अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ की स्थापना की । सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों पर इनका अटूट विश्वास था । इन्होंने अपने आर्थिक विचार इकानोमी ऑफ परमानेंन्स नामक पुस्तक में व्यक्त किए। इनका दृढ विश्वास था कि जीवन प्रकृति के अनुरूप होना चाहिए । कुमारप्पा मुद्रावादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर नैतिक मूल्य आधारित विनिमय प्रणाली लागू करना चाहते थे । 1937 में 'राष्ट्रीय नियोजन समिति के सदस्य बने । कुमारप्पा विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष में थे । इनका मत था कि कृषि विकास से ही भारत का आर्थिक विकास सम्भव है । कृषि में कुमारप्पा उर्वरकों का उपयोग करना नहीं चाहते थे । कृषि जीवन निर्वाह का साधन है । 1949 में कृषि सुधार समिति के अध्यक्ष के रूप में कुमारप्पा ने जमींदारी व्यवस्था समाप्त करने की सिफारिश की ।

13.11 अभ्यास प्रश्न

1. जेसी. कुमारप्पा का जीवन परिचय दीजिये एवं कुमारप्पा के आर्थिक दर्शन ।व ग्रामीण दर्शन व ग्रामीण उद्योग संघ में उनकी भूमि की विवेचना कीजिए ।
2. जेसी. कुमारप्पा गाँधीजी से कब व कैसे मिले थे' गाँधीजी ने उन्हें क्या-क्या कार्य सौंपे एवं उन्हें कुमारप्पा ने किस प्रकार पूरा किया ।
3. कुमारप्पा के जीवन से आपको क्या प्रेरणा मिलती है? सत्य, अहिंसा एवं नौतिक मूल्यों पर उनके विचारों की विवेचना कीजिए ।
4. कुमारप्पा के केन्द्रीय नियोजन के बारे में क्या विचार थे ' उन्होंने अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ में रहकर क्या कार्य किए ।
5. कुमारप्पा के जीवन एवं दर्शन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए । उनके कृषि व्यवस्था सम्बन्धी विचार एवं प्राकृतिक चक्र के विचारों से आप कहीं तक सहमत है ।

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लिन्डलै, मार्क, जेसी. कुमारप्पा. महात्मा गाँधीस इकोनॉमिस्ट पॉपुलर प्रकाशन, नई दिल्ली,2007
2. कुमारप्पा, जेसी., इकोनॉमी ऑफ परमानेन्स सर्व सेवा संघ प्रकाशन, बनारस,1937.

3. कुमारप्पा, जेसी., वाय द विल्लेज मूवमेन्ट सर्व सेवा संघ प्रकाशन, बनारस,1958
4. कुमारप्पा, जेसी., काउ इन अवर इकॉनोमी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, बनारस,1963
5. कुमारप्पा, जेसी., यूरोप थ्रु गाँधीयन आइस मगनवाडी, वर्धा, 1948
6. कुमारप्पा, जेसी., स्वराज फॉर द मासेस, हिन्द किताब लि. बम्बई, 1948
7. कुमारप्पा, जेसी., पीसी एण्ड प्रोस्पेरिटी, मगनवाडी, वर्धा , 1948

इकाई - 14

गाँधी और एम. एन. रॉय

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 मानवेन्द्र नाथ रॉय का परिचय एवं प्रस्तावना

14.2 मानवेन्द्र नाथ रॉय की रचनाऐं

14.3 मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचार

14.3.1 मानवेन्द्र नाथ रॉय एवं मार्क्सवाद

14.3.2. मानवेन्द्र नाथ रॉय एवं गाँधीवाद

14.3.3 मौलिक लोकतंत्र की अवधारणा

14.3.4 नवीन मानववाद की संकल्पना

14.4 सारांश

14.5 अभ्यास प्रश्न

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 उद्देश्य

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तकों में एम.एन. राय को महत्वपूर्ण प्राप्त है । उन्होंने नवीन मानववाद'(New Humanism) का आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसे राजनीतिक चिन्तन में नवीन योगदान समझा जा सकता है । व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समानता का जयघोष करके उन्होंने व्यक्ति की गरिमा को आगे बढाया । राय ने 'दलविहीन लोकतन्त्र' (मौलिक लोकतन्त्र) का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया, ज़ो एक आकर्षक आदर्श है । उन्होंने समाज में नैतिक मूल्यों को पुन: प्रतिष्ठित करने का आग्रह किया और साम्यवाद को तानाशाही प्रवृत्ति से बचाने का प्रयत्न किया । उनके और गाँधी के चिन्तन में कुछ भिन्नतायें अवश्य हैं परन्तु व्यक्ति के गरिमामयी जीवन और न्याय, समानता, इत्यादि प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति दोनो ही प्रतिबद्ध थे औद समाज में इसकी स्थापना के जबरदस्त समर्थक थे । प्रस्तुत इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य है - :

- मानवेन्द्र नाथ रॉय के चिन्तन का परिचय करना ।
- मानवेन्द्र नाथ रॉय की मार्क्सवादी विचार-यात्रा के बारे में समझना ।
- गाँधीवाद के सम्बन्ध में मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचारों को समझना ।
- दल विहीन लोकतन्त्र' जैसी आदर्श व्यवस्था के बारे में मानवेन्द्र नाथ रॉय विचारों को जानना ।
- नवीन मानववाद' की संकल्पना जिसके कारण राजनीतिक चिन्तन में महत्वपूर्ण स्थान है, की विवेचना कीजिये ।

14.1 मानवेन्द्र नाथ रॉय का परिचय एवं प्रस्तावना

मानवेन्द्र नाथ राय का जन्म 6 फरवरी, 1886 को कलकत्ता के निकट एक गांव में हुआ था । राय का प्रारम्भिक नाम नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य था । तत्कालीन बंगाल में, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की लहर चल रही थी, ऐसे समय में राजनीतिक बोध होना स्वाभाविक है । इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में ही वे राष्ट्रवादी विचारों के सम्पर्क में आए । राय के जीवनी लेखक 'मुंशी और दीक्षित' के अनुसार, "राय का जीवन स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी दयानन्द से प्रभावित रहा । "इन सन्तों और सुधारकों के अतिरिक्त उनके जीवन पर विपिन चन्द्र पाल और सावरकर का अमिट प्रभाव पड़ा ।

मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचारों की यात्रा का आरम्भ अमरीका में मार्क्सवादी विचारधारा से हुआ क्योंकि उस समय वे लेनिन के विचारों से प्रभावित थे । उनका मानना था कि भारत की गरीबी व दुर्दशा को मार्क्सवादी विचारों को साकार रूप देकर सुधारा जा सकता है । भारत आकर मार्क्सवादी विचारधारा को लागू करने का प्रयास किया परन्तु कुछ असहज कमियों के कारण मार्क्सवादी विचारों से मोह भंग हो गया और आदर्शवादी विचारों की ओर मुडे । उन्होंने आदर्शवाद के धरातल पर गाँधीवादी विचारधारा की ओर मुडते हुए 'दलविहीन लोकतन्त्र' और 'नवीन मानववाद' की संकल्पना देते हुए 'विश्व राज्य' की कल्पना की ।

14.2 मानवेन्द्र नाथ रॉय की रचनाऐं

(1) दी वे टू डयूरेबिल पीस (The way to Durable Peace)
(2) वन ईयर ऑफ नॉन-कोआपरेशन (One year of non-co-operation)
(3) दी रिवोल्यूशन एण्ड काउण्टर रिवोल्यूशन इन चाइना (The Revolution and Counter Revolution in China)
(4) रीजन, रोमाण्टिसिज्म एण्ड रिवोल्यूशन (Reason, Romaniticism and Revolution)
(5) इण्डियन इन ट्रांजीशन (India in Transition)
(6) इडियन प्राबलम्स एण्ड देयर सोलयूशन्स (Indian Problems and their Solution)
(7) दी फ्यूचर ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स (The Future of Indian Politics)
(8) हिस्टोरिकल रोल ऑफ इस्लाम (Historical Role Of Islam)
(9) फासिज : इट्स फिलॉसफी, प्रोफेशॅन्स एण्ड प्रेक्टिस (Fascism: Its Philosophy, Professions and Practice)
(10) मैटिरियलिज्म (Materialism)
(11) न्यू ऑरियन्टेशन (New Orientation)
(12) बियोन्ड कम्यूनिस्म टू ह्यूमेनिज्म (Beyond Communism to Humanism)
(13) न्यू ह्यूमेनिज्म एण्ड पॉलिटिक्स (New Humanism and Politics)

(14) पॉलिटिक्स, पावर एण्ड पार्टीज (Politics Power and Parties)

(15) दी प्रिंसिपल ऑफ रेडिकल डेमोक्रेसी (The principles of Radical Democracy)

(16) कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ फ्री इण्डिया (Constitution of free Indi)

(17) रेडिकल ह्यमेनिज्म (Radical Humanism)

(18) अवर डिफरेसिज (Our Difference)

(19) साइन्स एण्ड फिलॉसफी (Science and Philsophy)

(20) ट्वेण्टि टू थीसिस (Twenty two Thesis)

14.3 मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचार

राय अपने चिन्तन के प्रथम काल (1901-1915) में एक रामांटिक क्रान्तिकारी रहे । बकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ' क सामाजिक आदर्शवाद ने भी उन्हें प्रभावित किया। वे 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' (Cultural Nationalism) से भी प्रभावित थे । उनका मानना था कि हिंसक उपायों से ब्रिटेन को भारतीयों के हाथों में सत्ता सौंप देने के लिए बाध्य किया जा सकता है। राय ने कहा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रान्तिकारी हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक साधनों को अपनाया जा सकता है । एम.एन. रॉय के, गाँधीवाद, मौलिक लोकतन्त्र व नवीन मानववाद संबंधी विचार निम्नलिखित है:

14.3.1 मानवेन्द्र नाथ राय और मार्क्सवाद

राय ने सन् 1915-17 के वर्षा में अमरीका में रहते हुए मार्क्स तथा अन्य समाजवादी लेखकों की रचनाओं पर्याप्त अध्ययन किया था । वे मार्क्स के दर्शन से प्रभावित हुए । उन्होंने मैक्सिको में साम्यवादी दल की स्थापना की और 'साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय' के संस्थापक सदस्य के रूप में अपने दृढ़ मार्क्सवादी होने का परिचय दिया । उन्होंने भारत में साम्यवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए भारी प्रयास किए । उन्होंने भारतीय दरिद्रता ब्रिटिश साम्यवाद और देशी सामन्तवाद (जमींदार और पूंजीपति) के शोषण का परिणाम है औ। इस दरिद्रता का उन्मूलन तभी सम्भव है जबकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसके आधार रूप में कार्य करने कुली इस देशी सामन्तवादी व्यवस्था का जड से समाप्त कर दिया जाए ।

समर्थन :

मानवेन्द्र नाथ राय ने निम्नलिखित मार्क्सवादी आधारों का समर्थन प्रकट किग्रा :-

(1) **एक भौतिकवादी विचारा के आधार पर सहमति** - राय मूलत: एक भौतिकवादी चिन्तक है और उन्होंने अनुभव किया कि मार्क्स ने विकसित रूप में भौतिकवादी दर्शन को प्रस्तुत किया है । अत: उन्होंने मार्क्सवाद से सहमति प्रकट की । राय मार्क्स के इस विचार से पूर्णत: सहमत थे कि सृष्टि का मूल कारण प्रत्यय या ईश्वर नहीं है, अपितु पदार्थ है । सम्पूर्ण सृष्टि मूलत: पदार्थ की विकसित अवस्था तथा उसके रूप-भेद को प्रकट करती है । इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके स्वरूप के निर्धारण में जो

मूल कारण है वह भौतिक है । सृष्टि में जो कुछ घटित हुआ है अथवा घटित हो रहा है उसका मूल कारण वे भौतिक परिस्थितियाँ, जो स्वयं पदार्थ (पदार्थ की गतिशीलता) से उत्पन्न' हैं ।

(2) **मार्क्स की वैज्ञानिक चिन्तन पद्धति-** रॉय ने मार्क्स के अनुसार यह मानते हैं कि :आत्मा' या 'चेतना' या 'विचार' की अपनी कोई स्वतन्त्र आध्यात्मिक (प्रत्ययवादी) सत्ता नहीं है, अपितु यह भौतिक पदार्थ का ही अति सूक्ष्म रूपान्तरण (रूप-भेद) है । ज्ञान केवल वस्तुनिष्ठ होता है और ज्ञान का मूल स्रोत इन्द्रियाँ हैं । रॉय ने अपने चिन्तन के इस दौर में मार्क्स की अध्ययन पद्धति को वैज्ञानिक मानकर उसकी प्रशंसा की । रॉय ने मार्क्स को पहला ऐसा भौतिकवादी दार्शनिक माना जिसने किसी मानव-समाज के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दर्शन एवं व्यवस्था का मूल कारण उस समाज की आर्थिक परिस्थितियों में खोजने का प्रयास किया । इसके साथ ही मार्क्स ने इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं में पायी जाने वाली आर्थिक परिस्थितियों का वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रस्तुत किया ।

(3) **पूँजीवाद के सम्बन्ध में विचारों का समर्थन-** रॉय पूँजीवाद के बारे में मार्क्स के इस विचार से सहमत है कि पूँजीवादी व्यवस्था अपनी प्रकृति से अमानवीय है और यह समाज में व्याप्त शोषण एवं अन्याय का मूल कारण है । पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में गम्भीर कमियाँ हैं जिनके कारण सम्पूर्ण पूँजीवादी समाज व्यवस्था का पतन सुनिश्चित है और उसके बाद समाजवादी समाज की स्थापना होगी जो एक श्रेष्ठ एवं न्यायपूर्ण समाज होगा । रॉय मार्क्स के इस मत से भी पूर्ण सहमत हैं कि पूंजीवादी के नाश के लिए क्रान्ति की जरूरत होगी और इसके लिए सर्वहारा (श्रमिक वर्ग) को संगठित करना होगा ।

(4) **राष्ट्रवाद की आलोचना का समर्थन** - मार्क्स के चिन्तन में संकीर्ण राष्ट्रवाद के लिये कोई स्थान नहीं था । सर्वहारा वर्ग की विश्वव्यापी चेतना मार्क्स के दर्शन की प्रेरक शक्ति थी । मार्क्स ने पूंजीवाद के पतन के पश्चात् एक विश्वव्यापी समाजवादी व्यवस्था का स्वप्न देखा था । रॉय मार्क्स के इस दृष्टिकोण से सहमत थे कि राष्ट्रवाद, पूंजीवाद के विरूद्ध संघर्ष विश्व भर के लोगों की एकता के मार्ग में बाधाएं उपस्थित करता है ।

(5) **मानवतावादी चिन्तन**- रॉय के अनुसार मार्क्स के चिन्तन का केन्द्रीय लक्ष्य मानव का कल्याण था । प्रारम्भिक दिनों में रॉय मार्कर्न के चिन्तन को मानव की मुक्ति के एक विश्वसनीय वैचारिक आधार के रूप में देखते थे । मार्क्स का लक्ष्य शोषण की स्थिति को समाप्त कर एक समतावादी न्यायपूर्ण सन्तुलित समाज की स्थापना करना था । राय मार्क्स के चिन्तन की इस मानवीय तथा उदारवादी प्रवृत्ति और उसके सम्पूर्ण चिन्तन के मूल लक्ष्य के प्रति विश्वास रखते थे । रॉय का उद्देश्य एक ऐसी वैचारिक क्रान्ति करना था जिसके द्वारा मानव हर प्रकार के दमन, अन्याय और उत्पीडन से मुक्त हो जाय और सर्वागीण विकास हो सके ।

(6) **धर्म की आलोचना पर सहमति**- एक भौतिकवादी विद्वान के रूप में मार्क्स का ईश्वर के अस्तित्व में कोई विश्वास नहीं हे । उसका मत हे कि इतिहास में धर्म की भूमिका सदैव ही प्रतिक्रियावादी रही है । शोषक वर्ग ने शोषित वर्ग के विरूद्ध धर्म का सुनियोजित ढंग से प्रयोग किया है और उसे मानवीय अन्याय एवं शोषण को सहन करने की प्रेरणा दी है । शोषक वर्ग ने धर्म की आड में अपने जुल्मों को छुपाया है और शोषित वर्ग के लिए धर्म अफीम की गोली सिद्ध हुआ है । रॉय ने मार्क्स के धर्म सम्बन्धी इन विचारों का समर्थन किया और किसी समाज में मौजूद धार्मिक चेतना एवं भक्ति को उस समाज के पिछड़ेपन की पहचान बताया है ।

आलोचना

मानवेन्द्र नाथ रॉय ने निम्नलिखित आधारों पर मार्क्सवाद की आलोचना की है :

(1) **इतिहास की आर्थिक व्यवस्था** - रॉय ने मार्क्स द्वारा दी गई इतिहास की आर्थिक व्याख्या को भ्रामक और अपूर्ण माना । रॉय का मत है कि मार्क्स ने मनुष्य की गतिविधियों में, उसकी स्वयं की इच्छा, विचारों तथा नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा की । रॉय मार्क्स के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि मनुष्य की नियति का निर्धारण केवल आर्थिक कारकों से ही होता। है । उन्होंने कहा "नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन में उत्थान के लिये मनुष्य की आवश्यकताएं केवल आर्थिक आवश्यकताओं तक सीमित नहीं रहती है । "रॉय ने यह माना है कि मानव-इतिहास का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि विश्व के वर्तमान स्वरूप के निर्धारण में आर्थिक कारकों के, सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक कारकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । रॉय ने कहा कि मार्क्स ने समाज को आर्थिक गतिविधियों में संलग्न व्यक्तियों के समुदाय के रूप में ही देखा, तथा उसने उत्पादन के साधनों और उत्पादन की गतिविधियों के अतिरिक्त, अन्य सामाजिक परिस्थितियों व प्रवृतियों की उपेक्षा की ।

(2) **मानव की स्वतन्त्र चेतना की उपेक्षा-** रॉय ने आरोप लगाया कि मार्क्स का 'आर्थिक नियतिवाद' मनुष्य की सृजनात्मक क्षमताओं के महत्व को पूर्णत: अस्वीकार कर देता है । उन्होने कहा कि मनुष्य अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ, सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक से भी अच्छे जीवन की इच्छा करता है । रॉय के अनुसार नैतिक उन्नति का, भौतिकवाद से कोई टकराव नहीं है; जबकि आर्थिक कारकों को मनुष्य के जीवन में अत्यधिक महत्व प्रदान करके मार्क्स ने भौतिकवाद का विरोध किया है । रॉय मनुष्य की स्वतन्त्रता के पक्षधर है । वे मनुष्य को राज्य तथा समाज द्वारा आरोपित बंधनों से मुक्त करना आवश्यक मानते ही हैं, आर्थिक नियतिवाद जैसे रूढ़ सिद्धान्तों से भी उसकी मुक्ति को भी आवश्यक मानते हैं ।

(3) **मार्क्स के द्वन्दवाद की आलोचना** - रॉय मार्क्स के द्वन्दवाद या उसकी द्वन्द्वात्मक पद्धति से कभी भी सहमत नहीं हो पाए । राय का विचार था कि द्वन्दवाद एक वैचारिक प्रक्रिया है, जिसे वैचारिक क्षेत्र में भी अपनाया जा सकता है, लेकिन भौतिक

जीवन के विविध चरणों और भौतिक, स्थितियों की व्याख्या इस पद्धति के आधार पर कर पाना सम्भव नहीं है ।

(4) **वर्ग-संघर्ष के समाजशास्त्र में सन्देह**- मार्क्स वर्ग-संघर्ष को मानवीय, जीवन का एक मूल तत्व मानते हैं । रॉय स्वीकार करते हैं कि मानव समाज में समय-समय पर विभिन्न वर्ग अवश्य रहे हैं कि उनमें संघर्ष भी रहा है, लेकिन उन वर्गो में संघर्ष की तुलना में आपसी सहयोग, समाजिक एकता और बन्धन के तत्व, अधिक प्रमुख रूप से रहे हैं, जिनके सहारे मानव समाज अब तक बचा हुआ है । यदि वर्ग-संघर्ष ही मानव समाज में प्रमुख होता है, तो मनुष्य अब तक लड-भिड कर समाप्त हो गए होते ।

(5) **मध्यम वर्ग की अवहेलना-** रॉय के अनुसार मार्क्स की यह धारणा गलत है कि मध्यम वर्ग का लोप हो जाएगा। मार्क्स की भविष्यवाणी के सर्वथा विपरीत मध्यम वर्ग का उलटे विकास हुआ है और आर्थिक प्रक्रियाओं के विस्तार के साथ मध्यम वर्ग की संख्या बढ़ रही है। प्रथम महायुद्ध के बाद विश्व के विभिन्न देशों के सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन में मध्यम वर्ग की भूमिका पहले की तुलना में और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है राय मध्यम वर्ग को ही समाज का नेतृत्व सौंपने की वकालत करते हैं और मध्यम वर्ग को ही क्रान्तिकारी कार्यो का सूत्रधार मानते हैं।

(6) **नैतिक शक्ति की अवहेलना**- मार्क्सवाद के विरूद्ध राय की एक गम्भीर आपत्ति यह रही हे उनमें नैतिक नियमों के चलने के लिए कोई स्थान नहीं है । मार्क्सवादी दर्शन व्यक्ति को अपेक्षित स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करता । यह दर्शन व्यक्ति को केवल इस बात की स्वतन्त्रता देता है कि वह ऐतिहासिक आवश्यकता को समझ ले और स्वयं को उसके समक्ष प्रसन्नतापूर्वक समर्पित कर दे । राय ने कहा, स्वतन्त्रता की यह धारणा तो गुलामी धारणा है जिस पर चलने से समाज 'स्वेच्छापूर्ण गुलामों' का समूह बन जाएगा । समाज के विकास में नैतिक शक्ति की अवहेलना करना मार्क्सवाद का निश्चय ही एक गम्भीर दोष है ।

(7) **सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद (सर्वाधिकारवाद) की आलोचना**- मार्क्स ने पूंजीवादी व्यवस्था के अन्त में बाद 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद' की स्थापना का विचार दिया । व्यवहार में स्थिति यह है कि आधुनिक युग की विशाल राजकीय सेनाओं के सामने सर्वहारा वर्ग की शक्ति नगण्य है और मार्क्स जिसे 'सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद' कहता है, व्यवहार में वह राज्य का सर्वाधिकारवाद होता है । रॉय व्यक्ति की स्वतन्त्रता की दृष्टि से मार्क्सवाद पर आधारित इस सर्वाधिकारवाद का विरोध और उदारवाद का समर्थन करते हैं ।

(8) **मार्क्सवादी दर्शन में व्यक्ति की उपेक्षा**- व्यक्ति जो कि स्वतन्त्रताप्रिय कल्पनाशील और रचनात्मक प्रवृत्ति का प्राणी है, मार्क्सवादी दर्शन और उससे भी अधिक मार्क्सवादो व्यवस्था में एक साधन मात्र बना दिया गया है। मानव का विकास नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता से ही सम्भव है। मार्क्सवादी दर्शन में व्यक्ति को इस स्वतन्त्रता से वंचित कर समष्टि की वेदी पर व्यक्ति का बलिदान कर दिया गया

है।" रॉय मार्क्स की तरह समाज को प्राथमिकता देकर व्यक्ति को दूसरे स्थान पर नहीं रखना चाहते ।"

(9) **हिंसक पद्धति की आलोचना-** मार्क्सवाद हिंसा और बल प्रयोग की प्रवृति में विश्वास करता है। रॉय का विचार है कि मार्क्स द्वारा प्रतिपादित हिंसात्मक तरीका ही व्यवस्था में परिवर्तन का एकमात्र उपाय नहीं है, वे शान्तिपूर्ण तरीके से राजनीतिक एवं सामाजिक स्थितियों को सुधारना उचित समझते हैं। साधन तथा साध्य के अद्य सम्बन्धों के विषय में उनका पूरा विश्वास था।

(10) **राज्य के लोप होने की धारणा से असहमति-** मार्क्स के इस मत से पूर्ण असहमति प्रकट की है कि सर्वहारा के अधिनायकतन्त्र के अन्तर्गत समाजवादी समाज का विकास इस प्रकार से होगा कि राज्य क्रमश: निर्बल होता जायेगा और अन्त में मुरझा जायेगा । मानव सभ्यता के जन्म के साथ ही राज्य का उदय हुआ है और सभ्यता के विकास के साथ-साथ राज्य के रूप में संगठन में परिवर्तन होते रहे हैं । इस प्रकार मानव-सभ्यता एवं राज्य में परस्पर घनिष्ठ सम्बंध है और राज्य के अन्त का अर्थ होगा कि मानव पुन: सभ्यता से पूर्व की अवस्था में पहुँच जाये ।

रॉय मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए भी कुछ सिद्धान्तों पर सहमति प्रकट की है । वस्तुत: रॉय के विचार निरन्तर विकसित होते रहे । मार्क्स के दर्शन के प्रति सहमति के सन्दर्भ, उनके प्रारम्भिक दौर के चिन्तन में अभिव्यक्त हुए । स्टॉलिनकालीन रूस के अपने अनुभवों तथा निरन्तर विकसित होते हुये अपने मानवतावादी विचारों के कारण वे धीरे-धीरे मार्क्स के दर्शन से दूर होते चले गये । वे मार्क्सवादी से मानवतावादी बन गये । जहाँ मार्क्स का दर्शन व्यक्तिगत चेतना की तुलना में वर्ग-चेतना को महत्व प्रदान करता था और रॉय के मत में मनुष्य और उसकी चेतना को किसी भी व्यवस्था का दास बनाना उचित हैं ।

14.3.2 मानवेन्द्र नाथ रॉय एवं गाँधीवाद

मार्क्सवाद की तरह गाँधीवाद के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों के बारे में रॉय के चिन्तन में एक सुनिश्चित स्थायित्व का अभाव दिख पड़ता है, तो भी इन दोनों परस्पर विरोधी दर्शनों (मार्क्सवाद एवं गाँधीवाद) के प्रति रॉय की दृष्टि में एक आधारभूत अन्तर भी दिख पडता है । जैसे-जैसे रॉय के राजनीतिक अनुभव एवं चिन्तन में परिपक्वता बढती गयी, वैसे-वैसे ही रॉय की मार्क्सवाद से दूरी बढ़ती गयी और गाँधीवादी विचारो के नजदीक आते रहे । उनके चिन्तन के कुछ पहलुओं पर गाँधीवाद एवं गाँधी का प्रभाव भी पड़ा । अत: यह माना जाता है कि अपने राजनीतिक चिन्तन की परिपक्वता के काल में गाँधीवाद एवं गाँधी कें बारे में रॉय का दृष्टिकोण पर्याप्त सन्तुलित एवं मर्यादित हो गया था ।

सन् 1920-21 में गाँधी ने जो असहयोग आन्दोलन चलाया, एम.एन. राय उससे प्रभावित हुए थे। सन् 1922 में उन्होंने अपनी पुस्तक 'One Year of Non-Co-operation' में गाँधी को महान् व्यक्ति बतलाते हुए उनकी तुलना सेण्ट थामस एक्वीनास, रोमा रोलां तथा सेण्ट फ्रांसिस से की । गाँधी असहयोग आन्दोलन को जन आन्दोलन का रूप देने में सफल रहे

थे, अत: उन्होंने गाँधी की प्रतिभा को स्वीकार करते हुए उन्होंने गाँधी के रचनात्मक योगदान का उल्लेख करते हुए माना कि गाँधी के नेतृत्व ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एकता उत्पन्न की और इसे बड़े वर्गो के प्रभाव से निकालकर राष्ट्रव्यापी एवं जन-साधारण की सन्धि बनाया । गाँधी के नेतृत्व ने सामान्य जनता के सहयोग से ब्रिटिश राज के विरुद्ध स्वराज्य की सीधी लडाई शुरु की और राष्ट्रीय आन्दोलन को विस्तृत वर्गीय आधार प्रदान किया । गाँधी ने भारतीय राजनीति में असहयोग, सविनय अवज्ञा तथा कर न देने के अहिंसात्मक उपायों के प्रयोग की शुरूआत की जो उनसे पूर्व के उदारवादी तथा उग्रवादी कांग्रेसी नेतृत्व द्वारा अपनाये गये साधनों की तुलना में अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुये । एम.एन. राय ने यह भी माना कि गाँधी की अहिंसात्मक राजनीति के कारण ब्रिटिश राज अपनी क्रूर दण्डात्मक व दमनात्मक शक्ति का खुलकर प्रयोग करने में असमर्थ रहा और इससे सामान्य जनता में ब्रिटिश राज का भय समाप्त हुआ ।

तदापि मानवेन्द्र नाथ रॉय ने निम्नलिखित आधारों पर गाँधीवादी दर्शन की आलोचना की -

(1) **राजनीति के आध्यात्मीकरण के संबंध में मतभेद** - रॉय ने गाँधी द्वारा राजनीति के आध्यात्मीकरण की आलोचना की है। उनका स्पष्ट मत था कि आध्यात्मवाद एक पारलौकिक विषय है और उसका कोई महत्त्व वैयक्तिक जीवन में नहीं है। राजनीति का सम्बन्ध मानव के भौतिक जीवन से है। अत: इन दो विपरीत प्रकृति वाले विषयों को मिलाने से राजनीतिक जीवन में अनेक भ्रान्तियां उत्पन्न होंगी। रॉय का मत था कि सत्य, ईश्वर, शाश्वत विधि व नैतिकता, आत्मा की अमरता, कर्म-सिद्धान्त आदि की आध्यात्मिक अवधारणाओं के आधार पर राजनीति का बुद्धिपूर्ण संचालन असम्भव है। साध्य के समान साधन की पवित्रता का गाँधीवादी आध्यात्मिक सिद्धान्त राजनीति के यथार्थवादी क्षेत्र में सफल हो, इस पर रॉय को संदेह था।

(2) **गाँधीवाद में ठोस आर्थिक कार्यक्रम का अभाव** - रॉय की मान्यता थी कि गाँधीवाद में आर्थिक कार्यक्रम का अभाव था। उनका मत था कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् कृषकों और श्रमिक वर्ग में पनप रहे तीव्र असन्तोष के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में ठोस आर्थिक कार्यक्रमों को सम्मिलित कर के, उन वर्गो को राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति आकर्षित किया जा सकता था । किन्तु गाँधी ने जनता के समक्ष ऐसा कोई ठोस आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया, जो उन्हें उनके जीवन-स्तर में सुधार एवं उन्नति कर सके ।

(3) **गाँधी के वर्ग-सहयोग के सिद्धान्त की आलोचना** - रॉय ने गाँधी द्वारा समाज के सर्वथा विपरीत हित रखने वाले वर्गो - जमींदार और पूँजीपतियों जैसे शोषकों, तथा कृषकों और श्रमिकों जैसे शोषितों के मध्य समन्वय करने के प्रयास की आलोचना की । गाँधी अपने आन्दोलन में शोषक पूंजीपति और जमींदार, शोषित किसान तथा मजदूर सबको एक साथ लेकर चलना चाहते हैं । रॉय की मान्यता थी कि पूंजीपतियों और श्रमिकों के हितों के मध्य सामंजस्य असम्भव और असंगत है । उन्होंने गाँधी की इस बात के

लिये आलोचना की है कि उन्होंने जन-आन्दोलन को संगठित करने के लिये जमींदारों, पूंजीपतियों और भू-पतियों से समर्थन की अपेक्षा की । उन्होंने गाँधी के न्यासिता के सिद्धान्त को अव्यावहारिक और असंगत बताया । उन्होंने सचेत किया कि पूंजीपतियों व शोषकों के हृदय -परिवर्तन के माध्यम से एक न्यायपूर्ण, सन्तुलित, समतावादी, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना एक काल्पनिक भुलावा मात्र है । राय ने कहा है कि गाँधीवाद बहुसंख्यक जनता के असहनीय कष्टों पर मगरमच्छी आँसू बहाने के अतिरिक्त उनके लिए और कुछ नहीं कर रहा ।

(4) **राजनीति और धर्म के संयोग की आलोचना -** गाँधी धर्म और राजनीति के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों के समर्थक थे और वे धर्म-विहीन राजनीति को मृत्यु-जाल मानते थे । उन्होंने राजनीति में सत्य अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, शौच, तप, त्याग, आत्म-निरीक्षण, आत्म-संयम, प्रायश्चित आदि धार्मिक प्रकृति के नैतिक नियमों को लागू करने की कोशिश की है । रॉय राजनीतिक जीवन में इन धार्मिक नैतिक नियमों के पालन के कट्टर विरोधी हैं । वे मार्क्स के समान धर्म को अफीम की गोली मानते हैं और धर्म को एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक शक्ति के रूप में ही देखते हैं । इसके साथ ही रॉय का आरोप है कि गाँधी का हिन्दू धर्म के प्रति विशिष्ट झुकाव था जिसके कारण राजनीति के एकीकरण में बाधा आयी । गैर-हिन्दू समुदायों ने उनकी धार्मिक राजनीति को मानवता की राजनीति के रूप में नहीं, अपितु हिन्दू नेता की राजनीति के रूप में स्वीकारा । रॉय का मत है कि गाँधी ने भारतीय राजनीति में हिन्दू धार्मिक पुनरूत्थानवाद को लोकप्रिय बनाया । उन्होंने हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था की संस्थाओं का तथा ऐसे परम्परागत मूल्यों का समर्थन किया जो युगों रवे मानवीय असमानता एवं शोषण के साधन रहे हैं । रॉय का मत है कि भारत मे गाँधी की धार्मिक राजनीति की लोकप्रियता का मूल कारण भारतीय जनता का बौद्धिक पिछडापन रहा है ।

(5) **औद्योगीकरण और आधुनिक सभ्यता के प्रति गाँधी के दृष्टिकोण पर आपत्ति** - गाँधी यन्त्रों पर अंधाधुन्ध आधारित आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था तथा उसके साथ विकसित होने वाली आधुनिक सभ्यता के कटु आलोचक थे । उन्होंने यन्त्र-आधारित भारी भरकम उद्योगों की अपेक्षा लघु और कुटीर उद्योगों पर आधारित विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का प्रतिमान प्रस्तुत किया । रॉय ने गाँधी के इस आर्थिक प्रतिमान की कठोर आलोचना की । उन्होंने गाँधी के 'चरखे के अर्थशास्त्र को 'प्रतिगामी अर्थशास्त्र' कहकर उसका उपहास किया । उन्होने कहा कि चरखे की ओर लौटने का अर्थ है कि दो हजार वर्षो में हुई मानवीय प्रगति और भविष्य की स्वर्णिम आशाओं से मुँह मोड लिया जाए । गाँधी जनता के भौतिक और आर्थिक कल्याण की सुरक्षित करने की अपेक्षा, जनता को आत्मत्याग और भौतिक आवश्यकताओं को सीमित रखने के नैतिक उपदेशों को अधिक महत्व दिया । रॉय ने मशीनी सभ्यता के प्रति गाँधी की आशंकाओं को अनुचित माना । उनका मत था कि मनुष्य ने, प्रकृति की दासता से मुक्ति पाकर, एक कष्टपूर्ण और

लम्बे संघर्ष के बाद मशीन जा आविष्कार किया है, अत: उनके परित्याग का गाँधी का विचार अनुचित है । रॉय का कथन था कि पूंजीवाद में मशीन पर श्रमिक की अपेक्षा पूंजीपति का नियन्त्रण होता है, अत: वह शोषण का माध्यम बन गई है । रॉय के अनुसार इसका समाधान यह नहीं है कि मशीन का उन्मूलन करके, उत्पादन की प्रणाली को आदिम दौर में लौटा दिया जाए । उनके अनुसार इसका उपाय समाजवाद में निहित है, जो कि मशीन को मनुष्य की सेवा के लिये प्रयुक्त करेगा ।

(6) **अहिंसात्मक आन्दोलन की नीति की आलोचना** - रॉय के अनुसार गाँधीवाद मूलत: एक रहस्यात्मक एवं अबौद्धिक दर्शन है और इसलिए उसमें आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन की दृष्टि से प्रबुद्ध क्रांतिकारिता का अभाव है । इस दृष्टि से रॉय ने गाँधी की आन्दोलन की अहिंसात्मक पद्धति की गंभीर आलोचना की है । उनका मत है कि वैयक्तिक जीवन में अहिंसा की का महत्त्व हो सकता है, किन्तु आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं के हल के लिए यह बौद्धिक एवं यथार्थवादी नीति नहीं है और इसके सफल होने की कोई सम्भावना भी नहीं है । रॉय का आरोप है कि आर्थिक क्षेत्र में गाँधी की अहिंसात्मक आन्दोलन की नीति ने जमींदार एवं औद्योगिक घरानों को कांग्रेस का समर्थक बना दिया है, क्योंकि उन्होंने इस अहिंसा की नीति के कारण शोषितों के उग्र विरोध से स्वयं को सुरक्षित अनुभव किया है । रॉय का मत है कि राजनीति क्षेत्र में भी अहिंसा की नीति पर आधारित, असहयोग आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन भारत को स्वराज्य दिलाने में असफल रहे हैं । उनका सुझाव है कि आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में अहिंसात्मक आन्दोलन के स्थान पर 'जुझारू सामूहिक कार्यवाही' की नीति अपनायी जानी चाहिए ।

गाँधी और गाँधीवाद के विरोध के प्रति रॉय की प्रतिक्रिया स्थाई नहीं रह सकी । जैसे-जैसे -उनके विचारों का साम्यवाद से बुनियादी लोकतन्त्रवाद और नव-मानवतावाद की ओर रूपान्तरण - गया, गाँधी के विचारों के प्रति उनके विरोध का स्वर क्रमश: कोमल होता गया । उन्होंने गाँधी की मृत्यु के बाद अपने दो लेखों- दी मैसेज ऑफ दी मार्टेयर (The message of the Martyr) तथा होमेज टू दी मार्टेयर (Homage of the Martyr)- में पहली बार गाँधी एवं उनके सिद्धान्तों की सराहना की और उनके साथ अपनी वैचारिक सहमति भी प्रकट की । उनका यह दृष्टिकोण भविष्य में भी स्थायी रूप से बना रहा । अपने जीवन के अन्तिम दौर में तो वे गाँधी के नैतिक व्यक्तित्व की प्रशंसा करने लगे ।

14.3.3 मानवेन्द्र नाथ रॉय और मौलिक लोकतन्त्र की अवधारणा

राय पूंजीवादी लोकतन्त्र और साम्यवाद दोनों ही के विरूद्ध थे, क्योंकि इन दोनों के द्वारा व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हास होता है । राय का कहना था कि वर्तमान सामाजिक ढाँचा ही है जिसमें व्यक्ति अपने जन्मसिद्ध अधिकार अर्थात् स्वतन्त्रता का समुचित उपभोग नहीं कर पाता । राज्य का स्वतन्त्र और शान्तिपूर्ण जीवन के लिए मनुष्यों के सहकारी प्रयास द्वारा हुआ है, यह शक्ति पर नहीं बल्कि शक्ति की नैतिक भावना पर आधारित है, अत: आवश्यक है कि

यह एक बाध्यकारक संस्था के रूप में न रहे ऐसे वातावरण की सृष्टि में सहायक हो जिसमें मनुष्य मानसिक रूप से स्वयं का स्वतन्त्र अनुभव करते हुए का निर्माण करने में प्रयत्नशील रहे । एम. एन. राय ने अपनी कृति 'दी प्रिंसिपल्स ऑफ रेडिकल डेमोक्रेसी' में अपनी मौलिक लोकतन्त्र सम्बन्धी आधारभूत मान्यताओं एवं सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है । रॉय के मौलिक लोकतन्त्र का मूल आदर्श है प्रबुद्ध आधार पर एक ऐसे स्वतन्त्र समाज का संगठन करना, जिसमें व्यक्ति पूर्णत: स्वतन्त्र हो और उसका सर्वागीण विकास एवं कल्याण भी सम्भव हो ।

एम.एन. राय ने एक ऐसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत की है जो साम्यवादी लोकतन्त्र तथा उदारवादी संसदीय लोकतन्त्र दोनों के अवगुणों से मुक्त है । उन्होंने व्यक्ति का मूल अधिकार स्वतन्त्रता माना है और लोकतान्त्रिक व्यवस्था का भी मूल लक्षण स्वतन्त्रता को ही स्वीकारा है । रॉय ने स्वतन्त्रता को अपनी लोकतन्त्र की अवधारणा में केन्द्रीय स्थान दिया है । अत: उन्होंने अपनी लोकतन्त्र की अवधारणा को बुनियादी (मौलिक) लोकतन्त्र, अथवा प्रबुद्ध लोकतन्त्र (Radical Democracy) कहा है । यह प्रबुद्ध लोकतन्त्र मानवीय तर्क एवं विवेक के आधार पर समाज की एक संगठित अवस्था है, अत: रॉय ने इसे संगठित लोकतन्त्र (Organised Democracy) भी कहा है । बुनियादी लोकतंत्र के अन्तर्गत समाज का संगठन तथा संचालन सहकारिता के आधार पर होगा, अत रॉय ने इसे 'सहकारी समाजवाद' भी नाम दिया है ।

मानवेन्द्र नाथ रॉय की मौलिक या संगठित लोकतन्त्र की अवधारणा की प्रमुख विशेषताऐं निम्नलिखित हैं :

1. **विकेन्द्रीकृत सत्ता :**

एम. एन. रॉय का 'बुनियादी लोकतन्त्र' सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है । रॉय के अनुसार यह विकेन्द्रीकृत लोकतान्त्रिक प्रणाली, शासन के अधिकतम कार्यों में व्यक्ति की प्रत्यक्ष भागीदारी पर आधारित होगी । रॉय के अनुसार इस व्यवस्था में वास्तविक राजनीतिक शक्ति राष्ट्रीय स्तर पर संगठित सरकार अथवा प्रान्तीय सरकारों में नहीं, अपितु व्यापक तौर पर स्थानीय, तालुका और जिला स्तर पर संगठित 'जन-समितियों' में निहित होगी । इन जन-समितियों में जनता प्रत्यक्षत: अपनी शक्ति का प्रयोग करेगी और अपने विषयों का स्वयं निर्धारण करेगी । रॉय ने कहा कि इस व्यवस्था में राज्य और समुदाय के मध्य कोई टकराव नहीं होगा । समुदाय में व्यक्ति की स्वतन्त्रता पुष्पित और पल्लवित होगी, तथा राज्य व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरणकर्ता बनने की अपेक्षा, व्यक्ति स्वतन्त्रता को सुरक्षित करने का उपकरण बनेगा तथा व्यक्ति के जीवन में राज्य का हस्तक्षेप कम से कम रहेगा ।

2. **दलविहीन लोकतन्त्र की स्थापना :**

रॉय आज के लोकतन्त्र का सर्वप्रमुख दोष राजनीतिक दलों की वर्तमान व्यवस्था को मानते हैं । राजनीतिक दलों ने वर्तमान लोकतन्त्र को अपने बाहुपाश में इस प्रकार से जकड लिया है कि लोकतन्त्र मात्र एक 'दलीय यन्त्र' बनकर रह गया है । दलों ने व्यक्ति की प्रेरणा शक्ति और निर्णय शक्ति दोनों को ही कुण्ठित कर दिया है और व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना असम्भव हो गई । राजनीतिक दलों का उद्देश्य शासन-सत्ता के लिए छीना-झपटी

करना ही रह गया है, उन्हें जनता के वास्तविक हितों की कोई परवाह नहीं होती । राजनीतिक दल अपनी स्वार्थ साधना के लिए नैतिकता और न्याय की बलि चढ़ा देते हैं । रॉय ने कहा कि यदि नैतिक उत्थान करना है, तो वर्तमान दल-पद्धति को समाप्त करना ही होगा । विश्व के नैतिक पतन का एक मूल कारण यह वर्तमान दल पद्धति ही है । अत: रॉय के अनुसार, "यदि हमें लोकतन्त्रवाद की रक्षा करनी है तो उसे 'दलरहित बनाना होगा अर्थात् एक 'दलविहीन लोकतन्त्र की स्थापना करनी होगी" यह दलविहीन लोकतन्त्र आत्मनिर्भर समितियों के सक्रिय योगदान पर आधारित होगा ।

3. **जन समितियों पर आधारित व्यवस्था :**

रॉय ने अनुभव किया कि वर्तमान समय की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में राजनीति सत्ता केन्द्रित हो गई है और उदारवादी लोकतन्त्र में जिस चुनाव पद्धति का प्रचलन है, उसमें योग्य व्यक्तियों के चुने जाने की कोई सम्भावना नहीं है । वे जनता के बौद्धिक और नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता अनुभव करते हैं और आज की लोकतान्त्रिक व्यवस्था के दोषों का निवारण करने के लिए 'संगठित लोकतन्त्र' का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जिसका सबसे प्रमुख तत्व है, ' जन समितियों के माध्यम से समस्त कार्यो का सम्पादन ।

4. मौलिक लोकतन्त्र की संरचना

रॉय ने मौलिक लोकतन्त्र की राजनीतिक संरचना एवं संगठन में जन समितियों का उल्लेख किया है- स्थानीय तालुका, जिला, प्रान्त तथा राष्ट्र । रॉय के अनुसार वयस्क मताधिकार के आधार पर सभी व्यस्क स्त्री-पुरुषों द्वारा स्थानीय जन-समिति के सदस्यों (जन-प्रतिनिधियों) का चुनाव किया जायेगा । किसी स्थानीय जन-समिति के लिए प्रत्येक 50 मतदाताओं के द्वारा एक जन-प्रतिनिधि का चुनाव किया जायेगा । जन-प्रतिनिधि का कार्यकाल मात्र एक वर्ष होगा । प्रत्येक तालुका की एक अपनी जन-समिति होगी, जिसके सदस्यों का निर्वाचन उस तालुका के क्षेत्र में आने वाली स्थानीय जन-समितियों द्वारा किया जायेगा । प्रत्येक के स्तर पर एक जिला जन-समिति होगी, जिसके सदस्यों का निर्वाचन उस जिला-क्षेत्र में आने वाली जन-समितियों द्वारा किया जायेगा । प्रत्येक तालुका जन-समिति अपने से सम्बन्धित जिला जन-समिति के लिए 5 प्रतिनिधियों का चुनाव करेगी ।

प्रत्येक प्रान्त के सामान्य प्रशासन के लिए उसकी प्रान्तीय जन-समिति का गठन किया जायेगा । इसके सदस्य उस प्रान्त का गवर्नर तथा जन-प्रतिनिधि होंगे, जिनका चुनाव उस प्रान्त की समस्त जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जायेगा । गवर्नर का चुनाव पाँच वर्ष के लिए किया जायेगा तथा जन-प्रतिनिधियों का चुनाव चार वर्ष के लिए होगा । प्रान्तीय जन-समिति के पास प्रांतीय शासन से सम्बन्धित विधायी व कार्यपालिका शक्तियाँ होंगी।

सम्पूर्ण राष्ट्र के सामान्य प्रशासन का कार्य सर्वोच्च जन-समिति द्वारा किया जायेगा । सर्वोच्च जन-समिति का निर्माण गर्वनर जनरल तथा दो सभाओं द्वारा होगा । इन सभाओं के नाम हैं- संघीय सभा तथा राज्य सभा । गवर्नर जनरल का चुनाव सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता

द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार! पर पाँच वर्ष के लिए किया जायेगा । संघीय सभा के सदस्यों (जन-प्रतिनिधियों) का चुनाव सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चार वर्ष के लिए किया जायेगा । राज्य सभा का गठन -विभिन्न प्रान्तों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा होगा । सभी प्रान्तों को समान संख्या में प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त होगा । रॉय राज्य सभा में विशिष्ट व्यावसायिक समूहों एवं बौद्धिक वर्ग को स्थान देने के समर्थक हैं । प्रत्येक प्रान्त की प्रान्तीय जन-समिति चिकित्सकों, इन्जीनियरों, वैज्ञानिकों, वकीलों आदि तकनीकी व्यावसायिक समूहों में प्रत्येक समूह के दो-दो प्रतिनिधियों को चुनकर राज्य सभा। में भेजेगी । इस प्रकार राज्य सभा के गठन में । जानसायिक लोकतन्त्र के सिद्धान्त को स्वीकारा गया है ।

रॉय ने प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता के दुरुपयोग को रोकने के लिए - सुझाव दिये हैं । उन्होंने प्रान्तीय जन-समिति के सन्दर्भ में स्थानीय जन-समितियों को प्रत्याहार (त्मबंसस) तथा विधि पर लोक-मत संग्रह (Referendum) का अधिकार दिया है ।

रॉय ने अपनी बुनियादी लोकतन्त्र की अवधारणा के अन्तर्गत जिस राष्ट्रीय संघ के निर्माण का सुझाव दिया है, वह अपनी प्रकृति से एक परिसंघ (ब्वादमिकमतंजपवद) है । इसकी इकाइयों को संघ के परित्याग का अधिकार प्राप्त होगा । इस प्रकार राष्ट्रीय प्रशासन का संचालन संघ की इकाइयों की सहमति एवं सहयोग से किया जायेगा ।

5. संक्रमणकालीन व्यवस्था :

रॉय इस तथ्य से अवगत थे कि दलीय राजनीति को, दलविहीन प्रजातन्त्र में बदलना तत्काल सम्भव नहीं है । वे यह जानते थे कि राजनीति का यह मौलिक रूपान्तरण धीरे-धीरे ही किया जा सकता है । रॉय ने सुझाव दिया कि दलविहीन प्रजातन्त्र की स्थापना हो पाने के पूर्व संक्रमणकालीन अवस्था में तानाशाही की अपेक्षा संसदीय प्रजातन्त्र ही अधिक उपयुक्त होगा । उन्होने सुझाव दिया कि संक्रमणकाल मे संसदीय प्रजातन्त्र के दोषों का धीरे-धीरे निवारण करने का प्रयास किया जायेगा । उनका मत था कि संक्रमणकाल में शासन के पदों पर, विवेकशील, सृजनात्मक क्षमता के धनी, निष्ठावान और नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध लोगों को प्रतिष्ठित करके संसदीय प्रणाली के स्वरूप में सुधारों को सम्भव बनाया जा सकता है । इस संक्रमण काल में स्थानीय जन समितियों का संगठन किया जायेगा और इनके माध्यम से स्थानीय जनता स्थानीय विषयों से सम्बन्धित समस्त राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक शक्तियों का प्रयोग करेगी । रॉय के अनुसार संक्रमण-काल में बुनियादी लोकतन्त्र की स्थापना के लिए अग्रलिखित दो दिशाओं में विशेष प्रयत्न करने की जरूरत होगी- (1) लोक-शिक्षण, तथा (2) आर्थिक पुन: नियोजन ।

i) लोक शिक्षण

लोक शिक्षण का अर्थ सम्पूर्ण जनता को मात्र साक्षर बनाने से या उसे परम्परागत ढंग से शिक्षित करने से नहीं है, अपितु जनता के विवेक एव उसकी रचनात्मक शक्तियों को जागृत करने से है । रॉय के अनुसार लोक शिक्षण एक ऐसी वैचारिक क्रान्ति का नाम है, जो व्यक्ति को उसकी स्वतन्त्रता, गरिमा एवं अधिकारों के साथ ही उसे सार्वजनिक कर्त्तव्यों एवं दायित्वों

के प्रति भी जागत एव सक्रिय बनाती है । यह व्यक्ति की रचनात्मक क्षमताओं एवं सहयोग मुल्क प्रवृतियो को विकसित करती है । लोक शिक्षा व्यक्ति को एक ओर निजी स्वतन्त्रता व सम्प्रभुता की रक्षा की प्रेरणा देती है और दूसरी ओर उसे सार्वजनिक (सामुदायिक) हित के साथ इनका ताल-मेल स्थापित करने की प्रेरणा भी देती है ।

ii) आर्थिक पुन: नियोजन

रॉय के अनुसार बुनियादी लोकतन्त्र की स्थापना तभी सम्भव है जबकि समाज में इसके लिये उपयुक्त आर्थिक परिस्थितियाँ विद्यमान हों । उनका स्पष्ट मत था कि जब तक आर्थिक असमानता, आर्थिक शक्तियों का कुछ हाथों में केन्द्रीयकरण और शोषण विद्यमान है तब तक सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना सम्भव नहीं है । धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था को इस प्रकार रूपान्तरित किया जाना चाहिये कि उसमें केन्द्रीयकरण और शोषण की सम्भावनाएं कम हाती जाएं और समुदाय के प्रत्येक सदस्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को सुनिश्चित किया जा सके । इस रूपान्तरित अर्थव्यवस्था में उत्पादन और वितरण मानवीय आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिये । इस दृष्टि से उन्होंने अर्थव्यवस्था के सामाजिक नियोजन पर बल दिया, किन्तु उन्होंने इस विषय में भी सतर्क रहने का सुझाव दिया कि नियोजन के नाम पर, व्यक्ति की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता का हनन नहीं किया जाये । उन्होंने कहा "नया समाज, विवेक और ज्ञान पर आधारित होगा । अत: स्वाभाविक रूप से नियोजित होगा, किन्तु नियोजन में व्यक्ति की स्वतन्त्रता को प्रमुख उद्देश्य माना जायेगा ।"

इस प्रकार राय का 'संगठित लोकतन्त्र' प्रत्यक्ष तथा विकेन्द्रित लोकतन्त्र था, जिसमें राय ने राजनीतिक दलों के लिए कोई स्थान नहीं रखा था । राय ने बताया कि छोटे-छोटे सहकारी संगठनों के द्वारा आधुनिक राज्यों में यह प्रत्यक्ष लोकतन्त्र स्थापित किया जा सकता है । इस व्यवस्था में शक्ति जनता के हाथों में रहेगी और जनता ही शासन कार्य में भाग लेकर इसका नियन्त्रण करेगी ।

राय की संगठित लोकतन्त्र की योजना और विनोबा, जयप्रकाश नारायण, आदि सर्वोदयी विचारकों की विचारधारा में बहुत कुछ समानता है। सर्वोदयी विचारक भी राजनीति को समाज सभी रोगों का मूल कारण मानते हुये राजनीति के स्थान पर लोकनीति को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, राजनीतिक-आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना चाहते हैं तथा गांवों को स्वशासी और आत्मनिर्भर इकाइयां बनाना चाहते हैं । राय की लोकतान्त्रिक व्यवस्था का चित्र भी ऐसा ही है। राय और सर्वोदयी विचारक, दोनों ही राजनीतिक दलों की व्यवस्था को समाप्त करने पर बल देते हैं । राय और सर्वोदयी विचारकों की योजना में अन्तर यही है कि राय स्वायत्तशासित ग्राम गणराज्य के स्थान पर जन समितियों को प्रतिष्ठित करना हैं ।

14.3.4 मानवेन्द्र नाथ रॉय की नवीन मानववाद की संकल्पना

एम.एन. रॉय के राजनीतिक चितन का सर्वश्रेष्ठ रूप उनकी नवीन मानववाद की अवधारणा में दिखाया है, यह उनके समस्त चिन्तन का सार एवं निष्कर्ष है। यद्यपि मानववाद का आधुनिक काल तक विभिन्न रूपों में विकास हुआ है, किन्तु रॉय ने पहले के मानववाद को

अपनी इस अवधारणा को मूलत: भिन्न बताया है । उन्होंने अपनी मानववाद की अवधारणा के विशिष्ट लक्षणों के आधार पर इसे विभिन्न नाम दिये हैं; जैसे-मौलिक या प्रबुद्ध मानववाद (Radical Humanism),नव मानववाद (New Humanism) सम्पूर्ण मानववाद (Integral Humanism), वैज्ञानिक मानववाद "(बैपमदजपपिब भ्नउंदपेउ)" आदि । रॉय ने अपना नवीन मानववादी दर्शन मुख्यत, 'रेडिकल झूमेनिजा' नामक पुस्तक में दिया है । इस दर्शन की दृष्टि से उनकी एक अन्य प्रमुख रचना है- 'नयू झूमेनिज्म एण्ड पॉलिटिक्स' ।

रॉय से पहले समस्त मानववादी चिन्तन को मुख्यत: दो वर्गो में बाँटा जा सकता हे- आध्यात्मिक मानववादी तथा भौतिक (पदार्थवादी) मानववादी चिंतन । रॉय का मत है कि प्राचीन् काल से आधुनिक युग तक इन दोनों प्रकार के मानववादी विचारकों ने मानव की प्रकृति, उसकी समस्याओं एवं उसके कल्याण के बारे में पर्याप्त चिन्तन किया है, किन्तु उन्होंने मानव के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं स्वीकारा है । इसलिए मानव को केन्द्रीय स्थान नहीं मिला, वे अन्तिम रूप से मानव की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार नहीं कर सके । वस्तुत: काण्ट जैसे आध्यात्मिक मानववादी चिन्तकों ने सृष्टि की आध्यात्मिक सत्ता (परा-सत्ता) की व्यवस्था के एक अंग के रूप में मानव पर विचार किया है और मानव के अस्तित्व पर ईश्वरीय विधि एवं दैवी नैतिकता के बन्धन को मान्यता दी है और मार्क्स जैसे भौतिक मानववादी विद्वान ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन के आधार पर मानव कल्याण आर्थिक नियमों के द्वारा माना है जिन पर मानव का कोई नियन्त्रण नहीं है । मार्क्सवाद वह मानव के भौतिक कल्याण को तो सुनिश्चित करता है, किन्तु आर्थिक कारकों से अलग जीवन के अन्य कारक जैसे नैतिक कारकों की अवहेलना की है । इसलिए उन सभी के चिन्तन में मानव को केन्द्रीय स्थान भी नहीं मिल है औS जे अन्तिम रूप से मानव को अपने भाग्य (नियति) का निर्माता भी नहीं स्वीकार पाये हैं ।

रॉय के अनुसार पश्चिमी व्यक्तिवाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर राज्य तथा समाज द्वारा किए जाने वाले अतिक्रमणों का तो विरोध किया गया, किन्तु इसमें व्यक्ति की आर्थिक स्वतंत्रता के महत्व की उपेक्षा की गई । रॉय का मत था कि आर्थिक अभावों से मुक्त, आत्मनिर्भर व्यक्ति ही वस्तुत: स्वतंत्रता का उपयोग करने में सक्षम हो सकता है ।

अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगौर तथा गाँधी जैसे विचारकों के चिन्तन को भी रॉय पूर्ण अर्थ में मानवतावादी नहीं मानते ।इस 'आध्यात्मिक मानवतावादियों' के बारे में रॉय का मत है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को स्वतंत्र मानने की अपेक्षा वे उस पर आध्यात्मिकता का प्रतिबंध लगा देते हैं । रॉय का आरोप है कि गाँधी जैसे विचारकों के चिन्तन में आध्यात्मवाद की प्रबलता के कारण व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व की उपेक्षा हो गई है । गाँधी के अनुसार व्यक्ति परमात्मा का अंश मात्र है, तथा उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य परमात्मा में विलीन हो जाने में ही निहित है । रॉय का मानना है कि ईश्वर और आध्यात्मिक सत्ता के वर्चस्व के कारण गाँधी मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते है ।

रॉय का मत है कि उन्होंने पहली बार मानववादी दर्शन में मानव को केन्द्रीय एवं मौलिक स्थान दिया है। रॉय ने मानव पर किसी परा-सत्ता या अति प्राकृतिक सत्ता जैसे किसी

बाह्य अधिकधन को मान्यता नहीं दी है । उनके अनुसार मानव स्वयं अपना केन्द्र है; वह पूर्ण स्वतन्त्र है और अपने भाग्य का स्वयं ही निर्माता है । मानवेन्द्र नाथ रॉय के इस नवीन मानववाद की निम्नलिखित विशेषताऐं हैं

(1) मानव सम्पूर्ण जीवन का मूल है और प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड :

नवीन मानववाद के अनुसार, 'मनुष्य की मानव जाति का मूल है- तथा प्रोटेगोरस के इस विचार को स्वीकार करता है कि 'मनुष्य ही प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड है ।' पहले कथन का आशय है कि मानव जीवन अपने आप में पूर्ण है अत: मानव को किसी बाहरी और अति प्राकृतिक सत्ता का आश्रय लेने की न तो कोई आवश्यकता है और न ही इसका कोई औचित्य है । दूसरे कथन के अनुसार जो कि विख्यात यूनानी दार्शनिक प्रोटेगोरस का है, रॉय ने यह माना है कि प्रत्येक वस्तु के मूल्यांकन का आधार यही हो सकता है कि वह मानव जीवन को किस रूप से प्रभावित करती है । रॉय के अनुसार, मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है और उसमें इतनी क्षमता है कि वह विश्व को आज की तुलना में श्रेष्ठ और सुन्दर बना सके । रॉय का कहना था कि हम सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों और ग्रहों, आदि के अध्ययन में रुचि भले ही लें लेकिन हमें यह नहीं मानना चाहिए कि ये नक्षत्र हमारे भाग्य के निर्धारक हैं अथवा हमारे चरित्र या क्षमता पर इनका कोई प्रभाव पडता है ।

मानवेन्द्र नाथ रॉय के अनुसार मानव की दृष्टि से स्वयं मानव ही सर्वश्रेष्ठ है । अत संसार की अन्य सभी वस्तुओं के महत्त्व को केवल मानव के सन्दर्भ में ही प्रकट किया जा सकता है । एक मानव के रूप में हमारा सम्बंध केवल उन वस्तुओं से हो सकता है, जो हमारे जीवन को प्रभावित करती है । रॉय का मत है कि ईश्वर, निरपेक्ष प्रज्ञा, दैवी विधान आदि कोई अस्तित्व नहीं है और इसलिए वे हमारे जीवन को प्रभावित भी नहीं करते हैं । अत: मनुष्य का इनसे कोई सम्बंध भी नहीं है और उनका अध्ययन भी नहीं किया जाना चाहिए । मानव किसी बाद सत्ता के कारण नहीं अपितु, अपनी स्वयं की प्रकृति से नैतिक प्राणी है । रॉय के अनुसार यह एक ऐसा तथ्य है जिसे विज्ञान की मदद से सिद्ध किया जा सकता है । मानव का स्वयं का महत्त्व है, समाज का या राज्य का नहीं । वास्तव में मानव स्वयं अपना साध्य है, अन्य सभी साधन मात्र है । सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थाओं की रचना स्वयं मानव ने की है, अत: इनका महत्त्व केवल मानव के ही सन्दर्भ में है; संक्षेप में ये सभी मानव के लिए हैं, मानव इनके लिए नहीं है । मानव स्वयं अपने भाग्य का निर्माता हूँ । उल्लेखनीय है कि 'मानव प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड है' - प्रोटेगोरस के इस कथन को विकसित करते ही रॉय ने यह कहा कि 'मानव-मानव जाति का मूल है । इरा प्रकार रॉय का सम्पूर्ण ध्यान संसार की पर है, वे ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते हैं और मनुष्य को भाग्यवाद के स्थान पुरूषार्थ के हाथों समर्पित करते हैं ।

2. मानवीय विवेक में विश्वास :

रॉय के अनुसार विवेकशीलता मानव स्वभाव का सहज लक्षण है। मानव का स्वभाव एक विकासशील प्रवृत्ति है। अंधविश्वास, जादू-टोना और प्राकृतिक धर्म के प्रति झुकाव, मनुष्य के स्वभाव की अविकसित अवस्था की ओर संकेत करते हैं । रॉय के अनुसार जैसे-जैसे मनुष्य

ने प्राकृतिक तत्वों व विश्व के प्रति अपना ज्ञान बढ़ाया और नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधान होते गये, अंध-विश्वास और लौकिक क्रियाकलाप के पारलौकिक व दैवीय कारण खोजने की प्रवृत्ति कम होती गयी है और मनुष्य के विश्वास की अपेक्षा 'विवेकशीलता' प्रबल होती गयी है ।

3. मानव स्वभाव से विवेकशील एवं नैतिक प्राणी है :

रॉय ने इस बात का खण्डन किया कि मनुष्य स्वभावत: स्वार्थी है, अथवा आध्यात्मिक और सामाजिक बाध्यताओं के अधीन ही नैतिक आचरण करता है । रॉय ने जिस नैतिकता का प्रतिपादन किया उसका आधार आध्यात्मवाद नहीं था और इसलिए उनका कहना था कि नैतिकता कोई अति- मानवीय "(नैचमत भ्नउंद) तथा ब्रह्मा वस्तु न होकर एक आन्तरिक शक्ति है जिसका पालन मनुष्य को ईश्वरीय अथवा प्राकृतिक भय से नहीं अपितु समाज कल्याण की भावना से करना चाहिए । राय ने यह विश्वास प्रकट किया कि नैतिकता के अभाव में हम मनुष्य की कल्पना नहीं कर सकते । समाज का आधार जितना अधिक नैतिकवादी और बुद्धिवादी होगा, मानव व्यक्तित्व क विकास पर लगे हुए प्रतिबिम्ब उतने ही अधिक शिथिल अथवा समाप्त हो जायेंगे और उसे उतनी ही अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी । समाज का पुनर्निर्माण प्रार्थना, जादू-टोना या अंधविश्वास के आधार पर नहीं किया जा सकता बल्कि बुद्धिवादिता और वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग पर ही किया जा ।सकता है ।

रॉय ने मनुष्य के स्वभाव की व्याख्या जीवशास्त्रीय आधार पर की । उनके अनुसार मानव स्वभाव निरन्तर विकासमान है । उसमें निम्न से उच्च स्तर को ओर प्रगति करते हुए पूर्ण मानवीय स्तर तक विकास की प्रवृत्ति सदैव विद्यमान रही है । प्रत्येक जीवित तत्व, जाने-अनजाने अधिकतम संभव स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। उनके शब्दों में "अस्तित्व के लिये संघर्ष नकारात्मक अर्थ में स्वतंत्रता की खोज ही 'है ।" रॉय के अनुसार विवेक, नैतिकता और स्वतंत्रता मानव स्वभाव की तीन शाश्वत विशेषताएं हैं ।

4. मानववाद का आधार तत्व स्वतन्त्रता:

राय के मानववाद का आधार तत्व स्वतन्त्रता है और राय ने स्वतन्त्रता के आधार स्तम्भ बताए हैं. मानववाद व्यक्तिवाद और विवेकवाद । रॉय ने मनुष्य के आत्मविश्वास और आत्म-सुरक्षा के लिए स्वतन्त्रता को आवश्यक माना है । उनका मानववाद मानव मात्र को स्वतन्त्रता का संदेश देता है । मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है, अत: वह स्वतन्त्रता की कामना करता है । स्वतन्त्रता के मार्ग में अनेक बाधाएं और कठिनाइयां आती हैं । धर्म ने अपना बुद्धिवादी चरित्र खोकर अपनी कठोरता और कट्टरता से मानव स्वतन्त्रता और मानव सभ्यता को बड़ा आघात पहुंचाया है । इसी प्रकार परिवार, राज्य और कानून, आदि विभिन्न 'सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं ने भी रूढ़िवादी और परम्परागत रवैये से हमारे दृष्टिकोण को संकीण और स्वार्थपूर्ण बनाकर स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधाएं खड़ी की हैं ।

रॉय के अनुसार स्वतन्त्रता मानव जीवन का सर्वोच्च सद्गुण है, क्योंकि वस्तुत: स्वतन्त्रता की आकांक्षा ही मानव के अस्तित्व का सार है । रॉय की मान्यता है कि स्वतंत्र मानव की समतामय और न्यायनिष्ठ समाज की स्थापना का आधार बन सकते हैं । मानव की स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता या स्वतन्त्रता के मर्यादाहीन उपयोग की अनुमति नहीं देता । उनके

अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्र में सामाजिक व्यवस्था की सुदृढता और समुदाय के सदस्यों के हितों की पूर्ति स्वाभाविक रूप से अन्तर्निहित हैं । व्यक्ति की स्वतन्त्रता के दो पक्ष सामने आते हैं- स्वतन्त्रता का वैयक्तिक पक्ष तथा स्वतन्त्रता का सामाजिक पक्ष । मानव विवेक के अनुसार सामाजिक स्वतन्त्रता वैयक्तिक स्वतंत्रता का ही बडा रूप है, अत: व्यक्ति का विवेक सामाजिक स्वतन्त्रता के पक्ष में व्यक्ति को अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता को मर्यादित एवं सीमित करने की प्रेरणा देता है । रॉय के अनुसार नवीन मानववाद एक ऐसी स्वतन्त्र समाज व्यवस्था की स्थापना का विचार है, जिसमें व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्र हो। उनका मत है कि ऐरने स्वतन्त्र समाज की प्राप्ति केवल मौलिक लोकतंत्र की मदद से ही की जा सकती है ।

5. विश्व-बंधुत्व पर आधारित विश्ववाद का समर्थन

रॉय अपने राजनीतिक चिन्तन के प्रारम्भिक दौर में राष्ट्रवादी थे, किन्तु बाद में वे अर्न्तराष्ट्रवाद से अत्यधिक प्रभावित हुये । उन्होंने अपने चिन्तन के अन्तिम चरण में नव-मानववाद की अवधारणा को प्रस्तुत किया और इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रवाद (Internationalism) के स्थान पर विश्ववाद (Cosmopolitanism) का विचार प्रस्तुत किया।

रॉय ने 'विश्व राज्यवाद तथा अन्तर्राष्ट्रवाद के बीच भेद किया है । अन्तर्राष्ट्रवाद में पृथक् राष्ट्रीय राज्यों के अस्तित्व का विचार निहित है और अन्तर्राष्ट्रवाद इन पृथक् राष्ट्रीय राज्यों के बीच भाई-चारे तथा शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की स्थिति का नाम है; लेकिन विश्व राज्यवाद की स्थापना इन राष्ट्रीय राज्यों का निराकरण करके ही की जा सकती है । विश्व राज्यवाद तो समस्त विश्व के मानवों के साथ सीधे जुड़ा हुआ है । यह तो विश्व के विभिन्न राज्यों क बीच नहीं, वरन् विश्व के समस्त मानवों के बीच बन्धुत्व की स्थिति का नाम है । रॉय के अनुसार राष्ट्रवाद एक संकीर्ण विचारधारा है जो मानव-मात्र की विश्वव्यापी एकता के मार्ग में बाधा है । उन्होंने राष्ट्रीय राज्यों की सीमाओं से परे, स्वतन्त्र स्त्रियों और पुरूषों के सार्वभौम समुदाय की कल्पना की । रॉय ने अपने नवीन मानववाद को कठोरता की परिधि में नहीं बाँधा है वरन् उसे बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होने वाला सिद्धान्त बताया है ।

14.4 सारांश

मानवेन्द्र नाथ रॉय का आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में विशिष्ट स्थान है। रॉय का राजनीतिक चिंतन लम्बी वैचारिक यात्रा का परिणाम है। वे किसी विचारधारा से बंधे हुए नहीं रहे। उन्होंने विचारों की भौतिकवादी आधारभूमि और मानव के अस्तित्व के नैतिक प्रयोजनों के मध्य समन्वय करना आवश्यक समझा । जहाँ उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था की कटु आलोचना की, वहीं मार्क्सवाद की आलोचना में भी पीछे नहीं रहे । रॉय ने सम्पूर्ण मानवीय दर्शन की खोज के प्रयत्न के क्रम में यह निष्कर्ष निकाला कि विश्व के प्रचलित आर्थिक और राजनीतिक प्रणालियाँ मानव के समग्र कल्याण को सुनिश्चित नहीं करतीं । पूँजीवाद, मार्क्सवाद, गाँधीवाद तथा अन्य विचारधाराओं में उन्होंने ऐसे तत्वों को ढूँढ निकाला जो किसी न किसी रूप में मानव की सत्ता, स्वतंत्रता, तथा स्वायत्तता पर प्रतिबन्ध लगाते हैं । रॉय ने अपने नवीन मानववादी दर्शन से मानव को स्वयं अपना केन्द्र बताकर मानव की स्वतंत्रता एवं उसके व्यक्तित्व की गरिमा का

प्रबल समर्थन किया है । वस्तुत: बीसवीं सदी में फासीवादी तथा साम्यवादी समग्रतावादी राज्य-व्यवस्थाओं ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं व्यक्तित्व का दमन किया और उदारवादी लोकतन्त्र में मानव-कल्याण के नाम पर निरन्तर बढ़ती केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति से किया । रॉय ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं व्यक्तित्व की गरिमा के पक्ष में जो उग्र बौद्धिक विचार दिये है, उनका । युग के लिए विशिष्ट महत्व है ।

14.5 अभ्यास प्रश्न

1. मार्क्सवाद के प्रति मानवेन्द्र नाथ रॉय के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए ।
2. गाँधीवाद के प्रति मानवेन्द्र नाथ रॉय की प्रतिक्रिया एवं दृष्टिकोण स्पष्ट ।
3. गाँधी एवं मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए ।
4. मानवेन्द्र नाथ रॉय के नव मानववाद के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए ।

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, वी. पी., फिलोसॉफिकल एण्ड सोशलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ गाँधीज़्म, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1981
2. वर्मा, वी. पी., द पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ गाँधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा,1986
3. नागर, पुरूषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2002
4. मजहर किब्रिया गाँधी एण्ड इण्डियन फ्रीडम स्ट्रगल, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली, 1999

इकाई - 15

गाँधी और मार्टिन लुथर किंग जूनियर

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 किंग का जीवन परिचय और कार्य

15.3 किंग और महात्मा गाँधी

15.4 सारांश

15.5 अभ्यास प्रश्न

15.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.0 उद्देश्य

इस अध्याय के माध्यम से विद्यार्थी को गाँधी और किंग के जीवन और विचारों के बारे बताया जायेगा । इसके अध्ययन पश्चात विद्यार्थी :-

- अहिंसात्मक संघर्ष निराकरण के बारे में गाँधी और किंग के विचारों को समझ सकेंगे
- किंग के जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- गाँधी और किंग की उपलब्धियों को जान पाएंगे ।

15.1 प्रस्तावना

नॉबेल पुररकार समिति के अध्यक्ष डॉ. गुन्नार जॉन ने डॉ. मार्टिन लुथर किंग जुनियर की उपलब्धियों को संक्षेप में बताते हुए कहा कि "डॉ. किंग पाश्चात्य जगत का पहला ऐसा व्यक्ति है जिसने यह दिखाया कि हिंसा के बिना भी संघर्ष लड़ा जा सकता है ।

उन दिनों बहुत कम ही लोग थे जिनका इस बात में भी विश्वास था कि गाँधी द्वारा भारत में प्रयुक्त पद्धतियों और रणनीतियों का प्रयोग कर करोड़ों अमेरिकी निग्रो लोगों के लिए न्याय और आजादी सुनिश्चित की जा सकती है । डॉ. किंग ने एक बार अपने दर्शन की व्याख्या करते हुए कहा था कि उनका उग्र अहिंसा की धारणा में विश्वास है जिसमें एक व्यक्ति धरना, कानूनी कार्यवाही, बॉयकाट, मतदान तथा अन्य किसी भी माध्यम का, केवल हिंसा या घृणा को छोडकर, प्रयोग करते हुए अन्याय की व्यवस्था के विरूद्ध खडा होना है । किंग वह महान हस्ती हैं जिन्होंने अगस्त 28, 1963 को अपना प्रसिद्ध वक्तव्य "मेरा एक सपना है" वाशिन्गंटन डी. सी. के लिंकन मैमोरियल में दिया, और पूरे विश्व को झकझोर कर रख दिया । चौतीस वर्ष की उम्र में इस वक्तव्य में उन्होंने नस्ली एकता की बात करते हुए कहा "आज मेरा एक स्वप्न है कि एक दिन छोटे, मासूम श्वेत और अश्वेत बालक भाई, बहिन की तरह एक दूसरे के हाथ थामेंगे । आज मेरा एक स्वप्न है, मेरा एक स्वप्न है कि मेरे चार छोटे बच्चे एक दिन एक ऐसे राष्ट्र में रहेंगे जहां पर उन्हे अपने शरीर के रंग के आधार पर नहीं, बल्कि अपने

चरित्र के आधार पर नहीं, बल्कि अपने चरित्र के आधार पर पहचाना जाएगा । 1964 को किंग को नोबेल शान्ति पुरस्कार से नवाजा गया, और पैंतीस वर्ष की कम आयु में ऐसे पुरस्कृत होने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे । किंग की हत्या 4 अप्रैल 1968 का मैम्फ़सीस के लोरेन होटल में कर दी गई और विश्व एक ऐसे महान नेता को खो बैठा जो न्याय स्वतंत्रता, समानता और सम्मानपूर्वक जीने के अधिकार के लिये पूर्ण प्रतिबद्धता से "साधनों से प्रतिरोध कर एक बेहतर समाज और विश्व की आशा की किरण जगाए हुए थे ।

15.2 किंग का जीवन परिचय और कार्य

मार्टिन लुथर किंग जुनियर का जन्म 15 जनवरी, 1929 को एटलांटा, में हुआ था । जब पैदा हुए तो चारो ओर अन्याय और अत्याचार विद्यमान था । श्वेत बच्चों को अश्वेत बच्चों के साथ खेलने के लिए रोका जाता था, उनकी पहचान उनके चरित्र के आधार पर नही, बल्कि उनके रंग के आधार पर थी और काला रंग हीनता का प्रतीक था । नन्हे मार्टिन ने जब अपने चारो ओर ये अन्याय देखा तब प्रण किया वे इस अन्याय को एक दिन अन्त करेंगे । उनकी माँ का नाम एलबर्टा, और पिता का नाम मोईकलकिंग था, शादी 1926 में हुई थी, और शादी के पश्चात् ये लोग एलबर्टा के पैतृक घर एटलांटा चले गए, जहाँ एलबर्टा के पिता, ए.डी. विलियम्स ने ऐबप्सर बैपटिस्त चर्च को एक छोटे से संघर्षरत चर्च से एक बहुत बडे चर्च में परिवर्तित कर दिया था । 1931 में अपने श्वसुर की मृत्यु के पश्चात् माईकल किंग इस गिरजाघर के पादरी बने । इन्होने भी सफलतापूर्वक इसका संचालन किया और अपना नाम माईकल से बदल कर जर्मन प्रोटेस्टैन्ट धार्मिक नेता लूथर के सम्मान मे मार्टिन लूथर रख लिया । तत्पश्चात् उनके पुत्र, माईकल का भी नाम मार्टिन लूथर किंग जूनियर हो गया ।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर की एक बड़ी बहिन विली किस्टीन, और एक छोटा माह एल्फैड डेनियत विलियम्स किंग था । बच्चों का लालन पालन एक बहुत ही सुरक्षित और प्यार भरे,। वातावरण में हुआ । पिता अनुशासनप्रिय थे, और उनकी माँ बहुत ही विनम्र और धार्मिक महिला थी, जिन्होंने बच्चों को नैतिक मूल्यों का महत्व समझाया । पिता भेद भाव, नस्लवाद के अत्यधिक विरोधी थी, और मानते थे ये ईश्वर की इच्छा का उल्लंघन है । उन्होंने हर कदम पर इस अज्ञाय का विरोध किया, और मार्टिन ने भी यही विचारधारा आत्मसात कर ली और किसी भी प्रकार के पक्षपात, अन्याय और अत्याचार को नही किया ।

पाँच साल की उम्र में उन्होंने स्कूल में प्रवेश लिया । 1941 में जब वे 12 वर्ष थे तो उनकी नानी जैनी जो कि उनके साथ ही रहती थी, उनका अचानक दिल का दौरा पडने से निधन हो गया । इस हादसे से वे बहुत दुखी हुए, क्योकि वे अपनी नानी के बहुत करीब थे, और वे अपराध बोध से भी पीडित क्योंकि, जब उनकी मृत्यु हुई तो वे अपनी माँ-बाप की इच्छा के विरूद्ध एक परेड देखने गए हुए थे । इस ने उनके दिल पर ऐसा असर किया कि उन्होंने घर की दूसरी मंजिल से नीचे छलांग लगा कर आत्महत्या का भी प्रयास किया । उन्होंने कई वर्षो तक इस बात का आभास होता रहा कि माँ-बाप की अवज्ञा के ही उन्हे नानी से बिछुडने का दण्ड मिला था ।

बुकर की, वाशिंगटन स्कूल में उन्होंने आगे का अध्ययन किया, जहाँ वे एक अति बुदिमान शिष्य माने जाते थे । 15 साल की उस में उन्होंने अटलांटा के मोरहाउस कालेज में प्रवेशलिया जहां वे अन्य विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच काफी लोक प्रिय रहे । यद्यपि उनका परिवार चर्च और धर्म से काफी जुडा था, मार्टिन इस दौरान चर्च और धर्म की भावनात्मक को आडम्बर मानने लगे और इनसे दूर रहने लगें। इसी उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने पिता और नाना की तरह धर्म के क्षेत्र को अपना व्यवसाय नहीं बनाएंगे, प्रथम दो वर्षो मे तो उनके मक्कि में दो विकल्प थे, या तो डाक्टर बनना या वकालत करना, किन्तु इस दौरान मोरहाऊस के अध्यक्ष डा. बेन्जामिन मेज के सान्निध्य में आने से उनके विचारों में परिवर्तन आया । ये किंग के पिताजी के अच्छे मित्र थे, और मार्टिन मे विशेष रूचि दिखाते थे, देखते ही देखते ये उनके आध्यात्मिक गुरू बन गए, और इनके ही प्रभाव के कारण इन्होंने अन्तत अपने पिता के ही कदमों में धर्म के क्षेत्र में आगे बढने का निर्णय -किया । उनका परिवार, उनका सामाजिक पर्यावरण और उनकी प्रवृति, इन सभी, का योगदान इसमें शामिल था । और 1947 मे 18 वर्ष की उम्र में, एबैन्जर बैपटिस्ट चर्च में वे सहायक पादरी के रूप में स्थापित हुए ।

मोरहाउस कालेज से स्नातक की डिग्री प्राप्त करके वे क्रोजर में धर्म का अध्ययन करने गए । यहाँ उन्होंने कई श्वेत लोगों से भी मित्रता को और छात्र सब के पहले अश्वेत अध्यक्ष चुने गए । यहां उन्होंने मनोविज्ञान, धर्म, सामाजिक प्रदर्शन का अध्ययन किया, और अरस्तू प्लेटो हीगल, कान्त, रूजो, मार्टिन लूथर, जान लाक, एडम स्मिथ का तुलनात्मक अध्ययन किया ।

इस दौरान, हावार्ड विश्वविद्यालय के अध्यक्ष मोरडीकोई जानसन ने अपने भारत दौरे के पश्चात फिलैडैलकिया में महात्मा गाँधी के जीवन और दर्शन पर एक व्याख्यान दिया, जिसको किंग ने भी सुना । इससे पूर्व भी, उन्होंने अपनी कोजर के प्रौफेसर जार्ज केविस और एजे. मस्ट, एक विख्यात विचारक, से गाँधी के बारे में सुना था, किन्तु तब तक उन्हे लगता था कि गाँधी एक आदर्शवादी हैं जिनके विचारों का यथार्थ रूप नही दिया जा सकता है । किन्तु इस व्याख्यान को सुनने के बाद हो आश्वस्त ले गए कि गाँधी एक महान हस्ती थे, जिन्होने बिना हिंसा के अग्रेंजी साम्राज्य की नीव हिला दी थी । उन्होंने गाँधी को जितना अधिक पढा, वे उतने ही आश्वस्त हो गए कि प्यार में वह शक्ति है, जिससे असम्भव भी सम्भव हो सकता है । किन्तु फिर भी उनके मस्तिष्क में यह शंका विद्यमान थी कि गाँधीवादी विचार धारा की सम्भवत: अमरीकी भूमि पर लागू नही किया जा सकता उन्होंने बोस्टन विश्वविद्यालय से 1951 में कोजर से अच्छे नम्बरों से पास होकर धर्म में डिग्री हासिल कर, बोस्टन विश्वविद्यालय मे पीएचडी. के अध्ययन के लिए प्रवेश लिया ।

कौरेटा स्कौट, न्यू ईन्गलैन्ड कनसरवेटरी आफ म्यूजिक में संगीत का अध्ययन कर रही थी । जून, 18,1953 को इस अल्वामा की लडकी के साथ वे विवाह के सूत्र में बध गए: और आगे चलकर इनके चार बच्चे हुए । दोनो पढ़ाई के दौरान नौकरी की भी तलाश में थे । किंग को कई स्थानों पर नौकरी मिल भी गई, किन्तु उन्होंने अन्तत: डैकटट एवैन्यू बैपटिस्ट चर्च में

पादरी की ककश स्वीकारी । कौरेटा यद्यपि दक्षिण नहीं जाना चाहती थी, किन्तु किंग को यकीन था कि इसी चर्च से वे अपना न्याय भाईचारा, समानता का संदेश लोगों तक पद्या सकते थे । सितम्बर 1954 मे वे डैक्सट एवैन्यू वैपटिस्ट चर्च के पूर्ण कार्लान पादरी बन गए । 1955 में उनकी पीएचडी. पूर्ण हो गई, और जून में उन्होंने उपाधि भी मिल गई । अब वे जीवन के ऐसे मोड पर खडे थे, जहां से उनका जीवन अब एक नई दिशा पकड़ने वाला था ।

मोन्टगोमेरी सिटी बस सेवा रंगभेद की नीति का एक घिनौना उदाहरण था । बसों में अश्वेत लोगो के लिए अलग से बैटने की व्यवस्था थी, और अगर कोई अश्वेत व्यक्ति गल्ली से उस सीट पर बैठ जाए जो कि श्वेत व्यक्ति के लिए आरक्षित थी, तो उसे वह सीट खाली करनी पड़ती थी । यह अन्यायपूर्ण और पक्षपातपूर्ण परम्परा कई वर्षो से विद्यमान थी, किन्तु अश्वेत लोगों ने इसके विरूद्ध आवाज नहीं उठाई थीं । 1954 मे मोन्टगोमेरी में 80 हजार श्वेत नागरिक और 50 हजार अश्वेत नागरिक थे, और श्वेत नागरिक इनका शोषण करते थे । यद्यपि कुछ लोगों ने इस अन्यायपूर्ण स्थिति के विरूद्ध आवाज उठाई थी । किन्तु अधिकतर, इस स्थिति को स्वीकार चुके थे । 1 दिसम्बर 1955 को अधेड ऊम्र की महिला रोजा पार्कस बस में चढ़ी, और सम्भवत यकी होने के कारण, उस सीट पर बैट गई जो कि श्वेत लोगों के लिए आरक्षित थी । जब उनसे उठने के लिए कहा गया, तो उन्होंने उठने से मना कर दिया । इस पर श्वेत लोगों में एक आक्रोश की लहर दौड़ गई । उन्हे बन्दी बनाकर जेल ले जाया गया, और उन्हे दंडित भी किया गया ।

जिस रात रोजा को बन्दी बनाया गया ई. डी. निक्सन, NAACP के नेता, मार्टिन लूथर किंग से मिले, और कई अन्य नेताओं ने मिलकर यह निर्णय लिया, कि इन बसों का बहिष्कार जाए । मार्टन लूथर किंग को इस के नेतृत्व की डोर सम्भाली गई । इन्होंने इसका विरोध किया, और इस बस सेवा के विरूद्ध एक अहिंसक आन्दोलन को आरम्भ करने के बारे मे विचार किया ।

यह निश्चय किया गया कि एक दिन के लिए बसों का बहिष्कार किया, और सभी अश्वेत लोग, पैदल, साईकिल, घोडा गाडी इत्यादि में सफर करेगें, और बस व्यवस्था सम्पूर्ण रूप ठप्प हो जाएगी । एक दिन का यह बहिष्कार 382 दिनों तक सफलतापूर्वक चला । जब यह आन्दोलन आरम्भ हुआ, तो कहीं इस बात का उल्लेख नहीं था, कि इस आन्दोलन की प्रेरणा के स्त्रोत, महात्मा गाँधी थे किन्तु आन्दोलन के दौरान एक महिला लाईब्रेरियन जूलइयट मोर्ग्न ने द मोन्टगोमेरी एडक्टाईजर के सम्पादक को एक पत्र मे लिखा कि इस प्रकार का आन्दोलन भारत में मोहनदास करमचन्द गाँधी ने आरम्भ किया था । हमने उससे और ध्यरयो से सबक लिया है । किंग ने सुप्तावस्था में पडे मोन्टगोमेरी निवासियों को झकझोड के उठाया, और कि एक लेखक कहते है उन्होंने मोन्टगोमेरी में 'अहिंसक आन्दोलन का बीजारोपण किया ।

बेंजमिन मेय लिखते हैं कि किंग ने एक अद्वितीय मस्तिष्क और सर्मपण भाव पाया था जिसके कारण वे बिलकुल निर्भीक और अहिंसक रह सके । जेल के अन्दर जेल के बाहर, जब उनका पर हमला हुआ, और जब उन्हे मारने का प्रयास किया, उनमें द्वेष और दुर्भावना थी

। किंग के नेतृत्व में यह काफी सफल रहा, यद्यपि इस दौरान ई. डी. निक्सन और उनके घर पर बम फेंके गए, किन्तु इन्होंने हिंसा का जवाब हिंसा से नहीं दिया ।

इस दौरान मोंटगोमरी इम्परूवमेंट एसोसिएशन की स्थापना हुई और किंग इसका अध्यक्ष चुना गया, क्योंकि वह विवादास्पद नही थे ।

2 दिसम्बर, 1955 को सभी अश्वेत नेतागण DEXTER AVENUE BAPTIST चर्च में मिले. और 5 दिसम्बर 1955 को एक दिन के बहिष्कार के लिए चुना गया था । सभी समाचारपत्रों ने इस का काफी प्रचार किया ।

इस दिन मोन्टगोमेरी की नब्ने प्रतिशत अश्वेत जनता ने इस अन्यायपूर्ण सेवा का बहिष्कार किया । 5 दिसम्बर शाम को एक मीटिंग मे यह निमार्ण लिया गया कि वे इस बहिष्कार का समाप्त नही करेगें । हजारों की तादाद में जो अश्वेत जनता यहां उपस्थित थी, उनको सम्बोधित करते हुए, किंग मैं यह सभी को बतलाना चाहता हूँ कि हम बसों में इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प हैं । और हम गलत नही हैं । अगर हम गलत हैं, तो यहां का सर्वोच्च न्यायालय गलत है, संविधान गलत हैं । अगर हम गलत हैं, तो ईश्वर भी गलत है । प्रशासन ने बहिष्कार तोड़ने का काफी प्रयास किया, किन्तु अश्वेत जनता के अदम्य साहस और संकल्प के सामने उन्हे झुकना पडा । कई नेताओं ने इस आन्दोलन में गाँधी के विचारो को बार-बार उद्दत किया । 5 जून, 1956 को संघीय जिला न्यायालय ने ब्राउडर बनाम गेल विवाद मे बसो की बैठने की व्यवस्था को असवैंधानिक घोषित कर दिया और नवम्बर 1956 को इस प्रकार के सभी नियमों संविधान में सामील किया गया 20 दिसम्बर 1956 को किंग ने इस बहिष्कार के अन्त का आहवान किया 21 दिसम्बर प्रातःकाल को, रैल्फ ऐएबरनेथी ई.डी निकस्न, ग्लैन स्माइली के साथ किंग पहली बार ऐसी बस में बैठे जिसका आधार अन्याय नही था ।

मौन्टगोमेरी में अपनी सफलता के पश्चात् सभी अश्वेत नेताओं को इस बात का आभास हुआ कि अपनी जीत को सुदृढ करने के लिए, और भविष्य में अपनी अन्य मांगों को पूरा करने के लिए उन्हे एक संस्था की आवश्यकता है । अत: जनवरी 1957 में मार्टिन लूथर किंग, रैल्फ ऐबरनैथी और 60 अन्य लोगों ने मिलकर एक संस्था की नींव रखी, जिसको उन्होंने, SOUTHERN CHRISTIAN LEADERSHI CONFERENCE(SCLC) नाम दिया । इसका उद्धेश्य था कि अहिंसक आन्दोलनो द्वारा अपने अधिकारों के लिए लडना ।

इस संस्था के आधार पर किंग को एक राष्ट्रीय मंच मिल गया, जिसके माध्यम से वे व्यवस्था तरीके से अपनी लडाई लड़ सके । इन्होंने सर्वसहमति से यह निर्णय किया कि अश्वेत जनता को सर्वप्रथम मताधिकार देने की आवश्यकता है । फरवरी, 1958 में दक्षिण में SCLC ने 20 सम्मेलन किए, जिसके आधार पर उन्होंने अश्वेत जनता को मतदाताओं के रूप में संगठित करने का प्रयास किया ।

3 फरवरी 1959 को किंग उनकी पत्नी कौरेटा किंग और लारेन्स रैडिक ने भारत का पाँच सप्ताह का दौरा आरम्भ किया । 10 फरवरी को वे भारत पहुंचे, पालय हवाई अड्डे पर गाँधी स्मारक निधि की सुचेता कृपलानि और जी रामचन्द्रन ने उनका स्वागत किया एक

पत्रकारों के झुण्ड को उन्होंने कहा, मैं अन्य देशों में एक सैलानी की तरह जा सकता हूँ किन्तु भारत मैं एक तीर्थ यात्री की तरह आया हूँ ।

इस यात्रा के दौरान वे कई महान हस्तियों से मिले पंडित जवाहर लाल नेहरू, सर्वपल्ली राधाकृष्णण, जो कि उपराष्ट्रपति थे, आचार्य विनोबाभावे । वे जहां भी गए उनका स्वागत हुआ उन्होंने अहिंसा और मौन्टगोमेरी मे उसके प्रयोग पर कई व्याख्यान दिए और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गाँधी की आत्मा भारत में अभी जीवित थी ।

उनकी भारत यात्रा ने उनपर अमिट छाप छोडी, और वे गाँधीजी की अहिंसा और सत्याग्रह को भलीभांति समझ सके । अपनी यात्रा की अन्तिम शाम को एक रेडियो वक्तव्य में उन्होंने कहा, मेरे भारत प्रवास के दौरान में यह समझ चुका हूँ कि एक आक्रान्त जनता के सम्मुख अपने अधिकारों के लिए लडने के लिए अहिंसा से कोई बेहतर हथियार नही है । महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में कुछ नैतिक मूल्यों का समावेश किया जो कि समस्त ब्रह्माण्ड का आधार हैं । जिस प्रकार हम गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त से बच नहीं सकते उसी प्रकार हम इन मूल्यों से भी नहीं बच सकते

EBONY पत्रिका में एक लेख, "My trip to Land of Gandhi" (गाँधी के प्रदेश में मेरी यात्रा) में उन्होंने अपनी यात्रा के बारे में विस्तृत वर्णन किया, वे लिखते हैं "जब मोन्टगोमेरी बस आन्दोलन चल रहा था तो मेरे कुछ मित्रों ने मुझे सुझाव दिया था कि मैं भारत जाकर स्वयं देखूँ कि हमारे दिशा निर्देश करने वाले महात्मा गाँधी ने किस प्रकार भारत में अहिंसा का आन्दोलन छेडा था । व्यक्तिगत तौर पर मुझे इस यात्रा ने काफी प्रभावित किया । गाँधी के देश में कदम रखना, उनके पुत्र, पोतों और अन्य सम्बन्धियों से मिलना एक सुखद अनुभूति थी हिंसा दुर्भावना को जन्म देती है, जो कि आत्मघातक हो सकती है । आज भारत और ब्रिटेन में एक पारस्परिक मित्रता विद्यमान है जो कि सम्पूर्ण समानता पर आधारित है । दोनों राष्ट्रों में कहीं भी कटुता नस्ल नहीं आती हैं । "

भारत से वापिसी के पश्चात् किंग अपने लक्ष्य में और आगे बडना चाहते थे और इस दिशा में उनका पहला कदम था मोन्टगोमेरी के डैक्कर एवनयू बैप्तिस्त चर्च से त्यागपत्र देकर एटलान्टा वापिस जाना जहां SCLC ने अपना कार्यालय खोला था । नवम्बर, 1959 में उन्होंने यह दुखदायी निर्णय लिया । युवाओं द्वारा आन्दोलन दिसम्बर 1959 में, ग्रीन्सबोरो 'उत्तर में विद्यार्थी द्वारा एक अहिंसक आन्दोलन आरम्भ हुआ जो कि दिन ब दिन जोर पकडता गया । धीरे-धीरे ये आन्दोलन दक्षिण के पचास नगरों में पहुंच गड़ा । इस दौरान ये विद्यार्थी शान्तिपूर्ण धरनों पर बैठते थे, और सरकार की हिंसात्मक कार्यवाही का जवाब शान्ति से देते थे । जान लुईस, जो कि आगे जाकर एक प्रमुख नेता बना, के शब्दों में, इस दौरान किंग आते जाते रहते थे और हमारे शान्तिपूर्ण आन्दोलन की प्रशंसा करते थे । यद्यपि किंग ने यह आन्दोलन आरम्भ नहीं किया था, किन्तु इस आन्दोलन ने उनका प्रभाव अत्यधिक था 1 अप्रैल, 1960 में SNCC की नीव रखी गई, (STUDENT NON VIOLENT COORDINATING COMMITTEE) इन युवाओं को किंग के प्रति बहुत लगाव और विश्वास था । किंग धीरे-धीरे युवा वर्ग के प्रतीक बन गए, ओर उनके प्रेरणा के स्त्रोत भी । इस

अहिंसक, आन्दोलन जिसमें धरने स्वतन्त्रता, सवारिया (FREEDOM RIDES) शामिल थे, यह बात साबित कर दी, कि अगर आन्दोलन और व्यवस्थित होता तो यह और प्रभावशाली हो सकता था । 1963 तक स्वतन्त्रता अब अश्वेत लोगों का नारा बन गया और नरमिंगहैम अलावामा उनका युद्ध क्षेत्र बन गया । बरमिंगहैम अलावामा उनका युद्ध क्षेत्र बन गया । बरमिगहैम का अश्वेत व्यक्ति हिंसक प्रवृत्ति का था, और हर अश्वेत परिवार के पास हथियार थे । उन्हे श्वेत व्यक्तियों द्वारा मारा जा रहा था, और उनका यह विचार था कि हिंसा का जवाब हिंसा द्वारा ही दिया जाना चाहिए ।

फेड, शटलजवर्थ ने बरमिंगहैम में थियोफिलियस यूजीन (बुल) कौनौर पुलिस कमिश्नर, जो कि अत्याचार का दूसरा नाम था, से अहिंसा के आधार पर लड़ने का बेडा उठाया । शटलजवर्थ एक पादरी था, जिसने मानव अधिकारों के लिए बरमिगहैंम में बहुतकाम किया । उसने किंग को अपने आन्दोलन की, बागडोर सम्भालने के लिए बरमिंगहैम बुलाया प्रशासन ने किंग को आन्दोलन से दूर रखने का प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहें । 3 अप्रेल, 1963 को किंग ने बारमिगंहैम में अपना आन्दोलन आरम्भ कर दिया, किन्तु 12 अप्रेल, 1963 को बन्दी बना कर उन्हे एकाकी कारावास में रखा गया ।

LETTER FROM BIRMINGHAM JAIL (बरमिगहैम कारा ग्रह से लिखा हुआ किंग का पत्र अप्रैल 16, 1963) से लिखा हुआ उनका पत्र, अहिंसा की एक मुखर अपील है । इसका उल्लेख करते हुए एक लेखक लिखते है "अमेरीकी इतिहास का एक अति महत्वपूर्ण प्रलेख किंग का बरमिंगहैम कारागृह से लिखा हुआ पत्र है । इसकी तुलना लिंकन के गैटिसबर्ग सम्बोधन से ड्रेकस के पक्ष मे लिखे गए ऐमिली जौला के पत्र से, और जॉन.एफ. कैन्निडी के उद्घाटन भाषण से की गई है जेल की चारदीवारी में उन्होंने ये पत्र समाचार पत्रों के हाशियों पर लिखा, और अश्वेत लोगों की समस्या को सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख पेशकरना चाहा । "

बरमिंगहैम न्यूज में आठ पादरियों ने किंग के विद्रोह आन्दोलन को 'उग्र और अनौचित्यपूर्ण बताया । इन पादरियों ने अश्वेत लोगों से कहा कि वे अपनी मांगो की लड़ाई को न्यायालयों में सुलझाने का प्रयास करे, न कि सडको पर । उन्होंने यह भी आक्षेप लगाया कि बरमिंगहैम मे आकार 'बाहरी तत्वों' ने ' आन्दोलन छेड़ा है जो कि 'असामाजिक और गलत है' ।

इस पत्र में किंग के सत्य और अहिंसा पर लिखे गए लेखों और वक्तव्यों सम्मिश्रण पाया जाता है । सात हजार शब्दो का यह पत्र चोरी-छिपे जेल से बाहर निकाला गया था, और शीघ्र कई राष्ट्रीय समाचारपत्रों में छप गया, हजारों की मात्रा में इस पत्र की प्रतियां गिरिजाघरों में पहुंच गई । बाद में यह पत्र उनकी पुस्तक "Why we cant't wait' (हम प्रतीक्षा क्यों नहीं कर सकते) का हिस्सा बन ।

इस पत्र के माध्यम से वह अपने आलोचकों को शान्त करना चाहते था, और कई महत्वपूर्ण सवालों का उत्तर भी देना चाहते थे । उन पर पादरियों ने यह आक्षेप लगाया कि एक एटलांटा का निवासी बरमिंगहैम में एक आन्दोलन का नेतृत्व करके कर सकता है । किंग और

उनके अनुयायियों से यह कहा गया कि वे सब्र से अपने अधिकारों की प्रतीक्षा क्यों नही करते और विद्रोह के माध्यम से समाज की शान्ति क्यों भंग कर रहे हैं?

इस पत्र के माध्यम से वे विश्व भ्रातृत्व की बात करते हैं, और अपने अहिंसक आन्दोलन का औचित्य सिद्ध करते हैं । वे लिखते है ।

"हम आशा करते है कि शीघ्र ही नफरत, ईर्ष्या, द्वेष के काले बादल छट जाएंगे, हमारे समुदाय से भय का गहरा कोहरा समाप्त हो जाएगा और भविष्य में प्रेम और भ्रातृत्व के सितारे हमारे महान राष्ट्र के ऊपर अपनी चमचमाती हुई खूबसूरती बिखेरेंगे ।

उनकी ये कहकर आलोचना की गई कि इनके आन्दोलन के कारण हिंसा भडकी, अत: यह एक अनुचित, अनौचित्यपूर्ण और असामाजिक आन्दोलन था ।

इस पत्र के माध्यम से उन्होने ये इच्छा व्यक्त की है कि वे लोग जो उनके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं, वे अपने में सुधार लाएंगे, और उस नैतिक प्रकाश का संज्ञान प्राप्त करेंगे, जिसके फलस्वरूप अश्वेत लोग अन्याय की खाई में फिर से नहीं गिरेंगे ।

यद्यपि श्वेत लोगों का दृष्टिकोण उनके प्रति अन्यायपूर्ण और घृणापूर्ण था, किन्ही फिर भी उनके दिल में उनके प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी । पत्र में उन्होंने यह बार-बार दोहराया कि वे एक दिन अवश्य आएगा जब ये लोग उन व्यक्तियों की इच्छाओं और कराहों को समझेंगे ।

उनके अहिंसक आन्दोलन द्वारा हिंसा भडकी इस आक्षेप के उत्तर में वे तब देते हैं ये तो ऐसा हुआ जैसे एक ऐसे व्यक्ति की आलोचना की जाए, जिसके घर में चोरी हुई है, क्योंकि उसकी सम्पति ने चोर की चोरी के लिए प्रेरित किया, था सुकरात की आलोचना इसलिए करना, क्योंकि उसके सत्य के प्रति समर्पण ने एक ऐसी नकारात्मक मानसिकता को जन्म दिया, जिसने सुकरात को जहर पीन के लिए प्रेरित किया । यह एक तथ्य है कि अगर अश्वेत लोगों को इस प्रकार अहिंसात्मक तरीको से प्रदर्शन करने से रोका गया तो इसके परिणाम घातक होंगें । अहिंसा के दर्शन का जन्म नही होता तो अब तक दक्षिण की सडके खून से रंगी होती, और डागर हमारे अहिंसक आन्दोलन को समर्थन नहीं मिलता है तो नसलवाद का एक दुःखद-स्वप्न अवश्यम्भावी होता 'मैं कोई बाहरी तत्व नहीं हूँ । और मैं यह भली-भांति जानता हूँ कि सभी सम्प्रदाय एकता के सूत्र में बंधे हुए है । मैं एटलान्टा में हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठ सकता अगर बरमिगहैम में अन्याय हो रहा हो । और अपनी प्रसिद्ध पंक्ति में वे कहते है किसी भी स्थान पर अन्याय, किसी अन्य स्थान पर न्याय पर कुठाराघात होगा ।

उनके सम्पूर्ण पत्र में मानवता के प्रति उनका प्रेम झलकता है । यह पत्र महान पत्रों की श्रृंखला में शामिल है और बहुत ही सुन्दर, सशक्त शब्दों में अहिंसा, प्रेम और विश्व बन्धुत्व पर प्रकाश डालता है ।

वे ये भी कहते हैं कि बरमिंगहैम में उन्होंने जो आन्दोलन आरम्भ किया वह तीन कदमों के पश्चात लिया गया उनकी चौथा और अन्तिम विकल्प था ।

(1) तथ्यों का संकलन जिसके आधार पर स्थिति की वास्तविकता को आका जा सके ।

(2) वार्ताएँ ।

(3) आत्म-शुद्धि ।

(4) बहिष्कार, सविनय अवज्ञा ।

महात्मा गाँधी की ही तरह, किंग यह मानते थे कि कोई भी आन्दोलन तब तक सफल नही हो सकता, जब तक गम्भीर अन्याय के बारे में तथ्य एकत्रित न किए गए हों । बरमिंगहैम मे आरम्भ करने से पूर्व उन्होंने अन्याय के बारे में काफी तथ्य एकत्रित कर लिए थे, और इस निष्कर्ष पर थे कि यहां पर नस्लवाद के क्षेत्र में अन्याय अपनी चरम सीमा पर था ।

आन्दोलन आरम्भ करने से पूर्व उन्होंने बातें भी करनी चाहि थी जो कि हो गई थी । गाँधी की ही तरह वे मानते थे कि जब तक आन्दोलनकारी सम्पूर्ण रूप से आत्म शुद्धि नहीं और आक्रान्ता के प्रति द्वेष, दुर्भावना और नफरत के भावों का उन्मूलन नहीं करते, तब तक यह बनी रहेगी कि आन्दोलन में हिंसा भडक जाए ।

यद्यपि यह पत्र 1963 में लिखा गया था किन्तु इसका महत्व सर्वकालिक है । जब तक साम्प्रदायिकता और हिंसा विद्यमान रहेगी, जब तक अन्याय जीवित रहेगा । तब तक इस पत्र की भी रहेगी ।

भारत की स्वाधीनता से कुछ सप्ताह पूर्व पटेल और नेहरू का एक दूत, कोलकटा गया, जहां गाँधीजी हिन्दु और मुसलमानों क बीच साम्प्रदायिक सद्भाव और शान्ति बनाने का प्रयास कर रहे थे । इस पत्रवाहक के पास गाँधीजी के लिए पटेल और नेहरू द्वारा भेजा गया एक पत्र था, जिसमें लिखा था। : "बापू आप राष्ट्रपिता हैं 15 अगस्त 1947 भारत का प्रथम स्वतन्त्रता दिवस होगा । हमारी इच्छा है कि आप आकर हमें आर्शीवाद दें । गाँधीजी की प्रतिक्रिया थी" जब पश्चिम बंगाल जल रहा है हिन्दु, मुस्लिम एक को मार-काट रहें है, और कोलकत्ता के अंधकार में मैं उनकी चीत्कारों सुन सकता हूं तो मैं दिल्ली की करने वाली रोशनी को कैसे सहन कर पाऊँगा । मुझे बंगाल में शान्ति स्थापित करने के लिए रहना पड़ेगा, और आवश्यकता पडी तो शान्ति स्थापित करने के लिए जान भी देनी पड़ेगी ।

इस महान पत्र में किंग ने अमरीका में वही भाषा बोली जो महात्मा जी ने भारत में बोली थी । सत्य, अहिंसा, धार्मिक सहिष्णुता, और भ्रातृत्व दोनो की ही विचारधारा का अभिन्य अंग था । किंग ने अक्सर इस बात पर जोर दिया कि वे किसी भी कीमत पर भ्रातृत्व से कम कोई भी बात नहीं।

अपने पत्र में अहिंसा के दर्शन की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं मैं ' में इसलिए हूं क्योंकि यहां पर अन्याय विद्यमान हैं । मैं स्वतन्त्रता का सन्देश पूरे विश्व मे फैलाना चाहता हूं

नागरिक अधिकारों की लडाई के इतिहास का सबसे बड़ा आन्दोलन "नौकरियों और स्वतन्त्रता के लिए वाशिंगटन की ओर कूच, अगस्त, 28 1963" था, जिसमें 250,000 यात्रियों ने भाग, जिसमें 60,000 श्वेत यात्री भी शामिल थे । वाईट हाउस में किंग और उनके साथियों ने राष्ट्रपति कैनेडी से की इस आन्दोलन के दौरान किंग ने लिंकन मैमोरियल पर अपना, प्रसिद्ध वक्तव्य "I HAVE A DREAM' ("मेरा एक सपना है) दिया । यह विरोध, जिसमें हंसते गाते हुए श्वेत लोगों ने स्वतन्त्रता और की मांग की, अहिंसात्मक साधनों की बहुत बड़ी सफलता थी । इस आन्दोलन ने किंग को अन्तराष्ट्रीय मंच लाकर खड़ा कर दिया, और अश्वेत लोगों को अपनी लड़ाई का और तीव्र करने के लिए प्रेरित किया ।

किन्तु इस दौरान दो दुःखद घटनाएं हुई जिन्होंने सभी को झकझोर के रख दिया सितम्बर 15,1963 को बरमिगहैंम के सिक्सटीन्थ एवैन्यू बैपटिस्त चर्च में एक बम फेका गया जिसमें चार छोटी लड़कियाँ, मारी गई! नवम्बर 22, 1963 को डालाज टक्सोस ने राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या कर दी गई । किंग ने पत्रकारों से कहा "हमारे राष्ट्रपति की मौत एक अनैतिक पर्यावरण की देन हैं। यह पर्यावरण नफरत, झुठे आक्षेपी, हिंसा से लिप्त है। लोग अपनी असहमति हिंसा और हत्या से जताते हैं ।"

अपनी पत्नी कौरेटा से उन्होंने कहा कि 'सम्भवत यही हश्र उनका भी होगा । वे भी शायद चालीस की उस पार न कर पाएं । एक सप्ताह पश्चात जब लिन्डन जानसन ने राष्ट्रपति पद की बाग डोर सम्भाली तो जानसन ने कहा, कैनेडी की याद में कोई भी भाषण इतना मुखर नहीं हो सकता, जितना कि नागरिक अधिकार अधिनियम (जिसके पारित होने के लिए वे कृत संकल्प थे) का शीघ्रतम पारित होना था ।

2 जुलाई, 1964 को किंग और उनके सहयोगियों ने वह दृश्य देखा जब राष्ट्रपति जानसन ने नागरिक अधिकार अधिनियम पर अपने हस्ताक्षर किए ।

10 दिसम्बर, 1964 को किंग को नोबेल शान्ति पुररकार से नवाजा गया, और पैंतीस वर्ष की कम आयु में ऐसे पुरस्कृत होने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे ।

किंग की यह धारणा थी की अश्वेत लोगों की सबसे बडी जीत तब होगी जब उन्हें मताधिकार दिया जाएगा । इस अधिकार के प्राप्त होते ही वे अपने भविष्य के निर्माता स्वयं बन जाएंगे । 1965 की शुरूआत SCLC ने सैल्या, अलाबामा में मतदाताओं के पंजीकरण से की । यहां पर 15,000 अश्वेत लोग थे, किन्तु केवल 350 ही पंजीकृत मतदाता थे। 2 फरवरी को यह आन्दोलन आरम्भ हुआ, इससे पूर्व SNCC ने मतदाताओं का पंजीकरण करने का प्रयास किया था, किन्तु प्रशासन ने इनसे बडा अपमानजनक व्यवहार किया ।यद्यपि इन्होंने बहुत शान्तिपूर्ण तरीके से यह आन्दोलन किया, इन्हे निकृष्ट कोटि की मानवता की संज्ञा दी गई ।

9 फरवरी को किंग राष्ट्रपति जानसन से इस सम्बंध में मिले। 18 फरवरी को आन्दोलनकारीयों पर मैरियन शहर में कुछ श्वेत लोगों ने हमला कर दिखा। 21 फरवरी को मैल्कोल्य की हत्या हुई, और तीन अश्वेत लोगों को उसकी हत्या के आरोप में बन्दी बनाया गया है। 7 मार्च को आन्दोलनकारी जब एडमण्ड पैप्स ब्रिज को पार करना चाहते है, तो पुलिसकर्मी उनकी पिटाई कर देते है । इस पिटाई का समाचार पत्रों में विस्तृत वर्णन हुआ। 6 अगस्त,1965 को राष्ट्रपति जानसन 1965 के मताधिकार अधिनियम पर हस्ताक्षर करते हैं । इस आन्दोलन के दौरान तीन बार यह मचा हुआ, ओर तीसरी बार सफल हुआ । 24 मार्च 1965 को जब ये आन्दोलनकारी सैल्या से मोन्टगोमेरी पहुंचे, तो किंग ने 25,000 लोगों को सम्बोधित किया जिसमें कई महान हस्तियाँ शामिल थीं ।

जिस प्रकार बरमिगहैंम ने 1964 का नागरिक अधिकार अधिनियम अश्वेत लोगों को दिया, उसी प्रकार सल्या आन्दोलन की सफलता 1965 का मताधिकार कानून था । और ये सब परिणाम था किंग और उनकी अहिंसक नीति का ।

अब किंग ने अपना ध्यान उत्तर की ओर लगाया, जहां मताधिकार कानून बनने के पांच दिन पश्चात ही वॉटस (लॉस ऐन्जीलीज कैरोलीना) में हिंसा भड़क उठी । 17 अगस्त 1965 को किंग यहां पहुंचे और उन्होंने इस हिंसा की आलोचना की । अब उन्होंने अपने आन्दोलन का क्षेत्र शिकागों चुना, यहां उन्होंने एक मकान किराए पर लिया, और फरवरी 1966 से इसी मकान से, जो कि झोपडपटियों का ही एक हिस्सा था, उन्होंने गरीबी उन्मूलन की महिमा छेड दी । किन्तु उनका यह आर्थिक आन्दोलन सीमित रूप से ही सफल हुआ अब उनका ध्यान वियतनाम युद्ध की ओर गया ।

महात्मा गाँधी की ही तरह, किंग ने युद्ध की आलोचना की थी, और अपनी मृत्यु से एक साल पहले उनकी विचार धारा हमें कुछ परिवर्तन नजर आता है। वे नागरिक अधिकारों से मानव अधिकारों की ओर बड़ते नजर आते है, और वियतनाम युद्ध की आलोचना करते हुए कहते है कि "ये पागलपन किसी तरह समाप्त होना चाहिए ।" अप्रैल 4,1967 को रिवरसाईड चर्च में उन्होने वियतनाम युद्ध के विरूद्ध अपने विचार व्यक्त थे, और कुछ समालोचक कहते हैं कि उनका यह भाषणI HAVE A DREAM (मेरा एक सपना है) से भी अच्छा था । उन्होंने इस भाषण में कहा :- इस युद्ध को समाप्त करने में भी हमें ही पहल करनी होगी । "इस युद्ध में हमने समाप्त द्वारा मानव जाति को जलया है, राष्ट्र को विधवाओं और बेसहाराओं से भर दिया है, लोगो की नसों में नफरत और विष घोल दिया है । इस सबको हम बुद्धिमता, न्याय और प्रेम के साथ सामंजस्य नही कर सकते । वियतनाम युद्ध की आलोचना करने के कारण अमेरिका की सरकार ने उनपर आरोप लगाया हैं वे साम्यवादी ओर झुक रहें हैं।

नवम्बर 27, 1967 को उन्होंने ये घोषणा की वे 22 अप्रैल 1968 को लोगों की एक पैदल यात्रा वाशिंगटन तक ले जाएगें, जिसमें हर नरल और जाति के निर्धन लोग शामिल होगे इसके द्वारा वे राजधानी की सम्पूर्ण कार्यवाही तब तक ठप करना चाहते थे जब तक उनकी मांगे न स्वीकारी जाती। किन्तु इससे पहले ही किंग की हत्या 4 अप्रैल 1966 का मैस्फसीस के लोरेन होटल में उनकी हत्या हो जाती है । जेम्स अर्ल रे को पकड़ा जाता है और अन्तत: उसे 99 वर्षो की जेल हो जाती है । उनके मौत के समाचार ने पूरे राष्ट्र को झकझोर कर रख दिया । पूरे राष्ट्र में हिंसा की आग भडक गई । यह एक क्रूर विडम्बना थी कि एक अहिंसा के पुजारी की मौत ने पूरे राष्ट्र को हिंसा की आग में झौंक दिया ।

जिस व्यक्ति ने अपने अन्तिम भाषण में कहा था, या तो अहिंसा होगी या हमारा अस्तित्व होगा, उसका राष्ट्र ऐसा लगता था मानो अस्तित्व हनिता का ओर बड रहा हो । राष्ट्रपति ने उनकी हत्या के एक दिन पश्चात कहा, "किंग का सपना उनकी मौत के पश्चात समाप्त नहीं हूआ है । श्वेत अश्वेत दोनों ही इस प्रकार एकता के सूत्र में बंधेंगे जैसे कि पहले कभी नही कंधे है और पूरे विश्व को बताएंगे' कि अब अमरीका का शासन बन्दूक से नहीं बल्कि स्वतन्त्र और न्यायपूर्ण व्यक्तियों के मत से होगा ।

जिस प्रकार महात्मा गाँधी ने अपनी अहिंसा और सत्य की विचार धारा से भारत को स्वतन्त्रता दिलाई, उसी प्रकार किंग, ने उसी विचारधारा से अमेरिका के चेहरे को बदल कर रख मोन्टगोमेरी से मैम्फिस की उनकी यात्रा में उन्होंने हिंसा का प्रत्युत्तर अहिंसा से दिया, और नफरत का प्रेम से ।

उनके अथक प्रयासों से अश्वेत लोगों का समानता का दर्जा मिला, मताधिकार मिला, और उन्ही के प्रयासों के फलस्वरूप अमेरीका को बैरैक ओबामा के रूप में एक अश्वेत राष्टपति।

15.3 किंग और महात्मा गाँधी

1961 में प्रसिद्ध भारतीय लेखक, वेद मेहता ने भविष्यवाणी की थी जब शताब्दी का अन्त होगा, तो गाँधी और किंग को हमारे समय के दो अत्यधिक प्रभावशाली व्यक्तियों का दर्जा जाएगा ।

निःसन्देह आज के वातावरण में हम जा चारो ओर नजर घुमाते हैं तो हम हिंसा का नग्न प्रदर्शन देखते है ईर्ष्या, द्वेष, दुर्भावना का बोलबाला देखते है तो हमें इन दोनो महान हस्तियों के शब्द याद आते है ।

मोन्टगोमेरी बस बहिष्कार के आरम्भ होने से पहले, उन्होंने एक सम्मेलन में कहा था, प्रेम हमारा नियन्त्रक आदर्श होना चाहिए । एक बार फिर हमें ईसा मसीह के शब्द सुनाई देने चाहिए, "अपने शत्रुओं से प्रेम करो, जो तुम्हे गाली दे, उसको आर्शीवाद दो और उनके लिए प्रार्थना करो जो तुम्हारे प्रति तिरस्कारपूर्ण नजरिया रखते हैं । "किंग महात्मा गाँधी की ही तरह, कथनी और करनी में कोई भेद नहीं करते थे । 30 जनवरी, 1956 को जब वे एक सम्मेलन में थे तो उनके घर पर एक बम फेका गया था, जिसमें उनकी पत्नी और मासूम बच्ची बाल-बाल बचे थे । पन्द्रह मिनट पश्चात जब वे घर पहुंचे तो उन्होंने पाया कि उनका सारा घर आक्रोशित अश्वेत समर्थकों से घिरा हुआ है, जो कि इस घिनौनी हरकत के लिए बदला चाहते थे । यद्यपि उनके परिवार को मारने की कोशिश की गई थी । किन्तु इस महान हस्ती ने क्रोधित जनता को शान्त करने के लिए कुछ शब्द कहें जिन्होंने, उनके जीवनी लेखक, लैरौन बैनेट जूनियर (LERONE BENNETT,JN) के अनुसार, किंग को अहिंसा का एक जीता जागत प्रतीक बना दिया । किन्तु इस घटना के बाद अभी भी वे पूरी तरह से गाधीवादी नहीं बन पाए थे, क्योंकि उस रात को वे विस्तर पर पडे हुए नफरत और बदले की आग में जलते रहे । और सुबह उठते ही पिस्तौल खरीदने चले गए ? किन्तु तब तक उन्होंने अपने आप को विश्वास दिला दिया था कि आत्म-रक्षा में आक्रमण करना भी गलत है । जैसा कि LERONE BENNETT,JN कहते हैं, कहीं किसी कोने में, उनके मस्तिष्क में गाँधीवादी का जो बीजारोपण 1950 में उनकी पुस्तके पढने से हुआ था, अभी भी विद्यमान था । सत्य यह था कि किंग ने अपने आपको विश्वास दिलाया, और अपने आप को विश्वास दिलाते हुए, अहिंसा और क्षमा का पाठ अन्य लोगों को भी पढ़ाया । सितम्बर 20, 1958 के एक चालीस वर्षीय अश्वेत महिला, आईजोला बरी ने उनको तब मारने का प्रयास किया, जब वे अपनी पुस्तक STRIDE TOWARD FREEDOM:THE MONTGOMERY STORY की प्रतियों पर हस्ताक्षर कर रहे

थे । इस हमले में वे बाल-बाल बचे और हस्तपताल में बेहोशी की हालत में उन्होंने अपनी पत्नी, कोरेटा से कहा, "इस महिला को सहायता की आवश्यकता है । यह हिंसा के लिए उत्तरदायी नहीं है । इसको दण्डित नहीं, करवाओ, बल्कि इसका इलाज करवाओ । यद्यपि इस महिला ने उन्हें मारने का प्रयास किया था, किन्तु उन्होने उसके प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखी, और जब उसे मानसिक रोग के उपचार के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया, तो उन्होंने आराम की सांस ली ।

किंग की यह धारणा थी कि प्रेम वह मूल्य है जो कि हमें अपने शुत्र और मित्र दोनों के प्रति रखना चाहिए । जब वे CROZER THEOLOGICAL SEMINARY में अध्ययनरत थे तो उन्होने नीति के विचारों को अध्ययन कया । नीत्शे ने क्रिस्श्च्यन धर्म को कमजोर धर्म की संज्ञा दी थी, क्योंकि वह क्षमा भाव की बात करता है, और प्यार से व्यक्ति की अशक्त कर देता है । नीत्शे के विचारों के अध्ययन से उन्हे ऐसा लगने लगा था, मानो, प्रेम की भावना से कोई समस्या नही सुलझ सकती । किन्तु इस भावनात्मक और बौद्धिक उधेडबुन के दौर में, हावर्ड विश्वविद्यालय के अध्यक्ष MORDECAL JOHSON भाषण ने उनके सारे भ्रम और शंकाए समाप्त कर दी । ये भाषण महात्मा गाँधी और उनके विचारों पर था, और इस ओजस्वी भाषण से वे इतना प्रभावित हुए की उन्होंने तत्काल गाँधी पर कई पुस्तके खरीद ली । इस भाषण ने उन्हे आभास दिलाया कि प्रेम अशक्त का हथियार नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी शक्ति है जिससे समाज में भी सकारात्मक परिवर्तन आ सकता है ।

किंग ने बाद में अपनी पुस्तक में लिखा सम्भवत: "गाँधी वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ईसा मसीह की प्रेम की नीति को केवल मात्र व्यक्तिगत अन्तक्रिया से ऊपर उठाया और उरने एक सशक्त सामाजिक साधन बनाकर एक वृहद क्षेत्र में लागू किया। 1967 को रिवरसाईड चर्च के एक भाषण में उन्होंने कहा : हम बुराई का जवाब अच्छाई से देगें । हम अपने शत्रु से प्रेम करेंगे । ईसा मसीह ने हमें यह राह दिखाई, और गाँधी ने दर्शाया कि इसका सार्थक प्रयोग हो सकता है । " गाँधी मानते थे कि अगर हम केवल उसे प्रेम करें जो कि हमारा मित्र है, तो हम अहिंसक नहीं है । अहिंसा का वास्तविक अर्थ यही है कि हम उसे भी वैसा ही प्रेम दिखाएं जो हमारे प्रति द्वेष और दुर्भावना का भाव रखता है । 1928 में YOUNG INDIA में गाँधी ने लिखा था कि चालीस वर्षो कें अथक प्रार्थनाओं से सम्पूर्ण अनुशासन के आधार पर वे यह कह सकते थे कि वे अब किसी से नफरत नहीं करते ।

किंग अपने आपको गाँधी का ऋणी मानते थे क्योंकि गाँधी का अध्ययन करने के पश्चात ही उन्हे इस बात का आभास हुआ कि प्रेम की ईसाई धारणा, गाँधीजी की अहिंसा. की. तकनीक, के माध्यम से काम करती हुई एक ऐसी सशक्त शक्ति बन जाती है, जिसके प्रयोग से आक्रान्त समाज अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ सकता है । गाँधी की ही तरह उन श्वेत लोगों की भी प्रशंसा प्राप्त की जिन्होंने उनसे दुर्व्यवहार किया था 1 आन्दोलन के दौरान उन्होंने कई बार गाँधी के प्रभाव का उल्लेख किया, और उनकी मौत के पश्चात, उनके मित्र और हमराज, रैल्फ एबरनैथी ने उन्हे एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि उन्हे स्वर्ग में कई व्यक्तियों से अवश्य मिलने का प्रयास करना चाहिए । उनके शब्दों में "महात्मा गाँधी को ढूंढना क्योंकि

उन्होंने हमारे आन्दोलन को प्रेरित किया, अपनी अहिंसा की तकनीक द्वारा उन्होंने इमें स्वतन्त्र होने की राह दिखाई ।

उनका अहिंसा का दर्शन गाँधी और ईसा मसीह के विचारों का संगम था । प्रेम का मार्गदर्शक ईसा मसीह का सर्मन ऑफ द माउन्ट था, और गाँधी ने अहिंसक आन्दोलन क दिशा दिखाई । गाँधी की डांडी यात्रा से वे अत्यधिक प्रभावित हुए थे और सत्याग्रह को उन्होंने अपने आन्दोलन का आधार बनाया था । अश्वेत लोगों के प्रति श्वेत लोगों ने बहुत अपमानजनक दृष्टिकोण अपनाया था, उनपर कई अत्याचार ढाप थे : कोलाआयको के शब्दों में,"मताधिकार से वंचित, अन्यायपूर्ण व्यवस्थापिकाओं से पीड़ित, न्यायपालिकाओं के शनै:वाद से, दुखी और संघीय सरकार से तिरस्कृत अश्वेत जनता को एक ऐसे राह की तलाश थी, जिसपर चलकर सुधारों और नस्लीय न्याय में सामंजस्य बै. सकता जिस व्यक्ति ने उन्हे यह राह दिखाई, वह मार्टिन लूथरकिंग जूनियर था, और उन्होंने जो राह दिखाई वह अहिंसा और प्रेम की राह थी ।

अपने एक भाषण "सम्पूर्ण जीवन के तीन आयाम में किंग ने लोक कल्याण के पहलू पर जोर दिया उनके अनुसार, एक सम्पूर्ण जीवन के तीन पहलू लम्बाईचौडाई और ऊचाई हैं, जो निम्नानुसार हैं -

लम्बाई: जीवन की लम्बाई का अर्थ है. एक व्यक्ति का अपने कल्याण के प्रति सर्मपण । उन्होंने कहा अपने आप को प्रेम करो, अगर यह तार्किक और स्वस्थ्य आत्म-प्रेम है । किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि व्यक्ति इतना आत्म केन्द्रित हो जाए कि सामाजिक पहलू ही भूज जाए ।

चौडाई: सम्पूर्ण जीवन के लिए आवश्यक है कि किस प्रकार व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर, समाज कल्याण की बात के बारे में विचार करे, समस्त मानवता के बारे में महसूस करें ऊंचाई: इस प्रेम के आधार पर व्यक्ति ईश्वर तक पहुंचता है, जो कि समस्त यर्थाथ का स्त्रोत है इसलिए उन्होंने सभी को कहा कि अपने समस्त मस्तिष्क और आत्मा से ईश्वर को प्रेम करों । दिसम्बर 11, 1964, के अपने नोबेल अभिभाषण में उन्होंने कहा कि नफरत की राह आत्म-घातक है । इतिहास उन राष्ट्रों के मलबों से भरा हुआ है जिन्होंने नफरत की आवश्यक राह को चुना । प्यार में वह शक्ति है जो कि शत्रुओं का मित्रों में तब्दील कर सकता है, जबकि नफरत से उस व्यक्ति का व्यक्तित्व विकृत हो सकता है और आत्मा दूषित हो सकती है । दोनो गाँधी और किंग यह मानते थे कि कोई व्यक्ति कितना भी नीचे गिर जाए, प्यार में वह शक्ति है कि उसे ऊपर उठाया जा सकता है ।

बर्मिगहैंम आन्दोलन के दौरान, हर कार्यकर्ता को एक समर्पण कार्ड पर हस्ताक्षर करने होते थे । उसमें एक दिशा निर्देश था प्यार की भाषा में चलो, प्यार की भाषा बोलो, क्योंकि, प्यार ही ईश्वर है । "2 मार्च, 1930 को सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने रमे पहले महात्मा गाँधी ने वायसराय लॉड इसविन को एक पत्र में लिखा था ।" मैं किसी भी जीवित प्राणी से नुकगन नहीं पहुंचा सकता, विशेष कर मानव जाति को, अगर वे मुझे कितना भी नुक्सान पहुंचाए तोन्मी-मेरी महत्वांकाक्षा केवल यहां तक है कि मै अहिंसा से आप सभी का हृदय परिवर्तन कर दूँ ।

1930 में, डांडी यात्रा के दौरान जब गाँधी और उनके समर्थकों ने नमक कानून तोड़ा तो ब्रिटिश शासकों ने हिंसा का सहारा लेकर यह अहिंसक आन्दोलन तोडना चाहा, किन्तु गाँधी और उसके समर्थकों ने अपनी ओर से हिंसा का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया ।

12 दिसम्बर 1955 को द मोन्टगोमेरी एडर्वटाईजर में जूलियट मोर्ग्न द्वारा लिखा गया पत्र " आपको याद होगा, गाँधी ने साबटभत्तती आश्रम से समुद्र तट तक- 150 मील दूर- तक सरकार के नमक कानून के विरूद्ध डांडी यात्रा आरम्भ की । उन्होंने अपने साथ, एक लगोंट एक लाठी और एक विचार लिया । उन्होंने यह प्रण किया कि वे तब तक वापिस नहीं आएंगे जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं होता है । किसी ने उनका मजाक बनाया, किसी ने अपने सिर हिलाए, किन्तु सत्रह वर्ष पश्चात भारत २चतन्त्र हो गया । सविनय अवज्ञा और नफरत से स्वतन्त्रता निःसन्देह एक सशक्त हथियार हैं मोन्टगोमेरी की अश्वेत जनता ने गाँधी और थोरो से सबक लिया हैं ।"

15.4 सारांश

मार्टिन लूथर किंग जूनियर की मौलिक चिताऐं आरंभिक तौर पर एक ईसाई पादरी की थी । उन्होंने न केवल अमेरिकी आदर्शो में विश्वास किया बल्कि यह भी मानते थे कि अहिंसक साधनों के माध्यम से वह उनके में विद्यमान नस्लीय तनाव के वातावरण को सुधार सकते हैं । उन्होंने अपने आपको काले लोगों तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि उसकी दृष्टि में श्वेत और काले दोनों ही लोग समान थे । न्याय, स्वतंत्रता, समानता और सम्मानजनक जीवन के लिए उन्होंने कई रैलियों का नेतृत्व बडी सफलता के साथ किया जिसमें सबसे महत्वपूर्ण थी- मोन्टगोमेरी बस बहिष्कार (1955-56) जो आज भी मानव इतिहास में न्याय के लिए किए गए प्रयासों में सबसे भव्य मानी जाती है ।

उसने 1963 में वाशिंगटन में एक विशाल रैली का नेतृत्व सफलतापूर्वक किया, सदरन् क्रिश्चियन लीडरशिप कॉन्फ्रेन्स के अध्यक्ष और संस्थापक के रूप में और उनका 'आई-हेव-ए-ड्रीम' नामक भाषण दिया जो उनके कुशल वक्ता और पवित्र भावनाओं का शास्त्रीय उदाहरण माना जाता है ।

जब डी. किंग की 1969 में हत्या की गई, तब वह मानव के भ्रातृत्व के पहरेदार बन गये और आशा के नये युग के पैगम्बर बन गये । उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि अहिंसा कमजोर व्यक्ति का हथियार नहीं है, बल्कि यह साहसी का हथियार है जैसे गाँधी जैसे महान नेताओं ने बडे-बडे लक्ष्यों को प्रभावी रूप ये प्राप्त करने में सफलता पायी है । गाँधी के समान ही मार्टिन सुथर किंग जुनियर ने अहिंसा में अपनी पूर्ण आस्था जताई ।

गाँधी के समान ही किंग ने अहिंसा का व्यापक अर्थ लगाया और इस बात पर बल दिया कि इसके सफल प्रयोग के लिए सही प्रशिक्षण भी जरूरी है । किंग द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम के महत्व को स्वीकार करते हुए बाद में उनके सहयोगी डी. बर्नार्ड लफाएट्टे और कैप्टिन चार्ल्स एलफिन द्वारा विश्व स्तर पर विकसित व संगठित किया गया । किंग ने 'अहिंसा को एक शक्तिशाली और न्यायपूर्ण 'हथियार' माना जो बिना काटे छ करता है और घाव भरता भी

है ।" उन्होंने विस्तार से अहिंसा के सिद्धान्तों की व्याख्या ही नहीं की अपितु की है गाँधी के समान इसका सशक्त प्रयोग भी किया है ।

15.5 अभ्यास प्रश्न

1. डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर की प्रमुख उपलब्धियाँ क्या रही हैं ?
2. किंग और गाँधी की अहिंसा संबंधी दर्शन का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए
3. किंग की अहिंसा के अनुप्रयोगों का वर्णन कीजिए ।

15.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वेबर, थॉमस,"गाँधी एज डिसिप्लिन एण्ड मेंन्टॉर, "केम्ब्रिज युनिवर्सिटी, नई दिल्ली,2007.
2. फिशर, लुईस, "द लाईफ ऑफ महात्मा गाँधी', द हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, नई दिल्ली,2006.
3. हार्डिमेन डेविड, 'गाँधी : इन हिज टाइम एण्ड वन्स", परमानेन्ट्स ब्लेक, दिल्ली, 2005.

इकाई - 16

गाँधी और नेल्सन मण्डेला और गाँधी

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

18.2 नेल्सन मण्डेला का जीवन-वृत

16.3 नेल्सन मण्डेला का राजनैतिक जीवन

16.3.1 अफ्रिकी राष्ट्रीय काँग्रेस की युवा शाखा (1944)

16.3.2 1964 में कटघेरे से उद्बोधन

16.4 नेल्सन मण्डेला पर गाँधी का प्रभाव और दोनों में तुलना

16.5 सारांश

16.6 अभ्यास प्रश्न

16.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित कर सकेंगे :-

- नेल्सन मण्डेला के जीवन के बारे में समझना ।
- नेल्सन मण्डेला के विचारों को समझाना ।
- नेल्सन मण्डेला पर गाँधी का प्रभाव समझाना, तथा
- नेल्सन मण्डेला पर गाँधी के विचारों और कार्यो में समानताओं और असमानताओं को समझाना।

16.1 प्रस्तावना

1993 में नोबेल शान्ति पुरस्कार विजेता नेल्सन मण्डेला, महात्मा गाँधी और मार्टिन लूथर किंग जूनियर जैसी महान हस्तियों की श्रेणी में आते हैं। वे महात्मा गाँधी के दक्षिण अफ्रिका में रंगभेद के विरूद्ध चलाये गए आन्दोलन और फिर भारत लौटकर ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के विरूद्ध सफल हिंसक प्रतिरोध से काफी प्रभावित हुए । उन्होनें अन्याय, नस्लवाद और राजनैतिक अत्याचार के विरूद्ध अहिंसा और सविनय अवज्ञा के माध्यम से एक संघर्ष छेडकर दक्षिण अफ्रिकी-समाज में अपने अथक प्रयासों से सामाजिक न्याय की स्थापना की । इस क्रम वे लगभग 27 वर्षा तक जेल की काल-कोठरी में बन्द रहे और निरन्तर गाँधीवादी व्यक्तित्व व दर्शन की सनातन रश्मियों से ऊर्जा प्राप्त कर भावी दक्षिण अफ्रिकी समाज व राजनीति तथा सम्पूर्ण मानवता के भविष्य के बारे में सकारात्मक चिन्तन करते रहे। 1994 में दक्षिण अफ्रिका में उनके नेतृत्व में पहली अश्वेत सरकार का गठन कर गाँधीजी को उन्होंने सच्ची श्रद्धांञ्जली

प्रदान की। उनके द्वारा नेतृत्व प्रदान किए गए सरकार विरोधी आन्दोलन ने शेष अफ्रिकी राष्ट्रों की जनता के लिए प्रेरणा व उत्साहवर्धन का काम किया है ।

16.2 नेल्सन मण्डेला का जीवन-वृत

नेल्सन रोलीहलाहलाह मण्डेला का जन्म 18 जुलाई,1918 को दक्षिण अफ्रीका, के क्वेजा क्थाथा जिले, के एक छोटे से गाँव कुल उमटाटा, ट्रान्सकई में हुआ था । उनके पिता वही के राजा के अत्यधिक करीब थे, और 1927 में उनकी मृत्यु के पश्चात् नए राजा जोंगिनटाबा दलिनदयेबो ने नौ वर्ष के रोलीहलाझुलाह को गोद ले लिया, और उनकी शिक्षा की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले ली । इन्होनें अपनी स्कूली शिक्षा 'क्लार्कऐबैरी बोर्डिंग' संस्था में प्राप्त की, और वे अपने परिवार के प्रथम सदस्य थे जिसने विद्यालय में कदम रखा था, बोर्डिंग स्कूल के पश्चात् उन्होनें फोर्ट हैर मिशनरी कॉलेज में उच्च शिक्षा ग्रहण की ।

उन्हें प्यार से "मडीबा" कहा गया, जो कि उनके कबीले का भी नाम था, अपनी. जीवनी लॉग वॉक टूफ्रिडम में वे कहते हैं कि उन्हें नेल्सन (Nelson) नाम सात वर्ष की उम्र में स्कूल में कदम रखने पर पहले ही दिन अपनी टीचर मिस. मडिन्गाने (Ms.Mdingane) द्वारा दिया गया । गडिया हैनरी मैपहाकाप्तीईस्वा उनके पिता थे, और उन्होने उनका नाम रोलीहलाहलाह रखा था, जिसका अर्थ था, पेड़ू की शाखा को तोड़ना (Trouble-maker) । सोलह साल की उम्र में उन्हें 'दालीबुन्मा' नाम भी दिया गया । मण्डेला ने अपने आत्मकथा में लिखा है कि - "मुझे जो शिक्षा मिली वह ब्रिटिश शिक्षा थी, जिसमें ब्रिटिश विचार, ब्रिटिश संस्कृति, ब्रिटिश संस्थाएं स्वाभाविक रूप से श्रेष्ठ मानी गई थी ।'

'अफ्रीकी संस्कृति जैसी कोई चीज नहीं थी । श्वेत लोग अफ्रीकी नामों का नहीं कर पाते थे या वे इन नामों का उच्चारण नहीं करना चाहते थे । क्योंकि अफ्रीकी नाम होना असभ्यता निशानी माना जाता था । अत: उस दिन मिल मडिन्गाने ने कहा कि अब से आपका नाम 'नेल्सन' होगा । यह मुझे क्यों दिया गया, मुझे नहीं पता । सम्भवत: यह नाम महान ब्रिटिश नौसेना अध्यक्ष 'लार्ड नेल्सन' से प्रेरित था, यह केवल मेरा अनुमान ही था ।" 'बहुत ही छोटी उस में अपना अधिकांश समय गांव के बच्चों के साथ और लड़ने में बिताया था । वह बच्चा जो अपनी माँ से चिपका रहता था, वह मजाक का पात्र बन जाता था । रात के समय मैं अपना खाना और कम्बल इन बच्चों के साथ बांटता था । मैं मुश्किल से पांच वर्ष का था जब मैं एक गड़रिया बन गया और बकरियों और गायों की देखभाल करने लगा ।"

प्रकृति की गोद में विभिन्न खेल खेलते हुए इस बालक ने कई बातें सीखीं -गुलेल से पक्षियों का शिकार करना, जंगली शहद और फल एकत्रित करना, ठंडे स्वच्छ झरने में नहाना और तैरना, मछली पकड़ना, स्वयं बनाए हुए खिलौनों से खेलना, प्रकृति से लगाव उनके बचपन की ही देन थे।

"कुन्नू में मेरा आमना-सामना कुछ ही श्वेत लोगों से हुआ। उनमें कुछ पुलिसकर्मी, एक न्यायाधीश, पास का एक दुकानदार आदि शामिल थे । ये सभी मुझे भगवान जैसे लगते थे और मुझे इस,, बात का इतना था कि इन्हें भय मिश्रित सम्मान से देखना चाहिए ।'

सात वर्ष की उम्र में जब उन्होनें स्कूल जाने की तैयारी की, तो उनके पिताजी ने अलग ले जाकर उनसे कहा कि अब स्कूल जाने के लिए उन्हें ढंग के कपड़े पहनने होंगे। तब तक कुन्नू हर बालक की तरह, वे भी एक कम्बल पहनते थे जो कि एक कंधे से लिपटी होती थी, और कमर पर एक पिन से बंधी होती थी । उनके पिताजी ने अपनी पतलून को घुटनों से काटा और उन्हें पहनने को दी ।ये कमर से ढीली थी, तो उनके पिता ने उसे रस्सी से कमर पर कस कर बांध दिया ।

नेल्सन मण्डेला ने अपनी जीवनी 'लॉग वॉक टू फ्रिडम' में लिखा है कि "यद्यपि ये एक हास्यास्पद दृश्य रहा होगा, किन्तु मैंने कभी भी इतना गर्व महसूस नहीं किया, जितना उस दिन अपने पिता की कटी हुई पतलून पहनकर किया था ।"

जिस व्यक्ति ने आगे जाकर यह कहा कि "वह व्यक्ति जो दूसरे की स्वतन्त्रता का हनन करता है, वह नफरत का कैदी है," बचपन से ही इस बात को महसूस किया कि अगर कोई खेल मे पराजित होता है तो उसे अपमानित नहीं करना चाहिए ।

फोर्ट हैर विश्वविद्यालय में उनकी मित्रता औलिवर टैम्बो से हुई, और विद्यार्थियों की एक हड़ताल में भाग लेने के कारण इन्हें वही से निकाल दिया गया ।

सन् 1941 में, तेईस साल की उस में शादी करने के दबाव से बचने के लिए वे जौहान्सबर्ग के दक्षिण-पश्चिम प्रदेश सोवेटो चले गए वहां पर उन्होनें एक सोने की खान में चौकीदार की नौकरी की । विटकिन साईडैलस्की और ऐडलमैनू नामक कानून की कम्पनी के क्लर्क की नौकरी भी की । तत्पश्चात् दक्षिण अफ्रीका के विश्वविद्यालय से उन्होनें कानून में डिग्री हासिल की, और एक कानून की कम्पनी में नौकरी की । शीघ्र ही वे एक जाने माने वकील बन गए, जिन्होनें अश्वेत दक्षिण अफ्रीकी लोगों के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार के विरूद्ध लड़ाई लड़ी ।

सिसलु के घर में उनकी मुलाकात एक विनम्र, शान्त और खूबसूरत लड़की, एवलिन मेस से हुई, जिससे कि उनकी पहली शादी सम्पन्न हुई, वे आर्थिक दृष्टि से इतने सक्षम नहीं थे कि परम्परागत ढंग से शादी कर सकते, अत: जौहान्सबर्ग में उन्होनें न्यायालय में शादी की । उनकी चार सन्तानें हुई- थैम्बीकीले (1946), माकाजीवे (1947), जिसकी नौ महीने में ही मृत्यु हो गई, माकगाथो (1951), और माकाजीव (1954) । 1958 में एवलिन मेल उनका तलाक हो गया।

सन् 1958 में विनी मडिकीजेला (1958-1996) से उनकी दूसरी शादी सम्पन्न हुई । जब मण्डेला जेल में थे, इस दौरान विनी मण्डेला राजनीतिक दृष्टि से काफी सशक्त हो गई । 1992 में, कई घोटालों में उनका नाम आने के कारण दोनों में दरार पड़ गई, और 1995 में उन्हें मन्त्रिमण्डल से भी निष्कासित कर दिया गया । 1996 में वे मण्डेला से कानूनन अलग हो गई ।

सन् 1998 में उन्होनें ग्रेसा से तीसरी शादी की जो कि मौजाम्बिक के राष्ट्रपति समोरा माईकल की विधवा थी । यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं और बच्चों के अधिकारों के क्षेत्र में सक्रिय कार्यकर्ता रही ।

सन् 1942 में ही उन्हें पत्राचार द्वारा स्नातक की डिग्री प्राप्त हुई। सन् 1943 में उन्होनें अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस' की सदस्यता प्राप्त की ।

16.3 नेल्सन मण्डेला का राजनैतिक जीवन

16.3.1 अफ्रीकी राष्ट्रीय काँग्रेस की युवा शाखा (1944)

1944 में जब द्वितीय विश्व युद्ध चरम सीमा पर था, तो 'अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस' के कुछ युवा सदस्यों ने एन्टन लेम्बेडे के नेतृत्व में 'अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस' को एक उग्र जन आन्दोलन का रूप देना चाहा । विलियम नकोमो वाल्टर सिसलु आलिवर टैम्बो, ऐश्बी पीमदा के अलावा इन युवाओं में नेल्सन मण्डेला भी थे । ये 60 सदस्य थे और विट वाटर स्ट्रेण्ड (WIT WATER STRAND) के आसपास ही रहते थे ।

इनका यह तर्क था कि अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस का परम्परावादी संविधानवाद और विनम्र प्रतिनिधिमंडलवाद राष्ट्रीय स्वतंत्रता नहीं दिला सकता । इसके स्थान पर लैम्बैडे उसके साथियों ने एक क्रान्तिकारी अफ्रीकी राष्ट्रवाद की वकालत की जो कि राष्ट्रीय आत्म-निर्धारण (National Self-Determination) पर आधारित थी ।

सितम्बर 1944 में उन्होनें अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस यूथ लींग (African National Congress Youth) का गठन किया । शीघ्र ही उन्होनें अपने साथियों को अपने अनुशासित काम और अथक प्रयासों से प्रभावित किया और 1948 में उन्हें लीग का राष्ट्रीय सचिव निर्वाचित किया गया ।

इन्होनें काफी प्रचारात्मक कार्यवाहियों के माध्यम से अपनी नीतियों के लिए नेशनल काँग्रेस के सदस्यों में समर्थन प्राप्त किया ।

सन् 1949 में औपचारिक रूप से अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने बहिष्कार, अवज्ञा, असहयोग, हड़ताल को अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस की नीति के रूप में स्वीकारा ।

1952 में जब अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने अन्यायपूर्ण कानूनों के विरूद्ध एक आन्दोलन छेड़ा तो, मण्डेला जो कि अब तक युवा लीग के अध्यक्ष थे, राष्ट्रीय मुख्य स्वयंसेवक चुने गये। मुट्ठी लोगों से आरम्भ किया हुआ यह आन्दोलन एक जन आन्दोलन बन गया ।

अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए मण्डेला ने पूरे देश का दौरा और लोगों को अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करने के लिए प्रेरित किया ।

सिसलु मोरोक्का और सत्रह अन्य लोगों के साथ मण्डेला के विरूद्ध कार्यवाही हुई, जिसमें यह पाया गया कि मण्डेला ने लगातार अपने सहयोगियों का अहिंसा का सहारा लेने लिए प्रेरित किया था, उन्हें आस्थगित कारावास की सजा सुनाई गई और छः माह तक जोहन्सबर्ग में ही की हिदायत दी गई और सम्मेलनों में भाग लेने की मनाही कर दी गई । इस दौरान उन्होनें वकालत के लिए परीक्षा दी, और उन्हें वकालत करने की अनुमति मिल गई ।

1947 में विटकिन, सिडलस्की और ईडलमैन की कानून की कम्पनी में कार्यकाल समाप्त हुआ और उन्होनें अब कानून की अपनी पढ़ाई को अपना पूरा समय दिया । इसी वर्ष

उनकी माकाजीबे का जन्म हुआ, किन्तु नौ माह पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई । 1953 में एक और पुत्री के जन्म पर ' उसका नाम भी माकाजीबे रखा ।

26 जून 1950 में मण्डेला ने नस्लवाद विद्रोह के राष्ट्रीय दिवस में हिस्सा लिया, और उसी दिन उनके दूसरे पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम उन्होनें माकगाथो रखा ।

1952 में अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस के उप-राष्ट्रीय राष्ट्रपति बन कर उन्होनें के विरूद्ध अहिंसक साधनों के प्रयोग पर जोर दिया, किन्तु 1960 में शार्पविल में जब कुछ अहिंसक प्रदर्शनकर्ताओं की मौत हुई, तो उन्होनें अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस की एक और शाखा उमखोन्टो वी सिजव की नींव, जिसके माध्यम से उन्होनें गुरिल्ला युद्ध को प्रोत्साहित किया । इसी वर्ष अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस को गैर- घोषित किया गया और उसे अपराधी ठहराया गया ।

सन 1960 के शार्पविल नरसंहार के पश्चात् मण्डेला ने अपनी अहिंसात्मक नीति का परित्याग कर दिया, क्योंकि उन्हें इस बात का आभास हुआ कि श्वेत लोगों के विरूद्ध एक हिंसात्मक आन्दोलन ही कारगर सिद्ध हो सकता था ।

21 मार्च, 1960 को अफ्रीकी पुलिस ने अश्वेत विद्रोहियों पर तब गोलियाँ दागनी आरम्भ कर दी जब 5 हजार से 7 हजार लोगों की भीड़ ने जोहन्सबर्ग के समीप शार्पविल क्षेत्र में शान्तिपूर्ण तरीके से विरोध प्रदर्शन किया, और स्वयं को बन्दी बनाने के लिए पुलिस के समक्ष पेश किया । ये पास लॉज (PASS LAWS) के विरूद्ध प्रदर्शन कर रहे थे, जो कि 1920 से अश्वेत दक्षिण अफ्रीकियों के आवागमन को प्रतिबन्धित करते थे, और नस्लवाद समर्थक राष्ट्रीय दल ने हैन्डरिक वरवोरड़ के नेतृत्व में 1960 के पश्चात् इन कानूनों को और कड़ा कर दिया था । इस आधार पर अश्वेत लोगों को बन्दी बनाकर अत्याचार किया जाता था ।

विद्रोहियों के पास पत्थरों के अतिरिक्त कोई हथियार नहीं थे, किन्तु पुलिस बच्चों से लैस थी और उन्होने इस शान्तिपूर्ण भीड पर आक्रमण कर दिया । सरकारी आकडो के अनुसार, इसमें मरने वालों की संख्या 69 थी और 180 लोग घायल हुए ।

इस नरसंहार की अन्तराष्ट्रीय स्तर पर आलोचना की गई । 30 मार्च 1960 को सरकार ने आपातकाल घोषित कर दिया और अठारह हजार लोगों को गिरफ्तार किया गया । 1 अप्रैल 1960 को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् ने संकल्प पारित किया । शार्पविल नरसंहार दक्षिण अफ्रीका के इतिहास में एक नया मोड था । अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में यह निरन्तर अकेला और पृथक पड़ता गया ।

सन् 1961 में दक्षिण अफ्रीका राष्ट्रमंडल (Commonwealth of Nations) से भी पृथक हो गया । सन् 1994 के पश्चात् 21 मार्च को दक्षिण अफ्रीका में 'मानव अधिकार दिवस' के रूप में मनाया जाता है । 10 दिसम्बर 1996 को राष्ट्रपति मण्डेला ने शार्पविल में ही दक्षिण अफ्रीका के संविधान को कानूनन स्वीकृति दी ।

सन् 1998 में, सत्य और सामंजस्य आयोग (TRUTH AND RECONCILIATION COMMISSION) ने यह निर्णय दिया कि पुलिस कर्मियों द्वारा निहत्थे लोगों पर आक्रमण और

शक्ति प्रदर्शन मानव अधिकारों का घोर हनन था । यूनेस्को द्वारा प्रतिवर्ष 21 मार्च को 'नस्लवाद उन्मूलन दिवस' के रूप में मनाया जाता है ।

शार्पविल नरसंहार के पश्चात् पैन अफ्रीकन काँग्रेस (PAC) और अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस को प्रतिबन्धित किया गया । पैन अफ्रीकन काँग्रेस (PAC) ने भी POQ (सैन्य प्रभाग) की नींव रखी और अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने उमखोन्टो वी सिजव की नींव रखी ।

यह शार्पविल नरसंहार भारत के जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड की याद दिलाता है जब 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर में बैसाखी के दिन हजारों की मात्रा में भारतीय, विशेषकर सिख लोग एकत्रित हुए थे और ब्रिगेडियर जनरल डायर ने और उसके सैनिकों ने उन निहत्थे लोगों पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ दाग दी थीं ।

इस नरसंहार ने पूरे भारतवर्ष को दहला कर रख दिया था । महात्मा गाँधी ने कहा कि वे इस शैतान सरकार के साथ सहयोग नहीं कर सकते, ओर इस दुर्घटना ने सहयोगी गाँधी को असहयोगी गाँधी बना दिया । उसी प्रकार शार्पविल नरसंहार के पश्चात् मण्डेला ने सशस्त्र विरोध पर जोर दिया ।

जून,1961 में मण्डेला के इस सुझाव पर अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने मंथन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस के वे सदस्य जो अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस की सैनिक शाखा में सम्मिलित होकर हिंसात्मक तरीके अपनाना चाहते हैं, उन्हें रोका नहीं जाएगा ।

इसके फलस्वरूप उमखोन्टो वी सिजव (राष्ट्र का भाला) का निर्माण हुआ । जो कि 1961 से 1990 तक सक्रिय रहा । इसे संक्षेप में एम.के. के नाम से भी जाना जाता था । 'लॉग वॉक टू फ्रिडम' के 42वें अध्याय 'द ब्लैक पिम्परनेल' में वे कहते हैं-

"मैं जो कि कभी सैनिक नहीं रहा, जो कि कभी युद्ध में नहीं लड़ा, जिसने कभी शत्रु पर बन्दूक नहीं दागी को एक सैना के निर्माण करने का कार्य सौंपा गया था । इस नई संस्था का नाम उमखोन्टो वी सिजवे था । संक्षेप में इसे एम.के. अर्थात राष्ट्र का भाला' कहा जाता है । 'भाले' को प्रतीक चुना गया था क्योंकि सदियों तक अफ्रीकी लोगों ने श्वेतों के आक्रमणों को भालों के आधार पर ही रौंदा था ।"

इस संस्था में उन्होंने हिंसात्मक साधनों पर जोर दिया, जैसे सरकारी टेलीफोन की तारे काटना और अन्य संचार के साधन भी जिन्होंने अपने लक्ष्य के प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए लिखा है कि "हमारा उद्देश्य था उन हिंसात्मक तरीकों को अपनाना जो कि राज्य को नुकसान पहुँचाएँ न कि व्यक्ति को । इस राह पर काफी कठिनाईयाँ और खतरे विद्यमान हैं । मुझे अपने आप को अपने परिवार से दूर करना पड़ा है, मुझे अपने काम को त्यागना पड़ा है.... मैं सरकार का विरोध हर इंच, हर मील तक करूंगा, जब तक हम जीत हासिल न करें । मैं तब तक दक्षिण अफ्रीका नहीं छोड़ूंगा, और न हीं सरकार के सामने घूटने टेकूँगा । स्वतन्त्रता कठिनाईयों, त्याग और सशस्त्र आन्दोलन से ही सम्भव है । मेरा जीवन मेरा संघर्ष हुँ । मैं स्वतन्त्रता के लिंए मृत्यु पर्यन्त संघर्ष करूंगा ।

इस दौरान मण्डेला ने कई पुस्तकें पढ़ी और विशेषज्ञों से सलाह ली, प्लग, वे यह, जानना चाहते थे कि एक क्रान्ति आरम्भ करने के मूल आधार क्या थे । "मैं यह जानना चाहता

था कि गुरिल्ला युद्ध कैसे लडा जाता है, उसके लिए कौनसी परिस्थितियाँ सर्वोच्च थीं, और गुरिल्ला योद्धाओं को किस प्रकार का प्रशिक्षण मिलना चाहिए ।"

उन्होनें इस दौरान आग्ल-बोयर युद्ध के बारे में पढ़ा, चैग्वेरा के बारे में और उनकी रचनाओं को पढ़ा, माओत्स तुंग और फिडैल कॉस्ट्रो को पढ़ा, दक्षिण अफ्रीका के इतिहास को भी पढ़ा । उन्होंने कहा है कि

"26 जून, 1961, हमारे स्वतन्त्रता दिवस पर मैंने एक पत्र दक्षिण अफ्रीकी समाचारपत्रों को भेजा, जिसमें मैंने पुन: एक राष्ट्रीय संविधानिक अधिवेशन का आहवान किया । मैने पुन: कहा कि अगर ऐसा अधिवेशन नहीं रखा गया तो एक राष्ट्रव्यापी असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया जाएगा । मेरे पत्र के कुछ अंश थे

"मुझे पता चला है कि मुझे बन्दी बनाने के लिए वारंट जारी हो चुका है, और पुलिस को मेरी तलाश है...मैं सस्ते बलिदान की खोज में नहीं हूँ । मैं यह समझता हूँ कि पुलिस के सामने आत्मसमर्पण करना आपराधिक ही नहीं बेवकूफाना भी है ।"

"स्वतन्त्रता की राह पर हम में से अधिकांश लोगों को बार-बार मौत की घाटी से गुजरना होगा, जब तक कि हम अपनी इच्छाओं के पहाड़ तक नहीं पहुँच जाते ।'1962 उन्हें बन्दी बनाकर पाँच साल के कठिन परिश्रम की सजा सुनाई गई । 1963 में जब अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस और उमखोन्टो वी सिजव के कुछ सदस्यों को बन्दी बनाया गया तो सरकार को हिंसात्मक तरीकों से हटाने के लिए मण्डेला पर भी उनके साथ केस चलाया गया, कटघरे से उनका जो उद्बोधन था उसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई ।

12.3.2 1964 में कटघेरे से उद्बोधन

"सर्वप्रथम तो मैं यह कहना चाहूँगा कि राज्य का यह सुझाव कि दक्षिण अफ्रीका का संघर्ष विदेशियों और साम्यवादियों के प्रभाव के कारण है, सर्वथा गलत है, व्यक्तिगत तौर पर, अपने लोगों के नेता के रूप में मैंने जो कुछ भी किया वह मेरे दक्षिण अफ्रीकी अनुभवों पर आधारित था, और अपनी पृष्ठभूमि में गर्व के कारण किया ।

ट्रांस्काई में अपनी जवानी में, मैने अपने बुजुर्गों से पुराने जमाने की कहानियां सुनी थीं, विशेषकर उन पूर्वजों की जिन्होनें अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए कई युद्धों में हिस्सा लिया.. मैं तभी से इस तलाश में था कि मुझे कोई अवसर मिले जब मैं भी अपने देश के लिए कोई योगदान दूं ।

जहाँ तक हिंसा का प्रश्न है, मैं इस बात को नकार नहीं रहा कि मैंने तोड़-फोड की, किन्तु मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया क्योंकि मुझे हिंसा से प्यार है, बल्कि बहुत सोच विचार के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि श्वेत लोगों द्वारा वर्षा से किए गए शोषण और अत्याचार को हिंसा द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है उमखोन्टो वी सिजवे की स्थापना के पीछे दो मुख्य कारण थे । एक तो यह है कि, मुझे यह विश्वास हो चुका था कि सरकार की नीति के कारण, जनता द्वारा हिंसा, अवश्वम्भावी हो चुकी थी, और अगर जनता के आक्रोश और क्रोध को कोई मच नहीं मिलेगा, तो पूरी सम्भावना थी कि ये आतंकवाद का रूप ले लेगा जो कि युद्ध से भी

अधिक घातक होगा, और द्वितीय यह है कि हमें इस बात का भी अहसास हो चुका था कि श्वेत लोगों की सर्वोच्चता के विरूद्ध एक हिंसात्मक आन्दोलन ही सफल हो सकता था ।

विरोध के कानूनी तरीके हमारे लिए उपलब्ध नहीं थे, और हम इस स्थिति में आ चुके थे जहां पर हमें अपनी हीन स्थिति को स्वीकारने के लिए बाध्य होना पड़ता, या हम सरकार का विरोध करते । हमने सरकार के विरोध करने का निर्णय लिया, हमने पहले तो बिना हिंसा के कानून का उल्लंघन किया, जब इसका कानूनन विरोध किया गया और सरकार ने दमनात्मक कार्यवाही का सहारा लिया, तो हमने हिंसा का जवाब हिंसा से देना उचित समझा । 'परिणामतय गिरफ्तारी हुई । इस प्रकार मेण्डला कई वर्षा तक जेल की सजाऐं काटते रहे ।

16.4 नेल्सन मण्डेला पर गाँधी का प्रभाव और दोनों में तुलना

व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रभाव पडते हैं जिसके कारण उसका आचरण प्रभावित होता है । प्रत्येक महापुरूषों पर भी उनके युग की परिस्थितियों और कुछ अन्य कारकों, जैसे अन्य महापुरूषों का दर्शन, परिवार के सदस्य, जीवन अनुभव, इत्यादि का प्रभाव देखने को मिलता ही है । दक्षिण अफ्रिका के महान नेता नेल्सन मण्डेला पर भी अनेक प्रभाव पडे हैं । नेल्सन मण्डेला को प्रभावित करने वालों मे प्रमुख रूप से उनके माता पिता और पूर्व पत्नी विन्नी मएडेला का नाम लिया जाता है । दक्षिण अफ्रिका के रंगभेद विरोधी सक्रिय कार्यकर्ता और समाज सेवी वालटर सिसुलू ने भी मण्डेला को प्रभावित किया । मण्डेला हर्ष से उन सभी कार्यो से संलग्न हो जाते थे जिससे सिसुलू जुड जाते थे । दक्षिण अफ्रिका के प्रमुख समाजिक कार्यकर्ता और पूर्व आर्चबिशप डेसमण्ड टुटु ने भी मण्डेला को प्रभावित किया । परन्तु मण्डेला खुद कहते हैं कि उनके संघर्ष में गाँधी उनके लिए प्रेरणा स्रोत रहे हैं । वे कहते हैं कि "कई पहलुओं में वे (गाँधी) मेरे आदर्श हैं । " मण्डेला कहते हैं कि गाँधी के दर्शन ने दक्षिण अफ्रिका में शान्तिपूर्ण परिवर्तन लाने की दिशा में और रंगभेद की घृणित प्रथा द्वारा मनुष्यों के बीच विनाशकारी दीवारें निर्मित कर आहत जख्मों का उपचार करने में बडा योगदान दिया है । मण्डेला ने गाँधी को 'पवित्र योद्धा' के नाम से संबोधित किया है और कहते हैं कि गाँधी ने नैतिकता के साथ फौलादी संकल्प को जोडते हुए अत्याचारी ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध बिना समझौता किए संघर्ष करने का रास्ता बताया है । दक्षिण अफ्रीका में मण्डेला के आन्दोलन की प्रेरणा महात्मा गाँधी से मिलने की बात करते हुए अपनी आत्मकथा (लॉग वॉक टू फ्रिडम) में लिखते हैं - "मैं 27 वर्षा तक जेल की काल-कोठरी में महात्मा गाँधी जैसी महान् विभूति के व्यक्ति और विचार दर्शन की अर्मूत तरंगों की अगाध ऊर्जा पाकर जीवित रहा हूँ । " अन्ततः वे दक्षिण अफ्रीकी गौरी सरकार के विरूद्ध अपने अहिंसक आन्दोलन में विजय रहें और 1994 में दक्षिण अफ्रीका में पहली अश्वेत सरकार का गठन उन्हीं के नेतृत्व में हुआ ।

गाँधी ने अपने जीवन काल में आत्म-सम्मान और नैतिक मूल्यों की कीमत पर समझौता किए बिना अन्याय और शोषण करने वाले लोगों और व्यवस्थाओं का सक्रिय विरोध किया । अपने इस सक्रिय विरोध में उन्होंने अहिंसक साधनों के प्रयोग पर बल दिया । राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं में प्रजातान्त्रिक मूल्यों का ज्यादा से ज्यादा मात्रा में समावेश करने पर उन्होंने बल दिया । न्याय, समान्ता अर्ह स्वतंत्रता जैसे मूल्य जिन्हें

प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का आधार माना जाता है, उनकी प्राप्ति के लिए गाँधी ने अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया । व्यक्ति, समूह और समाज के स्तर पर ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों के मध्य सौहार्दपूर्ण संबंध और शान्ति के भी वे जबरदस्त समर्थक थे ।

गाँधी की भाँति दक्षिण अफ्रिका के महान नेता नेल्सन मण्डेला ने भी अन्याय और शोषण करने वाले लोगों और व्यवस्थाओं का सक्रिय विरोध करने और वहाँ न्याय, समान्ता और स्वतंत्रता पर आधारित प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को स्थापित करनें में अपना जीवन समर्पित किया है । वे भी गाँधी के समान श्वेत और अश्वेत में ही नहीं वैश्विक स्तर पर सौहार्द और शान्ति की कल्पना करते हैं । दक्षिण अफ्रिका के रंग-भेद नीति पर आधारित अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अहिंसक तरीके से समाधान ढूँढने का प्रयास मण्डेला ने भी किया, परन्तु सरकार के दमन के कारण उन्हें लगा सरकार का प्रभावी विरोध करने के लिए उन्हीं के समान हिंसा एवं दबाव' के अन्य साधनों के प्रयोग की भी आवश्यकता है । वे इस रास्ते पर चले भी, लेकिन अपने 27 साल के लगभग कारावास पश्चात जब वे बाहर आए और श्वेत सरकार के साथ दक्षिण अफ्रिका में नई प्रजातान्त्रिक व्यवस्था स्थापित करने के प्रयास के दौरान उन्होंने रंगभेद के विरूद्ध संघर्षरत सभी को हिंसा का मार्ग त्याग कर अहिंसक और शान्तिपूर्ण साधनों का प्रयोग करने का अपील किया । गाँधी की भाँति मण्डेला के संघर्ष और त्याग के कारण उन्हें आदर से 'दक्षिण अफ्रिका का गाँधी' भी कहा जाता है । अत: यह कहा जा सेता है कि गाँधी शुरू से लेकर अन्त तक' सत्य और अन्याय के विरूद्ध अहिंसक संघर्ष के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हुए दिखायी देते हैं और मण्डेला प्रारंभ में अहिंसक साधनों का समर्थन करते हैं, बीच में ' अन्य प्रभावी साधन, हिंसा सहित' का समर्थन करते हुए हैं, और अन्त में पुन: अहिंसा मे अपनी आस्था को व्यक्त करते दिखते हैं । वे अब यह भी कहते हैं कि विश्व को द्वारा बताये गये अहिंसक साधनों से संघर्ष समाधान करने के तरीके को पुन: खोज करना चाहिए । गाँधी और नेल्सन मण्डेला का नाम न केवल उनके अपने देश में अपितु पूरे विश्व भर में बहुत आदर और सम्मान के साथ जाता है । संघर्ष के लिए आत्म-बलिदान तक देने के लिए तैयार रहने का संदेश दोनों के जीवन से मिलता । 'अन्याय से कोई समझौता नहीं किया जा सकता' और 'सक्रिय प्रतिरोध से अन्याय और शोषण का विरोध जायेगा' का संदेश मण्डेला और गाँधी के जीवन और कार्य रो प्रतिबिंबित होती है । दोनों ने अपने समकालीन शासन को अन्यायपूर्ण और

अनैतिक माना और उसका सक्रिय विरोध किया । शासन का विरोध करने के कारण उन्हें अनेक यातनाऑनं दी गई । गाँधी और नेल्सन मण्डेला ने इन यातनाओं को सहा । दोनों के चिन्तन, कार्य, त्याग और बलिदान उन्हें महापुरूषों की श्रेणी में अग्रणी बनाते हैं । जहाँ गाँधी ने भारतीयों का नेतृत्व कर ब्रिटेन के उपनिवेशवादी शासन से भारत को स्वतंत्र किया था वहीं नेल्सन मण्डेला ने दक्षिण अफ्रिका के अश्वेत लोगों का नेतृत्व कर दक्षिण अफ्रिका में रंग-भेद नीतियों पर आधारित शासन व्यवस्था को समाप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । दक्षिण अफ्रिका में रंगभेद नीतियों के विरूद्ध संघर्ष में दोनों गाँधी और मण्डेला को जेल जाना पडा और यह इतिहास की बात है कि दोनों 'फोर्ट कारागार' नाम से प्रसिद्ध जेल में बन्दी बनाये गये । गाँधी का कारावास यही अल्प अवधि के लिए था पर मण्डेला ने लगभग 27 साल

(1964से 1990) जेल में अपना जीवन बिताया और इसमें कुछ समय वे भी फोर्ट कारागार मे कैदी न. 46664 के रूप में कैद थे।

दक्षिण अफ्रिका गाँधी और नेल्सन मण्डेला की कर्मभूमि थी । यहाँ विद्यमान विभेदीकरण की नीतियों से दोनों भली भाँति परिचित थे । गाँधी ने अपना सार्वजनिक जीवन यहीं से प्रारंभ किया। वे 1893 से 1914 तक दक्षिण अफ्रिका में रहे और वही भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए सक्रिय रहे । गाँधी के सत्याग्रह तकनीक की उत्पत्ति यहीं से हुई थी । जुलाई 1914 में गाँधी भारत के लिए रवाना हुए और जनवरी 1915 में भरत पहुँचे । एक साल बाद वे चम्पारण सत्याग्रह के साथ भारत में सार्वजनिक आदोलन में सक्रिय हुए । 1916 से 1947 तक वे भारत को अंग्रेजों के शासन से मुक्त करने के प्रयासों में सक्रिय रहे । नेल्सन मण्डेला का जन्म दक्षिण अफ्रीका के क्वेजा क्थाथा जिले कुन्नू उमटाटा, ट्रान्सकई में हुआ था । युवा अवस्था से ही मण्डेला दक्षिण अफ्रिका में रंग-भेद नीतियों पर आधारित शासन व्यवस्था का विरोध करने लगे और अन्ततः दक्षिण अफ्रिका में रंग-भेद समाप्त करने में सफल भी हुए । इस तरह यदि देखा जाये तो यह कहना उचित होगा कि दक्षिण अफ्रिका में रंग-भेद आधारित व्यवस्था के विरूद्ध विरोध करने में पहले गाँधी और बाद में उन्हीं से अहिंसक प्रतिरोध की प्रेरणा लेते हुए नेल्सन मण्डेला ने इसका सफल विरोध कर समाप्त किया ।

दोनों अपने-अपने देश के महत्वपूर्ण पहचान चिन्ह (icons) बन गए हैं । दोनो अन्यायपूर्ण और शोषणात्मक व्यवस्था के विरूद्ध अहिंसक संघर्ष के महान प्रेरणा स्रोत हैं और यह ज्ञान देते हैं कि अत्याचारी शासन के विरूद्ध संघर्ष करना जरूरी है । यह संघर्ष करके किया जाए इसके बारे में गाँधी और नेल्सन मण्डेला मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

गाँधी भारत के 'राष्ट्र-पिता' कहे जाते हैं तो मण्डेला को दक्षिण अफ्रिका में आदर से 'राष्ट्र-पिता' कहा जाता है । मण्डेला द्वारा गाँधी की भाँति अहिंसक साधनों के प्रयोग से अन्यायपूर्ण और शोषणात्मक शासन के विरूद्ध संघर्ष करने के कारण कुछ लोगों के द्वारा उन्हें 'दक्षिण अफ्रिका का गाँधी' भी कहा जाता है ।

मण्डेला और गाँधी का नाम 20वीं शताब्दी में उत्कृष्ट हस्तियों की सूची में उल्लेख किया गया है, गाँधी का नाम इस प्रकार की सूचियों में 10 से 15 तक के क्रम के अन्दर देखने को मिलता है और वरियता क्रम में वे मण्डेला से आगे दिखते हैं ।

जब गाँधी जीवित थे तब उन्होंने कहा था कि वे कदापि आश्चर्य-चकित नहीं होंगे यदि उनके विचारों को विश्व के अन्य जगहों में रहने वाले लोगों के द्वारा अपनाया जायेगा । मण्डेला ने उन्हें दक्षिण अफ्रिका में सही साबित किया । सत्ता का त्याग कर सक्रिय समाज सेवा में संलग्न होने के उदाहरण दोनों हैं । 1994 से 1999 तक राष्ट्रपति रहने के बाद मण्डेला ने दूसरा राष्ट्रपति-कार्यकाल की अनइच्छा व्यक्त गरीबी और HIV/AIDS उन्मूलन एवं अन्य समाज सेवा में नेल्सन मण्डेला फाउण्डेशन के माध्यम से सक्रिय हैं। गाँधी भी राजनीतिक सत्ता के मोह से प्रथक रहे परन्तु राजनीति का आध्यात्मीकरण कर गरीब और बेबस' की सक्रिय परोपकारी सेवा में गाँधी स्वयं को संलग्न करते रहे और अन्यों को भी इस कार्य के लिए प्रेरित रहे ।

गाँधी और मण्डेला का नाम महान शान्ति दूतों में लिया जाता है । दोनों संघर्षो को शान्तिपूर्ण तरीके से समाधान करने पर जोर देते हैं । न्याय, समान्ता और स्वतंत्रता के दोनों जबरदस्त समर्थक हैं । अपने-अपने राष्ट्र को शोषणात्मक साम्राज्यवादी शासन से मुक्त करने में गाँधी और मण्डेला ने अहम भूमिका निभायी है । राष्ट्रीय स्तर पर और राष्ट्र के भीतर समाज में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर पर मण्डेला और गाँधी अन्तर-वैक्तिक और संरचना-व्यक्ति संघर्षो को अहिंसा से शान्तिपूर्ण ढंग से समाधान करने की बात करते हैं ।

गाँधी और मण्डेला प्रजातंत्रिक व्यवस्था की स्थापना के लिए दृढ़ संकल्पित हैं । विद्यमान राजनीतिक व्यवस्था में दोनों ने अनुभव किया कि प्रजातंत्रिक मूल्यों की घोर अवहेलना की जा रही है । ओक प्रकार के प्रयासों से दोनों ने अन्ततः अपने देश में प्रजातांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने में सफलता हासिल की है । वे कहते हैं, "मैं हमेशा एक प्रजातांत्रिक और मुक्त समाज के आदर्श को संजोया करता था, एक ऐसा जहाँ सभी शान्ति से रहते हैं और सभी को समान अवरपर प्राप्त हों. । इस आदर्श स्थिति का निर्माण करना हूँ और हकीकत में बदलना चाहता हूँ । यदि मुझे ऐसे समाज के लिए अपना जीवन न्योछावर करना पडे तो मैं लिए तैयार हूँ । "मण्डेला का कथन यह भी है, "मैने गोरे लोगों के आधिपत्य का विरोध किया है और काले लोगों के आधिपत्य का भी विरोध किया है । मैने एक ऐसे प्रजातन्त्रिक और मुक्त समाज के आदर्श को है जिस में सभी लोग एक। साथ सोहार्द से और समान अवसर की प्राप्ति कर जीवन व्यापन करते हैं । इस आदर्श की प्राप्ति के लिए मैं जीना चाहता हूँ और अवश्यकता पडने पर मरने के लिए भी तैयार हूँ । "गाँधी ने भी लगभग यही बात दूसरे शब्दों में कहा । उन्होंने अपना जीवन आदर्श सर्वोदय समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने में लगा?।या । सर्वोदय समाज प्राप्ति का उनका प्रयास ही उनका दूसरे लोगों के लिए संदेश था । ऐसे सर्वोदय समाज का ही एक महत्वपूर्ण पक्ष था कौमी एकता और सांप्रदायिक सदभाव जिसके लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गाँधीजी को अपना जीवन न्योछावर करना पडा ।

गाँधी और मण्डेला का नाम विश्व प्रसिद्ध नोबेल शान्ति पुरूस्कार से भी है । यद्यपि गाँधी का नाम नोबेल शान्ति पुरूस्कार-ज्ञ लिए विचार किया गया, परन्तु उन्हें यह पुरूस्कार प्राप्त नहीं हुआ । परन्तु मण्डेला को उनके शान्ति प्रयासों के लिए 1993 में नोबेल शान्ति पुरूस्कार से सम्मानित गया था ।

गाँधी के समान मण्डेला भी यह विचार रखते थे कि धर्म, भाषा और संस्कृति व्यक्ति के अधिकतम कल्याण के लिए होने चाहिए, न कि मनुष्यों को संकीर्ण सीमाओं में बान्द कर समाज को करने और व्यक्तियों के विकास में बाधा पहुँचाने का कार्य करे । मण्डेला के अनुसार गरीबी समाज को करने का प्रमुख कारण है और इसलिए गरीबी-उन्मूलन उनके लिए प्राथमिक था । 1993 में नोबेल शान्ति प्राप्ति के अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि विकास और शान्ति अविभाज्य है । शान्ति और आन्तरिक सुरक्षा के अभाव में राष्ट्र अपने सर्वाधिक वांछित नागरिकों के उद्धार पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकती ।

16.5 सारांश

गाँधी और नेल्सन मण्डेला विश्व के दो ऐसे महापुरूष हैं जिन्होंने अन्याय शोषण करने वाले लोगों और व्यवस्थाओं के विरूद्ध सक्रिय विरोध करने का आवेन किया है । न्याय, समान्ता और स्वतंत्रता पर आधारित प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को स्थापित करनें में इन्होंने अपना जीवन समर्पित किया है । दक्षिण अफ्रीका की श्वेत सरकार के विरूद्ध आन्दोलन में दोनों अलग-अलग समय पर संलग्न रहे । 1893 से 1915 गाँधी दक्षिण अफ्रिका में रहे और वहाँ श्वेत सरकार की रंगभेद नीति का अहिंसक विरोध किया । इस विरोध को पहले उन्होंने निक्रिय प्रतिरोध का नाम दिया और बाद में बदल कर सत्याग्रह का नाम रखा । अपने समय में गाँधी ने कहा था कि वे कदापि आश्चर्य-चकित नहीं होंगे यदि उनके विचारों को विश्व के अन्य जगहों में रहने वाले लोगों के द्वारा अपनाया जायेगा । नेल्सन मण्डेला ने दक्षिण अफ्रिका में रंगभेद नीतियों पर आधारित सरकार का सफल विरोध कर गाँधी को सही साबित किया है । दानों का नाम महान शान्ति दूतों में लिया जाता है और दोनों अन्तर-वैयक्तिक, अन्तर-समूह और अन्तर-राष्ट्रीय संघर्षो को शान्तिपूर्ण तरीके से समाधान करने पर जोर देते हैं । मानवता का कल्याण दोनों का ध्येय है और इसी के प्रति समर्पण दोनों के जीवन का सार है ।

16.6 अभ्यास प्रश्न

1. नेल्सन मण्डेला का जीवन-वृंत बताइये?
2. नेल्सन मण्डेला द्वारा अफ्रीका सरकार के विरूद्ध चलाये गये आन्दोलन पर एक लेख लिखिए ।
3. नेल्सन मण्डेला के जीवन पर गाँधीजी के प्रभाव पर लेख लिखिए ।
4. गाँधी और नेल्सन मण्डेला के विचारों और कार्यो का तुलनात्मक विवेचन कीजिए ।

16.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बोस, एन के., सेलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1972
2. अय्यर, राघवन एन., द मोरल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1973
3. गाँधी, एम के., नॉन वायलेंस इन पीस एण्ड वार, अहमदाबाद. नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, 1949
4. मण्डेला, नेल्सन, "स्वतंत्रता की पैदल यात्रा" (आत्मकथा), राजकमल एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
5. कॉर्लिन, जॉन, 'प्लेईग द एनीमी. नेल्सन मण्डेला एण्ड द गेम देट मेड ए नेशन", पेंगुईन, न्यूयार्क, 2008
6. स्मिथ, यंग मण्डेला द रिवोल्यूशनरी ईयर्स", लिटिल ब्राउन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 2010

ISBN : 13/978-81-8496-378-6